पतन की परिभाषा

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—३७

पतन की परिभाषा

लेखक

परिपूर्णानन्द वर्म्मा

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

"पतन की परिभाषा" हिन्दी समिति ग्रन्थमाला की ३७वी पुस्तक है। इसके रचयिता श्री परिपूर्णानन्द वर्म्मा हिन्दी के सुख्यात लेखको में से है जो गत ३०-३५ वर्षों मे किसी न किसी रूप मे बराबर हिन्दी की सेवा करते रहे हैं। आपने विविध विषयों पर ३८ पुस्तके हिन्दी मे लिखी है। अपराध-विज्ञान का आपने गहरा अध्ययन किया है और तत्सबधी प्रश्नो पर लम्वे अरसे से अनुसंधान, विचार-विमर्श एवं मनन करते रहे है। इसका एक परिणाम यह बहुमूल्य पुस्तक ही है जो हिन्दी मे अपने ढंग की अद्वितीय रचना है।

विश्व के अन्य कितने ही देशो की तरह आज हमारे यहाँ भी किशोरों और नव-युवकों मे अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता एवं अपराध की प्रवृत्ति बढ रही है। यह प्रश्न देश के समाज-सुधारको, विचारको और अभिभावको के सम्मुख है। वर्म्माजी ने इस पुस्तक में जो विचार प्रकट किये है, जो आँकडे और अवतरण दिये है, उनसे इस समस्या के तथा उससे सम्बद्ध अन्य प्रश्नों के समाधान में विशेष सहायता मिलेगी, इसमे सन्देह नही। जैसा कि वर्म्माजी ने लिखा है—"आज पुरुष अपने अधिकार के लिए लडते हैं, स्त्री अपने अधिकार के लिए। हम चाहते हैं कि लोग परिवार के अधिकार के लिए लड़े।" समाज परिवारों से ही बनता है। अत समाज की स्थिति सुदृढ तथा पुष्ट बनाने के लिए परिवारों की दृढता और मर्यादा बनाये रखने का प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है। अपराध करनेवाले युवक-युवतियो को या अन्य लोगो को केवल जेल भेज देने या दंड दे देने से स्थिति नही सुधर सकती।

अपराध क्या है, पतन क्या है और आज जिसे हम पतित कहते है, अपराधी समझते है, वह अपनी स्थिति या प्रवृत्तियों के लिए कहाँ तक जिम्मेदार है, इस पर सम्यक् विचार किये बिना हम किसी को दोषी नही ठहरा सकते। फिर मुख्य प्रश्न अपराधी को दंड देने या जेल भेज देने का ही नही बल्कि यह है कि वह कुमार्ग से विमुख होकर पुनः सुमार्ग पर आ जाय। जेल से वह "समाज के लिए उपयोगी तथा अधिक उपयुक्त नागरिक होकर घर लौटे।" इन्हीं सब प्रश्नो का सुन्दर विवेचन इसमे किया गया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक नितान्त उपयोगी है। हमे आशा है कि समाज में बढती

हुई अपराध-प्रवृत्तियों से चिन्तित प्रत्येक पाठक इस पुस्तक को पढ़कर लाभान्वित हुए बिना न रहेगा। इसमें उसे अध्ययन और मनन की, विचार और हृदय-मंथन की प्रचुर सामग्री मिलेगी।

भगवतीशरण सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

एक बात

आदिकाल से ही धार्मिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यो अथवा अनुशासनों से विमुख होनेवाले को पतनशील तथा पतित कहते है। किन्तु हर एक समाज का अनुशासन समान नही है, हर एक धर्म की तात्त्विक एकता अवश्य है पर अध्यादेश समान नहीं हैं। अतएव जो एक के लिए पतन का कारण है वह दूसरे के लिए प्रशंसा की वस्तु बन सकता है।

जबसे ममाज की रचना हुई, उसके आदेशों की अवज्ञा करनेवाले भी पैदा हो गये। ममाज ने ऐसी अवज्ञा करनेवालो को अपराध का दोषी, अर्थात् अपराधी कहा। जिम कार्य में कर्त्तव्य से पतन हो, वह अपराध है, पतन का कार्य करनेवाला अपराधी है।

किन्तु, अपराध तथा अपराधी की व्याख्या आज तक पूर्णरूपेण नही हो पायी है। हर एक अपने-अपने दृष्टिकोण से उसकी व्याख्या करता है। चूकि अपराध का मौलिक आधार समाज तथा धर्म की दृष्टि में अपने "कर्त्तव्य से पतन" है, इसी लिए मैने भी "पतन की परिभाषा" मे अपराध तथा अपराधी की व्याख्या करने का प्रयास किया है।

मेरे विचार से पश्चिम तथा पूर्व, प्राचीन तथा अर्वाचीन विचारधाराओं का समन्वय करने का सम्भवत. यह प्रथम प्रयास है, सम्भवत: अपने विषय की यह अकेली पुष्पाजलि हिन्दी साहित्य मे है, यद्यपि दडशास्त्र आदि पर दो एक ग्रन्थ हमारी भाषा मे भी हैं।

मैंने इसे तीन खंडों में विभाजित किया है, स्यात् अपराधशास्त्र का यह सही विभाजन है; कामवासना और अपराध, बाल-अपराध, वयस्क अपराधी और पुनर्वास। जो कुछ, जैसा भी, सात वर्ष के अध्ययन के बाद बन पड़ा, पाठको की सेवा मे अर्पित है। पुस्तक में अनेक त्रुटियाँ होंगी। उनके लिए पहले से ही क्षमा माँग लेता हूँ।

परिपूर्णानन्द वर्म्मा

विषय-सूची

प्रथम भाग

कामवासना और अपराध

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ठ
१. धर्म और नीति	१
२. अपराध क्या है?	८
३. कामवासना का मौलिक आधार	१३
४. अन्य पुरानी सभ्यताओ की स्थिति	५०
५. मध्ययुग और ईसाई धर्म के आगमन के बाद	६२
६. जंगली जातियों की कामवासना	७३
७. वासना के अपराध पर दंड	८७
८. हत्या सम्बन्धी परम्पराएँ या नियम	१०१
९. प्राचीन दंडविधान	१०७
१० आधुनिक दंडविधान	११२
(१) भारत मे——११२	
(२) ग्रेट ब्रिटेन में——११६	
(३) संयुक्त राज्य अमेरिका में——१२७	
(४) अन्य देशों की स्थिति——१३८	
११. वासना और अपराध का सम्बन्ध	१४३
१२. असाधारण कामुकता	१५३
१३. वासना के अपराधों की व्यापकता	१५९
१४. चुम्बन	१६९
१५. विवाह और तलाक	१७२
१६. आज की कृत्रिम सभ्यता	१८२

द्वितीय भाग

बाल अपराध की व्याख्या

१७ बाल अपराधी की समस्या — १९७
१८ बाल अपराधी कौन है ? — २०६
१९ दोषी कौन है ? — २२३
२० भिन्न देशो मे भिन्न उपाय — २४८
२१. एशियाई देशो मे बाल-अपराध-निरोध — २५७
२२. बाल अदालतें — २७०
२३ तुर्की तथा अरब देशों में बाल अपराधी — २८७
२४ यूरोपीय देशो में बाल-अपराध-निरोध — २९२
२५ अमेरिका मे बाल-अपराध-निरोध — २९८
२६. बाल-अपराध की समस्या का निदान — ३०१
२७. मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में — ३०८

तृतीय भाग

वयस्क अपराधी और पुनर्वास

२८. अपराध और वयस्क अपराधी — ३१३
२९. विकृतमना — ३२३
३०. क्या मानसिक रोगी अपराधी है ? — ३५०
३१. दंड का सिद्धान्त — ३५८
३२. कारागार का विकास — ३७१
३३. प्राणदंड — ३९१
३४. बन्दी की समस्या — ४०५
३५. खुली संस्थाएँ — ४२०
३६. स्त्री तथा परिवार से वियोग — ४२९
३७. पुनर्वास की समस्या — ४३४
३८. मनुष्य और धर्म — ४३६
सहायक पुस्तकों की सूची — ४३९
अनुक्रमणिका — ४४५

प्रथम भाग

कामवासना और अपराध

अध्याय १

धर्म और नीति

प्राचीन भारत मे जनता के लिए दो प्रकार के आदेश थे—धार्मिक तथा नैतिक। धार्मिक आदेशों की अवज्ञा, धर्म के विपरीत कार्य करना "पाप" समझा जाता था और नैतिक अर्थात् सामाजिक आदेशो की अवज्ञा "अपराध" कहा जाता था। धार्मिक तथा नैतिक-सामाजिक, दोनों ही दृष्टि से अपने कर्त्तव्य को न निभानेवाला या उनके विपरीत चलनेवाला "पतित" कहा जाता था। साधारणत यही कहा जाता था कि उस व्यक्ति का पतन हो गया है। कर्त्तव्य से च्युत होना ही पतन है।

किन्तु, कर्त्तव्य क्या हे ? धर्म क्या है ? धर्म का आदेश किसे तथा कैसे समझे और सामाजिक तथा नैतिक नियम क्या है जिनके विरुद्ध जाना अनुचित है ? जब तक यह निश्चित न हो जाय, पतन तथा पतित की मीमासा भी नही हो सकती। प्राचीन भारत मे धार्मिक पतन होने पर "प्रायश्चित्त" करना पड़ता था। नैतिक तथा सामाजिक पतन पर दड मिलता था। मानव प्रायश्चित्त तथा दंड की सकरी गली के बीच में चलता हुआ जीवन-निर्वाह कर रहा था।

तब और अब के मनुष्य और उसके स्वभाव में कोई अन्तर नही है। अनन्त काल हो गया, मानव-स्वभाव तथा उसकी वास्तविक समस्या नही बदली। जब सृष्टि की, इस विश्व की रचना नही हुई थी, उस समय क्या था, यह जानने योग्य भी नही है।[1] किन्तु जबसे जीव ने, प्राणयुक्त प्राणी ने जन्म लिया,[2] पशु-पक्षी से लेकर मनुष्य की

१. "सृष्टि के पहले प्रकृति जानने के अयोग्य (तुच्छ) होकर अंधकार में थी। (ऋग्वेद, अधि० ८, मं० १०, अ० ११, सू० १२९)

२. Dr. Cook और Prof. Geikic के कथनानुसार यह दुनिया ८०,००० वर्ष पुरानी है। पर अपने अनुसंधानों के आधार पर प्रो० औसबर्न इसे ६० लाख वर्ष पुरानी सिद्ध करते हैं। पर पुरानी कितनी भी हो, मन तथा बुद्धि का अनुमान अँधेरे में है।

प्रकृति, उसका स्वभाव, उसकी आन्तरिक प्रेरणा ज्यों की त्यों है। वह इतनी गूढ़, इतनी गम्भीर तथा गहरी है कि वैदिक काल से लेकर आज तक उसको जानने और समझने का प्रयास किया जा रहा है। पर जितना अध्ययन हो रहा है, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, भौतिक तथा कोरा वैज्ञानिक, उतना ही ऐसा लगता है कि हम अभी तक मानव-प्रकृति तथा स्वभाव को पहचानने या समझ पाने के स्थान से काफी दूर है।

तर्क की बात

हिन्दू-विश्वास के अनुसार इस सृष्टि के चार युग है—सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। हर युग मे "युगधर्म" के अनुसार मानव प्रकृति बदलती रहती है। आजकल कलियुग है।[1] इसमें हर एक मनुष्य तथा जीव-जन्तु का स्वभाव तामसिक यानी काम और वासनामय हो जाना चाहिए। तात्पर्य यह हुआ कि आज जो पतित है, वह प्रायः अपने कारण नहीं, युग के कारण ही पतित हो रहा है। शायद इसी प्रकार के धार्मिक विश्वास का खंडन करने के लिए कार्ल मार्क्स ने लिखा था कि "धर्म ने मनुष्य को नही उत्पन्न किया है; मनुष्य ने धर्म को जन्म दिया है। धर्म मानव के लिए अफीम की तरह है।"[2] यह कोई दलील नही है। काफी लचर कथन है। पर यह मानना ही पडेगा कि धर्म मनुष्य के लिए है। अतएव जब तक वह अपने धर्म को ठीक से समझेगा नही, केवल धर्म-धर्म पुकारने से कदापि कल्याण न होगा।

एक युग था जब हम धर्म तथा कर्त्तव्य को ठीक से समझना अपना कर्त्तव्य समझते थे और जहाँ कही समझ में नही आता था, मंत्र-द्रष्टा तथा धर्म-द्रष्टा ऋषियों से पूछते थे, समझने की चेष्टा करते थे। जब कलियुग आया और ऋषि लोग पृथ्वी पर से जाने लगे तो मनुष्यो ने घबड़ाकर देवताओं से पूछा कि अब हम क्या करेंगे ? उन्हें उत्तर मिला कि "तर्क" से, समझदारी से काम लेना। अतएव तर्क की प्रतिष्ठा आज से ३००० वर्ष पूर्व यास्क अपने "निरुक्त" में कर गये हैं। उसी तर्क के सहारे हम

१. प्राचीन मत है कि १७,२८,००० वर्ष तक सतयुग था। १२,९६,००० वर्ष तक त्रेतायुग और ८,४६,००० वर्ष तक द्वापर था। कलियुग ४,३८,००० वर्ष तक रहेगा। इसका प्रारम्भ १८ फरवरी, ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व, शुक्रवार से हुआ। अर्थात् अपराध शास्त्र को अभी लाखों वर्ष तक पैदा होनेवाले प्राणी का अध्ययन करना है।

२. Carl Marx—"Critique of Hegal's Philosophy of Law"

यह समझना चाहते है कि पतित या अपराधी कौन है, क्यों है। उसके साथ क्या और कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका निर्णय तर्क[१] से ही हो सकता है। उसी तर्क के सहारे हम "पतन की परिभाषा" करना चाहते हैं।

पाप और अपराध के सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय विधान में जो आदेश है, वे अशत. धार्मिक है, अशत. नैतिक है और अंशतः न्याय के अंग है। इनका ऐसा सम्मिश्रण है कि बिना तीनो को मिलाये कोई व्याख्या नही हो सकती।[२] धर्म को अलग कर देने पर कोरी नैतिकता अधूरी रह जाती है। न्याय को धर्म का रूप न देने पर न्याय-धर्म ही समाप्त हो जाता है। आदि आर्य सभ्यता की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है कि उन्होने मानव प्रकृति को ऊपर लिखे तीन क्षेत्रो मे बॉटकर ऐसा मिला दिया है कि आज तक पश्चिमी अपराध-विज्ञान उनके दृष्टिकोण तथा सिद्धान्त के दायरे के बाहर नही जा सका है। वेदो से प्राचीन ग्रन्थ ससार में कोई नही है। हम उन्हे आदि-ग्रंथ तथा मत्र-द्रष्टा ऋषियो की रचना मानते है। यदि पश्चिमी हिसाब ही माना जाय तो वे कम से कम ईसा से १२०० वर्ष पूर्व के है।[३] लोकमान्य तिलक ने उनको ईसा के पूर्व ४००० वर्ष का माना है।

प्राचीन भारतीय मत

ऋग्वेद के अनुसार रुद्र और वरुण दंड देते। वरुण पाप-पुण्य देखते हैं, यानी मानव के पाप-पुण्य के साक्षी वरुण देवता हैं।[४] पाप का प्रतिशोध बृहस्पति (गुरु) के ज़िम्मे किया गया था। गुरु ही प्रतिशोध के देवता हुए।[५] झूठ सबसे बड़ा पाप है।[६]

१. "ऋषिसु उत्क्रामत्सु मनुष्या देवान् अब्रुवन् को नः ऋषिः स्यादिति। ते तर्क ऋषि प्रायच्छन्"—यास्क (निरुक्त)।

२. P. K. Sen—Penology—Old & New, Pub. Longman Green & Co., Calcutta, 1943, Page 81.

३. जोन्स के अनुसार वेद ई० पूर्व १२०० वर्ष के हैं। हैंग के अनुसार २४०० वर्ष ई० पूर्व के तथा महेंजोदारो-हड़प्पा की खुदाई के बाद प्राप्त प्रमाण से ५००० वर्ष पुराने प्रतीत होते हैं।

४. ऋक्० १-२३-५

५. ऋक्० २-२३-१७

६. ऋक्० ७-१०-४०

पितरों का पाप भी भोगना होगा।[1] इसी पाप या पतन के कारण कर्मानुसार जन्म होता है। कीट पतग आदि कर्मानुसार पैदा होते है।[2] जन्म मे किये गये पापो का भोग इसी प्रकार भोगा जाता है। ईश्वरीय दड की यही प्रथा है, प्रणाली है।

ऊपर लिखे वैदिक विधान मे यह स्पष्ट है कि मानव के स्वभाव की दुर्बलताओं को समझकर उसकी रक्षा करने के लिए और दड को धार्मिक, नैतिक तथा न्यायसंगत बनाने के लिए तीनों दृष्टि से व्यवस्था दे दी गयी और इसी व्यवस्था के अतर्गत समूचे समाज की रक्षा होती थी। झूठ बोलना, धोखा देना या दूसरे का धन अपहरण करना, ये ऐसे मोटे नैतिक नियम है जो मन तथा बुद्धि के साथ हर समाज मे व्याप्त है अतएव हर समाज तथा हर देश के लिए समान रूप से लागू है। इनकी अवज्ञा करनेवाला समाज का शत्रु है, उसे दंड मिलना चाहिए। दड देना भी एक धर्म समझा गया है। समाज और उसकी रक्षा का बडे सुन्दर रूप मे वर्णन करते हुए कौटिल्य ने आज से २२०० वर्ष पूर्व लिखा था[3]—

"कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता पशु (१)। धान्य हिरण्य कुप्यविष्टि प्रदानादौ-पकारिकी (२)। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् (३)। आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेम साधनो दण्डः (४)। तस्य नीति दण्डनीतिः (५)। न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा-दण्डः इत्याचार्याः (६)।"

अर्थात् "कृषि, पशुपालन और वाणिज्य, यही वार्ता है। यह वार्तावित्रा धान्य, पशु, हिरण्य, तांबा आदि अनेक प्रकार की धातु और नौकर चाकर आदि के देने मे राजा-प्रजा का अत्यन्त उपकार करनेवाली होती है। इस विद्या से उत्पन्न हुए कोष और सेना से, अपने और पराये सबको राजा वश में कर लेता है। आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्त्ता इन सबके योग और क्षेम का साधन दंड ही है। दंडनीति का प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र ही दंडनीति कहलाता है। क्योंकि दंड के अतिरिक्त इस प्रकार का और कोई भी साधन नहीं है जिससे सब ही प्राणी झट अपने वश में हो सकें। यह आचार्यों का मत है।"

१. ऋक्० ७-८६-५

२. कौशीतकी उपनिषद् १-२ स इ "ह कीटो वा पतंगो वा मत्स्यो वा शकुनिर्वा सिंह :"

३. कौटलीय अर्थशास्त्र, प्रकाशक संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर, सन् १९२५—१ अधि० ४ अध्याय, पृष्ठ १२-१३।

पर, आगे चलकर कौटिल्य लिखते है—

"नेति कौटिल्यः (१०)। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः (११)। मृदुदण्ड परिभूयते (१२)। यथार्हदण्ड : पूज्यः (१३)।"

"परन्तु, कौटिल्य ऐसा नहीं मानते। निष्ठुरतापूर्वक दंड देनेवाले राजा से सब ही प्राणी खिन्न हो जाते है, तथा जो दड देने मे कमी करता है, उसका तिरस्कार भी करते है। इसलिए उचित दंड देनेवाला राजा ही पूजनीय होता है।"

कौटिल्य पतित को क्षमा नही करना चाहते पर निष्ठुरता भी नही चाहते। दंड हो, पर मुलायम हो। आधुनिक अपराध-शास्त्र भी घूम फिरकर यही कहता है। हाँ, भारतीय नीति धर्म की भावना से भी युक्त है, इसी लिए—

"सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति (१४)"

"क्योकि विधिपूर्वक शास्त्र से जानकर प्रयक्त किया हुआ दंड प्रजाओ को धर्म, अर्थ और काम से युक्त करता है।"

मनुस्मृति ने भी मानव की रक्षा के लिए दड की महत्ता प्रतिपादित की है। मनु[1] के अनुसार—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥[2]

"दंड सब प्रजाओ का शासन करता है। दंड ही सबकी रक्षा करता है। रक्षक जब सोते है, दंड जागता रहता है। पडितो ने दंड को ही धर्म बतलाया है। विचार-पूर्वक दिया हुआ वह दंड सब प्रजाओ को प्रसन्न करता है। किन्तु, बिना विचार किये दड का विधान राजा का सर्वनाश करता है।"

१. "संस्कृत साहित्येतिहास"—ले० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, प्रकाशक—श्री संकटा प्रकाशन मंडल, वाराणसी—के अनुसार कौटिल्य का समय ई० पूर्व ४०० वर्ष था, यानी आज से २३०० वर्ष पूर्व, मनुस्मृति का ई० पूर्व ३०० वर्ष था तथा याज्ञवल्क्य स्मृति का समय ईसा से १०० वर्ष पूर्व था।

२. मनुस्मृति–अध्याय ७ श्लोक १८ तथा १९

पतित को दंड देना धर्म है पर वह दंड निष्ठुर न हो, यही मनु का मत है। याज्ञवल्क्य ऋषि इसे अपनी स्मृति मे और भी स्पष्ट कर देते हैं—

तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत्।
धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा॥[1]

"उस राज्य को इस प्रकार प्राप्त करके राजा वंचक, शठ आदि दुराचारियों को दंड दे, क्योकि पूर्व समय मे ब्रह्मा ने धर्म को ही दंडरूप में रचा है।" दंड नाम यौगिक है क्योकि गौतम ने कहा है कि दमन करने को दंड कहते है, इसलिए जो दमन के योग्य हो, उसका दमन करे।

किन्तु प्राचीन भारतीय सभ्यता मे धर्म, नैतिकता तथा न्याय को एक साथ मिलाकर चलने चलाने से समाज की जो रक्षा हुई थी, क्या वही करने से आज भी अपराध की समस्या हल की जा सकेगी? इसमे कोई संदेह नही कि धार्मिक भावना बढने से, पुण्य-पाप की भावना मे वृद्धि होने से मनुष्य गलत रास्ते पर चलने से काफी रोका जा सकता है। पर आज का अनुभव यह कहता है कि धार्मिक शिक्षा प्राप्त या धार्मिक वातावरण मे पले हुए अपराधियों की संख्या भी कम नही है। पश्चिम के जेलों मे बहुतों मे यह नियम है कि सप्ताह मे एक बार धर्मशिक्षा होती है। पादरियों का कहना है कि कैदी उनका उपदेश बड़े ध्यानपूर्वक सुनता है पर उसके दिल में बात कम बैठती है। प्रायः ऐसे अस्थिर चित्त के व्यक्ति देखे गये है जिनमे धार्मिक भावना के साथ ही साथ अपराध की प्रवृत्ति होती है।[2] श्री हीली लिखते हैं कि "मैं यह नहीं कहता कि नशेबाजी, गरीबी, कुसंगति आदि के प्रलोभनों से रक्षा करने में धार्मिक वातावरण सहायक नहीं होता या दुर्गुणों के चंगुल में फँसने से बचाव में धर्म से सहायता नही मिलती, पर अपराध की अन्य पृष्ठ-भूमि को ध्यान में रखने पर यह प्रकट होगा कि धर्म ने विशेष रक्षा भी नही की है।"[3]

हीली यह भी नही मानते कि अशिक्षा से अपराध बढ़ता है या घरेलू दूषित वातावरण से ही अपराध होता है। उन्होंने १००० बंदियों की जाँच पड़ताल की तो उसमे

१. याज्ञ० स्मृति–आचाराध्याय श्लोक ३५४

२. William Healy—The Individual Delinquent, Pub. Little Brown and Company, Boston, 1927, Page 114.

३. वही–अध्याय ७, पृष्ठ ११४

पता चला कि उनमें से केवल ३११ ऐसे अपराधी थे जिनके माता-पिता शराबी थे। इनमे से १२९ ऐसे पिता थे जो कभी-कभी नशे मे हो जाते थे तथा ऐसी ९ माताएँ थी। ११८ पिता प्राय. नशे में रहते थे तथा ५ माताएँ भी; और २५ पिता तथा ८ माताएँ हमेशा नशे मे चूर रहती थी; पर ३११ एक तिहाई ही हुआ।" यह सब लिखने का तात्पर्य यह है कि पहले यह समझना चाहिए कि जिसे हम पतित तथा अपराधी समझते हैं वह कौन व्यक्ति है। उसकी परिभाषा क्या है। वेद तथा शास्त्र ने दंड को समाज की रक्षा के लिए आवश्यक धर्म माना है। धर्म का उल्लघन करनेवाला अपराधी है। पर, क्या नियमो का उल्लघन करना ही अपराध है? अपराध क्या है? धर्म-विरुद्ध क्या है? समाज-विरुद्ध क्या है?

अध्याय २

अपराध क्या है ?

धर्म के विरुद्ध किया गया कार्य पाप है। पाप भी अपराध है। पाप का इस लोक और परलोक में दंड मिलता है। समाज के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। नैतिकता के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। न्याय के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। किन्तु, हर एक मनुष्य एक ही धर्म का माननेवाला नहीं होता। हर एक मनुष्य एक ही देश का नहीं होता। हर एक के समाज का ढाँचा भी एक समान नहीं होता। अतएव देश, काल, धर्म के अनुसार पाप तथा अपराध की व्याख्या भी भिन्न होती होगी। इसीलिए हर देश का अपराध-शास्त्र भिन्न होना चाहिए, हर एक का नैतिक विधान भिन्न होता ही है।

मोटे तौर पर सच बोलना, चोरी न करना, दूसरे का धन अपहरण न करना, हत्या न करना, पिता-माता का आदर करना तथा पर-स्त्री गमन न करना, पुण्य, सदाचार तथा नैतिकता समझा जाता है। पर, व्यवहार में भी ऐसा नहीं है। अपराध तथा पाप की व्याख्या इतनी बड़ी है कि हममें से कौन कह सकता है कि उसने सदैव धर्म, समाज तथा नैतिकता और फिर न्याय के भीतर काम किया है। न्याय के विषय में इंग्लैण्ड के प्रधान विचारपति ने कहा है कि "देश में इतने अधिक कानून बन गये है कि बिना उनका उल्लंघन किये जीना कठिन है।"

धर्म इतनी व्यापक वस्तु है कि बड़े-बड़े पंडित तथा मुल्ला नित्य उसकी व्याख्या करते रहते है, फिर भी शंका-समाधान की गुंजायश बनी रहती है। न्याय उस विधान का नाम है जिसे उस समय का शासक वर्ग यानी बहुमत "उचित" समझता है और "अल्पमत" उचित नही भी समझ सकता। आज जो विधान है, कल उसे बदला जा सकता है।[1] किसी देश में उपभोग की सामग्री को वाजिब मूल्य पर बेचना अनिवार्य

१. हैरल्ड लास्की—"राजनीति प्रवेशिका" (Introduction to Politics) में लास्की के अनुसार विधान अस्थिर अतएव चंचल वस्तु है।

है। यदि ऐसा नही किया गया तो "चोरबाजारी" का अभियोग लग सकता है। अनेक देशो मे जितना दाम चढाकर माल बेचा जाय, वैध है, न्यायसंगत है। फिर, न्याय और समय की आवश्यकता मे भी अन्तर हो सकता है। सन् १९४५ से १९५० तक फ्रास मे "राशन कट्रोल" था, किन्तु सरकार चोरबाज़ारी को इसलिए स्वयं प्रोत्साहन देती थी कि लोगो को आवश्यक खाद्य सामग्री मिल जाती थी।[१] कानून बदलते रहते है, अतएव आज जो अपराध है, कल वही वैध बात होगी।

नैतिकता तथा धर्म

नैतिकता तथा धर्म को भी समझना बड़ा कठिन है। ईरान के इतिहास मे लिखा है कि जब तक जमशेद राजा ईश्वर के अनुकूल काम करता रहा, वहाँ (ईरान में) सुख-शान्ति थी। "पवित्र कार्य करने पर ईश्वर की ओर से पारितोषिक मिलता है। अवगुण करने पर दड मिलता है।"[२] पर पवित्र कार्य क्या है ? चोरी करना अपवित्र कार्य है, किन्तु पुराने सभ्य देश स्पार्टा में वही चोरी "चोरी" समझी जाती थी जिसमे चोरी करते समय देख लिया जाय। वरना, चुपचाप माल चुराकर घर मे रख लेना कोई अपराध नही था। ईरान के नरेश जहहाक ने एक प्रेत की आज्ञा से दो मनुष्यो को रोज मारकर उनका भेजा सांपो को खिलाने का आदेश दे रखा था। वह कोई अपवित्र कार्य नही था। पवित्रता और अपवित्रता अपनी-अपनी व्याख्या पर निर्भर करती है।

नैतिकता तथा सदाचार की हर देश में भिन्न व्याख्या देखकर ही कुछ लोग धर्म को कामशास्त्र का अंग मान बैठे थे। ब्लेक ने तो यहाँ तक लिख दिया था कि "काम-भाव का ही विकृत रूप धर्म है।" आगे चलकर वे लिखते है— "न्याय के पत्थरो से कारागार की दीवारें बनी, धर्म के पत्थरों से वेश्यालय बने।"[३] लेखक कटनर इसके बहुत आगे बढ़ गये। उन्होने तो यहाँ तक लिख

१. उन दिनों फ्रेन्च पार्लमेण्ट में एक मंत्री ने कहा था—"चोर बाजार वालों को धन्यवाद है कि हमारा राष्ट्र भूखों नहीं मर रहा है।"

२. शाहनामा—फिरदौसी

३. "Religion was actually the corruption of sex Prisons were built with stones of law, brothels with stones of religion"—Poet William Blake—(१८ वीं सदी के अंत में)

दिया कि "बहुत अधिक धार्मिक भक्ति दबी हुई कामुक वासना का परिणाम हो सकती है।"[१]

बड़ों का अवगुण गुण होता है

पवित्रता तथा अपवित्रता बड़े-छोटे पर भी निर्भर करती है। जूलियस सीजर (रोम साम्राज्य के प्रथम सम्राट्) तथा फ्रेडरिक महान् ऐसे नरेश, सुकरात ऐसे दार्शनिक, मिकायल एंजेलो तथा सैफो ऐसे कलाकार—ये सब पुरुष-पुरुष के साथ सम्भोग के शौकीन कहे जाते हैं।[२] यहूदी इतिहास में जूदा (यहोवा) के पुत्र ओनान अपना वीर्य पृथ्वी पर गिराते थे, यानी हस्तक्रिया करते थे, पर यह कोई अपराध न था। पुराने जापानी इतिहास में पुरुष-पुरुष-सम्भोग की चर्चा मिलती है। यूनानी कथाओं में जीउस और गेनीमेदो पुरुषों के परस्पर संभोग का वर्णन है। यूनानियों के अनुसार चिन नामक देवता ने यूकेतान में इस प्रकार के सम्भोग को प्रारम्भ कराया। यानी, यह काम भी देवता का था। ताहिती में धार्मिक कार्यों में स्त्री-स्त्री के साथ तथा पुरुष-पुरुष के साथ प्रसंग करता था। यह सब बड़ा पवित्र कार्य समझा जाता था।

कामदेवी की उपासना

भारतवर्ष में देवदासी प्रथा, यानी मंदिरों में देवताओं की सेवा के लिए समर्पित कन्याओं की (अर्थात् मंदिर की वेश्याओं की) प्रथा थी, जो भारत के स्वाधीन होने पर समाप्त हुई है। प्राचीन यूनान की राजधानी एथेंस में सरकारी तौर पर वेश्याएँ रखी जाती थीं, सरकार को उनसे काफी कर मिलता था। यूनान की प्रसिद्ध "कामदेवी" के मंदिर में वार्षिक पर्व पर वेश्याएँ अपनी सब आय मंदिर में चढ़ा देती थीं। विवाहिता स्त्रियों को जीवन में एक बार कामदेवी के मंदिर में जाकर अपना शरीर अर्पित करना पड़ता था और कोई भी पुरुष उनसे भोग कर सकता था। उस पुरुष से जो पैसा विवाहिता स्त्री को मिलता था, उसे वह मंदिर में चढ़ा देती थी। जिस प्रकार भारत में "सखीभाव" से उपासना चल पड़ी थी, यूनान में पुरुष लोग हिजड़े बनकर सखीभाव ग्रहण कर आजन्म कामदेवी की सेवा करते थे।

१. H. Cutner—"A short History of Sex Worship"—1940, Page 198.

२. वही—(Cutner की पुस्तक)

कोरिंथ मे कामदेवी के मंदिर में १००० वेश्याएँ भक्तों की "सेवा" के लिए रहती थी। यूनानी देवता प्रियापस मंदिर मे नग्न खड़े रहते थे। वसंत ऋतु में उनके लिंग को गुलाब की माला पहनायी जाती थी। ठीक इन्ही के समान रोमन देवता म्यूटिमस थे। दार्शनिक जैमब्लियस ऐसी उपासना की बड़ी प्रशंसा करते थे।

आजकल ऐसी बातें बड़े पतन की, निन्दनीय तथा हेय समझी जायँगी। पर कल के और आज के मानव मे कोई अन्तर नहीं हुआ है। उसका स्वभाव, उसका विकार, उसकी वासना ज्यों की त्यों है। मानव की वासना तब और अब समान रूपेण निन्दनीय है। १३वी सदी के बोक्कासियो[1] की एक स्त्री नायिका यदि सात पुरुषों से भी सतुष्ट नहीं हो सकती तो ब्रैंटम की वीर महिलाओं[2] की वासना की भट्ठी मे कौन नही झुलस जायेगा? नियम बदले है, नैतिकता की भावना बदली है, पर मनुष्य नही बदला है। १६वी सदी में एक पादरी ने जो शब्द कहे थे, वे आज भी पूरी तरह से लागू हो सकते है। पादरी ने कहा था—

"इस शताब्दी के आदमियो मे शालीनता कितनी दुर्लभ है। किसी प्रकार की बदनामी से, जुआ खेलने, डाका डालने या पैसा लेकर झूठ बोलने में उन्हें ज़रा भी संकोच नही होता। उनकी स्त्रियाँ अपना हाथ तथा छाती विवस्त्र किये हुए व्यभिचार, बलात्कार, भष्टाचार तथा अप्राकृतिक संभोग आदि को प्रोत्साहन दे रही है।"

पर-पुरुष सेवन

इसलिए धर्म के व्यापक दायरे में अपराध किसे कहे ? रोम की कामदेवी वेनस का वर्णन हम कर आये हैं। बैबीलोन की कामदेवी मिलिता को प्रसन्न करने के लिए वहाँ की हर एक स्त्री को सरकारी कानून के अनुसार साल मे एक बार पर-पुरुष-सेवन करना होता था। जिस परिवार पर ऋण हो जाता था, उसकी स्त्री मंदिर मे भेज दी जाती थी। मंदिर मे वेश्यावृत्ति से उसे रुपया कमाकर ऋण चुकाकर तब मदिर के बाहर जाने की इजाजत मिलती थी। जो जितनी जवान होती थी वह उतनी ही जल्दी कर्ज़ा चुकाकर बाहर आ जाती थी। अधेड़ और बुढियो को काफी समय लग जाता था। आर्मिनिया की कामदेवी "अनाइतीज" के मंदिर में लोग अपनी अविवाहिता कन्या चढ़ा देते थे। इस कन्या का उपभोग विदेशी यात्री करते थे। जिस कन्या का

१. De Cameron by Boccacio.

२. Brantome's "Gallant Ladies."

जितना अधिक उपयोग हो जाता था, वह विवाह के लिए उतनी ही "पवित्र" समझी जाती थी। स्पष्ट है कि बेबीलोन मे हर एक स्त्री एक बार की वेश्या थी। आर्मिनिया मे हर एक विवाहिता स्त्री दर्जनो विदेशियो के उपभोग से "पवित्र" बनती थी। यह सब "दुराचार" वैध था, जायज था, पुण्य था, धर्म के नाम पर था, देवी-देवता का वरदान था।

हत्या क्या है?

इस प्रसग को हम यही छोड़ते है। यह कहा जा सकता है कि डाका, हत्या, चोरी आदि हर जगह "अपराध" होंगे, पर बात ऐसी नही है। रोम मे हर पिता को अधिकार था कि अपनी विवाहिता कन्या को "पतित" होते देखे तो मार डाले। पति यदि ऐसा करे तो उसे प्राणदड मिलता था। पिता यदि ऐसा करे तो वैध था। अफ्रीका में कई जातियो मे शत्रु को मारकर देवता को चढा देते है। दूसरी जाति के आदमी को पकड़कर बलिदान करना धर्म में शामिल है। अपनी जाति के आदमी को मार डालने पर प्राणदंड मिलता है। यहूदी लोग पहले अपने देवता को बालकों की बलि चढाते थे। बाद मे उसके स्थान पर लोग अपने शिश्न का ऊपर का चमड़ा काटकर चढाने लगे। तभी से खतना का रिवाज चला। हैले का कथन है कि खतना केवल ऐन्द्रियिक सुख, स्त्री-सम्भोग सुख के लिए है। जो हो, बाल-बलि यहूदी सभ्यता मे पुराने काल मे अपराध नही थी।

चोरी, डाका आदि के सम्बन्ध मे भी भिन्न-भिन्न धारणाएँ है। हम इस सम्बन्ध में जितना अधिक विचार करेंगे, उतना ही प्रकट होगा कि अपराध की व्याख्या करना कठिन है। पतन और पतित या अपराधी किसे कहा जाय, यह निर्णय आसानी से नहीं हो सकता। हम अपराध के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर अलग-अलग विचार करे तो शायद कुछ परिणाम निकल सके।

अध्याय ३

काम-वासना का मौलिक आधार

अपराध-शास्त्र के अनेक पंडितो का कथन है कि कामवासना या कामुक प्रेरणा ही समूचे अपराधो की जननी है। फ्रायड ऐसे विद्वान् मनोवैज्ञानिक या हैवलाक एलिस ऐसे काम-शास्त्र-पंडित बच्चे का अपनी माता के स्तन से खेलना भी कामभावना का प्रतीक समझते है। हैवलाक एलिस तो लिखते है कि "जिस प्रकार हजरत मूसा ने होरेह पर्वत की चोटी पर वहाँ की झाडियो को जलाने की निरर्थक चेष्टा करती हुई अग्नि को देखा था, वैसे ही यह वासना की आग है जो कभी नही बुझती, उसे कोई नही बुझा सकता।"[1] जो कुछ अनर्थ इस ससार में होते है, सब इस वासना के कारण। जी० सिम्पसन मार के अनुसार "हमारे स्वभाव मे जो कुछ उदार तथा उच्च बाते हैं उनका आधार हमारी कामवासना है।"[2] करीब करीब यही मत सन् १९२९ में "विश्व कामुक सुधार समिति" द्वारा आयोजित "कामुक सुधार काग्रेस" मे प्रकट किया गया था। इस सम्मेलन मे बर्ट्रेड रसेल, जार्ज बर्नर्ड शा, सी० ई० एम० जोड ऐसी विभूतियाँ उपस्थित थी।[3]

काम-वासना यदि मनुष्य के जीवन मे एक पूर्णत. स्वाभाविक वस्तु है तो उस वासना की तृप्ति के लिए किया गया "अपराध" क्या वास्तव में अपराध है? अभी कल तक भारतवर्ष में वेश्याएँ खुले आम सड़कों पर या मकान की खिडकियो पर खड़ी होकर ग्राहक तलाश किया करती थी। कोई उन्हे अपराधी नही कहता था। सन् १९५८ में भारत सरकार ने वेश्यावृत्ति के विरुद्ध कानून बना दिया और अब कानून की दृष्टि

१. Havelock Ellis **अपने "कामशास्त्र" में**

२. G. Simpson Marr—Sex in Religion, Pub. George Allen & Unwin Ltd., 1936, Page 16.

३. Sexual Reform Congress, London—1929—Organised by World League for Sexual Reform.

मे वही भारी अपराध हो गया। किन्तु आज भी हमारे ऐसे अनेक व्यक्ति मिलेंगे जिनका विश्वास है कि जिस प्रकार सार्वजनिक शौचालय तथा मूत्रागार होना जरूरी है उसी प्रकार समाज मे वेश्याएं भी एक बड़ी भारी कमी पूरा करती है। हम आगे चलकर इस सम्बंध मे भी विचार करेंगे। यहा तो हम केवल यही कहना चाहते है कि न्याय के बदलते ही नैतिकता बदल गयी। अन्यथा वेश्यावृत्ति अपराध नहीं था।

मानव-स्वभाव

कामवासना मानव के स्वभाव के साथ लगी हुई है। पुरुष-स्त्री का एक दूसरे के प्रति आकर्षण अनन्त काल से चला आ रहा है। यह सृष्टि भी पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से बनी हे। परब्रह्म यदि सत्य है तो महामाया भी सत्य है। मायामय जगत मे माया का, स्त्री का अनोखा स्थान है। परमात्मा ने सृष्टि की रचना तो कर ली पर इस रचना में, सृष्टि में वह अपने ही बंधन मे बँध गया। अपनी ही माया में जकड़ गया। माया मे जकड़े हुए का नाम ही मनुष्य है। जिस प्रकार मकड़ा अपनी ही सर्जनात्मक शक्ति से जाल बनाकर अपने को घेर लेता है,[1] वैसे ही मानव की दशा है। जीवन के दो रूप है—एक तटस्थ द्रष्टा है जो अलग बैठा सब कुछ देख रहा है तथा दूसरा जीवन का भोग करनेवाला है।[2] पहले को आत्मा मान लेना चाहिए। दूसरा मन तथा बुद्धि वाला प्राणी है। बिना भोग के जीवन कैसा—और बिना स्त्री के भोग का, संसार का सुख नही हो सकता। इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने काम का अर्थ "सुख" माना है। जब सुख मिलेगा तो अर्थ की, धन की प्राप्ति करने की प्रेरणा तथा प्रवृत्ति मिलेगी। काम के बाद अर्थ—और इन दोनों की प्राप्ति के बाद धर्म का साधन होगा। धर्म से ही मोक्ष प्राप्त होगा। इसी लिए जीवन की चार सीढ़ियां है—

काम—अर्थ—धर्म—मोक्ष।

पुरुष तथा माया

सबसे बड़ी भोग्य वस्तु स्त्री है। बिना उसके जीवन अधूरा है। यह सभी सभ्यताओं तथा धर्मों का उपदेश है। हम जिस प्रकार परमात्मा की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार प्राचीन चीन में ताओ-वाद के प्रवर्तक लाओत्से ताओ को ब्रह्म मानते थे।

१. श्वेताश्वतरोपनिषद्—६, १०

प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस भी ताओ की उपासना की सलाह देते थे। वे कहते थे "अपना हृदय ताओ को अर्पित करो।" प्राचीन चीन का यह भी मत था कि स्वर्ग यानी भगवान् के दो प्रतिनिधि "जैन" तथा "जिन" (पुरुष तथा प्रकृति या पुरुष तथा माया) के द्वारा मानव-सदाचार संचालित तथा नियन्त्रित होता है। इसी लिए पूर्णता को प्राप्त करने के लिए, लाओत्से का उपदेश था कि मानव को "ताओ के साथ जैन-जिन द्वारा संचालित सदाचार का विवाह कर देना चाहिए।"

पुरुष-माया के इस भाव को चीनी धर्म में, अर्थात् प्राचीन चीन के शास्त्रकारों ने बड़ा स्पष्ट रूप दिया है। उनके कथनानुसार इस सृष्टि मे पुरुष तथा प्रकृति में निरन्तर अतर्द्वन्द्व तथा खेल हो रहा है। पुरुषरूपी, आध्यात्मिक शक्तिवाला **यांग** है और प्राकृतिक शक्ति तथा स्त्री-रूपी यिन है। याग और यिन ही मानव के समूचे आचार के आधार है। सदाचार तथा नैतिकता का सिद्धान्त तथा मूल आधार इनके संयोग से ही पैदा होता है। याग और यिन के सयोग का प्रतीक चीन "यी" मत्र तथा संकेत है।[१] चीनी जिसे स्त्री जातिवाली "यिन" कहते है, उसी को बहुत से दार्शनिक "वास्तविकता को छिपानेवाली कल्पना" कहते है। किसी न किसी रूप में यूनानी दार्शनिक प्लेटो भी माया को मानते है। वे लिखते है कि "हम संसार को छायारूप में देखते है। वास्तविकता हमको दिखाई नही पड़ती।"[२]

यूनानी प्रेम

यूनानी पुराण के अनुसार प्रारम्भ में जो मनुष्य था वह महान् शक्तिशाली था। इसलिए कि वह अर्द्धनारीश्वर था यानी पुरुष-स्त्री साथ साथ था। उसका आधा शरीर पुरुष का तथा आधा स्त्री का था। देवो को इतने शक्तिशाली मानव को दुर्बल करना था इसी लिए अपोलो नामक देवता ने उसे काट कर दो टुकड़े कर दिये। पुरुष तथा स्त्री अलग अलग हो गये। तभी से आज तक दोनों टुकड़े एक साथ मिलने के लिए, एक होने के लिए बेचैन रहते है, बेचैन है और लगातार एक-दूसरे से मिलने के लिए प्रयत्नशील है। इसी प्रयत्न तथा चेष्टा का नाम "प्रेम" है। यह प्रेम ही सृष्टि का सबसे बड़ा रहस्य है। प्लेटो ने लिखा है कि एक गोष्ठी मे एरिसिमाचूस[३] ने प्रस्ताव

१. The Spirit of Chinese Philosophy—By Fung-Yu-lan, Page 89.

२. Plato—Republiqe.

३. Erissymachus

किया कि लोग "प्रेम" पर विचार करें। उस समय 'एरिस्टोफेनीज'[1] ने एक "सुन्दर व्याख्यान" मे ऊपर लिखी अपोलो की कथा बतलाकर स्त्री और पुरुष के अनन्त प्रेम का वर्णन किया था। यही प्रेम जब दूषित रूप धारण कर लेता है तो मानव समाज मे बडी गड़बड़ी पैदा करता है। इसीलिए सुकरात ने मानव की आत्मा की महत्ता पर जोर दिया था। यूनान में, सुकरात के समय में "प्रेम" ने वासना का ऐसा रूप धारण कर लिया था कि आज हम जिसे भ्रष्टाचार या दुराचार कहते है, स्त्री-पुरुष के जिस बंधन-रहित सम्बन्ध को बुरा समझते है, वहां पर सब कुछ जायज था। आज जिसे अपराध समझा जाता है, पिछले दिनों वही सर्वथा उचित था। किसी चीज के उचित और अनुचित होने की परिभाषा हम देते है—"जिस समय की जो नीति होती है, जो व्यवहार होता है, उस समय का कानून उसी के अनुरूप होता है। जिस समय जो नीति होती है, वह तत्कालीन न्याय की भावना पर निर्भर करती है।"—यूनानी दार्शनिक अरिस्तू[2] के शिष्य टामस एक्विनास[3] का यह मत आज भी अकाट्य है। इसी लिए अरिस्तू ने लिखा था कि कोई व्यक्ति जो भी काम करता है, यदि उसकी भावना बुरी नहीं है तो उसके कार्यों को नैतिक अवगुण कहना उचित नही है। "देवता में बुरी भावना हो ही नही सकती।"[4]

देवता मे यदि बुरी भावना नही हो सकती तो मनुष्य मे क्यों हो? दोनों मे अन्तर ही क्या है। प्रेम के भूखे स्त्री-पुरुष यदि कामवासना के प्रसंग मे कुछ ऊँचा नीचा कर बैठते है तो वह अपराध क्यों समझा जाय? वासना की इसी स्वाभाविकता को सिद्ध करने के लिए बेंजामिन ने लिखा है कि वासना न तो पूर्णतः "पुरुष" है और न "स्त्री"। यह पुरुष-स्त्री के अंशों का विचित्र सम्मिश्रण है।[5]

फ्रायड का मत

स्त्री-पुरुष की स्वाभाविक कामुकता को क़ाबू में रखने के लिए ही विवाह-बंधन

१. Aristophenes.
२. Aristotle.
३. Thomas Aquinas.
४. Harry V. Jaffa—Thomism and Aristotalism-Page 59
५. Hanry Benjamin, M. D. New York.

की रचना हुई।[1] पर आदिकाल से ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार के सम्बन्ध से, जिस प्रकार का वीर्य होता है, उसी प्रकार का बच्चे का स्वभाव तथा जीवन के प्रति रुख बनता है। फ्रायड (मनोविज्ञान के प्रकाण्ड पंडित) के अनुसार स्वभाव का अध्ययन कामशास्त्र से सम्बध रखता है। "इसी लिए इतिहास के व्यवस्थित अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले काम सम्बधी प्रवृत्तियो का तथा उनमे परिवर्त्तन का अध्ययन किया जाय।"[2] फ्रायड के अनुसार मानवस्वभाव मे दोनो चीज़ें मिलती हुई है। दोनो वस्तुएँ उसके स्वभाव मे अन्तर्निहित है—प्रेम[3] तथा घृणा और विनाश की भावना।[4] प्रेम स्त्री का प्रतीक है। घृणा और विनाश पुरुष का। हमारे शास्त्रकारो ने इसी को राग-द्वेष कहा है। मन का राग और द्वेष ही सब अपराधों का कारण होता है। इसलिए असली अपराधी मनुष्य नही, मन है और वही बंधन तथा मोक्ष का कारण होता है।[5]

यह मन तरह-तरह से अपने को सन्तुष्ट करने के उपाय किया करता है। मध्ययुग मे यूरोप मे एक विशिष्ट सम्प्रदाय था जिसका नाम "मनिकान" था। इसके माननेवाले जानवरो के साथ प्रसग करते थे और अपनी स्त्री से स्वाभाविक प्रसग न कर अप्राकृतिक सभोग करते थे। वह सब धर्म के अंतर्गत था। यहूदी विधान के अंतर्गत वेश्यावृत्ति अवैध थी, पर पैसा देकर परायी स्त्री को फुसलाना तथा उसके साथ शय्यागत होना सर्वथा वैध और उचित था।[6]

स्त्री का कर्त्तव्य

हिन्दू धर्म मे पुरुष तथा प्रकृति, ब्रह्म तथा माया को जैसे ऊँचे रूप मे दर्शाया गया है तथा उनका निरूपण किया गया है, वैसा अन्यत्र कही नही मिलता। हम अपने

१. Westermarck—Origin and Development of Moral ideas.

२. G. Raltray Taylor—Sex in History—Pub. Thomas and Henderson, London--Page 3.

३. Eros = प्रेम

४. Thanatos = घृणा की तथा विनाश की भावना

५. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः—मनु

६. अंग्रेजी में इसके लिए Harlot शब्द का प्रयोग किया गया है पर Oxford Dictionary में Harlot का अर्थ Prostitute यानी वेश्या दिया है।

धर्म के विषय में विशेष नहीं लिखना चाहते। स्त्री की उपासना का जो महान् रूप हिन्दू शास्त्रकारों ने दिया है, देवी, भगवती, माता की उपासना का जो उज्ज्वलतम रूप है, वह हमारी एक खास देन है। बार-बार स्त्री को "माता" "माता" कहकर मन में यह बिठा दिया गया है कि स्त्री भोग की नहीं, वासना की नहीं, उपासना की वस्तु है। बाबा विश्वनाथ और माई अन्नपूर्णा की कल्पना से किसे रोमांच न हो आयगा। विश्व के स्वामी का महत्त्व इसी के कारण बतलाया गया है कि उनकी शादी माई अन्नपूर्णा से हो गयी है।[1] परम कल्याणकारी "शिव" में से यदि "इ" निकाल दिया जाय तो "शव" (मुर्दा) हो जायेगा। भागवत तथा विष्णुपुराण में स्त्री संसार के समस्त गुण तथा सौन्दर्य का आधार और पुरुष की अपूर्णता को पूर्ण करनेवाली मानी गयी है।

विष्णुपुराण में जिस सुन्दर ढंग से स्त्री की मर्यादा स्थापित की गयी है, वैसी शायद ही संसार की अन्य किसी भाषा में मिलेगी। पराशर ऋषि ने लक्ष्मीजी का वर्णन करते हुए कहा है[3] कि जिस प्रकार विष्णु भगवान् सर्वव्यापक है, वैसे ही लक्ष्मी भी। विष्णु अर्थ है, ये वाणी है। हरि न्याय है, ये नीति है। भगवान् विष्णु बोध हैं, ये बुद्धि है। वे धर्म है, ये सत् क्रिया है। हे मैत्रेय, विष्णु जगत् के स्रष्टा है और लक्ष्मी सृष्टि हैं। वे भूधर, ये भूमि है। विष्णु सन्तोष है, ये सर्वतुष्टि है। भगवान् काम हैं, लक्ष्मीजी इच्छा है। वे यज्ञ है, ये दक्षिणा है। जनार्दन पुरोडाश है, ये घृत की आहुति है। वासुदेव हुताशन है, लक्ष्मीजी स्वाहा है। विष्णु शंकर है, ये गौरी है। वे सूर्य है, ये प्रभा है। वे चन्द्रमा है, ये उसकी अक्षय कान्ति है। वे सर्वगामी वायु हैं, ये जगत् की गति तथा आधार है। वे आकाश हैं, ये स्वर्गलोक है। विष्णु समुद्र हैं, ये तरंग है। विष्णु आश्रय है, लक्ष्मीजी शक्ति है। वे मुहूर्त है, ये कला है। वे दीपक हैं, ये ज्योति है।[4] विष्णु वृक्षरूप है, ये लता है। वे नद है, ये नदी है। वे ध्वज हैं, ये पताका है। रति और राग भी विष्णु और लक्ष्मी स्वरूप है।[5]

इससे और अधिक सुन्दर ढंग से पुरुष-स्त्री का महत्त्व और क्या कहा जा सकता है? जिस स्त्री का सृष्टि में इतना महत्वपूर्ण स्थान हो, वह केवल भोग तथा वासना

१. भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्—देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम्।
२. विष्णुपुराण—श्लोक २०७
३. विष्णुपुराण, प्रथम अंश, अध्याय ८, श्लोक १७ से ३५ तक
४. ज्योत्स्ना लक्ष्मी प्रदीपो सौ—श्लोक ३०, अ० ८
५. रती रागश्च मैत्रेय—श्लोक ३३, अ० ८

की वस्तु नही हो सकती। उसका उससे ऊपर उठकर जो रूप है, वह मानव को वासना में गिरने से काफी रोकता है। फिर भी, स्त्री भोग की तथा वासना की वस्तु है, यह अस्वीकार नही किया गया है। महाभारत मे दुर्योधन की सेना के साथ गुप्तचर, गवैये तथा गणिकाएँ भी काफी संख्या मे थी।[१] धर्मराज युधिष्ठिर ने भी युद्ध के पूर्व हस्तिनापुर के जिन लोगो के पास अपना अभिवादन भेजा था उनमें "मेरे मित्र, सुन्दर वस्त्र तथा सुन्दर आभूषणों से युक्त, सुगंधित, प्रसन्न, आनन्द देनेवाली वेश्या स्त्रियों का भी कल्याण पूछ लेना।"[२]

पर माता की भावना से स्त्री जहाँ नीचे उतरी, वह घोर उपद्रव तथा कलंक का कारण बन सकती है। उर्दू में कहावत ही है कि दुनिया का सब झगड़ा "जर-जमीन-जन" (धन, पृथ्वी तथा स्त्री) का है। हमारे शास्त्रकारो ने स्त्री से सावधान रहने की सख्त हिदायतें दी है। पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से ही मानव की उत्पत्ति हुई। परमात्मा ने अपने को दो टुकडों में विभाजित कर दिया, एक पुरुष हुआ, दूसरा स्त्री। इनके संयोग से विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वही मनु है।[३] मनु ने पर-स्त्री से बातें करने का तरीक़ा भी बतला दिया है। वे लिखते है—

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः।
तां ब्रूयाद् भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च॥ २-१२९

अर्थात् जो पराई स्त्री हो, जिससे योनि-सम्बंध न हो यानी बहिन आदि न हो, उससे बोलने के समय "भवति", "सुभगे" आदि से सम्बोधन करे। पर, स्त्री कितनी अविश्वसनीय है—

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः॥

(अपने श्रृंगार आदि से पुरुषो को मोहित कर उनमें दूषण उत्पन्न करना स्त्रियों का स्वभाव है। अतएव पंडित लोग उनमें प्रवृत्त नहीं होते।)

१. महाभारत, १९५, १८, १९

२. महाभारत, ३०-३८

३. मनुस्मृति, टीकाकार पं० केशवप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास १९४८, "विराजमसृजत्प्रभुः", अ० १-३२

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(माता, बहिन, पुत्री, इनके साथ एकान्त मे न बैठे, क्योकि इन्द्रियों का समूह बलवान् है, शास्त्र की रीति से चलनेवालों को भी वश मे कर लेता है।)

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।
पर्ववर्ज व्रजेच्चैनां तत्त्वतो रति काम्यया॥ ३-४५

(रुधिर के दर्शन समय से जाने गये समय को ऋतुकाल कहते है—उस समय से अपनी स्त्री में ही सदा, सन्तुष्ट रहे।)

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम्।
न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः॥ ४-४४

(तेज की इच्छा करनेवाला पुरुष अपनी स्त्री को आँख में अजन लगाते समय, तेल लगाते हुए, छाती खोले हुए तथा बच्चा पैदा करते समय न देखे।)

अपने श्रृंगार शतक मे भर्तृहरि लिखते है —

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया
पराङमुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः॥

(मन्द मुसकान, लज्जा करना, मुख फेर लेना, तिरछी दृष्टि से देखना, मीठी बाते करना, ईर्ष्या करना, कलह करना, और अनेक प्रकार के भाव प्रकट करना इत्यादि सब बातों से स्त्री पुरुष के लिए बंधनस्वरूप ही है (यानी उसे बाँधे रहती है)।

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेम-प्रसन्नं मुखं
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्रव्येषु किं तद्वचः।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तद्वपुः
ध्येयं किं नवयौवनं सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥७॥

(रसिकों के देखने योग्य उत्तम वस्तु क्या है? मृगनयनी स्त्रियों का प्रेम से प्रसन्न मुख। सूँघने योग्य उत्तम पदार्थ क्या है? स्त्रियो के मुख की भाफ। सुनने योग्य क्या है? स्त्रियो की वाणी। स्वाद के योग्य क्या है? स्त्रियों के ओष्ठ-पल्लव का रस।

स्पर्श करने योग्य क्या है ? स्त्रियों का शरीर। ध्यान करने योग्य क्या है ? स्त्री का नवयौवन और उसका विलास।)

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां,
मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलितानाम्।
सुरतजनितस्वेद खिन्नगंडस्थलीनाम्,
अधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति॥२६॥

(छाती पर लेटी हुई, केश जिनके खुल रहे है, आधे नेत्र मुँद रहे है, जो कुछ-कुछ हिल रही है, मैथुन के परिश्रम से जिनके कपोलों पर पसीना झलक रहा है, ऐसी स्त्रियों के अधरामृत को भाग्यवान् पुरुष ही पान कर सकते हैं।)

स्त्री की मादकता

प्राचीन भारत की रसिकता तथा कामोपासना के अनेक उदाहरण यहाँ दिये जा सकते है, पर यह विषय काफी बड़ा है। ऐसे अनेक काव्य है जो काम-शास्त्र का उत्कट उपदेश तथा जीवन का असली मंत्र भी देते है। अश्वघोष ने अपने सौन्दरानन्द काव्य[1] में नन्द द्वारा अप्सराओं का, इन्द्र के वन मे विहार करते समय का, सुन्दर वर्णन कराया है। देवताओ के यहाँ भी वेश्याएं रहती थी। वे लिखते है—

सदा युवत्यो मदनैककार्याः।

"वे सदा युवती रहती है। काम-क्रीड़ा ही उनका एकमात्र कार्य है।"[2]

१. सौन्दरानन्द काव्य—अश्वघोषकृत, सम्पादक और अनुवादक श्री सूर्यनारायण चौधरी, प्रकाशक संस्कृत भवन, कठौलिया, पो० काझा, जि० पूर्णिया, बिहार, सन् १९४८।

२. सर्ग १०, श्लोक ३६। सिद्धार्थ के मौसेरे तथा सौतेले भाई नन्द थे, बड़े विलासी थे। उनका चरित्र बौद्ध संन्यासी अश्वघोष ने लिखा है। स्व० डा० बरुआ के अनुसार अश्वघोष सौत्रान्तिक भिक्षु थे। डा० लाहा के अनुसार इनका समय प्रथम ईसवी सदी में है। इन्हीं का लिखा बुद्धचरित्र पाँचवीं शताब्दी में चीनी भाषा में अनूदित किया गया था।

स जाततर्षोऽप्सरसः पिपासुस्तत्प्राप्तयेऽधिष्ठितविक्लवार्तः ॥१०, ४१॥

प्यास उत्पन्न होने पर वह अप्सराओं को (भोग करने) पीने की इच्छा करने लगा।

किन्तु, ऐसा नही है कि स्त्रियो की ही निन्दा हो या वर्णन हो। अश्वघोष ने पुरुषों की भी निन्दा करते हुए लिखा है—

नेच्छन्ति याः शोकमवाप्तुमेवं श्रद्धातुमर्हन्ति न ता नराणाम् ॥६-१९॥

"जो स्त्रियां इस प्रकार का शोक नही करना चाहती उन्हें पुरुषो का विश्वास नहीं करना चाहिए।"

कामवासना को कौटिल्य भी पुरुष का शत्रु मानते है। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि "स्त्री तथा पुरुष में कभी मेल नही खा सकता।"[१] लैकी के कथनानुसार "प्राचीन काल मे लोगो का विश्वास था कि स्त्री नरक का द्वार तथा सब बुराइयों की जननी है।"[२] पुराने जमाने के लोगों का ख्याल था कि स्त्री का दर्जा पुरुष से कहीं नीचा है, क्योंकि वह कामुक वासना पैदा करती है। उसके चंगुल से बचाने के लिए ही विवाह की प्रथा चली।[३]

कामुक वासना पैदा करनेवाली स्त्री के विषय में "कुट्टनीमतम्"[४] में बड़ा भावुक वर्णन मिलता है।

महाभारत में

महाभारत के अरण्य पर्व की कथा है कि शंकर भगवान् से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के बाद देवों के राजा इन्द्र के यहाँ अर्जुन ठहरे हुए थे।[५] इन्द्र ने अपनी अप्सरा

१. G. K. Chesterton,

२. Lacky—The History of European Morals.

३. G. Sampson Marr—Sex in Religion—Page–42

४. कुट्टनीमतम् या शाम्भमलीमतम्, ले० दामोदर गुप्त; कश्मीरनरेश जयापीड़ के प्रधान मंत्री। रचनाकाल ईसवी सन् ७२५ से ७८६ के बीच, सम्पादक, श्री तनसुख राय मनसुखराय त्रिपाठी, बम्बई, संस्करण १९२४

५. महाभारत, सम्पादक पी० पी० शास्त्री, प्रकाशक वी० रामस्वामी शास्त्रुलर एंड संस, २९२, इस्प्लानेड, मद्रास, संस्करण १९३३

उर्वशी को अर्जुन के पास भेजने का आदेश अपने दरबार के "स्त्री संसर्ग विशारद"[१] चित्रसेन को दिया। रात्रि मे उर्वशी जब अर्जुन के पास चली तो उसके रूप-लावण्य का वर्णन महर्षि व्यास ने ऐसे कामुक ढंग से किया है कि उसकी कल्पना नही होती। बहुत कम कपडा पहने हुए वह सुन्दरी ऐसे चली कि मुनियों का मन भी डोल जाय—

ऋषीणामपि दिव्यानां मनोव्याघात कारणम्।
सूक्ष्मवस्त्रधरं भाति जघनं चानवद्यया॥

जब अर्जुन उर्वशी का भोग करने पर राजी न हुए और उनको धर्मशंका हुई तो उर्वशी ने उन्हें समझाया कि हम तो देवताओं की वारांगना (वेश्याएँ) है। तपस्या से ही हमारा रमण हो सकता है। वह कहती है—

अनावृता वयं सर्वा देवदारा वराङ्गनाः।
तपसा रमयन्त्यस्मान् न चास्त्येषां व्यतिक्रमः॥[२]

वन मे द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर जयद्रथ ने कोटिक को द्रौपदी के पास अपनी वासना का प्रस्ताव लेकर भेजा और कोटिक से कहा—

कस्य कैषानवद्यांगी यदि वापि न मानुषी।
विवाहेच्छा न मे काचिद् इमां दृष्ट्वातिसुन्दरीम्॥[३]

पराधीन स्त्री

कामवासना उत्पन्न करनेवाली स्त्री स्वयं कितनी कामुक है, इसकी कथा ऋग्वेद में भी है।[४] शाश्वती पत्नी को बड़ा हर्ष हुआ कि उसकी तपस्या से उसके पति असंग का शिश्न स्थूल हो गया, यानी तपस्या ऐसे कामों के लिए भी हो सकती थी। काम-वासना से भरी स्त्री को इसी लिए इतनी बड़ी विपत्ति मानकर भर्तृहरि ने अपने शृंगार

१. वही भाग, अरण्य पर्व, अध्याय ४१, श्लोक ३, पृष्ठ २३१

२. श्लोक ५९, पृष्ठ २३८

३. वही भाग २, अध्याय २१८, श्लोक १२, पृष्ठ १२८१

४. यह कथा "The Development of Hindu Iconography—By Jitendranath Bannerjee, Pub.—University Press, Calcutta—संस्करण १९४१, में पृष्ठ ७०, ७५ पर उद्धृत की गयी है।

शतक में लिखा है कि संसार से छुटकारा पाना कठिन न होता यदि मदिरा समान नेत्रवाली स्त्रियां बीच मे बाधा न डालती"—

संसार तव निस्तारपदवी न दवीयसी।
अन्तरा दुस्तरा न स्यु र्यदि ते मदिरेक्षणा॥

ऐसी विपत्ति से बचाने के लिए ही हमारे शास्त्रकार चाहते थे कि किसी न किसी प्रकार एक स्त्री एक पुरुष से बँध जाय। इसीलिये शास्त्रीय विवाह के आठ प्रकार रखे गये। इनमे से किसी प्रकार से भी स्त्री ग्रहण करने पर वह पूर्णतः विवाहिता मान ली जाती थी—

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच।[१]

कन्या भगा ले जाकर आसुर विवाह हो जाता था। प्रेम-वश सम्बंध हो जाय तो गांधर्व विवाह हो गया (केवल प्रेम करने से ही, पुरुष स्त्री को या स्त्री पुरुष को प्रेम करे तो विवाह मान लेना चाहिए)। किसी प्रकार शरीर-सम्बंध हो जाय तो राक्षस विवाह हो गया, पर पैशाच विवाह बलात्कार को कहते हैं, जिसके लिए अग्रेजी मे "रेप" शब्द है। ऊपर लिखे किसी भी ढंग के संसर्ग को विवाह मान लेने का यह अनोखा तरीका भारतवर्ष का है, जिससे दुराचार तथा योनि सम्बन्धी अपराध पर बडी रोक रहती थी।

चूँकि काम को उत्तेजित करनेवाली स्त्री ही मानी जाती थी, इसी लिए प्राचीन यूनान मे स्त्री का दर्जा शाक-भाजी की तरह माना जाता था।[२] स्त्री को कभी स्वतंत्र नहीं रहने देना चाहिए, यह मत मनु आदि का भी है। कौमार में पिता रक्षा करे, जवानी में पति तथा बुढ़ापे में बेटा—"न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।" कनफ्यूसियस का भी यही मत था—"स्त्री सदैव परतंत्र रहती है।" उसको चाहिए कि अपने पति या श्वशुर के प्रति समुचित रीति से विनीत रहे।[३] स्त्री को इतना परवश मानते थे कि उसे अपने मन से विवाह करने की अनुमति नही थी। अबूहरैरा कहते हैं कि स्त्री यदि अपने से अपने को किसी पुरुष को सौपे तो व्यभिचारिणी कहना चाहिए। किन्तु, इब्न-अब्बासा बतलाते है कि हजरत मुहम्मद साहब से एक स्त्री ने कहा कि "मेरे पिता

१. कन्यादान, ले० डा० सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, संस्करण १९५४, पृष्ठ २५

२. Dayers—A Short History of Women

३. ये उद्धरण डा० सम्पूर्णानन्द की "कन्यादान" नामक पुस्तक के हैं।

ने मेरी मर्जी के खिलाफ़ शादी की।" हजरत ने उसे अपनी इच्छा से विवाह करने की अनुमति दी। मेन के अनुसार[१] पुराने जमाने मे पिता या पति स्त्री को प्राणदंड दे सकते थे। उत्तरी यूरोप मे विवाह के समय कन्या का मूल्य उसके पिता को दे देते थे।

स्त्री की महत्ता

किन्तु प्राचीन भारत के शास्त्रकारों ने जहाँ स्त्री की बुराइयों की तथा कामुकता की मूर्ति चित्रित किया है, वही उसकी महत्ता या मर्यादा मे किसी प्रकार की कमी नही आने दी है। उसके मातृत्व को, उसकी महानता को कूट कूटकर हमारे दिमाग में भर दिया गया है और यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक योनि सम्बन्धी अपराध सबसे कम भारत में होते है। कुछ लोग कहते है कि भारत मे अतिथि-सेवा की भावना ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था कि मेहमान की खातिर के लिए अपनी पत्नी तक को भेज देते थे और वह मेहमान के साथ संभोग करने को बुरा नही मानती थी। कुछ लोग द्रौपदी का उदाहरण देते है कि उनके पाँच पति थे। तराई भाभर में अब भी ऐसे परिवार है जिनमें समूचे घर मे—या सब भाइयो मे एक स्त्री होती है। पर, द्रौपदी की कथा तो यह है कि जब अर्जुन द्रौपदी को बरकर लाये थे उन्होने कुटिया के बाहर से माता को आवाज लगायी कि "माँ भिक्षा ले आया हूँ।" उन्होने आदेश दिया कि पाँचो भाई बाँटकर खा लो। द्रौपदी बडे संकट में पडी तो कृष्ण ने स्त्री के पाँचों गुणो को एक एक भाई को बाँट दिया। कार्येषु दासी—भीम की सेवा करना, करणेषु मत्री—युधिष्ठिर को परामर्श देना, भोज्येषु माता—नकुल को भोजन कराना, क्षमया धरित्री (पृथ्वी के समान क्षमाशील)—सहदेव ऐसे क्रोधी को क्षमा करना तथा शयनेषु रम्भा—अर्जुन की पर्यंकशायिनी बनना—इस प्रकार गुण बाँटे गये। "स्वयवर" की प्रथा के द्वारा रोज़ रोज की "कोर्टशिप" की झंझट समाप्त कर दी गयी तथा "पैशाच" विवाह के विधान से बलात्कारी को भी "पति" स्वीकार कर समाज मे योनि सम्बंधी अपराधो से बड़ी रक्षा की गयी। और फिर जिस देश मे वेद को मनुष्यों में पहुँचानेवाली स्त्रियाँ हो, जहाँ मैत्रेयी (याज्ञवल्क्य की पत्नी) ऐसी प्रकाण्ड पडिता रही हो या याज्ञवल्क्य से तर्क करनेवाली गार्गी ऐसी विदुषी पैदा हो, वहाँ स्त्री केवल वासना की वस्तु बन ही नही सकती। जिस देश मे स्त्री का इतना बड़ा स्थान हो कि —

१. Maine—Ancient Law

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव।
ननन्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

(ऋग्वेद–१०, ८५, ४६)

ऋग्वेद का यह मत्र स्त्री को घर मे सम्राज्ञी का स्थान देता है। मनु ने अपनी स्मृति में स्त्री को बडा ऊँचा स्थान दिया है। वे लिखते है—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धदे तद्धि सर्वदा॥ ५७–३

जिस घर में स्त्रियों को कष्ट मिलता है, वह कुल ही नष्ट हो जाता है। यही विचार प्रायः सभी स्मृतियो तथा पुराणों में है। स्त्री की, देवी की, माता की पूजा का हजारों वर्ष पूर्व इसी लिए प्रचार हुआ था और हज़ारों वर्षों से हम मातृ-पूजन कर रहे है। महेंजोदडो तथा हरप्पा की खुदाई में, जिससे आज के ४००० वर्ष पहले की सभ्यता का अनुमान लगता है—देवी की प्रतिमा मिली है तथा एक ऐसे देवता की प्रतिमा मिली है जो तीन चेहरेवाला है। उसके सीग है, उसके पास शेर, हाथी व गैंडा बैठा हुआ है तथा बैठा है नन्दी बैल।[1] स्पष्ट है कि यह देवता शंकर थे। शंकर-पार्वती की इतनी प्राचीन पूजा से, जिसमें पिता तथा माता की भावना हो, स्त्री सम्बधी अपराध कम होंगे ही।

स्त्री के लिए नियम

इसके अतिरिक्त स्त्री-पुरुष दोनों के लिए भी कठोर आदेश हैं। स्त्री को कर्म, वचन, मन से, हर प्रकार से पति की सेवा का आदेश है। उसे पति की सेवा मे सदैव रत रहना चाहिए। मार्कण्डेय ऋषि ने युधिष्ठिर को पतिव्रता का लक्षण बतलाते हुए कहा था—[2]

न कर्मणा न मनसा नात्यश्नाति न चापिबत्।
ते सर्वभावोपगता पतिशुश्रूषणे रता॥

१. R. E. M. Wheeler—"Five Thousand Years of Pakistan"–Pub. Christopher Jhonson Ltd., London, Edition 1950, Page 28,

२. महाभारत, १७० वॉ अध्याय, श्लोक १४, मद्रास संस्करण, पृष्ठ १०४१

कृष्ण की पत्नी सत्यभामा ने द्रौपदी से पतिव्रता के लक्षण पूछे तथा पति को वश में रखने का उपाय पूछा, तो द्रौपदी ने यहाँ तक कह दिया कि पति जो वस्तु न खाय और न पीये, वह सब पत्नी को वर्जित है।[1]

सब कुछ उपदेश पत्नी के लिए ही नहीं है। हम ऊपर सौन्दरानन्द काव्य का उद्धरण दे आये है। अश्वघोष ने नन्द के मुख से कहलाया है कि —

आस्था यथा पूर्वमभून्न काचिदन्यासु यां स्त्रीषु निशाम्य भार्याम्।
तस्यां ततः सम्प्रति काचिदास्थां न मे निशाम्यैव हि रूपमासाम्॥ १०–५१

(जिस प्रकार पूर्व में अपनी पत्नी को देखकर दूसरी स्त्रियों की ओर मेरा झुकाव नही हुआ, उसी प्रकार इन (अप्सराओं) का रूप देखकर अब उनकी मुझे कुछ चाह नहीं रही।)

वेश्यावृत्ति तथा वेश्यासेवन की निन्दा करते हुए भर्तृहरि अपने शतक मे लिखते है कि "वेश्या का अधरपल्लव यदि सुन्दर है तो भी उसको कुलीन पुरुष नहीं चूमता, क्योंकि वह तो ठग, योद्धा, चोर, दास, नट तथा चारों (दूतों) के थूकने का पात्र है।" (९१)

प्रेम की निन्दा करते हुए वे लिखते है कि "स्त्री बाते किसी और पुरुष से करती है, विलास सहित देखती किसी और को है और हृदय मे किसी और की ही चिंता करती है। फिर कहो स्त्रियों का प्यारा कौन है?" (८१)[2]

कामवासना के अनेक रूपों का विवेचन करनेवाले कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र

१. वही, संवाद पर्व, अध्याय १८९, पृष्ठ ११६७ सत्यभामा का प्रश्न —

कथं च वशगास्तुभ्यं न कुप्यन्ति च ते शुभे।
तव वश्या हि सुभृशं पाण्डवाः प्रियदर्शने॥

द्रौपदी का उत्तर —

प्रणयं प्रति संगृह्य निधायात्मानमात्मनि।
शुश्रूषुर्निरभिमाना पतीनां चित्तरक्षिणी॥ २१॥
यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्त्ता न खादति।
यच्च नाश्नाति मे भर्त्ता सर्वं तद् वर्जयाम्यहम्॥ ३३॥

२. जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम्॥

मे काम आदि छः शत्रुओ के त्याग तथा इन्द्रियजय पर बडा जोर दिया है।[1] काम, क्रोध, लोभ, मन, मद तथा हर्ष सब का त्याग सिखाया है। उन्होने इन्द्रियजय के लिए शास्त्रों में प्रतिपादित कर्त्तव्यो का अनुष्ठान करने की शिक्षा दी है।[2] इन्द्रिय-परायण राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का अधिपति होते हुए भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।[3]

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबंधुराष्ट्रो विननाश॥६॥ मानाद्रावणः परदारान् प्रयच्छन्॥१०॥

जैसे कि भोज वंश का दाण्डक्य नामक राजा काम के वशीभूत होकर ब्राह्मण-कन्या का अपहरण करके उसके पिता के शाप से बधु-बाधव और राष्ट्र के सहित नाश को प्राप्त हो गया। अभिमान के वशीभूत होकर रावण पर-स्त्री को छीनकर नाश को प्राप्त हुआ।[4]

हमारे शास्त्रकारो ने वासना की रोकथाम के लिए कोई चीज बाकी नही रखी। वात्स्यायन के कामसूत्र मे इन्द्रिय-निग्रह के अनेक उपाय कहे गये है, पर मनु ने तो स्त्री-प्रसंग का समय तथा पुत्र की प्राप्ति का उपाय भी लिख दिया है। ऋतुकाल में स्त्री के पास जाना मना है।

बिना धन के भी मनुष्य ऐश्वर्यशाली हो सकता है, यदि उसमें आरोग्य हो, विद्वत्ता हो, सज्जनों से मित्रता हो, अच्छे कुल में जन्म हुआ हो तथा स्वाधीन हो।[5] महाभारत ने जिस मनुष्य के सामने इतना बडा आदर्श रखा हो, वह कैसे पतित हो सकता है?

आचरण का मन्त्र

पर, मनुष्य तो मनुष्य ही है। इस मानव शरीर को सँभालकर ले चलना बड़ा कठिन है। भर्तृहरि ने सत्य ही लिखा है कि "कंदर्प-दर्प-दलने विरला मनुष्या" (श्रृगार-

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र का सबसे अच्छा संस्करण श्री र० शामा शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा संशोधित है जिसे गवर्नमेन्ट प्रेस, मैसूर ने १९२६ में प्रकाशित किया था।

२. वही, छठा अध्याय, "विनयाधिकारिक"—१

३. वही, ६

४. वही अध्याय

५. आरोग्यं, विद्वत्ता, सज्जनमैत्री, महाकुले जन्म, स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः।—महाभारत, शान्ति पर्व, श्लोक ३१७

५८) कामदेव का घमंड नष्ट करने की सामर्थ्य बिरले ही मनुष्यों मे होती है। मानव प्रकृति को समझकर ही प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस ने लिखा था कि—"पिता को वास्तव मे पिता बनना चाहिए। पुत्र को वास्तव मे पुत्र बनना चाहिए। बडे भाई को सचमुच का बडा भाई तथा छोटे भाई को छोटा भाई होना चाहिए। पति वास्तव मे पति बनकर तथा स्त्री वास्तव मे स्त्री बनकर रहे।[१] तभी परिवार अपने वास्तविक ढंग से चल सकता है। कौटिल्य ने "एवं वश्येन्द्रिय. परस्त्री द्रव्य हिसाश्च वर्जयेत्" की सलाह दी है।[२]

प्रत्येक प्रकार की वासना मन से उत्पन्न होती है। जैसा मन होगा, मन का जैसा संस्कार होगा, जिस वातावरण मे मन पलता है, वैसे ही सकल्प उसमे उठते है। और हर प्रकार की वासना इसी संकल्प का परिणाम है। व्रत, धर्म, तप, काम, सभी कुछ इस संकल्प के कारण होते है।[३] इसलिए सकल्प ही समूचे कार्यों का, पाप, पुण्य, पतन या उत्थान का, कारण होता है।

देश-काल की बात

किन्तु संकल्प मन के संस्कार से बनता है, यह तो सिद्ध ही है। शरीर का राजा मन है। यदि यह मत सही है कि इस शरीर में ७२,००० नाड़ियाँ है जिनमें ७२ मुख्य है तथा १० प्राणवायु वहन करनेवाली है और ३०० हड्डियॉ है, तो मन को इन सबको सँभालकर ले चलने तथा दसो इन्द्रियो पर शासन करने मे काफ़ी काम करना पड़ता होगा। यदि मन ही विकृत हो गया तो कुछ बनाये नही बनेगा। प्रेरणा ही सब कुछ है, यह मत प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टीन का भी है।[४] पर प्रेरणा तथा संकल्प के उत्पन्न होने का दोषी या अपराधी मनुष्य कैसे हुआ ? कामवासना तो ईश्वर ने मनुष्य को प्रदान की है। यह मत ईसा मसीह का भी है। उस वासना में जो विकार की अधिकता समझ में आती है या दिखाई पड़ती है वह समय, काल, समाज तथा परिपाटी

१. Texts of Confucianism—Translated by James Legge, Clarendon Press, London–Edition 1899—Page 242.

२. विनयाधिकारिक

३. संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।। मनु अ० २, श्लो० ३०

४. Einstein in Preface to Planch's—"Where is Science going".

का भी परिणाम हो सकती है। हम जिसे बुरा कहते है वह हमारे लिए बुरा हो सकता है, पर बुरा न भी हो। बर्टन[1] का कथन है कि "यह नहीं भूलना चाहिए कि अभद्रता या अशिष्टता समय तथा स्थान पर निर्भर करती है। इग्लैड में जो बुरा समझा जाता है वह मिस्र के लिए बुरा न होगा। आज जिसे देख, सुनकर हम बहुत बुरा मानते है, वह किसी समय एक साधारण मजाक़ रहा होगा।"

गणिकाध्यक्ष

इसलिए अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी को मानव स्वभाव के इतिहास को भी समझना होगा। जिस कामवासना को अपराध का आधार माना गया है, उसका किंचित् रूप भी समझ लेना चाहिए, तब निर्णय करना चाहिए। हमने पहले ही लिखा है कि अपराध तो समाज के नियम बनाते है। आज हमारे देश में वेश्यावृत्ति अपराध है, पर आज के २३०० वर्ष पूर्व, जब कि हमारा आचरण आज से कहीं अधिक शुद्ध था, वेश्या यानी गणिका राज्य के लिए आवश्यक समझी जाती थी। कौटिल्य ने "गणिकाध्यक्ष" कर्मचारी की नियुक्ति का आदेश दिया है।

कौटिल्य ने बडे विस्तार के साथ गणिका (वेश्या या वाराङ्गना) कैसी हो, किस प्रकार का व्यवहार करे, कितना कमाये, सब कुछ लिख दिया है। उनके अनुसार वेश्या को अपना शरीर पुरुषों के हाथ बेचते रहना चाहिए, पर राजा की सेवा में वह सदैव उपलब्ध रहे, जब जरूरत हो। चँवर आदि डुलाने का तथा छत्र ले चलने का काम वही करे।

कौटिल्य के टीकाकार विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री के अनुसार "अपने रूप-सौन्दर्य से जीविका करनेवाली स्त्रियो को गणिका कहते है।" उनकी व्यवस्था के लिए नियुक्त राजकीय कर्मचारी को "गणिकाध्यक्ष" कहते थे। यह अधिकारी रूप, यौवन तथा गाने बजाने की कलाओ से युक्त लड़की को, चाहे वह वेश्या के वंश मे उत्पन्न हुई हो या न हो, नियुक्त करे। वेश्या की तीन श्रेणियाँ होती थी, कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। सौन्दर्य आदि सजावटों में जो सबसे कम हो, उसे कनिष्ठ समझा जाय तथा उसे १००० पण एक मुश्त देकर गणिका के कार्य पर नियुक्त किया जाय। सौन्दर्य आदि में जो इससे अधिक हो उसे मध्यम समझ दो हज़ार पण दिये जायँ। सबसे सुन्दरी को

१. भूमिका में Sir Richard F. Burton's Translation of Arabian Nights—Vol. 1 Page XXV–Pub. H. S. Nichols Ltd. London

उत्तम कहते है। उसे तीन हज़ार पण मिलें। जिसे यह धन मिले उसे आधा अपने कुटुम्ब को दे देना चाहिए तथा आधा अपने पास रखना चाहिए। राजा की परिचर्या के कार्य को ये गणिकाएँ अपने मे बॉट लें। इसके बाद जो अवकाश मिले, वे पुरुषों का सेवन करें और उनसे फ़ीस लें।

यदि कोई गणिका अपना स्थान छोड़कर दूसरी जगह चली जाय या मर जाय तो उसके स्थान पर उसकी लड़की या बहिन को पहला अधिकार है, जो कि उसकी सम्पत्ति की स्वामिनी भी बन जावेगी। या फिर उस वेश्या की माता किसी दूसरे को उसके स्थान पर नियुक्त करे। यदि किसी की नियुक्ति न हो तो वेश्या की सम्पत्ति का स्वामी राजा होगा। इनकी जवानी ढल जाने पर इनको नयी नियुक्त की गयी वेश्याओं की माता तथा शिक्षक बना दिया जाय। जो गणिका अपने को राजा की सेवा से मुक्त करना चाहे, उसे २४,००० पण देकर ही छुटकारा मिल सकता है। जब उसकी उम्र भोग के योग्य न रहे तो उसे रसोई (महानस) या भडार (कोष्ठानस) में काम करने को भेज देना चाहिए। अगर वह काम न करे और किसी एक पुरुष की स्त्री बनकर रहे तो उस पुरुष से प्रति मास सवा पण सेवा के लिए मिलेगा।

गणिका को जो आमदनी होती थी और उसका जो खर्च होता था उसका हिसाब गणिकाध्यक्ष रखता था। "अतिव्ययकर्म च वारयेत्" उसे अधिक व्यय करने से गणिकाध्यक्ष रोकता रहे। वेश्या को किसी के साथ कठोरता का व्यवहार करने का अधिकार नही था। ऐसा करने पर उसे २४ पण दंड मिलता था। यदि वह किसी का कान, नाक काट ले तो पौने बावन पण दड होता था। यदि पुरुष को मार डाले तो उस पुरुष की चिता के साथ रखकर उसे जला देना चाहिए या गले में पत्थर बॉधकर पानी में डुबा देना चाहिए। "गणिका भोगमायति पुरुषं च निवेदयेत्" गणिका अपने भोग, आमदनी तथा अपने साथ सहवास करनेवाले पुरुषो की सूची या सूचना गणिकाध्यक्ष को बराबर देती रहे। यदि कोई गणिका किसी पुरुष से अपने भोग का वेतन लेकर फिर उसके साथ द्वेष करे, अर्थात् उसके पास न जाय, तो उसके लिए दिये हुए वेतन का दुगना दंड दे। पहले अपराध पर निर्दिष्ट दंड, दूसरे पर उसका दुगना, इस प्रकार मात्रा बढ़ती जायगी।

यदि कोई पुरुष कामनारहित कुमारी पर बलात्कार करे तो उसे उत्तम साहस दंड दे तथा, जो कामना करनेवाली कुमारी के साथ भी भोग करे, उसे प्रथम साहस दंड दे, यानी बिना वेश्या बने किसी कुमारी कन्या का सेवन नही हो सकता था। जो पुरुष किसी कामना-रहित गणिका को बलपूर्वक रोककर अपने घर में डाल ले या उसके

शरीर पर कोई चोट या घाव लगाकर उसका रूप नष्ट करना चाहे, उसे १००० पण दंड दिया जाय।

प्राचीन भारत की यही विशेषता थी कि व्यसन तथा वासना को भी आचार-शास्त्र के बंधन मे बाँध देते थे। आज तक दुनिया के किसी देश में भी वेश्या तथा वेश्यावृत्ति के सम्बंध में ऐसे आदर्श नियम नहीं बने, जैसे कौटिल्य ने बनाये थे तथा जिनमे इस सम्बंध की सभी बुराइयों की पूरी रोकथाम थी।[1] वेश्या के लिए भी गुणवती तथा कलावती होना आवश्यक था। पुरुष को वश में करने की भी एक विशेष कला समझी जाती थी। उसका एक विशेष विज्ञान होता था।

वेश्या-विज्ञान

कश्मीरनरेश जयापीड के प्रधान मंत्री दामोदर गुप्त ने अपने "कुट्टनीमतम्" मे वेश्याविज्ञान को बहुत ऊँचे पहुँचा दिया है। आज से १३०० वर्ष पूर्व[2] एक बड़े शास्त्र की रचना उन्होंने की थी। काशी मे मालती नामक एक नर्त्तकी थी जिसका रूप साधारण श्रेणी का था। पर वह सम्पन्न पुरुषों को आकर्षित कर उनका प्रेम प्राप्त कर धन कमाना चाहती थी। इसलिए इस कला को सीखने के लिए वह एक वृद्ध कुटनी के पास गयी। वह कुटनी जिसका नाम विकराला था,[3] एक ऊँचे सिहासन पर बैठी हुई थी और एक से एक सुन्दरी युवतियाँ उसकी सेवा में लगी हुई थी, उससे गुरु-मंत्र प्राप्त करने के लिए।

विकाराला ने मालती को पुरन्दर तथा हरलता की कहानी सुनायी। फिर राजा सिहभट के पुत्र समरभट की कथा बतलायी। समरभट काशी मे विश्वेश्वर

---

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र—२ अधिकरण "अध्यक्ष प्रचार"—२७ वाँ अध्याय, ४४ प्रकरण, गणिकाध्यक्ष

> **गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूप-यौवनशिल्पसम्पन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत् ॥**

इत्यादि, युवती गणिका को सौभाग्यवती भी कहते थे—

> **सौभाग्यभङ्गे मातृकां कुर्यात्।**

२. कल्हण की "राजतरंगिणी" में जयापीड का शासन-काल ई० सन् ७५१ से ७८२ बतलाया है। "कुट्टनीमतम्" का रचना-काल यही रहा होगा।

३. श्लोक ३ से श्लोक ४३ तक उसका वर्णन है।

का दर्शन करने गये थे। वहाँ मंदिर मे उनको नाचनेवाली लड़कियाँ मिली। समरभट को कामपीड़ा हुई तो उन्होंने मंदिर में नर्तकियों का पता लगाया। उत्तर मिला कि पेशेवाली तो कोई न कोई पुरुष लिये पड़ी होंगी। पुजारियों ने मंजरी से परिचय कराया। उसने समरभट के साथ जाना स्वीकार किया। वह उसके साथ राजधानी गयी और वहाँ उसने उसको खूब चूसा।[1] पुरुष को फुसलाकर उसका धन किस प्रकार छीना जाय, इसकी कला विकराला ने खूब समझायी थी। मालती को उसने उपदेश दिया कि चिंतामणि को किन हाव-भाव आदि से मोहित कर वह उसका द्रव्य खूब चूसे और जब वह कगाल हो जाय तो उसको त्याग देने में कोई नैतिक संकोच न करे। वह दूसरे पुरुष के पास चली जाय और फिर उसका सब कुछ अपहरण करे।[2] चिन्तामणि कश्मीर नरेश का एक बडा सरदार था। इस प्रकार गुरु से उपदेश लेकर मालती घर गयी। इतना सब कुछ लिखने के बाद लेखक ने अपनी पुस्तक का उद्देश्य स्पष्ट किया है। वे लिखते है कि "कुट्टनीमतम्" को पढ़नेवाला बदमाशो या दुष्टा स्त्रियों का शिकार नही होगा।[3]

वासना की वास्तविकता को पहचानकर उसका किसी प्रकार मुकाबला किया जाय, प्राचीन विद्वानो ने सदैव इस पर विचार किया तथा उसका भी एक आचार-शास्त्र बना दिया। समय पाकर उसी आचार ने भ्रष्ट रूप धारण कर लिया। पद्मपुराण के अनुसार सुन्दर कन्याएँ खरीदकर मंदिरो मे समर्पित कर देना स्वर्ग मे स्थान प्राप्त करने का बीमा था। भविष्यपुराण में लिखा है कि सूर्यलोक में स्थान पाने के लिए श्रेष्ठ उपाय है कि कुछ वेश्याएँ खरीदकर सूर्य के मदिर को समर्पित कर दी जायें। फिर भी वेश्यावृत्ति की एक नियमित परम्परा थी। पर समय की गति से ऐसे दलाल पैदा हो गये जो लड़कियो को भगाने का, बेचने का, वेश्यालय या भठियारखाना चलाने का पेशा करने लगे।[4] इस प्रकार समाज मे एक अनर्थ उत्पन्न हो गया।

१. सन् १९२४ का तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी द्वारा सम्पादित संस्करण, श्लोक ७३७ से १०५६ तक यह कथा है।

२. कुट्टनीमतम्, श्लोक ४९८-७३५ तक यह कथा तथा उपदेश है।

३. श्लोक १०५९

४. Prostitution requires Prohibition—By G. R. Bannerjee in "Indian Journal of Sociology", 19th June, 1958–Page–11-17.

आजकल तीन प्रकार की वेश्याएँ है—एक वे जिनकी वेश्यावृत्ति से दूसरे लाभ उठाते है, दूसरी वे जो स्वतंत्र रूप से पेशा करती है तथा तीसरी वे जो लुका-छिपी ढग से निजी आनन्द के लिए या कुछ आमदनी करने के लिए यह पेशा करती है। यद्यपि प्राचीन भारत मे गणिका का पद पूर्णत. वैध था पर ईसा के १००-२०० वर्ष बाद से भारत में इस संस्था का पूर्ण विकास प्रारम्भ हुआ और होते-होते आज का गंदा रूप प्राप्त हो गया। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र मे लिखा है कि (कामसूत्र की रचना के दिनो में) "गणिका" की उपाधि उसी को मिल सकती थी जो बड़ी बुद्धिमती हो, विद्या के साथ संगीत नृत्य आदि कलाओं में गुणी हो। केवल शरीर का सौदा करनेवाली वेश्या नही। ईसवी सन् ३०० के लगभग भरत मुनि का "नाट्यशास्त्र" रचा गया था। उसमें सर्व-गुणसम्पन्ना गणिका की बड़ी प्रशंसा है। इसी काल में लिखे गये ग्रन्थ "ललित-विस्तर"[१] में राजा शुद्धोदन की कथा है कि उनको अपने लड़के के लिए एक ऐसी दूल्हन की तलाश थी जो "गणिका" के समान सर्वगुण-सम्पन्न हो।

तीन प्रकार की वेश्याएँ यूनान में होती थी। एक तो दासकन्याएँ जिनको विशेष प्रकार की पोशाक पहननी पड़ती थी। दूसरी वे जो यूनानी थीं तथा जिनको गाना, नाचना आदि आता था। इसे मध्यम श्रेणी समझिए। तीसरी उत्तम श्रेणी की वे महिलाएँ थी जो सड़क पर मुख खोले घूम सकती थी, बहुत ऊँचे तबके में चलती थी तथा इनको सभी नागरिक अधिकार प्राप्त थे।[२] मध्यम तथा उत्तम श्रेणी की महिलाओ को अपनी आय को अपने पास रखने का अधिकार था, पर उन्हें सरकारी कर देना पड़ता था।

तीन हजार वर्ष से भी अधिक हुए कि फोयेनिशियन लोगों ने साइप्रस टापू में कामदेवी अस्तार्ती का मंदिर बनवाया था। पहले इस मंदिर में स्त्रियों को जाने की मनाही थी। बाद में वहाँ घूमने तथा दर्शन करने की अनुमति मिल गयी और ईसवी सन् २०० तक वहाँ तट के किनारे स्त्रियाँ खुले आम घूमती थीं और अपने शरीर का सौदा किया करती थीं। रोम में अडोनिस देवता का त्यौहार मनाया जाता था। इस देवता को सूअर ने मार डाला था। अतएव त्यौहार पहले मुहर्रम के ढंग पर रोने पीटने

१. वही, बैनर्जी १२-१३

२. यूनान में वेश्याओं में निम्न तथा मध्यम श्रेणी को सड़क पर मुंह खोलकर चलने की अनुमति नहीं थी, प्रथम, मध्यम तथा उत्तम श्रेणी की वेश्याओं का नाम था— Dicteriades, Antatrides, और Hetaires.

से शुरू होता था। स्त्रियों को देवता के सामने अपने केशों की तथा सतीत्व की भेट चढानी होती थी। पुजारियो के विश्वास के अनुसार देवता अडोनिस मृत्यु के बाद पुन. सजीव प्रकट हुए और जब उनके प्रकट होने की खुशी मनाने का अवसर आता, रोनेवाला त्यौहार अत्यधिक व्यभिचार मे बदल जाता। रोम में वेश्या-गमन एक धार्मिक कृत्य बन गया था।

धर्मगुरु का आदेश

फ्रान्स मे भठियारखानों को अबाये[१] कहते थे। फ्रान्स के नरेश चार्ल्स छठे[२] और सातवें[३] ने, इटली की उस समय की सबसे बड़ी रियासत या राज्य नेपुल्स के नरेश जीन प्रथम ने ऐसे वेश्यालयो को विशेष अधिकार दिये थे। ईसाइयों के सबसे बडे धर्मगुरु पोप जूलियस द्वितीय ने २ जुलाई १५१० को एक विशेष आदेश जारी करके पेरिस मे एक वेश्यालय खोलने का अधिकार प्रदान किया था। उस जमाने में भी फ्रान्स मे नंगा होकर नाचना बुरा नही समझा जाता था। यूरोप के कई देशो में यह प्रणाली थी कि जब कोई विजेता किसी देश मे नाम कमाकर और उसे जीतकर अपने देश वापस आता था तो उसके स्वागत के जलूस मे सबसे आगे युवती अवि वाहिता नंगी लड़कियाँ चला करती थी। यूरोप मे उन दिनों सृष्टि में मानव के विकास के सम्बंध में जो नाटक खेले जाते थे, जिनमे आदम और हौवा का ज़िक्र होता था, ऐसे नाटकों में पुराने इतिहास के अनुसार आदम और हौवा को मच पर एकदम नंगा लाते थे।

फ़ान्स में वेश्यावृत्ति इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि वेश्याओं का उद्धार कर उनके सुधार के लिए पहला "सुधारगृह" सन् १२२६ में पेरिस मे खुला था और उसके ख़र्च के लिए सम्राट् "लुई पवित्र" ने काफी रुपया दिया था।[४] पर, उसके बाद वैसे नरेश फ्रांस में सैकड़ों साल तक नही पैदा हुए जो वेश्या के उद्धार की ओर भी ध्यान दे सकें।

१. Abbayes यह शब्द—Abbeys या ईसाई मठ से बहुत निकट है।

२. चार्ल्स ६—ई० सन् १३६८ से १४२२ तक

३. ई० १४०३ से १४६१ तक

४. Sexual Life in England—Past & Present–By Ivon Block—Trans. William Forstern, Pub. Francis Aldor–1938–Page–212.

धार्मिक अनुशासन

यद्यपि भारतीय शास्त्रकारो ने वासना को नियंत्रण में रखने का बहुत प्रबंध किया, फिर भी वे उसे धर्म के दायरे के बाहर न कर सके। स्यात् यह उचित भी था। जब स्त्री मासिक धर्म मे हो, उसके साथ सम्भोग करना भयकर अपराध समझा जाता था। इससे नरक मिलता था।[१] जिन सात कारणो से दीर्घ जीवन अथवा जीवन का सुख नष्ट होता था उनमे रजस्वला स्त्री के साथ भोग भी था। ऐसी अगम्या स्त्री के[२] पास जाने का दंड था गीला वस्त्र पहनकर छ महीने तक धूल में सोना[३]। ऐसे विधानों से वासना के अपराधो की काफी रोकथाम हो जाती थी। रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने वाले को ब्रह्महत्या लगती थी।[४] रजस्वला के हाथ का छुआ भोजन भी निषिद्ध था।[५]

ऋतुमती स्त्री के साथ विषय करना भी धर्म के अन्तर्गत था। ऋतुकाल में सम्भोग से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[६] महाभारत में ही ऋषि धौम्य की कथा है कि वे किसी कार्यवश जब घर छोड़कर गये तो अपनी गृहस्थी अपने शिष्य उत्तंक के सुपुर्द कर गये। ऋषि की पत्नी ऋतुमती हुई। उसकी कामवासना को शान्त करने के लिए उत्तंक बुलाये गये। उनसे कहा गया कि तुम उसका उपभोग करो, अन्यथा उसका ऋतुकाल निरर्थक होगा, "उसे निराश न करो।" उत्तक ने गुरु-पत्नी के साथ सोना अस्वीकार कर दिया। जब गुरु वापस आये और उनको यह घटना मालूम हुई तो उन्होने प्रसन्न होकर उत्तंक को इनाम दिया पर उनकी पत्नी ने कुछ समय में उत्तक से बदला ले ही लिया।

स्त्री को विवाह काल में व्यभिचार करने पर भी दोष नही लगने पाता, क्योंकि जब उसे मासिक धर्म होता है, उसका सब कुछ योनि-पाप बह जाता है।[७] मासिक धर्म से उसका कायिक, मानसिक पाप धुल जाता है।[८] बोधायन के अनुसार स्त्री का

१. महाभारत १३, ७३, ४२
२. महा० १३–१०४–१५०
३. महा० ७–७३–३८
४. वही १२. २८३–४३
५. १३–१०४–४०
६. वही १३–१४४–१३–१४
७. याज्ञवल्क्य स्मृति–१–७२
८. मनु०अ०५,श्लो० १०८. विष्णुपुराण १२–९१, पाराशर स्मृ० ७–२,१०–१२

पाप उसके मासिक धर्म के साथ बह जाता है।[१] ऋतुमती स्त्री के लिए तो यहाँ तक लिख दिया है कि "जिस प्रकार हवन के समय अग्नि आहुति की प्रतीक्षा मे रहती है, उसी प्रकार ऋतुकाल में स्त्री ऋतु-ससर्ग की प्रतीक्षा करती है। मासिक धर्म के समय स्त्री अपने पति से कहती है "ऋतु देहि"। मासिक प्रवाह समाप्त होने पर स्त्री का रज निरर्थक जाना उचित नही है। उसे संसर्ग प्राप्त होना चाहिए। कामातुर स्त्री के बीच में अडंगा डालना भी बडा अपराध था। इस सम्बन्ध मे राजा कल्मषपाद का उपाख्यान दृष्टव्य है (महा० आदिपर्व)।

प्राचीन भारत में कामवासना शान्त करनेवाली वेश्या को शुभ मानते थे। यदि मार्ग में वेश्या मिल जाय तो बड़ा शकुन समझते थे। पर यह सब द्वापर युग की बातें हैं। महाभारत के अनुसार सतयुग मे बिना विषय किये ही, केवल इच्छा से सन्तान पैदा हो जाती थी। त्रेतायुग मे केवल "स्पर्श" मात्र से संतान उत्पन्न होती थी। द्वापर युग मे संभोग का तरीका निकला पर कलियुग मे इसका वास्तविक नियमित रूप बना। कभी खुले मे यह कार्य नही करना चाहिए, गुप्त रूप से करना चाहिए।[२] अपनी स्त्री के साथ ही करना चाहिए, इत्यादि।[३]

बहुप्रजा ह्रस्वदेहाः शीलाचारविवर्जिताः।
मुखेभगाः स्त्रियो राजन्, भविष्यन्ति युगक्षये ॥[४]

वंग देश में,[५] पुराने जमाने में पुरुष को कामोत्तेजित करने के लिए मुखसंभोग का वर्णन कही कही मिलता है। पशु के साथ प्रसग,[६] पुरुष-पुरुष के साथ प्रसंग,[७] स्त्री-स्त्री

१. बोधायन. (२)–२–४–४

२. महा० १३–१६२–४७ तथा १२–१९३–१७

३. महा० ७, ७३–४३

४. कलियुग के लक्षणों में यह भी है कि स्त्रियाँ मुख मैथुन करेंगी, हजारों वर्ष पूर्व जो लिखा गया था, आज वही दुर्गुण पश्चिमी देशों में बहुत पाया जाता है।

५. वंगेषु।

६. महा० १३–१४५–५५

७. Sodomy वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र के अधिकरण २, अ० ६ में इसका वर्णन किया है—अधोरतं पायावपि दाक्षिणत्यानाम्। ४९ ॥ यानी दाक्षिणात्यों में 'अप्राकृतिक संभोग' भी करते है।

के साथ प्रसंग,[1] यह सब घोर पाप गिनाया गया है। पितरों के श्राद्ध के दिनो में भोग करनेवाला घोर पापी है। इस कलियुग की महिमा में महाभारत में ही लिखा है कि जब संसार का सर्वनाश होने का समय आयेगा, पति अपनी पत्नी से तथा पत्नी अपने पति के साथ प्रसग से सन्तुष्ट न होगी।[2]

हिन्दू आदेश

स्त्री की इतनी महिमा तथा वासना की ऐसी आग बनलानेवाले प्राचीन हिन्दू शास्त्रकारो ने उसे समाज में छोटा स्थान भी दिया है। नारद-स्मृति (अध्याय १–१९०) के अनुसार स्त्री कभी सच नही बोल सकती, अतएव उसका साक्ष्य नहीं स्वीकार करना चाहिए। जहाँ स्त्री-स्त्री का झगड़ा हो, वहाँ स्त्री साक्षी हो सकती है।[3] इस विषय मे काफी प्रसंग मिलेगे। इसका कारण यह है कि स्त्री की मर्यादा को काफी मानते हुए भी उसे हमारे यहाँ एक "चल सम्पत्ति" समझते थे जिस पर पुरुष का अधिकार था। प्राचीन जर्मन जाति में भी यही नियम था। वहाँ भी पति को अपनी व्यभिचारिणी पत्नी को दंड देने का अधिकार था। व्यभिचार के लिए सार्वजनिक दंड, प्राणदंड का भी विधान है। किन्तु यहाँ पर हम व्यभिचार के दंडों का वर्णन नहीं कर रहे है। वह विषय बाद में आयेगा।

अभी तो हमे केवल कामवासना का रूप समझना है, तभी उसको शान्त करने का उपाय हो सकेगा। हमारे देश में स्त्री का सब गुण वर्णन करने पर भी उसे "इन्द्रियार्थ" तथा भोग्या (भोग के लिए) भी माना गया है। जीवन में उसकी उसी प्रकार आवश्यकता है जिस प्रकार खाट की, सवारी की, मकान की तथा अन्न की।[4] मकान, खेत, स्त्री तथा सुहृदय, ये सब जीवन की "अतिरिक्त" सामग्रियाँ हैं— उपाहित हैं। इनको कही भी प्राप्त किया जा सकता है।[5] जब राम सीता-हरण पर घोर विलाप करने लगे तो सुग्रीव ने उनको समझाया कि औरत के लिए क्या रोना। वह तो कही भी मिल सकती है। आखिर मेरी बीबी भी तो भगा ली गयी

१. वही
२. महा० १२–२२८–७३
३. इस विषय में मनुस्मृति ८–६८ तथा वशिष्ट १६–३० देखिए
४. महा० अ० १३—१४५–४
५. महा० १२–१०३९–८५८६

थी।[1] लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम ने स्वयं कहा था कि "हर जगह औरत मिल सकती है, रिश्तेदार भी मिल सकते है पर सहोदर भ्राता नही मिलता।"[2]

यदि पुरुष सोचता है कि स्त्री इतनी साधारण वस्तु है तो स्त्री भी यही सोच सकती है। जातक कथा[3] है कि एक स्त्री के पति, पुत्र तथा भाई को प्राणदंड मिला। उसे आदेश मिला कि इन तीनो में से जिसका चाहे प्राण बचा ले। उसने कहा—"मेरे गर्भ में बच्चा है, अतएव मुझे लड़का नही चाहिए। मेरे पीछे राह चलते दौड़ने वाले मर्द बहुत मिलेगे, पर सहोदर भाई मुझे कभी नही मिल सकता।" और उसने अपने भाई को छुड़ा लिया। इसी प्रकार का एक जर्मन गाना है कि एक स्त्री के सामने समस्या थी कि अपने भाई या अपने प्रेमी को मृत्यु से बचा ले। उसने तय किया कि प्रेमी तो राह चलते मिलेगे, भाई नही मिलेगा। स्विनबर्न लिखित "कैलिडाग मे अतलोता" नामक प्रसिद्ध रचना मे अतलान्ता अपने भाई के हत्यारे अपने लडके को इसलिए मार डालती है कि "दुनिया मे बच्चे तो बहुत पैदा हो सकते है पर भाई बहन नही मिल सकते।"[4]

कुमारी कन्या

स्त्री की बड़ी शक्ति है। यह वासना में भी मानव का कल्याण ही करती है। यह इतनी पवित्र है कि इसे भ्रष्ट कहना ही कठिन है। कुमारी का कौमार्य नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नही होता। कुमारी कुन्ती पर सूर्य रीझ गये। उससे उनका सम्पर्क हुआ। उन्होंने कुन्ती को वर दिया कि "मेरे समान तेजस्वी पुत्र (कर्ण) पैदा होगा और तुम अक्षत कुमारी ही कहलाओगी।"

डाकुओ से भी समाज मे यही आशा की जाती थी कि वे डाका डालने के समय भी पर-स्त्री हरण नही करेंगे। पर शिशुपाल के सौ पापो मे एक कुमारी कन्या का हरण भी था। अग्नि देवता राजा नील की सुन्दरी कुमारी कन्या महिष्मती के साथ

१. वाल्मीकि रामायण ४–७–५
२. वाल्मीकि ६–१०१–१४
३. जातक कथा—सं० ६७
४. "For all things else man may renew,
Yea, son for son the Gods may give or take.
But never a brother or sister any more
—"Swineburne's "Atlanta in Calydon"

एक ब्राह्मण के रूप मे संभोग करते पकड़े गये। महिष्मती निर्दोष मानी गयी। ऐसी दशा मे यदि तोब्रियांद जाति मे कुमारी कन्या को खुलकर भोग-विलास करने का अधिकार है तो क्या आश्चर्य है। उत्तरी अराकान मे कौमार जीवन में विलास की खुली इजाजत है। बाकम्बा जाति मे बिना गर्भवती हुए लड़की विवाह योग्य नही समझी जाती। जिस कुमारी के कई बच्चे पैदा हो चुके हों, वह विवाह के उतना ही उपयुक्त समझी जाती है। कुछ जर्मन-भाषी ज़िलों में वही कुमारी पत्नी बनने के योग्य समझी जायगी जो अपने प्रेमी द्वारा गर्भवती बन चुकी हो। अल्जियर्स मे कई ऐसी जातियाँ हैं जिनमे लड़की बड़ी होते ही उसका पिता उसे वेश्यावृत्ति द्वारा कमाने के लिए भेज देता है। जो जितनी ही रकम अधिक कमाकर लायेगी, उसका विवाह जल्दी होगा। कमायी हुई रकम दहेज का काम देती है। पिछड़ी जातियों की बात जाने दीजिए। हमारी स्मृतियो में ऐसे लोगो का भी ज़िक्र है जो अपनी पत्नी से वेश्या का काम लेते हैं।[1]

वेश्या का प्रारम्भ

वेश्या, दासी, निष्कासिनी आदि से विषय में तभी दोष है, जब इनमें से किसी को किसी ने रखेल बना लिया हो।[2] मेहमानो की खातिरदारी के लिए औरतों का प्रबंध रखना पड़ता था। धर्मराज युधिष्ठिर ने ऐसी कई हजार दासियाँ रख छोड़ी थी जो ६४ कलाओ मे निपुण थीं। दुर्योधन के साथ जूआ खेलने में उन्होंने इन दासियों को भी बाजी पर लगा दिया और हार गये।[3] बहुत देशों मे मेहमानों की इस प्रकार खातिर करने का रिवाज था।[4] किन्तु, स्त्री वेश्या कैसे बनी इसकी बड़ी रोचक कथा हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे मिलती है।

प्राचीन काल मे दीर्घतमस नामक एक अंधे साधु थे। जब वे अपनी माता के पेट में थे, उनको इसलिए बड़ा कष्ट मिला कि उनकी माता के साथ गर्भकाल में उनका चाचा, (माता का देवर) प्रसग करता रहा। ऐसे बालक पेट से ही वासना सीखकर आते हैं। गर्भवती स्त्री के साथ प्रसंग करना अपनी सन्तान से, पुत्र हो या

१. देखिए बोधायन (२) २४–३; मनु अ० ८–३६२; याज्ञवल्क्य २–४८।
२. नारद स्मृति–१२–७८
३. महा० २–६१–८
४. Molennan—Primitive Marriage—Page 96.

पुत्री, प्रसंग करना है।[१] दीर्घतमस का विवाह एक परम सुन्दरी स्त्री प्रद्वेषी से हो गया। वेद-वेदांग में पारगत इन साधु ने कामधेनु[२] के पुत्र सौरभेय से पशुओं के समान खुले आम प्रसग करना सीखा और वे निर्लज्ज होकर प्रद्वेषी के साथ ऐसा करने लगे। उनका यह व्यवहार अन्य मुनियों को बुरा लगा। उन्होंने कहा कि इस साधु ने "नैतिक नियम" का उल्लंघन किया है। अतएव इसे आश्रम से निकाल देना चाहिए। इधर मुनियो ने यह निश्चय किया और उधर प्रद्वेषी ने अपने पति से कहा कि "मुझे तुमसे कई बच्चे हो चुके। पर पति का जो धर्म है कि स्त्री को घर और भोजन देना, वह दोनो तुम नही कर सकते। मै तुम्हारे जैसे जन्म के अंधे का पालन नही कर सकती। मै तुमको अब अपने पास नही रखूँगी।" यह सुनकर साधु दीर्घतमस ने कहा—

"आज से मै ससार के लिए नियम बनाता हूँ कि जो पत्नी आमरण केवल एक पति की बनकर रहती है, चाहे पति मर ही क्यो न जाय, वह कभी पराये पुरुष का मुँह नही देखेगी। किन्तु विवाहिता हो या कुमारी, जो भी दूसरे पुरुष के पास गयी, वह अपराधिनी होगी, जाति से च्युत होगी। पर यदि ऐसी स्त्री किसी पुरुष के पास जाय तो उसे (पुरुष को) चाहिए कि विषय के लिए मूल्य चुकाये।"[३]

यह सुनकर प्रद्वेपिका ने क्रुद्ध होकर अपने लडको को आदेश दिया कि अपने पिता को एक खम्भे मे बाँधकर गंगा में फेंक दे, लडको ने वही किया। उसी दिन से धन लेकर प्रसग कराने की प्रथा चल निकली।[४]

प्राचीन भारत में ऐसे भी लोग थे, जिनमे काम-वासना ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। उत्तर-पश्चिमी भारत में मद्रा नामक जाति मे तथा सिन्धु नदी के किनारे के "सिन्धु सौवीरक" लोगों में और पंजाब मे ऐसे लोग रहते थे जो मास खाते थे, गोमास तक खाते थे और संभोग की इच्छा होने पर मा, बहन, बेटी, पिता, चाचा, भतीजा किसी का बिना विचार किये, जिससे चाहते उससे सम्बंध करते, और मदिरा पीकर नंगे होकर नाचते थे। ये गोरे लोग गन्दे थे, तथा वासना से

१. Marie Stopes—Married Love.

२. मनोवांछित भोजन देनेवाली इन्द्र की गौ।

३. Johann J. Meyer—Sexual life in Ancient India—Pub. Standard Literature Co., Calcutta—1952, Page-127.

४. वही, Sexual Life in Ancient India Page-126.

भरे रहते थे।[१] ये स्त्री, पुरुष खड़े होकर पेशाब करते थे, जैसे ऊंट, गधा आदि करते है।[२]

स्त्री की शक्ति

किन्तु जिस स्त्री की इतनी भर्त्सना है—और जिसका पॉच हज़ार वर्ष पूर्व वह मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया हे जिससे अधिक आज भी नही कहा जा सकता—उसकी बड़ी प्रशसा भी है। पुराणों में लिखा हे कि स्त्री की सबसे बड़ी शक्ति उसके आँसू है। वह आँसू गिराकर सबको पिघला देती है।[३] भृगु की पत्नी सुन्दरी पुलोमा से जब राक्षस पुलोमन ने जबर्दस्ती प्रसग किया तो वह इतना रोयी कि उसके नेत्रो से निकले पानी से वधूसारा नामक नदी बन गयी। महाभारत के अनुसार स्त्रियों के अश्रु से ही[४] गगाजी मे कमल का फूल बनता-खिलता गया।

अश्रु के अतिरिक्त स्त्री की दूसरी महान् शक्ति है "आज्ञाकारिता, धैर्य तथा सहिष्णुता।" द्रौपदी ने सत्यभामा से कहा था कि मैं पति की सेवा में क्रोध, कामना तथा अहंभाव को छोड़कर जुटी रहती हूँ।"[५] "राजा की शक्ति उसके राज्य में, शास्त्री की शक्ति पाडित्य में तथा स्त्री की शक्ति उसके सौन्दर्य, जवानी तथा लावण्य में अपरिमेय है।"[६] सुन्द उपसुन्द दैत्यो की कथा में स्त्री के रूप की शक्ति का बड़ा रोचक वर्णन है। ऐसी अनेक कथाएँ दी गयी है कि अनजाना, पवित्र युवक प्रेम की लीला से अनभिज्ञ होते हुए भी एक सुन्दरी युवती को देखकर मानो "सब कुछ जान जाता है।"

किन्तु वासना का यह सब रूप देने के बाद हमारे शास्त्रकार वह मंत्र देते हैं जिससे वासना अपराध का रूप न धारण कर सके। जिस महाभारत में स्त्री का बुरा से बुरा रूप सामने रख दिया गया है उसी मे हर जगह यही ध्वनि निकलती है कि स्त्री के प्रति उदार भाव होना चाहिए। उसकी भूलों के प्रति क्षमाशील होना चाहिए।

१. वही, पृष्ठ १२७
२. वही, महाभारत में कर्ण द्वारा वर्णित जाति।
३. वाल्मीकि रामायण ४–३३–२८
४. महा० १–१९७–९
५. क्षेमेन्द्र ने "दशावतारचरित" में भी यही गुण बतलाये है।
६. महाभारत–१२–३२०–७३

उसके प्रति उपेक्षा की भावना नही होनी चाहिए।[1] पवित्रता तथा चरित्र की इतनी मर्यादा है कि सुभद्रा ने अभिमन्यु की मृत्यु पर विलाप करते समय कहा —"जाओ बेटा, उस लोक में जाओ जहॉ तप, व्रत, नियम आदि का पालन करनेवाले तथा एक स्त्री से सन्तुष्ट रहनेवाले लोग जाते है।"[2] स्वर्ग लोक में वही लोग जाते है जो केवल अपनी धर्मपत्नी से संतुष्ट रहते है, परायी स्त्री को मा, बहन या बेटी समझते है, उसे किसी प्रकार का कष्ट नही पहुँचाते।"[3] "काम से अंधा होकर जो अपनी स्त्री को छोड़कर परायी स्त्री मे रमण करने का नियमविरुद्ध कार्य करता है. . .[4] ऐसा परायी स्त्री से भोग करनेवाला व्यक्ति भेंडिया, कुत्ता, स्यार, गिद्ध, सर्प, बक आदि होकर पैदा होता है। जो अपने मित्र,[5] गुरु या राजा की पत्नी को ग्रहण करता है वह सूअर बनकर पैदा होता है, वह पॉच वर्ष तक सूअर, दस वर्ष तक साही (कॉटेदार जानवर), पॉच वर्ष तक बिल्ली, दस वर्ष तक मुर्गा, तीन महीने तक चीटी, एक महीने कीट-पतग और इन सस्कारो से गुजरकर १४ महीने कृमि योनि मे तथा इतना प्रायश्चित्त करने के बाद फिर मनुष्य योनि में प्राप्त होगा।"[6] पॉच कुकर्म करनेवाले की निष्कृति नही होती। वह सदा के लिए जाति-च्युत तथा असम्भाष्य रहता है, नरक में वह मछली की तरह से भूना जाता है। वे पॉच कुकर्म है—ब्रह्म-हत्या, गो-हत्या, अधार्मिकता (धर्म में अविश्वास), पर-पत्नी-सेवन तथा बीबी की कमाई खाना।[7] वाल्मीकि का उपदेश है कि "पर-पत्नी को छूने से बढकर दूसरा कोई पाप नही है।"[8] जो दूसरे की पत्नी को फुसलाता है या दूसरे के लिए प्राप्त करता है, वह नरक मे जाता है।[9]

१. Johann J. Meyer—Sexual life in Ancient India—Pub. Standard Literature Co, Calcutta—1952, पृष्ठ ५२३

२. महा० ७–७८–२४

३. महा० १३–१४४–१०–१५

४. वाल्मीकि रामायण–२–७५–५२–५५

५. महा० १३–१०१–१६

६. महा० १३–१११–७५

७. वही–१३–१३०–३७–४०

८. वाल्मीकि ३–३८–३०

९. महा० १३–२३–६१

महाभारत में कथा है कि पांडवों के पिता पांडु ने अपनी पत्नी कुन्ती को स्त्री-धर्म समझाते हुए बतलाया[१] कि पहले कुमारी तथा विवाहिता जैसा चाहे वासना को शान्त किया करती थीं। उस समय कोई नैतिक विधान नहीं था। एक बार ऋषि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु के सामने उसकी माता को एक ब्राह्मण हाथ पकडकर ले जाने लगा। श्वेतकेतु को बडा क्रोध आया। ऋषि उद्दालक ने उन्हें समझाते हुए कहा—"यह तो होता ही रहता है।" इस पर श्वेतकेतु ने कहा कि आज से नैतिक विधान मैं बदल रहा हूँ। आज से यह नियम होगा कि "यदि कोई पत्नी अपने पति से विश्वासघात करती है तो उसको जातिच्युत समझना चाहिए और वह भ्रूण-हत्या जैसे अपराध के समान दोषी होगी। यदि पुरुष अपनी अक्षतयोनि पत्नी के प्रति अविश्वसनीय साबित हुआ तो उसे भी यही दोष लगेगा।" श्वेतकेतु ने तब से नैतिकता का जो नियम बनाया है वही आज तक लागू है। तब से मनुष्य को आदेश है कि वह एक स्त्री से ही संतुष्ट रहे। एक स्त्री से सन्तुष्ट रहनेवाले को सहस्र अश्व-मेध यज्ञ का फल मिलेगा।[२]

वासना तथा कामना का नंगा रूप, उसका बीभत्स रूप, बतलाकर उस वासना से बचने का जैसा सुन्दर आदेश हिन्दू शास्त्रों में मिलता है, वैसा अन्य किसी भी देश के शास्त्र मे नही। यही कारण है कि कामुक-अपराधों की दृष्टि से भारत सबसे पिछडा हुआ है यानी यहाँ के लोगो का चरित्र अन्य देशों की तुलना मे कही अच्छा है। धर्म के साथ नैतिकता का मेल ही अपराध की सबसे बडी रोकथाम है। हम इसे आगे चलकर सिद्ध करेंगे। भारतीय समाजशास्त्र तथा धर्मशास्त्र की इसी महिमा को मायर ने अपनी पुस्तक मे सिद्ध किया है। वे लिखते है कि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों मे जो गहरी कर्त्तव्य-शील भावना तथा सम्पूर्ण प्रौढता मिलती है वह अन्य साहित्यों के गंदेपन, अश्लीलता तथा थोथी वासनाशीलता की तुलना में हमको एक रोचक संस्कृति का परिचय देती है।[३]

वात्स्यायन का कामसूत्र

कामशास्त्र तथा कामवासना[४] पर भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण

१. महा० १–१२२

२. महा० १३–१०७–१०

३. Sexual Life in Ancient India Page–5.

४. अंग्रेजी में जिसे Sex (सेक्स) तथा जिस शास्त्र को Sexuology

तथा विश्व में अपने विषय का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ वात्स्यायन का कामसूत्र है। इसके प्रणेता महर्षि वात्स्यायन ने "उत्कृष्ट कोटि के ब्रह्मचर्य के साथ ग्रन्थ का प्रणयन करने के लिए निर्विकल्प समाधि से साक्षात् देखकर सूत्रों की रचना की है।"[१] एक विद्वान् व्याख्याकार ने इसकी टीका की भूमिका में लिखा है कि "कामशास्त्र अर्थ और धर्मशास्त्र से कम नही है। अन्य पुरुषार्थों की तरह काम भी एक पुरुषार्थ है।" व्याकरण महाभाष्यकार ने कहा है "खेदात् स्त्रीषु प्रवृत्तिर्भवति", काम से स्त्रियो मे प्रवृत्ति होती है। गम्या और अगम्या दोनों के भोग से एक प्रकार की शान्ति मिलती है पर कामशास्त्र यह बतला देता है कि किसके साथ गमन करे और किसके साथ न करे। कामशास्त्र यह निश्चय करता है और धर्मशास्त्र उसमें पाप-पुण्य का नियमन कर देता है।

साहित्य भी कामशास्त्र का अग है। महात्मा निश्चलदास ने स्पष्ट लिखा है कि "शृगार रस के साहित्य कामशास्त्र के अंग है।" कोई चाहे कुछ कहे, इस विषय को जानना सभी चाहते हैं। वात्स्यायन ने "विद्या-समुद्देश्य" प्रकरण में लिखा है कि "जिन्होंने विवाह के बाद अनुभव कर लिया है, ऐसी साथ पली हुई धाय की लड़की, बराबर की मौसी, बूढी नौकरानी, भोग-विलास कर चुकी भिखारिन, या अपने सामने रंगरेली तक करनेवाली बडी बहन—ये कन्याओं को काम-कला सिखानेवाले आचार्य हैं।" कामकला का शास्त्र भी बड़ा गूढ़ है। अखड ब्रह्मचारी वात्स्यायन ने पशु-पक्षी के साथ भी प्रसंग करने का तरीका बतलाया है। काम से उन्मत्त पुरुष बकरी या गधी के साथ तथा स्त्री घोड़ा-कुत्ता के साथ भी प्रसंग करती है। आज भी समाज के सामने इस प्रकार के प्रसंग की जटिल समस्या है। जरा-सी होशियारी से स्त्री को कैसे वश मे कर लिया जाय या फिर प्रसंग के समय चुम्बन कैसे हो, स्त्री किस तरह शयन करे, इत्यादि यह सब उन्होंने साफ़-साफ़ लिख दिया

(सेक्सुओलॉजी) कहते हैं उसका एकदम समानार्थक शब्द मिलना कठिन है। Sex का अर्थ व्याकरणाचार्यों के अनुसार लिंग, स्त्री-पुरुषात्मक लिंग, द्वन्द्व, मैथुन तथा काम हुआ। Sexuology का अर्थ लिंगविज्ञान, कामविज्ञान या कामशास्त्र हुआ। पर यह रूढ़ अर्थ मे है।

१. वात्स्यायन के कामसूत्र के यहाँ दिये गये उद्धरण उसके "नितान्त गोपनीय संस्करण," श्री यशोधर विरचित, जयमंगला व्याख्या सहित, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई से संवत् १९९१ में प्रकाशित ग्रन्थ से है।

है। नायिका या वेश्या का भी बड़ा रोचक वर्णन है। वेश्या कैसे फँसाती है, कैसे चूसती है, इसका दिग्दर्शन है। वेश्या को यहाँ तक आदेश है कि उसे अपनी असली मा या व्यवहार मे वैसा ही काम करनेवाली बूढी मां का कहना जरूर मानना चाहिए।[1] यदि लड़की एक मिलनेवाले के साथ मिल रही हो, अधिक समय लग गया हो, दूसरा मिलनेवाला आ गया हो, यदि वह अधिक लाभवाला हो तो पहले को धता बतलाकर माता उस लड़की को दूसरे स्थान मे ले जाकर छोड आये।[2] वात्स्यायन ने जिन स्त्रियों के साथ प्रसंग नही करना चाहिए, उनको इस प्रकार गिनाया है—

भिक्षुकी-श्रमणा-क्षपणा-कुलटा-कुहकेक्षणिकामूलकारिकाभिर्न संसृजेत् ॥
(अधि० ४–अ० १–सूत्र, ९)

भिखारिन, बौद्ध व जैन संन्यासिन, तमाशा करनेवाली (नटी), शकुन परखनेवाली, व्यभिचारिणी और जादू-टोना करनेवाली स्त्रियो के साथ संसर्ग न करे। अधिकरण१, अध्याय २ में पशु-पक्षी आदि के प्रसंग तथा मनुष्य के प्रसंग में भेद समझाया गया है।

वात्स्यायन के अनुसार शंकर महादेव के परम भक्त नन्दिकेश्वर (नन्दी बैल) ने एक हज़ार अध्याय मे कामशास्त्र की रचना की। महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने उसका संक्षेप ५०० अध्यायों में किया।[3] बभ्रु के पुत्र पांचाल ने उसे १५० अध्याय तथा सात अधिकरणों में संक्षिप्त किया। बाभ्रव्य के संक्षिप्त संस्करण में से पटना की वेश्याओं ने छठें वैशिक (वेश्याओं के) अधिकरण को दत्तकाचार्य से पृथक् कराया।[4] इस प्रकार बहुत से आचार्यों ने इसे टुकड़े टुकड़े किया जिससे यह शास्त्र नष्टप्राय हो गया। अत सब भावों का संक्षिप्त रूप करके वात्स्यायन ने अपना कामसूत्र बनाया।[5] पर क्यों बनाया—इसलिए कि धर्म अर्थ काम—तीनों जीवन के प्रधान सहचर हैं। ऋषि ने इन तीनों को प्रणाम करके अपना ग्रन्थ शुरू किया है। वे कहते

१. कामशास्त्र, न त्वेव शासनातिवृत्तिः।—कान्तानुवृत्तम्–अधि० ६, अ० २– सूत्र ८
२. प्रसह्य च दुहितरमानयेत्—वही, सूत्र ६
३. अधिकरण १, अध्याय १–सूत्र ९
४. वही ११
५. वही १३–१४

हैं—"धमार्थकामेभ्यो नम ।" यह तीनो एक साथ मिले जुले हैं। इनको बनानेवाले आचार्यो को नमस्कार है, "तत्समयावबोधकेभ्यश्चाचार्येभ्य."। इस काम के दस भेद हैं, उसके दस स्थान है—दश तु कामस्य स्थानानि।[१] वे है "आँखो में प्रेम की झलक, चित्त की आसक्ति, संकल्प का पैदा होना, नीद का न आना, दुर्बल होना, अन्य विषयो से चित्त का हट जाना, लाज का मिट जाना, दीवानगी, बेहोशी और मौत।"

यह सब भी लिखा और सुख-भोग के बड़े-बड़े नुस्खे भी दिये। इतना सब लिखने का तात्पर्य क्या है? कामशास्त्र जानने से होगा क्या? क्या विषय-सुख के लिए कामशास्त्र है? ऐसी बात नही है। स्थान-स्थान पर वात्स्यायन ने वासना से बचने का उपाय बतलाया है और मनुष्य को सबसे बड़ी शिक्षा दी है कि तुम अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो। वे लिखते हैं—

रक्षन्धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम्।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः॥

(अधि० ७. अ० २, श्लोक, ५६)

धर्म, अर्थ, काम की स्थिति व अपनी दुनियादारी की स्थिति की रक्षा करता हुआ इस शास्त्र के तत्त्व का जाननेवाला व्यक्ति जितेन्द्रिय ही होता है।

इसमें कुशल होकर विद्वान् धर्म और अर्थ की ओर पूरी दृष्टि रख उचित काम मे इसका प्रयोग करता है उसे अवश्य सिद्धि मिलती है—

तदेतत्कुशलो विद्वान्धर्मार्थाविव लोकयन्।

किन्तु जितेन्द्रियता तथा ब्रह्मचर्य का ऐसा उपदेशक मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं से पूरी तरह परिचित था। पश्चिम के देशों में अपराध-शास्त्रियों के सामने सम-योनि वालों के व्यभिचार की बड़ी समस्या है। पशु-संसर्ग की बड़ी समस्या है। "कमर में बनावटी........बाँधकर"[२] विषय के अपराध बढ़ते जा रहे हैं। वात्स्यायन ने इसका भी जिक्र किया है। अभिप्राय की शान्ति के लिए भेड़, बकरी और घोड़ी आदि के प्रयोग का भी जिक्र है।[३] पश्चिम में इस बात पर बहस चल रही

१. वही—अधिकरण ५ अ० १—सूत्र ४
२. कामसूत्र—अधि० ५ अध्याय ६—अन्तःपुरिकावृत्तम्—सूत्र—४
३. तथा ५

है कि किस श्रेणी का चुम्बन अपराध न माना जाय। वात्स्यायन ने चुम्बन पर अधिकरण २, अध्याय ३ मे "चुम्बनविकल्पा." पूरा विश्लेषण ही लिख डाला है। उसे मानने से अपराध का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। प्रेम को जिस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए इसका वर्णन करके मादकता को संयत किया गया है। जिससे प्रेम करे उसे पहले पान खिलाये, यदि ताम्बूल न खाय, तो कसम दिलाकर खिलायें—यह वात्स्यायन का मत है। शरीर की रक्षा का, अंग-अंग के स्वास्थ्य का उपदेश है। यहाँ तक कि दाँतों का भी गुण दे दिया है। "दाँत बराबर हों, सुन्दर चमकने वाले हो, जिनके ऊपर पान का रंग चढ जाता हो, जितने लम्बे चौड़े होने चाहिए वैसे ही हो, उनके बीच में जगह या दरार न हो, नुकीले हों—ये दाँतो के गुण हैं।" (अधि० २, अ० ५—दशनच्छेदविधि—सूत्र २)[१]

जायज़ उम्र

अपराध शास्त्र के सामने एक बडी भारी समस्या है कि किस उम्र के पुरुष-स्त्री-संसर्ग को वैध तथा किसे अवैध या नाजायज माने। वैध उम्र के पूर्व का संसर्ग "बलात्कार"[२] समझा जाय या नही। चिकित्साविशेषज्ञ अपराधशास्त्री अब धीरे-धीरे इस निर्णय पर पहुँचते जा रहे हैं कि बलात्कार नामक कोई चीज़ ही नही है। उसे दंडविधान से हटा दिया जाय। हम इस विषय पर आगे चलकर समुचित विचार करेंगे। "बलात्कार" उसे कहते हैं जिसमे कन्या के साथ, बिना उसकी इच्छा के, संसर्ग किया जाय। वात्स्यायन ने बलात्कार की ऐसी प्रणाली बतला दी है कि बलात्कार रह नही जाता। "बलात्कारेण नियुक्ता" मे ऐसी जबर्दस्ती की ही भावना है।[१] पश्चिमी विद्वान् भी इसी नतीजे पर पहुँचते जा रहे है कि कन्या की संभोग के योग्य उम्र का अन्दाजा लगाना कठिन है। यह अपने-अपने गठन तथा रहन-सहन पर निर्भर करता है। हमारे देश में भी इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। स्मृतिकारों के अनुसार तीस वर्ष का वर, १२ वर्ष की कन्या तथा २४ वर्ष का वर और ८ वर्ष की कन्या, यानी कम से कम, पति-पत्नी मे १६-१८ वर्ष का अंतर बतलाया

१. वदसि यदि किंचिदपि दन्तरुचि कौमुदी, हरति दरतिमिरमति घोरम्। गीतगोविन्द–१०.१. (जब आप कुछ कहती हैं तो आपके दाँतों की स्वच्छ, चमकरूपी चांदनी मेरे भयरूपी अंधकार को एकदम दूर कर देती है।)

२. Rape

है।[1] आयुर्वेद के आचार्य सुश्रुत ने २५ वर्ष के वर तथा १२ वर्ष की लड़की का विधान किया है।[2] वाग्भट ने तो २० वर्ष के वर तथा १६ वर्ष की लड़की के संभोग को सही माना है। यदि १६ वर्ष की लड़की का गर्भाशय शुद्ध हो, वीर्य, रज, और मन शुद्ध हो तो बलवान् सुन्दर पुत्र पैदा होता है।[3] पराशर ऋषि ने रजस्वला होने के बाद ही (चाहे वह ८ की हो या १२ की) सहवास करने का आदेश दिया है।[4] वैद्यक शास्त्र मे तो यहाँ तक कह दिया है कि "नित्यं बाला सेव्यमाना नित्य वर्धयते बलम्।" माधवाचार्य के अनुसार रोये भी न निकले हो—विलोम योनि का सेवन करना चाहिए।[5] इस प्रकार इतने मत–मतान्तरो ने वही कहा है जो आज पश्चिम के अपराधशास्त्री सोच रहे है—बलात्कार कब माना जाय? कौनसी उम्र "कच्ची" कही जाय? वात्स्यायन ने तो स्त्री की स्वीकृति पर इतना जोर दिया है कि सुहागरात मे भी जबर्दस्ती मना की है।

उपक्रममाणश्च न प्रसह्य किंचिदाचरेत्।

अधि० ३, अ० २, ५

लड़कियाँ बडी बुद्धिमान् होती है। वे पुरुषो के कहे वचनों को अच्छी तरह सह (समझ) लेती है।

सर्वा एव हि कन्या: पुरुषेण प्रयुज्यमानं वचनं विषहन्ते। (३, २, २७)।

इसलिए बलात्कार स्वयं एक निरर्थक, भद्दी तथा गन्दी बात है। पर किस उम्र में "बलात्कार" माने यह शका की बात हो गयी। इस विषय में हमको आगे चलकर फिर विचार करना पड़ेगा। यहाँ पर केवल आर्य दृष्टि से उस पर विचार जान लेना चाहिए।

१. बलात्कारेण नियुक्ता मुखे मुखमाधत्ते न तु विचेष्ठत इति निमितकम्। अधि० २ अ० ३—सूत्र ८।

२. अस्मै पंचविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत् पित्र्य-धर्मार्थकामप्रजा: प्राप्स्यतीति। (सुश्रुत संहिता, शरीर स्थान) अध्याय १०

३. शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनले हृदि॥ वा० शा० अध्याय ९

४. ऋतुस्नातां तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति।

५. अलोमका: सतिलका नित्यं सेव्यास्तु योनय:।

अध्याय ४

अन्य पुरानी सभ्यताओं की स्थिति

वेश्या का स्थान

अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए यह विषय इतना व्यापक है कि सक्षेप में भी वर्णन करते-करते काफ़ी बाते सामने आ जाती है। उदाहरण के लिए वेश्यावृत्ति प्राय. सभी देशो मे वैध चीज़ थी और रखेल या व्यभिचार या कभी-कभी के दुराचार से उसका दर्जा सदैव ऊँचा रहा है। जब से सभ्यता का इतिहास है, तभी से वेश्या-वृत्ति भी है, पश्चिमीय पंडितो के अनुसार इन आठ कारणों से स्त्री वेश्या बनती है—

(१) जीविका के लिए, (२) कम मजदूरी और अत्यधिक परिश्रम के कार्य से बचने के लिए, (३) घर पर होनेवाले बुरे व्यवहार के कारण, (४) गरीबों की बस्ती मे खुले ढग से रहने और अशिष्ट रहन-सहन के कारण, (५) बड़े समुदायों तथा कल-कारखानो में रहने से जिसमे भले-बुरे का खुलकर साथ होता है, (६) धनी वर्ग की आरामतलबी, भोगविलास तथा आनन्द देखकर उसके लालच से, (७) भ्रष्ट साहित्य या भ्रष्ट मनोरंजनों से तथा. (८) पुरुषों के प्रलोभन एवं दलालों के कारण।

पर हमारे देश मे ही नही, प्राचीन रोम, यूनान ऐसे देशो में भी मानव की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इसे धार्मिक रूप भी दे दिया गया था। जिस प्रकार मंदिर मे कन्यादान दे देना, देवदासी बना देना भारतवर्ष मे पुण्य माना जाता था, उसी प्रकार अनेक प्राचीन देशों में भी यह कार्य करना पुण्य समझा जाता था। अत. ऊपर लिखे हुए आठ कारणों में से सब जगह एक भी लागू नहीं होता था।

भारतवर्ष की तथा अन्य प्राचीन देशों की सभ्यता में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि हमारे यहाँ उपासना के लिए स्त्री को देवी के रूप में केवल मां माना गया है। कामवासना के लिए आराध्य देव कामदेव है। रति तो उनकी पत्नी है। उनकी पूजा नही होती। पर मिस्र, फ्रोयेनीशिया, असीरिया, चाल्डिया, कनान, ईरान, रोम,

यूनान[1], सभी देशो में वे वासना की देवी बना दी गयी हैं—देवी आइसिस, देवी मोलोश, देवी बाल, देवी आस्तार्ती, देवी मिलिता (मालती) इत्यादि—और वासना का गदे से गन्दा अभिनय "इनकी सेवा मे अर्पित" था। इसी लिए जहाँ भारत ऐसे देशों में चरित्र की मर्यादा बहुत कुछ बनी रही, वहाँ पश्चिम के देशो में वह बहुत कुछ समाप्त सी हो गयी है। केवल यहूदियों को छोडकर—यद्यपि वहाँ भी किसी रूप मे यह प्रथा वैध थी—अन्य सभी प्राचीन देशों में वेश्या का समाज मे अच्छा स्थान था। मिस्र तथा कनान मे घोर वेश्याचार था। यहूदी भी वेश्याएँ रखने लगे। पर वे विदेशी होती थी। बैबीलोन मे वेश्या बनना अनिवार्य सा था—हर स्त्री को पराये पुरुष के साथ एक बार सोना पडता था। वहाँ की देवी मिलिता के सामने सबसे बड़ी भेंट थी अपना सतीत्व खो देना, चढ़ा देना। यहूदियो ने वेश्यावृत्ति को जायज नही माना, पर पर-पुरुष सेवन और उससे पैसा कमाने के लिए उनके यहाँ कोई सजा भी नही थी। किन्तु यदि पुरोहित की कन्या व्यभिचारिणी हो तो उसे जिन्दा जला देते थे। कुमारी के व्यभिचार को कुछ छूट थी पर विवाहिता के व्यभिचार पर उसे पत्थर मारकर मार डालते थे। यरूशलेम नगर तथा यहूदी मंदिरो मे स्त्रियों का जाना मना था। पर धीरे-धीरे फिलिस्तीन मे वेश्याएँ फैल गयी। हजरत मूसा को सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए तथा ऐन्द्रियिक बीमारियाँ रोकने के लिए जो नियम प्रचारित करने पड़े वे इस बात के परिचायक हैं कि वहाँ दुराचार कितना बढ गया था। चीन मे व्यभिचार इतना अधिक फैला था कि लाओत्से तथा कनफ्यूसियस ऐसे दार्शनिकों को बडी हिदायते देनी पड़ी थी। यूनान में तीन हजार वर्ष पूर्व वह कार्य हुआ जो बीसवी सदी मे हमने किया—यानी वेश्याओ के लिए अलग मुहल्ले बसाये गये। सरकारी वेश्यालय भी खुले तथा वेश्याओं की आमदनी सरकार को धनी बनाती रही। वेश्याओं की श्रेणियाँ बनायी गयी। उनकी पोशाक भिन्न रखी गयी। बड़े-

१. अति प्राचीन सभ्यताओं में देवी की उपासना बहुत प्रचलित थी। सभी देवियाँ वासना की मूर्ति नहीं थीं। कुछ प्रमुख देवियों तथा उसकी उपासक जातियों के नाम निम्नलिखित है—

१. फोयेनिशियन–अस्तार्ती। २. फेजियन–सिवेली। ३. थ्रेसियन–बन्दीस (बन्दी देवी)। ४. क्रेटन–रीं (हीं) ५. एफ़ेसियन–आर्टेमिस ६. कैपोडिसियन–मा (माता) ये सभी यूनानी राज्यों के लोग तथा देवियां है—
L. R. Farnell—Cults of the Greek States, Clarendon Press 1896

बड़े यूनानी शासकों, राजनीतिक नेताओं, विद्वानो के पास वेश्या होती थी जिसका बड़ा प्रभाव होता था। कोरिथम् नामक यूनानी नगर तथा प्रदेश मे कामदेवी अफ्रोडाइट की उपासना मे गन्दा-से-गन्दा व्यभिचार होता था। मदिर की तरफ से वेश्याएँ नियुक्त थीं। मंदिर की सेविकाएँ वेश्या होती थी। अथेस, यूनान की राजधानी, मे धीरे-धीरे यह नियम हो गया कि जो भी चाहे, सरकारी कर देकर अपने यहां वेश्यालय खोल सकता था। रोम मे परिस्थिति भिन्न थी। वहां पर शरीफ आदमी का वेश्या के साथ चलना, घूमना, इत्यादि वर्जित था। प्रसिद्ध वक्ता सिसरो ने अपने राजनीतिक विरोधियो को "वेश्यागामी" कहकर उनकी भर्त्सना की थी। रोम का राज्य संसार का पहला राज्य है जिसने वह कार्य किया जिसे बीसवी सदी मे हमने—सभ्य जगत् ने—किया। वहाँ पुलिस द्वारा वेश्या की रजिस्ट्री होती थी।[१] नागरिकों को वेश्या की पुत्री या पुत्र से विवाह करने की मनाही थी, वेश्याओं पर प्रतिबध लगाने के लिए वहाँ बहुत से कानून बनाये गये, पर रोम प्रजातन्त्र के पिछले दिनों में भ्रष्टाचार तथा वेश्यागमन बहुत बढ गया था।[२]

रोम में वेश्याओं पर जो कर लगता था, उसे सम्राट् थियोडोसियस ने ,चौथी शताब्दी में बहुत कुछ माफ कर दिया था। सम्राट् कालीगुला ने उसे समाप्त कर दिया। वास्तव मे इस कर को एकदम समाप्त करने का श्रेय सम्राट् अनस्तासियस प्रथम को है। सम्राट् जस्टीनियम ने छठी शताब्दी मे वेश्याओ को कुछ और अधिकार दिये।[३] ईसाई धर्मविरोधी लोग ईसाई कुमारी कन्याओ का अपहरण कर उनके साथ व्यभिचार कराना धर्म समझते थे। ईसाइयों ने अनेक कारणों से भ्रष्ट तथा पतिता स्त्री के साथ नर्मी के बर्ताव की सलाह शुरू से दी है। यदि गिरजा में जाकर मन से पछतावा किया जाय, तो सब पाप धुल जाते हैं—यह नसीहत थी। वेश्या के उद्धार के लिए बहुत कार्य हुए। पोप इनोसेंट तृतीय (११९८–१२१६) ने आदेश दिया कि वेश्या के साथ विवाह कर लेना बड़ी प्रशसनीय बात है।[४] पोप ग्रेगरी ९वें ने जर्मनी मे भठियारखाना बन्द कराने का आदेश दिया था। पादरियों को आदेश दिया गया कि

१. W. F. Amos—State Regulatiou of Vice

२. Gibbon—Decline and fall of Roman Empire

३. Flexner—Prostitution in Europe

४. W. W. Sanger—"The History of Prostitution"—The Medical Publishing Co., 1910.

"कुमारों से, अविवाहितों से कहो कि पतिता कन्याओ से विवाह कर लें या ऐसी लड़कियो को ईसाई महिला-आश्रमों मे भेज दे।" पर वेश्यावृत्ति रुकी नही, बढ़ती गयी। गर्भपात, ऐन्द्रियिक बीमारी आदि के कारण १३वी सदी मे ही इनकी चिकित्सा के लिए अस्पताल खुल गये थे। गर्मी (आतशक) की भयंकर बीमारी चारो ओर फैल गयी। एक स्त्री का अनेक पुरुषों के साथ संबंध होने पर यही होगा। यूरोप मे एक-न-एक महायुद्ध लगा ही रहता था। सेना अपनी वासना की तृप्ति के लिए कही भी लड़कियों पर टूट पड़ती थी। इससे सेना में बीमारी भी खूब फैलती थी। सेना के द्वारा ही सन् १४९६ में गर्मी की बीमारी इग्लैंड पहुँची। उसे (बीमारी को) वहाँ पर फ्रेंच या स्पेनी शीतला कहते थे।

वेश्या कभी समाप्त न हुई। जब उसे समाप्त करना असंभव हो गया तो उस पर कानूनी प्रतिबध लगाये जाने लगे। पुराने रोमन कानूनो से इसमे बडी सहायता मिली। वेश्याओं की रजिस्ट्री (पुलिस के रजिस्टर मे उनका नामाकन आदि) रोम के बाद सबसे पहले सन् १७७८ मे फ्रान्स में शुरू हुआ। इंग्लैण्ड में आज तक यह रजिस्ट्री का कानून नही है। वहाँ सन् १८८५, १९१२ तथा १९२२ के कानून के अनुसार लडकी भगाना, उसे व्यभिचार के काम मे लगाना या किसी को भी व्यभिचार के लिए फुसलाना गुनाह है। १३ से १६ वर्ष की कन्या के साथ भोग करना अपराध है; पर यह सब एकतरफा है—वेश्या अपने काम मे लगी हुई है। बर्लिन (जर्मनी की राजधानी) के अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने सन् १७९२ मे "वेश्या के प्रति उदार भाव" बरतने की सलाह दी, क्योकि "यह बुरी चीज होते हुए भी आवश्यक है।" "मानव की कामवासना की स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति करने के लिए इसका होना ज़रूरी है। अन्यथा समाज मे और गडबड़ पैदा हो सकती है।"

बर्लिन सम्मेलन ने लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व जो कहा था, आज भी वह सत्य है। आज के मानव मे कोई भी परिवर्तन नही हुआ है। उसकी वासना तथा समस्या मे कोई भी अन्तर नही है। वासना तथा उससे उत्पन्न समस्याएँ इतनी स्वाभाविक तथा निरन्तर की हैं कि मनुष्य लाख प्रयत्न करने पर भी उनके दायरे से बाहर नही निकल सकता। इसी लिए अपराधशास्त्र कहता है कि पहले मानव की समस्या को समझ लो, फिर उसे अपराधी कहो या दंड दो।

वासना के अनेक रूप

हजारों वर्ष पहले की बात है कि मिस्र की एक रानी ने अपने पति नरेश ओसिरिस की हत्या हो जाने पर उसके शरीर का पता लगवाया। उसके ४० टुकड़े करके एक

वर्त्तन मे रखकर नदी मे वहा दिये गये थे। जव लाश मिली तो रानी ने प्रत्येक अंग को अलग-अलग दफना कर उस पर स्मारक बनवा दिया पर नरेश का लिग नही मिला। रानी ने अंजीर के पेड की लकड़ी का विशाल लिग बनवाकर खडा कर दिया और आदेश दिया कि हर एक नर-नारी उस लिग का पूजन करे—और लिग के उस पूजन ने मिस्रवालो मे जो कामुकता भर दी उसका क्या वर्णन किया जाय?

मिस्र मे आइसिस के मदिर मे पुजारी को ब्रह्मचर्य की शपथ लेनी पडती थी। रोम मे अग्निपूजा मे अग्नि को सदैव प्रज्वलित रखने के लिए कुमारी कन्याएँ नियुक्त की जाती थी। यदि इनमे से कोई भी पथ-भ्रष्ट हो जाती तो अग्नि को अशुद्ध करने के दोष मे उसको प्राणदंड मिलता था।[1] किन्तु, मिस्र और रोम बड़े विलासी देश थे।

विलासी कौन नही था, यह कहना बडा कठिन है। जिन यहूदियो ने वेश्यावृत्ति को निन्दनीय समझा था उनके देश मे विलासिता बहुत अधिक बढ गयी थी और वे हर प्रकार का कामुक उत्पात करते थे।[2] उन दिनो के यहूदी कानूनो मे अधिकाश कामवासना तथा उससे उत्पन्न होने वाली बीमारियों के सम्बंध मे है। उनकी देवी "बाल पीयूर" का अर्थ ही था "अक्षत योनि की स्वामिनी"।[3] यहोवा ने इसकी उपासना की मनाही कर दी थी और इस आज्ञा को न मानने पर २४,००० नर-नारियो का कत्ल किया गया था। हिब्रू लोगो की देवी "आशिरा" तथा फोयेनीशिया की देवी आशलोरी केवल स्त्री की योनि के रूप में पूजी जाती थी। पुरुष के लिग का इतना महत्त्व था कि यहूदी ईसाई धर्म मे प्रसिद्ध व्यक्ति अब्राहम ने अपने नौकर से शपथ दिलाते हुए कहा—"मै तुझसे अनुरोध करूँगा कि मेरे जघे के नीचे हाथ रखकर (शपथ ले)।"[4] खतना कराने की प्रथा यहूदियों ने शुरू की। वे इसलिए ऐसा करते थे कि विवाह का सुख मिले।[5]

मिस्र मे राजकुल में भी विलासिता भर गयी थी। जिस प्रकार लम्बे बालो को छंटवाकर छोटे रखने की प्रथा महमूद गजनवी के समय से शुरू हुई, उसी प्रकार

१. Marr पृष्ठ ९५

२. H. Cutner—A Short History of Sex–Worship–1940 का संस्करण. पृष्ठ २०

३. Inman—"Ancient Faith embodied in Ancient names".

४. Old Testment. "Put, I pray thce, thy hands under my thigh"

५ Cutner—Page 23-Ecliot Smith का मत

बालो मे मोती पिरोने की प्रथा प्राचीन मिस्र ने प्रारम्भ की। शराब में मोती घोल-कर पीने की रीति मिस्र की सुन्दरी रानी क्लिओपाट्रा ने शुरू की। उसकी बहिन जरीना का शृगार उसकी भारतीय बाँदी करती थी। शुतुरमुर्ग के पर से, सिगराफ की स्याही से आँखों के भीतर सफेद हिस्सो पर नित्य बेलबूटे बनाती थी। नेत्रों के भीतर इतना बारीक शृगार एक भारतीय महिला करती थी।[1]

रोमन लोगो के कामदेवता का नाम प्रियापस था और कामदेवी का नाम बेनस। फोयेनीशिया मे कामदेवी को अस्तार्ती कहते थे। यह देवी उभयलिगी यानी पुरुष तथा स्त्री दोनों ही थी। इसके उपासक पुरुष स्त्री वेष धारण कर लेते थे।[2] रोमन लोग कामदेवी की पूजा का उत्सव मार्च के महीने मे मनाते थे। मिस्र की तरह यहाँ भी रथ पर एक विशाल लिग रखकर नगर की परिक्रमा कराते थे। पुरुष-स्त्री समान रूप से उसकी पूजा करते थे। स्त्रियाँ अपने हाथो मे लकड़ी या धातु का बना लिग लेकर चलती थी। पर अक्टूबर के महीने मे जब बक्कानालियन त्यौहार मनाया जाता था, उस समय स्त्री-पुरुष गन्दे-से-गंदा तथा भद्दे-से-भद्दा काम खुले आम करते थे। इस उत्सव के समय की गन्दगी की इतनी बदनामी बढ़ी कि सरकार को इसे कानूनन बन्द करना पडा।[3] रोम मे मदिरों की दीवारों पर और सार्वजनिक स्नानागार आदि में "भोग प्रसंग" के चित्र बने रहते थे। सार्वजनिक स्नानागारो मे हर प्रकार के प्रसग खुले आम होते थे। नंगे स्त्री-पुरुष एक साथ स्नान करते थे। नंगे युवक सडको पर भागते हुए दिखाई पड़ते थे। वे लड़कियों को खुले आम डंडों से पीट दिया करते थे। नाटकों, अभिनयो में पात्र नंगे होकर अभिनय किया करते थे। पुरुष-संसर्ग का भी बडा रिवाज चल गया था। बड़े लोग स्त्री रखेली ही नही, पुरुष रखेल भी रखते थे। फिलस्तीन से मिस्र तक की यात्रा करनेवाले नरेश हैड्रियन का एक सुन्दर यूनानी लड़के से बडा प्रेम था। यह लड़का नील नदी मे गिरकर मर गया। इसका नाम था ऐतो-

१. Eafradeote के Narration उपन्यास में वर्णित कन्या जरीना या क्लिओ-पाट्रा ३००० वर्ष पूर्व की स्त्रियां है।

२. Cutner ने सन् १९१० में कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाइयों में सखी भाव (प्रभु ईसा की दुल्हनें) के लोग पेरिस में देखे थे, पृष्ठ ६१।

३. बक्कस देवता के पुजारियों का एक गुप्त सम्प्रदाय दक्षिण इटली में था। लगभग आधी जनता इस पर श्रद्धा रखती थी। इस सम्प्रदाय में युवक तथा युवतियों की ही ज्यादातर दीक्षा होती थी। एक रखेल ने इसका रहस्योद्घाटन किया था।

नियो। इसके मरने का नरेश को इतना शोक हुआ कि उसके मृत्युस्थान पर उसी के नाम का नगर बसा दिया। उसकी प्रतिमाएँ साम्राज्य के हर नगर मे बिठा दी गयी। यह झूठ भी गढ दिया कि मरकर अन्तोनियो आकाश मे एक नवीन तारा बन गया है।[1] यों तो रोम की सबसे प्रिय देवी कामदेवी वेनसके यूनान और रोम में मिलाकर ही १८५ मन्दिर थे।[2] रोम का सबसे प्रसिद्ध मंदिर देवी "आइसिस" का था। यह भ्रष्टाचार या व्यभिचार का केन्द्र था। "यह मदिर वेश्याओं से भरा हुआ था।"[3] रोमन सम्राट् नीरो अपनी बर्बरता तथा क्रूरता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पर इसमें उसका क्या दोष है?

नीरो की कथा

रोम के सम्राटो मे नीरो का नाम लेने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पर अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए वह एक आदर्श अध्ययन है।[4] नीरो के बाबा बडे निर्दय तथा हृदयहीन व्यक्ति थे। राह चलते जानवरो के प्राण लेना उनका खिलवाड़ था। उनके समय के तलवार के खेल इतने निर्दय थे कि सम्राट् आगस्टस ने उन्हे (खेलो को) बंद करवा दिया। नीरो के पिता भी बडे निर्दय व्यक्ति थे। अपने साथ पूरी तरह से शराब न पीने पर क्रुद्ध होकर उन्होने अपने साथी को मार डाला था। एक लडके को कुचल दिया था। वे बडे विलासी व्यक्ति थे। कई औरतें रखेल थी। इनकी पत्नी अग्रिप्पिना बडी महत्त्वाकांक्षी, विलासी, बदचलन स्त्री थी। जब इस स्त्री को बच्चा पैदा होने की सूचना नीरो के पिता को मिली तो उन्होंने कहा—"उसकी सन्तान पिशाच होगी तथा ससार के लिए अभिशाप।"

अग्रिप्पिना नीरो को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती थी। उसने नीरो की सौतेली बहिन ओक्टाविया से उसकी शादी करा दी। नीरो की वासना सन्तुष्ट न हुई। फ्रायड नामक महान् मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि जिस लडके की माता "मर्दानी" होती है, वह लड़का अप्राकृतिक संभोग का शौक़ीन तथा पुरुष-पुरुष विलासी होता है। नीरो

१. ईसवी सन् १४०–१५० की घटना, देखिए—Otto Kiefer—"Sexual Life in Ancient Rome"—1951–Page, 336-337

२. Cutner पृष्ठ ४९.

३. Otto Kiefer पृष्ठ १२९.

४. वही, पृष्ठ ३१८ से ३२१ तक

बचपन से ही ऐसा था। फिर वह अनेको स्त्रियो का भी शौकीन हो गया और कहते तो यहाँ तक है कि उसका अपनी ही माता से, जिसके पेट से पैदा हुआ था—उसी अग्रिप्पिना से प्रसंग हो गया था। ऐसा व्यक्ति संसार का सबसे क्रूर तथा कठोर नरेश न होगा तो और क्या होगा ?

वासना, स्वभाव तथा परिवार के सम्मिलित प्रभाव का यह बड़ा महत्त्वपूर्ण अध्ययन है।

यूनानी सभ्यता में

यूनान तथा रोम की सभ्यता में बड़ा भारी अन्तर यह था कि रोम विश्वविजयी साम्राज्य था अतएव वहाँ के लोगों में भौतिक, दुनियाबी चीजो के प्रति अधिक रुचि थी। पर चाहे कला हो या साहित्य, राजनीति हो या कामवासना, हर एक के साथ यूनानी सभ्यता ने एक विचित्र दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता का, धर्म तथा नैतिकता का मिश्रण किया है। किन्तु जिस कामुक कल्पना से उन्होने रचना का रूप समझा, उसी की लपेट में, काम तथा भोग में वे कामुकता की सीमा को भी पहुँच गये थे। यूनानी लोग आकाश को यूरानस[1] कहते थे—वह पुरुषलिगी था, उसमे पैदा करने की शक्ति थी। जब पृथ्वी मे भोग की इच्छा होती थी तो वह पृथ्वी का रमण वर्षा के जल द्वारा करता था। पृथ्वी के गर्भ मे भी गर्मी और नर्मी का प्रवेश कराकर अन्न आदि का उत्पादन करता था, आकाश पिता था, पृथ्वी माता थी। जब पृथ्वी माता ही भोग तथा वासना की शिकार हो सकती थी, तो उसकी सतान मनुष्य का क्या कहना है। यूनान मे "प्रेम तथा सौन्दर्य"[2] की देवी अफ्रोदोइत थी। इसकी, रोम मे वेनस की पूजा तथा मिस्र में आइसिस देवी की पूजा मे कुछ ऐसी विधियाँ बरती जाती थी जिनसे पता चलता था कि प्राचीन काल में तंत्रशास्त्र तथा वाममार्ग का काफी प्रचार था। पर इस देवी द्वारा, जो कि "सुन्दर नितम्बोवाली"[3] थी, एक शिक्षा यह मिलती थी कि स्त्री ही प्रेम का आधार है। पृथ्वी को भोग की इच्छा हुई तो सृष्टि में सब कुछ पैदा हुआ। इसी प्रकार पहले वासना का स्रोत स्त्री से प्रारम्भ होता है। देवी की

१. Otto Kiefer—पृष्ठ ३१८ से ३२१ तक

२. Hans Licht—Sexual life in Ancient Greece—1952 Edition—Page 181

३. वही, पृष्ठ २०१

पूजा मे तरह तरह के नियम थे। विभिन्न यूनानी नगरों का भिन्न-भिन्न चलन था। साइप्रस ऐसे सुन्दर टापू मे अफ्रोदाइत की मूर्ति का जलूस निकालकर सुन्दरी कन्याएँ स्नान कराती थी और फिर वे स्वय स्नान कर "खुले भोग-विलास" के लिए तैयार हो जाती थी। किसी नगर मे देवी की पूजा के लिए स्त्रियों तथा कुमारियों को पूजा के नौ दिन पहले से पुरुष-प्रसग करने की मनाही थी। नौ दिनो तक विना सभोग के रहना वडा कठिन था।[1] इसलिए ये औरतें पत्तों पर सोती थी तथा ठण्डी जड़ें अपने पास रखती थी ताकि कामवासना दबी रहे। फोनियस[2] का कहना है कि इन दिनो पुरुषो को अपने पास आने से वचाने के लिए औरतें खूब प्याज खा लेती थीं ताकि मुँह की बदबू से मर्द भाग जाय।[3] पर यह व्रत उनसे इसलिए कराया जाता था कि नौ दिन की छुटी-छुटाई वे समारोह तथा उत्सव के समय काफ़ी कामोत्तेजित रहें। इसलिए उनके द्वारा पुरुषों को अधिक आनन्द मिलेगा। दायोनीसियस देवी की पूजा में स्त्रियाँ तथा पुरुष एक विशाल लिंग लेकर चारो तरफ नाचते-घूमते थे और फिर दूसरे दिन एकदम नंगे लडके एक पैर पर सडक पर नाचते थे। फिर तो खुला विलास होता था।

देवताओ मे भी बडा भोग-विलास था। यूनान के प्रसिद्ध देवता प्रियापस एक दिन लजीली, शर्मीली लोटिस नामक कुमारी पर लट्टू हो गये। जब वह सुन्दरी दायोनिसियस देवी के त्यौहार मे दिन भर खेलने, कूदने से थककर, शराब के नशे में चूर, अपनी सहेलियों के साथ मैदान मे घास पर सो रही थी, देवता प्रियापस पैर दबाये चुपके से आये और लोटिस की जंघो पर का कपडा उठाने लगे। उसी समय सालेनस देव का गधा रेंकने लगा। उसकी रेंकने की आवाज से लोटिस जाग उठी। उसकी सहेलिनें जाग उठी। प्रियापस की मनोकामना पूरी न हो सकी। क्रोधवश उन्होंने उस बेगुनाह गधे को मार डाला। तब से यूनान मे देवता प्रियापस की संतुष्टि के लिए गधे का बलिदान होता है।[4] यूनानी देवताओं में यह देवता कामवासना की मूर्त्ति है।

पर, पुरुष—पुरुष का सम्बध करनेवाले भी देवता थे। यूनानी हियासिंथस नामक फूल की सुन्दरता विश्वविख्यात है। ससार के कोने-कोने में यह फूल मिलता है। इसकी भी एक कथा है।[5] बलशाली देवता अपोलो को सुन्दर बालक हियासिंथस से बड़ा प्रेम था। एक दिन वे इस सुन्दर लडके के साथ एक खेल खेल रहे थे। लोहे का

१. वही, पृष्ठ १११
२. Photius (ii, 228–Editor–Naber)
३. पृष्ठ १११ (हांस लिखित)
४. Sexual life in Greece—पृष्ठ २२१
५. वही, पृष्ठ ११४

गोल पहिया फेकने का खेल था।[1] वायु देवता जेफ्राइस भी इस लड़के से प्रेम करते थे और उसका अपोलो के प्रति प्रेम उन्हे बहुत बुरा लगा। उन्होंने वायु के बेग से लोहे का भारी पहिया हियासिथस के सिर पर गिरा दिया। वह मर गया। जहाँ पर उसके सिर से रक्त गिरा था, पृथ्वी माता ने उसी के समान सुन्दर फूल उत्पन्न किये। इसी फूल का नाम हियासिथस है। इस हत्या का त्यौहार तीन दिन तक स्पार्टा मे मनाया जाता था। स्पार्टा मे नंगे लड़को का नाच बहुत प्रचलित था। ईसा से ६७० वर्ष पूर्व इस प्रकार का नृत्य बहुत प्रचलित था।[2]

यूनानियो ने भोग-विलास को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। उनके यहाँ विवाह के बाद सुहागरात के बड़े रोचक तरीके थे।[3] नववधू को किस प्रकार संकोच का प्रदर्शन करना चाहिए, यह भी सिखाया गया है। विवाह के विचित्र तरीकों से यूनानी इतिहास भरा पड़ा है। आबादी बढ़ाने के लिए स्त्रियो को राजनीतिक अधिकार से हीन तथा दासता से मुक्त गैर-यूनानियों से भी विवाह करने का अधिकार था। पर ऐसे पति के पास जाने के समय, पहली रात को, बराबरी का दावा कायम रखने के लिए पत्नी नकली दाढी लगाकर पति के पास जाती थी।

यूनान मे स्त्री को पुरुष के ढग से तथा पुरुष को स्त्री के ढंग से प्रयोग मे लाने की शुरूआत भी धार्मिक रूप से शुरू हुई।[4] हर्माफ्रोदाइतोस बडा ही सुन्दर युवक था। जब उसकी उम्र १५ वर्ष की हुई, कारिया झरने में रहनेवाली जलदेवी सल्मासिस उस पर लट्टू हो गयी, उस बालक को बहकाकर पानी मे ले गयी। वही जबर्दस्ती उससे रमण करने लगी। उसका ऐसा प्रेम देखकर देवताओ ने दोनो के शरीर को जोड दिया। नर-नारी एक मे हो गये। उस तालाब को यह वरदान मिल गया कि जो भी उसमें स्नान करेगा, आधा पुरुष, आधा स्त्री हो जायगा। हर्माफ्रोदाइतोस के साथ पान तथा सैटिर्स नामक देवो के प्रसंग के चित्र या मूर्त्तियाँ संसार मे सबसे भद्दी कामुक मूर्त्तियां है और यूनान मे ऐसी मूर्त्तियाँ या चित्र चारो ओर बिखरे पडे हैं। नेपुल्स के अजायबघर में पान देव एक बकरी के साथ प्रसग कर रहे है—इसकी मूर्त्ति रखी है। देखने में वह मूर्त्ति, जिसमें बकरी स्त्री की तरह लेट रही है, बड़ी भद्दी मालूम होती है। नर-नारी रूप का इतना रिवाज बढ़ा कि यूनानी नगर कोस मे हरोक्लीज देवता को बलि चढाते समय पुरोहित तथा पुजारी स्त्री का वेष बनाते थे। स्पार्टा मे दूल्हन सुहागरात

१. वही, पृष्ठ ११४
२. वही, पृष्ठ ११५
३. वही, पृष्ठ ५३
४. वही, पृष्ठ १२५

के दिन मर्दाने कपड़े पहनकर बैठती और उसका पति ज़नाने कपडे पहन कर आता। यूनान मे वेश्यावृत्ति भी काफ़ी बढ़ गयी थी।

यूनानी वेश्या

धन के लिए सड़क-सड़क पर, राह चलते सौदा करनेवाली वेश्याएँ उस समय भी थीं, आज भी है। ठीक वही प्रथा है—अन्तर तीन हज़ार वर्ष का है। ऐसी वेश्याओं के साथ एक कुटनी या दलाल भी होता था। ऐसी दलाली ज्यादातर औरतें ही करती थीं। एक प्राचीन ग्रन्थ में एक वार्त्तालाप दिया हुआ है।[१] उससे उस समय की तथा आज की सभ्यता की समानता का अनुमान लग जायगा। एक सुन्दरी एक स्त्री के साथ सड़क पर जा रही थी। एक आदमी ने सुन्दरी की कुटनी को रोककर पूछा—

पुरुष—नमस्ते, प्रिये।

स्त्री—नमस्ते।

पुरुष—तुम्हारे आगे आगे कौन जा रही है ?

स्त्री—तुमसे मतलब ?

पुरुष—पूछने का कारण है।

स्त्री—मेरी मालकिन है।

पुरुष—मैं कुछ आशा करूँ ?

स्त्री—क्या चाहते हो ?

पुरुष—एक रात।

स्त्री—कितना दोगे ?

पुरुष—सुवर्ण।

स्त्री—तब दिल मत छोटा करो।

पुरुष—(मुद्रा दिखाकर)—इतना दूँगा।

स्त्री—इतने से न होगा।

प्रसिद्ध दार्शनिक केटो की कथा है कि वे एक भठियारखाने के पास खड़े थे कि एक नवयुवक ने, जो वहाँ गया था, उनसे आँखें बचाकर भागना चाहा। केटो ने उसे देख लिया और बोले—"घबड़ाओ नहीं, यह कोई बुरा काम नहीं है।" कुछ दिनों बाद केटो ने देखा कि वह युवक बराबर वहाँ जाता था। तब उन्होंने उससे

१. वही, पृष्ठ ३३७

कहा—"देखो कभी-कभी यहाँ आना बुरा नही है। पर यही घर बना लेना बुरा है।" भठियारखानो मे लडकियाँ अर्द्धनग्न अवस्था में सडक पर खडी रहती थी ताकि लोग उनके शरीर का ऊपर से मुआयना कर पसन्द कर लें। असलेपियादीज का कथन है कि उन्होंने एक ऐसी लडकी के साथ रमण किया था जिसका नाम हर्मियोन था। वह फूलों की कर्धनी पहने हुए थी। उस पर यह वाक्य भी लिखा हुआ था—

"मुझसे सदा प्रेम करना पर यदि दूसरो द्वारा भी मेरा सेवन हो तो डाह मत करना।"

यूनान मे दुराचार बहुत बढ गया था। आजकल की सब समस्याएँ वर्त्तमान थी। हस्तक्रिया बहुत प्रचलित थी।[१] लडकियो के लिए हस्तक्रिया के निमित्त लिग बनते थे और बाजार मे बिकते थे। कामुक अध-विश्वास बहुत बढ गये थे। जो लड़की पहली वार रजस्वला हुई हो, उसके रक्त को लेकर यदि खेत में गाड दिया जाय तो पाला नही पड़ेगा। रजस्वला के रक्त मे कपडा भिगाकर यदि किसी भी नारियल या सुपाडी के पेड के नीचे गाड़ दे तो पेड़ सूख जायगा। यदि उसी रक्त को दरवाज़े के सामने छिड़क दिया जाय तो कभी घर मे भूत-प्रेत की बाधा न होगी। रजस्वला लडकी यदि पेशाब करे तो उस पेशाब से घोड़ो की बीमारी अच्छी हो सकती थी। पुरुष के पेशाब का भी बड़ा महत्त्व था। साँप काटने पर या तो अपनी या नाबालिग लड़के की पेशाब पी लेने से जहर उतर जाता था। पेशाब से बहुत कुछ जादू-टौना हो सकता था पर "उसकी ताकत बढाने के लिए स्त्री-पुरुष को चाहिए कि लघुशंका करते समय उस पर थूक दिया करे।"

यह थी परम सभ्य तथा दार्शनिक यूनानियो की कामुकता तथा विलासिता! प्लेटो ऐसे दार्शनिक ने भी लिखा है[२] कि "युवक तथा युवतियों को अबाधित रूप से एक-दूसरे से मिलना चाहिए, ताकि वे एक-दूसरे को अधिक निकट से जान लें।" स्त्री-पुरुष की समानता यहाँ तक बढ गयी थी कि स्पार्टा मे सार्वजनिक दगलो मे स्त्री-पुरुष की कुश्ती होती थी।[३] अतएव आज की रहन-सहन तथा सभ्यता में और तीन हजार वर्ष पूर्व की यूनानी सभ्यता और उसकी कल्पना मे क्या अतर था? रोम तथा यूनान मे पुरुष तथा स्त्री की योनि के रूप की मिठाइयाँ बाजार मे बिकती थी। इटली के बाजारों में १८वी सदी तक मोम के बने लिग तथा योनि खुले आम बिका करते थे।[४]

१. वही पृष्ठ ३१४, १५ २. प्लेटो—Laws

३. अरिस्तू ने इसे पसन्द नहीं किया है।

४. Cutner—A short History of Sex Worship.

अध्याय ५

मध्ययुग तथा ईसाई धर्म के आगमन के बाद

यूरोप को नया प्रकाश मिला

बीसवी सदी की सभ्यता मे इतिहास, राजनीनि तथा नैतिक शास्त्र के अध्ययन का प्रारम्भ पश्चिमीय देशों से माना जाता है और निस्सन्देह अपनी पराधीनता तथा दारिद्र्य के कारण इन सब विषयों में पूर्वी देशों का नेतृत्व समाप्त हो गया था। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि हम अपने ही प्राचीन शास्त्र तथा ग्रन्थों को भूल गये और शिक्षा तथा आदर्श, अध्ययन एव निर्देश के लिए पश्चिम का मुँह देखने लगे। रोम, यूनान आदि की सभ्यता के पतन के बाद अर्द्ध असभ्य, जगली तथा अपढ़ यूरोप को ईसाई धर्म और ईसाई प्रचारकों से एक नयी सभ्यता, नयी सस्कृति तथा नया प्रकाश मिला।

ईसाई धर्म भी एशिया में ही पैदा हुआ। एशिया के हजारों वर्षों की सभ्यता के गुणों को लेकर तथा समय (काल) द्वारा अवगुणों का परिष्कार कर एक नवीन ज्योति उसने प्रदान की। जिस प्रकार मुसलिम धर्म के प्रवर्त्तक हजरत पैगम्बर साहब ने एक नया प्रकाश, एक नया नेतृत्व संसार को ईसा के लगभग ६०० वर्ष बाद दिया, वही कार्य उनसे काफी पहले हजरत ईसा ने किया था। किसी धर्म या मजहब या उसके नेता का तुलनात्मक अध्ययन करने से कोई लाभ नही होता। देश, काल तथा पात्र के अनुसार सभ्यताएँ पनपती और बनती हैं। जो चीज एक देश मे अच्छी समझी जाती है, वही दूसरे देशों में बुरी समझी जाती है। पूर्वी गाइना (अफ्रीका महाद्वीप) के तट पर तोब्रियांद जाति रहती थी। इस जाति में दो प्रेमियों ने हाथ मे हाथ मिलाकर बैठना शुरू किया तो उसे ईसाई धर्म का बुरा प्रभाव कहकर वहां के बुजुर्ग बुरा मानते थे[1], जबकि उस जाति मे विवाह के पहले कुमारी कन्या

१. Dr. Bronislaw Malinowski—The Sexual life of Savages —तृतीय संस्करण १९३१, चतुर्थ संस्करण १९५२—पृष्ठ ४०३

का अधिक से अधिक संसर्ग बहुत श्लाघनीय समझा जाता है। यह उदाहरण देने से हमारा तात्पर्य यह है कि नैतिक आचार की सीमा या मर्यादा निर्धारित करना असम्भव है।

अस्तु, ईसाई राज्यों के द्वारा आधुनिक सभ्यता का विकास हुआ अतएव वे ईसाई धर्म के प्रचार के बाद के समय को बड़ा महत्त्व देते है। किन्तु हमको यह देखना है कि क्या उनका यह दावा सही है। या इतिहास के मध्य युग मे—ईसवी सन् १६०० या १७०० तक—क्या ईसाई देशों मे भी धर्म के नाम पर दुराचार बहुत नही बढ गया था? हर एक देश का अलग-अलग उदाहरण देने से कोई लाभ नही है। काम चलाने के लिए कुछ थोड़ी सी बाते बतला देना पर्याप्त होगा। भारतवर्ष को दो सौ वर्ष तक पराधीन रखनेवाले अंग्रेज लोग सभ्यता का तथा नैतिकता का सबसे अधिक दावा करते है। कुछ हमारे मन पर भी यही प्रभाव है कि उनके यहाँ नैतिकता तथा सदाचार काफी उन्नति पर रहा होगा, यद्यपि आजकल "पश्चिमी सभ्यता की चमक में उनका चरित्र गिर गया है।" पर दोनों ही धारणाएँ गलत है। न तो वे बहुत ऊँचे थे और न बहुत गिरे ही है। यह सब हमारे दृष्टिकोण की बात हैं।

मध्य युग के भ्रष्टाचार

ईसाई धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय है—रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट। कैथोलिको को मोटे तौर पर सनातनी या मूर्त्तिपूजक तथा प्रोटेस्टेटों को सुधारवादी तथा कुछ-कुछ आर्यसमाजी जैसा समझिए। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय वालो का दावा है कि उनके प्रभाव से ही विवाह-बंधन सदा के लिए दृढ़ हो गया और विवाह-विच्छेद असंभव कर दिया गया।[1] स्वयं रोमन कैथोलिक देशो मे यह दावा गलत साबित हुआ। मध्य काल में फ्रान्स में यह नियम था कि यदि पति या पत्नी विवाह के बाद यह साबित कर दें कि उनका सम्बंध नही हुआ है तो विवाह टूट जाता था। इस बात का निर्णय करने के लिए कि उनका सम्बंध हुआ है या नही, रोमन कैथोलिक पादरी पुरुष तथा स्त्री को अपने तथा डाक्टरो के सामने एकदम नंगा करके खडा कराते और तब तरह-तरह से जाँच करते कि सम्बंध हुआ है या नही। सन् १६७७ मे फ्रेंच महासभा ने इस नियम को ही समाप्त कर दिया वरना इससे बडा भ्रष्टाचार फैल गया था।

१. भारत, रोम, यूनान किसी भी सभ्यता का जानकार इस दावे को झूठा कहेगा।

पर-पुरुष तथा पर-स्त्री प्रसग करनेवाले नर-नारी को एकदम नंगा करके गधे पर घुमाते थे। सजा के साथ साथ इससे समाज को कार्मुक आनन्द मिलता था। सम्राट् लूई तेरहवे के भाई ड्यूक आव और्लीन की रखेल को भी इसी प्रकार सडक पर नंगा करके घुमाया गया था[१]। ईसाइयो मे ही एक "आदम-वादी"[२] सम्प्रदाय था। आदम सर्वप्रथम पुरुष थे। इस सम्प्रदाय के लोग (स्त्री, पुरुष) नंगे रहा करते थे। एक सम्प्रदाय अनाबप्तिस्तो[३] का था। ये लोग अर्द्धनग्न रहते थे तथा जितनी स्त्रियाँ चाहें रख सकते थे। इन "सभ्य पर अर्द्धनग्न बहु-स्त्री वाले" ईसाई सम्प्रदाय वालो में तथा मैक्सिको के "असभ्य" कहे जानेवाले लोगों मे क्या अन्तर था? जब स्पेन ने पहली बार मैक्सिको पर हमला किया,[४] तत्कालीन मैक्सिको नरेश माटेजुमा की ३००० पत्नियाँ थी। मार्कोपोलो नामक प्रसिद्ध यात्री ने अपनी यात्रा के वर्णन मे तार्तारी देश का वर्णन किया है जहाँ पर मेहमान के आने पर लोग उसकी खातिर मे अपनी पत्नी भेट कर देते थे या स्वय घर छोड़कर चले जाते थे और मेहमान के जिम्मे अपना घर और अपनी बीबी कर जाते थे।

स्त्री से घृणा

इन प्राचीन रीति-रिवाजों पर नाक-भौं सिकोडने से काम न चलेगा। जिस समाज मे ये प्रचलित थे, उनका अपना महत्त्व था। यहूदियों मे "दुराचार" की बाते हम ऊपर लिख आये है, पर उनके समाज मे स्त्रियों का बड़ा नीचा स्थान था। सड़क पर किसी स्त्री से बातें करना, चाहे वह अपनी पत्नी ही क्यो न हो, असभ्यता समझी जाती थी। यहूदी पुरुष अपनी प्रार्थना मे भगवान् को धन्यवाद देते थे कि उसने उनको औरत नही बनाया।[५] इसका परिणाम यही न हुआ कि स्त्री केवल भोग की

१. Cutner—A Short History of Sex Worship, पृ० १२०

२. Cult of Adamites

३. Anabaptists

४. मेक्सिको के स्वतंत्र साम्राज्य का वास्तविक पतन १५१९ से १५२१ के बीच में हुआ, हरनान्दो कोर्टीज की सेना ने मेक्सिको के "आजतेक साम्राज्य" को नष्ट कर दिया और अंतिम आजतेक नरेश काहुतेयाक को कत्ल कर दिया गया.।

५ Marr—Sex in Religion (1936 edition) पृष्ठ ७२

वस्तु ही बन गयी। फारिसी[1] जाति में एक सम्प्रदाय था जो सड़क पर इसलिए आँखें बन्द करके चलता था कि कहीं कोई औरत न दिखाई पड जाय। मोची लोग जूता बनाते समय निगाहें नीचे किये रहते थे और यदि वेश्या भी सामने आ जाती थी तो इसलिए नेत्र नही उठाते थे कि कही किसी अन्य स्त्री पर आँख न पड़ जाय। "मृत सागर" (डेडसी) के निकट इसेनी[2] नामक सम्प्रदाय के लोग, स्त्री तथा पुरुष एकदम ब्रह्मचारी रहते थे। पुरुष अपने पास स्त्री को फटकने तक नही देता था। निस्सन्देह ईसा मसीह ने स्त्रियो के पद को काफ़ी ऊँचा उठाया। यूरोप में तथा एशिया के कतिपय भागो मे वे भोग तथा आनन्द की वस्तु से ऊँचे उठकर पुरुष के समान अधिकार वाली बनी। पर, ईसा के ही अनुयायी साधु पाल स्त्रियो के प्रति अच्छा भाव नही रखते थे। उनका कहना था कि "कभी भी विवाह न करना अच्छा है। पर अगर कामवासना सताती हो तो उस आग मे झुलसने से बेहतर है कि शादी कर लो।"

तीसरी सदी मे स्त्रियो के प्रति विरक्ति का एक बेग ईसाइयो मे आया।[3] साधु सायमन ३० वर्ष तक एक खम्भे के ऊपर रहते थे, वही बैठे तपस्या करते थे। रोम छोड़कर जेरोमी बेथेलहम में रहते थे। वे कहते थे—"वासना निहायत गन्दी चीज़ है।" ईसाई संन्यासिनी स्त्रियों को, जिनको लोग "प्यारी बहनें" कहते थे, जेरोमी ने रखेलियाँ तथा दुराचारिणी तक कह डाला। पादरियों को अनिवार्य रूप से सच्चरित्र रहने का आदेश तथा तत्संबंधी कानून दूसरी या तीसरी शताब्दी से शुरू हुआ।[4]

इसलिए किसी सभ्यता या नियम को अपने ही दृष्टिकोण से बुरा भला नही कहा जा सकता। शेपर्ड ने सही लिखा है कि "कुछ ऐसी सामाजिक बुराइयाँ है जिनके बारे में बातें करने में बहुत बुरा लगता है पर वे इतनी बुरी नही है कि उनको भुला दिया जाय।"[5]

यूनानियो मे सगी बहिन से व्याह करने का रिवाज़ चल पड़ा था। उन्ही की कथा है कि जिऊस ने हेरा से शादी की। हाइपरियन ने थेरिया से शादी की। दोनों उनकी बहिनें थी। यदि प्राचीन प्रसिद्ध सभ्य राज्य कार्थेज के देवता "मोलोश" का पुजारी

१. Pharisees

२. Essenes sect near Dead Sea

३. Marr—Sex in Religion पृष्ठ ८०

४. वही—मार की पुस्तक, पृष्ठ ९५

५. H. R. L. Sheppard—Some of my Religion

और पुरोहित केवल हिजड़ा ही हो सकता था तो इसमे कोई न कोई तथ्य था। जन्म से पैदा हिजड़ा होने की ज़रूरत नही थी। जो अपना लिग काटकर फेंक दे, वही पुजारी बन सकता था। पर, ब्रह्मचर्य की इतनी विकट भावना के भूखे मोलोश देवता की तृप्ति बाल-बलि से होती थी। छोटी उम्र के लड़के-लड़कियों का बलिदान चढाया जाता था।

मानव-स्वभाव बड़ा विचित्र है। उसकी मर्यादा बड़ी विचित्र है। लाखों वर्षों मे जमीन बदल गयी, हवा-पानी बदल गया, तब इंसान क्यों न बदले। ईसा से २५०० से १५०० वर्ष पूर्व अरब सागर के निकट के नगर सुतकजिन-दोर से अरब सागर के ३०० मील लम्बे वर्त्तमान पानी पर उस समय सूखी भूमि थी। उस से पैदल चलकर १००० मील दूर शिमला की पहाड़ियों की तराई मे बसे हुए ऊपर गाँव तक अगर चले आते तो चारों ओर आदमी, उसकी बस्तियाँ और चहल पहल दिखाई देती।[१] कल जहाँ पानी था, आज वहाँ बस्ती है, ज़मीन है और कल जहाँ बस्ती थी, आज वहाँ वीरान है। पर मानव-स्वभाव की अन्तरतम बातें ज्यों की त्यों हैं। उसकी इच्छाओं और वासनाओं का रूप या प्रकार या ढंग बदल गया है पर चीज़ वही है।

आज के २ से ४ लाख पहले के जो औज़ार मिले हैं उनमे एक कुल्हाड़ी[२] भी है, जिससे लकडी और सिर, दोनो ही आज कटते हैं। औजार बदल गया है। स्त्रियों के साथ जबरन प्रसंग यानी बलात्कार तब भी होता था, आज भी होता है। वर्त्तमान पाकिस्तान में मर्दान से १७ मील पूर्व (उत्तर-पूर्व) व नौशेरा से २४ मील उत्तर-पूर्व, हजारो वर्ष पूर्व, बहुत सी स्त्रियाँ खेतों पर काम कर रही थी। पुरुषों ने उनके साथ बलात्कार किया। स्त्रियों ने भगवान् से प्रार्थना की कि पुरुषों को श्राप दे। भगवान् ने भ्रष्ट तथा भ्रष्टा दोनो को पत्थर कर दिया और इस मैदान में १० फुट ऊंची ये मूर्त्तियां दो या चार फुट के फासले पर आज तक खड़ी हैं।[३] ३२ मूर्त्तियां हैं—इनकी यही कथा बतलायी जाती है। बलात्कार आज भी होता है पर पत्थर न बनकर उन्हें पत्थर की दीवालो के भीतर, जेल में रहना पड़ता है।

१. R. E. M. Wheeler—Five Thousand Years of Pakistan

२. Chopper **कुल्हाडी, देखिए व्हीलर की पुस्तक, पृष्ठ १५**

३. Colonel D. H. Gordon **के अनुसार व्हीलर की पुस्तक में उद्धृत, पृष्ठ ३५**

इंगलैण्ड की वासना

सभ्यता का डंका पीटनेवाला इंगलैंड मध्ययुग में दुराचार की सीमा भी लांघ गया था। आइवन ब्लाक कहते है कि "अंग्रेज पैदायशी पशु है. . .अक्षतयोनि कुमारी कन्याओ के पीछे दीवाना रहता है।"[१] अंग्रेज इतना विलासी था कि बड़ी जल्दी अपनी स्त्री से इसकी तबियत भर जाती थी और तब वह उसे भरे बाजार में जाकर नीलाम कर देता था। १९वी सदी तक वहा ऐसा होता रहा।[२] सन् १८२३ में लन्दन में एक पैसे मे एक औरत बिकी थी। एक लेखक के अनुसार संसार मे सबसे सुन्दर पशु अग्रेज है।[३] और दूसरे लेखक के अनुसार बर्ब्बरता तथा पशुता इस सुन्दर पशु के स्वभाव मे है। यह पशुता उसके भिन्न आचरणो से प्रकट हो जाती है।[४] दुराचारी अंग्रेज आगा-पीछा नही सोचते। लंदन के निकट एक ग्राम में जेम्स टाटर नामक एक मूर्ख रहता था। यह इतना कामुक था कि किसी भी लड़की को पकड़ लेता था और बलात्कार कर बैठता था। जब यह किसी प्रकार नही सुधरा तो सन् १७९० मे उसका शिश्न ही काट दिया गया।

ईसाई सम्प्रदाय में, रोमन कैथोलिकों में—"प्रभु ईसा की दुल्हने"[५] आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर गिरजाघर को आत्मसमर्पण कर देनेवाली महिला संन्यासियों की प्रथा है। इनको "नन" कहते है। ये स्त्रिया गिरजाघरो का तथा समाजसेवा का काम करती थीं और दिन रात पूजा-पाठ में बिताती थी। ऐसे ही पुरुष साधु[६] भी होते थे। इनके अलग आश्रम[७] होते है। गिल्वर्ट ने सन् ११४८ मे ऐसे १३ आश्रम इंग्लैड मे खोले जिनमें पुरुष तथा स्त्री साधु तथा साध्विया एक ही मकान मे रहती थी। दोनों

१. "Inborn brute—best for virgins"–Page 12–Ivan Bolck **अनुवादक** William H. Forstern—"Sexual life in England"–Pub. Francis Aldor–London–1938

२. वही, पृष्ठ १२

३. H. R. Finch—"Romantic love and personal beauty"–Pub. Breslan, 1890–Vol. II–Page 538

४. Ivan Block

५. Bride of Jesus

६. Monks

७. Cloisters

के बीच में केवल एक मोटी दीवार होती थी। ७०० साधु तथा ११०० साध्वियाँ[१] इन आश्रमो में रहती थी। थोड़े ही दिनो मे सभी औरतें गर्भवती हो गयी। उस समय की एक कविता है कि "अगर कोई स्त्री गर्भवती नही हुई तो उसकी उम्र का दोष होगा, उसकी इच्छा का नही।"[२] यानी भोग सबने ही किया था।

मध्ययुग के ईसाई पादरियों की नारकीय लीलाओं से इतिहास भरा पड़ा है। यह प्रथा थी कि लोग (स्त्री, पुरुष) अपना पाप पादरियों से आकर कहते थे और ईश्वर की तरफ से इस "पाप के स्वीकार" करने पर, वह उनको पाप से मुक्त करता था। पादरी ऐसे अवसर पर सुन्दरी कुमारियो का उपभोग भी करता था। उनसे कहता था कि तुम लेट जाओ। "अपने शरीर में स्वर्ग का फाटक खोलो। मैं स्वर्ग की कुंजी से फाटक में ताली लगाऊँगा।" स्पेन मे अधार्मिकता के लिए आग मे जला देने का दंड मिलता था। अधार्मिकता के अभियोग से बचने के लिए, आग में भस्म होने से बचने के लिए, कोई भी सुन्दरी पादरी की वासना का शिकार बन जाती थी।

इंग्लैड में अछूती कुमारियो के सेवन का बड़ा शौक चला। अछूती (अक्षतयोनि) कुमारी से भोग करना तथा जब वह दर्द से चिल्लायें तो उसके चीत्कार से सुख का अनुभव करना—इसका बड़ा शौक़ था। अक्षतयोनि का "चीत्कार" कामशास्त्र में विशेष स्थान रखता है।[३]

जानसन[४] का एक बुज़ुर्ग विलासी के सम्बंध में वर्णन है कि उसे छोटी उम्र की लड़कियो का बडा शौक था। उसका नौकर उससे कहता है—

"एक बड़ी बढ़िया लड़की है। क्या श्रीमान् देखेंगे?"

१. Nuns

२. If any she proves barren still,
Age is at fault, not her will.— Ivan Block Page-33

३. वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में सीत्कार को इस प्रकार लिखा है—
"अम्बार्था शब्दा वारणार्था मोक्षणार्था श्चालमार्थास्ते ते चार्थभोगात्"—(अरी मां इत्यादि शब्द, ऐसा न करो—ऐसे शब्द तथा मर गयी, मर गयो आदि भी दर्द के शब्द होते हैं.) ऐसे चीत्कार के प्रति अंग्रेजी शौक को "In the Battle of Venice" (1760)में लिखा है—"The taste and craze to de-flower a woman, the charm of victim's struggle and cries of pain".

४. Johnston's "Chrysal"

"क्या उम्र है ?"

"लगभग १६ वर्ष की है।"

"छिः, मुलायम नाशपाती है। मुझे ऐसी रद्दी चीज़ देखने से नफरत है।"

"अच्छा, तो श्रीमान् ज़रा प्रतीक्षा करें। मेरी निगाह एक ऐसी लड़की पर है जो ठीक आपके काम की है। इंग्लैंड भर में ऐसी प्यारी लड़की नही मिलेगी श्रीमान् !"

"लेकिन उसकी उम्र क्या है ?"

"यही दस वर्ष की होगी और जवान हो चली है।"

"ठीक, ठीक, मुझे यही उम्र चाहिए।"

ऐसी अछूती लडकी का मूल्य इंग्लैंड में ५ पौड (पचहत्तर रुपए) से लेकर ५० पौड यानी ७५० रुपए, एक बार के प्रसंग का होता था।[१] एक रचना मे, आज के दो सौ वर्ष पहले, बलात्कार से भोगी हुई, पीड़ा से कराहती हुई छोटी उम्र की लडकियों के समूह का जिक्र है।[२]

जब अछूती कुमारियो का इतना शौक था तो पेशेवर "अछूती" कुमारियाँ भी पैदा हो गयी थी। ऐसे डाक्टर थे जो हर प्रसंग के बाद ऐसी दवा लगा देते थे कि वे ताजी हो जाती थी। चिल्लाने वग़ैरह का काम वे जानती थी। जार्ज सिलवन ने शार्लोते हाये नामक एक भ्रष्टा कुमारी से बातचीत में पता लगाया कि ५०० बार भोगी जाने पर भी एक लड़की अछूती की अछूती बनी रहती है। उस कुमारी ने आगे चलकर कहा—"मै कम से कम एक हजार वार अपना उपभोग करा चुकी हूँ, फिर भी डा० ओ० पैट्रिक ने मुझे पहले की तरह ताज़ी बना रखा है।"[३] ऐसे पेशेवर नाई इत्यादि भी थे जो भ्रष्ट स्त्री की योनि में मछली का पेट, रक्त से भरा स्पंज आदि रखकर उसे अछूती बनाने का पेशा करते थे।[४]

इगलैंड मे भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया था। वहा की सभ्यता के उदय से लेकर १९वी सदी तक औरत को ख़रीदकर या ज़बर्दस्ती उसका उपभोग कर विवाह की परिपाटी थी।[५] स्त्री का समाज मे भोग के अलावा कोई स्थान नही था। अख़बारों

१. Ivan Block १९३८ का संस्करण
२. Satan's Harvest Home–1749
३. ब्लाश, पृष्ठ १९०
४. वही, पृष्ठ १८९
५. वही, पृष्ठ ५२

में औरतों को खरीदने के विज्ञापन निकला करते थे। ऐसा अंतिम विज्ञापन २० दिसम्बर १८८४ को प्रकाशित हुआ था। स्त्री का मूल्य कितना कम था, इसका अन्दाज़ा एक विज्ञापन से लगता है। एक किसान का घोड़ा खो गया और बीबी भी खो गयी। उसने घोड़ा ढूंढकर लाने वाले को ५ गिन्नी इनाम तथा औरत ढूंढकर लाने वाले को ४ शिलिंग यानी ३ रुपया इनाम घोषित किया था।[1] राजा एथेलवर्ट ने यह कानून बना दिया था कि जो व्यक्ति अपनी ख़रीदी हुई पत्नी से सन्तुष्ट न हो वह उसे पिता के यहाँ पहुँचा कर अपना रुपया वापस ले ले।[2] विधवा को पत्नी बनाने के लिए कुमारी के दाम का आधा देना पडता था। एक नियम द्वारा[3] पति के मरने के १२ महीने बाद तक पत्नी यानी विधवा को विवाह करने की अनुमति नही थी। लड़की के कराहने से, चिल्लाने से सुख उठाने की कामुक भावना से ही अनेक बर्व्बर दंड निकले। दूसरे को पीडा पहुचा कर सुखी होने की भावना का आधार मानव की कामुक वासना ही है। दूसरे को कोडा मारने मे भी आनन्द इसी कारण मिलता है।[4]

विलासिता के कारण वीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे लन्दन में वेश्याओं की संख्या पेरिस से अधिक थी। पेरिस में १८,००० वेश्याएँ थी, लन्दन में ५०,००० के लगभग।[5] वेश्याओं की संख्या बढाने मे पादरियों का भी हाथ था। यदि कोई पुरुष किसी स्त्री के साथ अपने पाप की कहानी "स्वीकार" करने पादरी के पास जाता तो वह उससे नाम पता पूछ लेता और फिर स्वय उसके पास पहुँचता। नाम बताने की यह प्रथा १७ वी सदी में समाप्त हुई।[6] ऐसी विलासिता के अनेक दुष्परिणाम हुए। विलासी समाट् हेनरी अष्टम को भी गर्मी की बीमारी थी। सोलहवी सदी में लगभग एक तिहाई अंग्रेज स्त्री, पुरुष गर्मी की बीमारी से मर गये। आचार का भाव ही समाप्त हो गया था। केल्ट वालों का देहाती गाना था कि "कौंडूरा रात में पर्सिवल से

१. क्लाश—पृष्ठ ५६.
२. वही, पृष्ठ ५३
३. Law of Canute
४. क्लाश—पृष्ठ ३२०
५. W. W. Sanger—The History of Prostitution, Medical Publishing Co., 1910.
६. G. Rattray Taylor—"Sex in History" Pub. Thomas & Hudson, London—Page-37

किसी कार्य में सहायता माँगने गयी। उन्होने उससे कहाँ कि जाड़े मे कहां बाहर खड़ी रहोगी। आओ लेट रहें—और वह उनके साथ लेट रही।[1] राज्य के वीर पुरुष, यानी सरदार (नाइट) इतने विलासी हो गये थे कि अपना गुप्तांग खोलकर चलते थे। सम्राट् एडवर्ड चतुर्थ ने फरमान निकाल कर आदेश दिया कि ऐसा कपड़ा पहना करें कि गुप्ताग ढँका रहे।

पुरुष-पुरुष का व्यभिचार भी वहां बहुत फैल गया। यह दुराचार संसार में हर जगह था और है भी। यहूदी लोग अप्राकृतिक सभोग के कट्टर विरोधी थे पर ग़ैर-यहूदी देवताओं की उपासना मे इसके धार्मिक प्रयोग को वे भी स्वीकार करते थे। ब्रिटिश इतिहास के अनुसार सन् १६९८ मे इंगलैंड मे अप्राकृतिक संभोग (सोडोमी) का बडा प्रचार था। ईसाई साध्विया भी दुराचार का अड्डा बन गयी थीं। सन् ११८६ का वर्णन करते हुए एक लेखक कहता है कि "ये आदमियों की तलाश में घूमा करती थी।"[2]

वेश्या या देवी

किन्तु ये सब दुराचार या तत्कालीन आचार उस समय की तथा पूर्व काल की धार्मिक भावना से ही पैदा हुए थे। अक्षत-योनि, अछूती कुमारी की परिभाषा भी भिन्न थी। कुमारियाँ बलवान् सन्तान प्राप्त करने के लिए देवताओं से गर्भ धारण को बुरा नही समझती थी। पुराने जमाने में कुमारियाँ नदी में खडी होकर नदी के देवता से प्रार्थना करती थी कि उनके साथ प्रसंग कर वे उनको गर्भवती बनायें। कर्ण के जन्म की कथा हमें मालूम है।[3] पर उसमें एक सौष्ठव है। हजरत ईसा भी देव-पुत्र थे, पर चंगेज खाँ ऐसे पराक्रमी नरेश भी अपने को देवपुत्र मानते थे।[4] अंग्रेजी में अक्षतयोनि कन्या को "वर्जिन" कहते है। रोम मे "अविवाहिता तथा पुरुष से" सम्पर्क न करने वाली को "वर्गो" कहते थे। यूनान मे "पुरुष से अपने को अछूता रखनेवाली"

१. टेलर—पृष्ठ ५.

२. Andrcw the Chaplain—1186–at the court of Queen Alienor —in the "Treatise on love"–"Nuns were prying for men". **ईसा की इन दूल्हनों के लिए लिखा है**—"Nor ever chase, except thou ravish wee".

३. **महाभारत, कुण्डलहरण पर्व–अ० २६१–श्लोक १०, ११**

४. M. E. Harding—"Women,s Mysteries,, Pub. Longman Green and Co., Edition 1935.

की महिमा थी पर प्लेटो तथा प्लुटार्क के अनुसार, जिसकी यह स्थिति न हो, वह लड़की भी देवताओं से भोगी जाने पर एकदम कुमारी बन जाती थी। देवता न भी मिले तो क्या, यूनानी रीति के अनुसार मंदिर मे जो भी पुरुष हो, उसे ही देवता का प्रतिनिधि माना जाता था। अतएव मदिरों में पुजारी तथा पुजारिने हर एक दर्शनार्थी की काम-वासना शान्त करने के लिए थे। कोई धार्मिक आशका तब भी न रह जाय, इसलिए देवी माता इष्टार ने अपने भक्तो से कहा —

"मै माता हूँ। मै दयाशील हूँ। मै वेश्या भी हूँ। मैं दयावान् वेश्या हूँ।"

सब कुछ धर्म की आड में हो गया। यूनानी लोग हर एक चीज को, चाहे मृगी की बीमारी ही क्यो न हो, दैव-दत्त मानते थे। उनका विश्वास था कि देवता उभरी हुई छाती तथा उठा हुआ नितम्ब पसंद करता था। इसलिए ऐसी स्त्री की बड़ी मर्यादा थी। एक बार सुन्दरी फ्राइन अदालत मे न्यायाधीशों के सामने किसी अपराध में पेश की गयी। उसने अदालत को अपनी उभरी हुई छाती दिखा दी। अदालत ने उसे छोड़ दिया। ऊंचे स्तन का बड़ा प्रभाव था।[१] स्त्रियों ने इन्हीं सब भावनाओं से यूनानी सभ्यता के पुजारी इंग्लैंड में जादू डाल रखा था। वासना के लिए उनका इतना मान था कि १८वी सदी मे महिलाए घोडागाड़ी पर चलते-चलते गाडी रोक लेती और कोचवान की बिना परवाह किये उसके सामने ही लघुशका के लिए बैठ जाती।[२]

इस प्रकार के विलासी इंगलैंड ने ही आजकल के "कोर्टशिप" द्वारा विवाह, खुला विवाह, प्रेम, कामुक हास-विलास का वह रूप प्रारम्भ कर दिया था जिससे सभ्यता कराह रही है। जब राष्ट्र के जीवन का आधार केवल विलास ही हो, तो यही परिणाम होता है। उस देश मे कामुकता बढ़ती ही गयी। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के कुछ ही पहले के दिनों के इंगलैंड का वर्णन करते हुए एक प्रसिद्ध उपन्यासकार ने लिखा है—"उन दिनों चाल-चलन पर इतना जोर नही था। यदि कोई युवक अपनी उभड़ती हुई वासना को बेलगाम छोड़ देता तो जब तक वह अपने मित्र की बहन से सम्पर्क न करे, कोई बुरा नहीं मानता था। ऐसी बहुत थोड़ी देहाती लड़किया मिलेंगी जो इसे इज्जत की बात न समझे कि किसी बड़े आदमी से उनका सम्बंध हो गया है।"[३]

१. टेलर, पृष्ठ २४०

२. Taylor—Sex in History—Page 214.

३. Dennis Wheatley—The Launching of Roger Brook—Pub-Arrow Books पृ० १७,१८

अध्याय ६

जंगली जातियों की कामवासना

पाठको के सामने हमने सभ्य जगत की वासना का संक्षिप्त चित्र उपस्थित कर दिया। केवल भारतीय शास्त्रकारो के निर्देश के अतिरिक्त उन्हे और किसी देश के चरित्र-वर्णन से यह स्पष्ट भाव नही मिलेगा कि किस वासना को अपराध कहे। प्रायः सभी प्रकार की निन्द्य वासनाएँ किसी न किसी रूप मे दुनिया मे चारो ओर फैली है और फैली थी अभी तक हम उनके ऊपर उठे नही है। सभ्य तथा असभ्य का बहुत डंका पीटनेवाले लोग पिछली तथा वर्तमान जंगली जातियो को कई दृष्टियों से वासना के विचार से सभ्यो से ऊँचा तथा महान् पायेगे। नीचे हम जंगली जातियों का कुछ वर्णन करेंगे—जहाँ तक उनकी कामवासना का सम्बंध है।

किन्तु बहुत कुछ जानने और समझने पर भी चीज अधूरी रह जायगी। इसका कारण यह है कि हर एक देश तथा समाज की ही नही, हर एक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न समस्याएँ है। प्रो० रेमंड तथा कान ने अपनी पुस्तक मे यह साबित कर दिया है कि जितने व्यक्ति है, उतनी ही विभिन्नताएँ भी हैं।[1] फिर, यदि केवल एक ही श्रेणी पर विचार करना हो, यदि केवल स्त्री या पुरुष पर विचार करना हो, तो भी कुछ काम सरल हो। जब दोनो पर मिला-जुला विचार करना है तो और भी कठिन है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मे, प्रकृति मे जमीन-आसमान का अन्तर है। दोनों "बे-मेल" है।[2] बे-मेल से मेल का सिद्धान्त कैसे निकले—ऐसा नियम क्या हो, जो सब पर लागू हो।

१. Prof. Raymond Dodge and Eugene Kahn "The Craving for superiority" —Chapt. II Pub. 1937—"The number of variations is equal to the number of invidivuals"

२. "For man and women, as such are incompatables"—G. K. Chesterton in "What is wrong with the world"–Page 54

विवाह क्यों ?

स्पार्टा में यह नियम था कि साल मे एक बार विवाह के योग्य सभी कन्याएं तथा लड़के एक पूर्ण अँधेरे कमरे मे बन्द कर दिये जाते थे। किसी की सूरत दिखाई नही देती थी। अँधेरे में लडकी या लडके में जिसका हाथ दूसरे पक्ष से छू गया, या शरीर छू गया, वही जीवन की संगिनी या साथी बन जाता था। इस प्रकार जोड़ा मिलाने का काम भाग्य तथा भगवान् पर छोड़ दिया जाता है। किन्तु केसरलिंग के कथनानुसार ऐसे विवाह बहुत सफल होते थे।[1] इसके विपरीत पूर्वी गाइना (अफ्रीका) के तट पर रहनेवाली तोब्रियाद जाति में यदि आर्थिक कारण न होता तो कोई विवाह क्यों करता ? विवाह मे जीवन का जो कुछ सुख है, वह असली विवाह के पहले काफी उठा लिया जाता था। उस जाति में ४-५ वर्ष की उम्र से ही लडके-लड़किया प्रेमलीला शुरू कर देते हैं। इतनी कच्ची अवस्था मे ही घर के बाहर (घर मे कदापि नही) झाड़ पर, पेड़ के नीचे, जहा भी कहीं जगह मिली लड़के-लडकी अब्रह्मचर्य का खेल खेलते है। उनके पिता-माता आपस में मनोरंजन करते है कि आज उनके लडके या लडकी ने अमुक के साथ झाडी में "कायना" किया। ६-८ वर्ष की उम्र से लडकियों को तथा १०-१२ वर्ष की उम्र से लडकों को भोग का वास्तविक सुख मिलने लगता है।[2] लडकी जवान तब समझी जायगी जब उसका "सीना उभर आये, तथा चन्द्रमा की गति के साथ मासिक धर्म होने लगे।"[3] बस, इसी समय से भाई बहिन अलग कर दिये जाते है। लडके विशेषतः, और लडकिया भी, जवान होते ही अपना घर छोड देते है, जिससे उनके रहने से उनके पिता-माता के भोग-विलास में बाधा न पड़े। लडके प्रायः अपने किसी विधुर रिश्तेदार या कुमार मित्र के घर चले जाते हैं। लडकिया भी यदि घर छोड़ती है तो विधवा या कुमारी मित्र के घर चली जाती हैं। कुमार या विधुर मर्दों का घर "बुकुमातुला"[4] कहलाता है। इसमें ऐसे कमरे बने रहते हैं जिनमें एक कमरे में कई युवक-युवती एक साथ रमण कर सकते हैं। इस प्रकार

१. Keyserling—"The Book of Marriage"

२. Dr. B. Malinowski—The Sexual life of Savages—Edition 1952–Page 48-49

३. वही, पृष्ठ ५३

४. विवाह के पूर्व लड़कियों को तीन श्रेणियों में रखते हैं, Bukumatula में केवल युवतियाँ ही नहीं जातीं, हर उम्र की औरतें वहाँ ले जायी जाती हैं।

युवक-युवतियों का अनेकों के साथ अबाध सम्बंध वर्षों तक चलता रहता है। गर्भवती हो जाना तथा विवाह के पहले कई बच्चे पैदा हो जाना कोई अचम्भे की बात नही थी, यद्यपि कुमारी के बच्चा होने पर यह ताना मिलता था कि "इसे गोद में कौन खिलायेगा।"[१] इसी जाति में कुछ ऐसे भी वर्ग है जिनमे विवाह के पहले कन्या का अपने पिता के साथ वर्षो तक सम्बंध रहता है। यदि कई लड़कियाँ हुई तो पिता को अलग अलग उन्हें सन्तुष्ट करना पड़ता है। प्रश्न यह हो सकता है कि जीवन का यह सब सुख भोगने पर भी विवाह क्यो होता है। विवाह होते ही स्त्री की कामुक स्वाधीनता समाप्त हो जाती है। ऐसी स्वाधीनता या तो कुमारी को, या विधवा को, या तलाक दी गयी स्त्री को होती है। फिर भी विवाह क्यों होते है—इसका मुख्य कारण है बिना विवाह हुए किसी को सामाजिक महत्ता नही मिलती। समाज की मर्यादा विवाह कराती है। दूसरे, विवाह के बाद पति को अपनी ससुराल से साल मे भोजन आदि भेंट मिलती है। इससे आर्थिक लाभ होता है। तीसरी तथा सबसे बडी बात यह है कि जवानी का भूत कम होते-होते हर एक स्त्री-पुरुष यही चाहता है कि उसका स्थिर जीवन हो, अपना मकान हो, अपनी गृहस्थी हो।[२] ये तीन बाते हमको एक बड़ा भारी उपदेश देती है। वासना सब कुछ है पर मनुष्य की सामाजिक स्थिरता तथा शान्ति एक व्यवस्थित जीवन मे ही है। **इसी लिए आज यदि वासना के अपराध बढ़ रहे हैं तो उनकी रोकथाम का एक मात्र उपाय है पारिवारिक जीवन की मर्यादा को पुनः स्थापित किया जाय।**

समाज का प्रभाव

तोब्रियाद जाति के कुछ वर्गों में खुले आम संभोग करने का भी रिवाज़ है।[३] वे आपस मे गुप्तागों का नाम लेकर गन्दी गालियाँ भी खूब बकते है। पर समाज का अकुश भी ऐसा है जो इनको हमारी दृष्टि मे बड़ा ऊँचा उठा देता है। मां के नाम पर गाली तो मजाक समझी जाती है। उस पर कोई आपत्ति नही होती पर "बहिन" को गाली देना बहुत बुरा समझा जाता है। ऐसी गाली पर भारी उपद्रव खडा हो

१. Raymond Firth–Human Types पृष्ठ ११३, ११४

२. डा० मैलिनोस्की, पृष्ठ ६९

३. दक्षिणी भाग में "कयात।"–सार्वजनिक मेले में, सबके सामने दर्जनों लोग संभोग करते हैं।

सकता है। "स्त्री" के नाम पर गाली बकने की लोग कल्पना भी नही करते।[१] दूसरे की पत्नी या बहिन के प्रति इस जाति मे अपार आदर बरता जाता है। कुमारी कन्या तो भोग के लिए शिक्षा प्राप्त करने की सामग्री है, उसमें कोई आपत्ति नहीं। जाति मे जादू टोना बहुत है। कुमारी को वश मे करने के लिए भद्दे से भद्दा प्रयोग होता है।[२] पर पिता-माता के सामने, सास के सामने, मामा के सामने, जाति के बुजुर्गों के सामने हर एक व्यक्ति की जबान, हर एक का कार्य, रहन-चलन—सब कुछ इतना संयमित, संतुलित तथा नियंत्रित मालूम होता है[३] कि आश्चर्य होता है। इस प्रकार का बुजुर्गों का आदर इस समाज मे हर प्रकार की सुव्यवस्था कायम रखे हुए है। इस जाति की काम-वासना को देखकर पर साथ ही इसका संयमित तथा व्यवस्थित जीवन देखकर यह धारणा होती है कि समाज मे गुरुजनो का आदर होने से उसकी मर्यादा कायम रहती है। आज पश्चिमी देशो मे नैतिक पतन तथा उच्छृंखलता का बहुत बड़ा कारण बुजुर्गों की अवज्ञा तथा अनादर है।

जंगली जातियों को हेय दृष्टि से देखनेवालों के लिए, पश्चिम के सबसे प्रकाण्ड कामशास्त्री हैवलाक एलिस[४] ने डा० मैलिनोस्की की पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका मे लिखा है—

"तोब्रियाद द्वीप-निवासी का एक छोटा-सा वर्ग है जो थोड़ी सी जगह में रहता है। उनके जीवन में जंगली जीवन का एक नमूना ज्ञात होता है, यद्यपि यह नमूना काफ़ी व्यापक ढग का हो सकता है। जब हम इनका अध्ययन करते हैं तो हमको ज्ञात होता है कि ये जगली लोग सभ्य लोगो के समान ही गुण तथा अवगुण से युक्त हैं। गुण-अवगुण में आकार-भेद हो सकता है। पर कई दृष्टियों से इन असभ्यों मे सभ्यों की तुलना मे सभ्यता अधिक अच्छे रूप में व्याप्त है। इन तुलनाओं में हमको अपने सामाजिक जीवन की तीक्ष्ण मीमासा करने का अवसर मिलता है।"

विचित्र मानव

प्रो० रेमंड फर्थ ने मानव की विभिन्नता तथा वैचित्र्य पर एक सुन्दर पुस्तक लिखी

१. वही, पृष्ठ ४०९
२. वही, ४०४
३. वही, पृष्ठ ४०२
४. Havelock Ellis—वही पुस्तक, पृष्ठ XII

है।[१] हम उसमे से कुछ रोचक बाते देना चाहते है। वे लिखते है कि "हर जगह भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग है, उनकी भिन्न-भिन्न प्रथाएं है। एक-दूसरे की अभ्यर्थना में अंग्रेज हाथ मिलाता है। फ्रेंच कभी चूमते और कभी आलिंगन करते है। विनम्र आस्ट्रेलियन महिला का हाथ लेकर होठों से लगाता है। पोलेनीसिया के लोग एक-दूसरे से नाक रगडते है।" इनमे से जिसके यहाॅ जो प्रथा है, उसे वह अच्छा समझता है और दूसरे की प्रथा का मजाक़ उड़ाता है। इसी प्रकार पोशाक की बात है। अफ्रीका में बहुत जगह सारा शरीर कपड़े से ढँक लेते है, केवल कुच खुला रखते है।

अमेरिका की सभी आदिम जातियो मे बहु-विवाह यानी बहु-पत्नी की प्रथा थी। जूकस जाति मे केवल अपनी सगी बहन से विवाह का तरीक़ा था। हाँ, रखेली रखने की इजाजत थी।[२] पेरुवियन लोगो मे विवाह की प्रणाली ही नही थी। जो जब चाहता किसी औरत के साथ सो जाता। ब्रैजिलियन लोगो में भी यही प्रथा थी।[३] साल्टा लेक, ऊटा मे बहुपत्नी की रीति थी। बहुत सी आदिम जातियों मे विवाह के पहले कामवासना की पूरी शान्ति कर लेना अच्छा समझा जाता है। "इससे अनुभव हो जाता है जो वैवाहिक जीवन मे काम देता है।"[४] कुछ आदिम जातियो मे लोग अपने वर्ग के मुखिया का शिश्न मुख में रखकर वीर्य चूसते थे। यह बड़ी श्रद्धा का कार्य समझा जाता था।[५] तोब्रियाद लोगों का विश्वास है कि स्त्री-संसर्ग केवल आनन्द के लिए है। स्त्री के गर्भ मे बच्चा तो इसलिए आ जाता है कि बुजुर्गों की आत्मा उसमें प्रवेश कर जाती है। पुरुष का काम केवल इतना ही है कि इस गर्भाशय के "दरवाज़े को खोल दे"।[६] सब कुछ विलासिता होते हुए भी तोब्रियांद लोगो मे कुमारी को बच्चा पैदा होना अच्छा नही समझा जाता था। वहाँ बहिन का बेटा जायदाद का मालिक होता है। अस्तु, बहुत से पुरुषो के बीच में एक औरत का रिवाज़ भारत में भी, तराई भाभर में, तथा नीलगिरि पहाड़ियों पर टोड़ा जाति मे मिलता है।

१. Raymond Firth, F. B. A. "Human Types" Pub.–Thomas Nelson & Sons Ltd. 36 Park Street, London I–1957

२. Cutner—A Short History of Sex Worship

३. वही, कटनर

४. रेमंड फर्थ (Raymond Firth) की पुस्तक, पृष्ठ ८

५. Dr. Otto Wall—"Sex and Sex Worship"

६. रेमंड फ़र्थ, पृष्ठ ११३

टांगानायिका (अफ्रीका) में नियाकियूस तथा हेडे नामक दो जातियाँ हैं। सन् १९३६ की गणना के अनुसार वहाँ पर एक क्षेत्र के ३००० लोगों मे ३४ फ़ीसदी कुँआरे थे। ३७ फीसदी को एक पत्नी थी तथा २९ फीसदी को एक से अधिक पत्नियाँ थी। यह तो नियाकियूसू जाति का हाल था। हेडे जाति में एक क्षेत्र में ४००० की बस्ती में २५ फीसदी कुंआरे, ४६ फ़ीसदी एक पत्नीवाले तथा २८ फीसदी बहु-पत्नी वाले थे। औसतन १०० विवाहित पुरुषों पर १५३ विवाहित स्त्रियाँ थी।[1] नियाकियूसू जाति वाले दूसरी या तीसरी बीबी को "सोरो राती" कहते थे। यह शब्द हिन्दी के "सुरैतिन" से मिलता-जुलता है। केनिया में नंदी जाति में "योद्धाओ" के लिए भोग, विलास की बडी छूट थी।[2] पश्चिमी अफ्रीका की कुछ जातियो में, विशेष कर न्यू हेब्राइडीज में पुरुष तथा स्त्रियों की अपनी अपनी गुप्त समितियाँ होती थी जो अपने वर्ग के हितों की रक्षा करती थी।[3] तिकोपिया की औरते बहुत छोटे-छोटे केश रखती थीं और मर्द लम्बे-लम्बे बाल रखते थे, औरतो की तरह।[4]

पर ये सब बातें अपने रीति-रिवाजों पर निर्भर करती हैं। थर्नवाल्ड ने ठीक कहा है कि पुरुष-स्त्री के परस्पर सम्पर्क तथा आदान-प्रदान के सिद्धान्त पर मानव-सम्बंध निर्धारित होता है। लंका के बहुत से जिलों में ग़रीब लोग अपनी गाय को इसलिए नही दुहते थे कि बैलगाडी के लिए मोटा बैल तैयार हो, तब, यह तो आवश्यकतानुसार निकाली प्रणाली हुई। मध्य आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी गर्मी के सूखा के दिनों में नदी के सूखे मैदान मे या कीचडों मे दबे पडे हुए मेंढको को निकालते थे और उनका पेट दबाकर उसके भीतर एकत्रित जल को निकालकर उसे पी जाते थे। मध्य अमेरिका में, दक्षिण-पूर्वी पापुआ तथा कोंगो में तथा पूर्वी अफ्रीका के कुछ भागों में स्त्रियाँ सबेरे उठकर नुनखार मिट्टी खोदकर ले आती हैं, और पुरुष बड़े प्रेम से उसका जलपान करते है। यह सब क्या है—आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकता से उत्पन्न रीतियाँ है। इनको बुरा भी नहीं कह सकते। यह विभिन्न समुदाय का अपना गुण है। "जाति" मनुष्यों के उस समुदाय को कहते हैं जिनमें आपस में एक पैतृक, शारीरिक

१. वही, पृष्ठ ११०
२. वही, पृष्ठ १०३
३. वही, पृष्ठ १००
४. वही, अध्याय ४, पृष्ठ १००

विशिष्टता समान रूप से पायी जाती हो।[१] पर राष्ट्र मनुष्यो के उस समुदाय को कहते हैं जिसमे सामाजिक विशिष्टताएँ समान रूप से पायी जाती हों। आज हमारे सामने जाति का नही, राष्ट्र का प्रश्न है। पर सोचना यह है कि मानव की सामाजिक विशिष्टता क्या है? वह क्या चाहता है और उसकी कौन सी इच्छा सही है?

दोषी कौन है?

मानव भी एक पशु है। पर, पशुओं के विपरीत, उसे यह निश्चय करने का अवसर है कि एक निश्चित परिस्थिति में वह भिन्न प्रकार के आचरणो मे से किस आचरण को अपनाये। यदि किसी शत्रु को रास्ते से हटा देना हो तो पशु के सामने उसे मार डालने के सिवा और कोई चारा नहीं। मनुष्य पचास तरीक़े निकालकर अपने शत्रु को समाप्त भी कर देगा और प्राण भी नही लेगा, वह जो भी उपाय अपनायेगा, उसका सामाजिक कारण होगा, तथा वह अपने उपाय और परिणाम का मूल्यांकन करके तब निर्णय करेगा कि क्या करे।[२] बस, इस निश्चय या कार्यविधि का चुनाव अथवा फ़ैसला ही मानव-जीवन की, समाज की, सभ्यता की सबसे बड़ी समस्या है। कार्यविधि के चुनाव मे शत्रु को रास्ते से हटाने के लिए उसके प्राण भी लिये जा सकते है या प्रेमभरी वाणी की चोट से भी उसे घायल किया जा सकता है। आज इन दो उपायो के बीच में चुनाव करने की कमजोरी के कारण ही मनुष्य अपराधी बनता जा रहा है। वह "ईमानदारी से कमाना" या "चोरी करके खाना" इन दो के निर्णय में भूल कर बैठता है। इसलिए अपराधशास्त्री मनुष्य को दोषी न ठहराकर समाज को दोषी ठहराता है, जिसने उसे उचित निर्णय करने मे सहायता नही दी या, हम व्यक्ति को नही उसके निर्णय को दोषी ठहरा सकते है। दण्ड उस निर्णय को मिले, को निर्णायिक को नही। क्या यह विचार सही है?

वासना का व्यापक प्रभाव

काम-भाव तथा वासना पर, चाहे संक्षेप में ही सही, हमने प्रकाश डालने का प्रयास किया है। कुछ लोगों को भ्रम भी हो गया होगा कि यह पुस्तक अपराध शास्त्र पर है कि कामशास्त्र पर। पर, ऐसे भ्रम का निवारण आगे चलकर होगा। कामशास्त्र

१. वही, पृष्ठ २०
२. रेमंड फर्थ, पृष्ठ १२९, अध्याय ५

तथा अपराधशास्त्र का इतना घना सम्बंध है कि ऐसा भ्रम होता ही है। किन्तु, जिस शास्त्र का विषय मानव हो, उसके लिए वासना को ठीक तरह से समझे बिना तथा उसका व्यापक रूप पहचाने बिना काम नही चल सकता। हम उस मनुष्य का अध्ययन करने बैठे हैं जिसकी संख्या आज ढाई अरब से अधिक है। संसार के ११५ देशों में बडी तेजी से आबादी बढती चली जा रही है। हर मिनट ५००० बच्चे पैदा हो रहे हैं। बहुत जगह प्रति सेकेन्ड डेढ़ बच्चे यानी एक मिनट मे ७५ का औसत है।

इतने बच्चों के पैदा होने मे कितने शुक्र (वीर्य) तथा रज (स्त्री का वीर्य) खर्च हो रहा है यह सोचने की बात है। स्त्री की योनि मे जो विन्दुरूपी अण्डाकार रज होता है उसमे पुरुष का वीर्य प्रवेश करने से ही गर्भ रहता है। रज को "ओवम" तथा शुक्र (वीर्य) को "स्पर्म" अग्रेजी मे कहते है। प्रकृति की विचित्रता की बात यह है कि संसार मे मा के स्तन का दूध पीनेवाले प्राणियों मे, चाहे पशु हो या मनुष्य हो, चाहे कुत्ता हो, या सूअर, बन्दर हो या भालू—सभी की स्त्री जाति के रज का अंड आकार मे शून्य ० के बराबर होता है। केवल एक बिन्दु के बराबर, और विज्ञान द्वारा यह सिद्ध है कि केवल एक ही बिन्दु मे पुरुषशुक्र के प्रवेश करने से सन्तान की भूमिका बन गयी—गर्भाधान हो गया। जो एक बिन्दु के बराबर है, उसमें ही माता-पिता का गुण, स्वभाव, रूप, रंग, संस्कार सब कुछ आ जाता है। इतनी छोटी सी चीज़ कितना बड़ा प्राणी पैदा करती है! तो फिर इस विन्दु का कितना बड़ा महत्त्व है।

हमने कहा है कि केवल एक बिन्दु-अण्ड ही गर्भाधान के लिए पर्याप्त है। इसी एक बिन्दु मे पिता के वीर्य का कुल, परिवार, स्वभाव, शिष्टता, अच्छाई, बुराई इन सब चीज़ों का योग ३०,००० कणों में होता है। कितना छोटा कण होगा वह? एक बार के प्रसंग में स्त्री को जो रज-अण्ड पैदा होते हैं वे कम से कम चाय के एक चम्मच बराबर मात्रा में होते हैं और उनमें २० लाख रज-अण्ड होते हैं। पुरुष के एक बार के प्रसंग में लगभग पचास करोड़ वीर्य-कण पैदा होते हैं।[१] इतनी उत्पत्ति में से काम करता है स्त्री का एक रज-अण्ड तथा पुरुष का एक छोटा बिन्दु जिसमें ऊपर लिखे गुण-कण होंगे। शेष रज-वीर्य गिरकर बह जाता है। यदि कई अण्डे एक ही समय खुल जायँ तो कई बच्चे एक साथ पैदा होंगे। कई बच्चे एक साथ पैदा होते भी हैं। पर यह मार्के की बात है कि यदि जुड़वाँ बच्चे पैदा हुए तो या तो दोनों लड़की होंगी या लड़के। कभी-कभी एक लड़का, एक लड़की भी होती है। पर कुछ को छोड़कर

१. Literary Digest, January, 1958

विज्ञान का कहना है कि "एक लडकी एक लडका" वाले जुडवॉ में यह भी सम्भावना होती है कि उस स्त्री के साथ एक के बाद दूसरे, दो पुरुषों ने प्रसग किया हो। पर यह कोई नियम नही है।

प्रकृति ने कुछ ऐसी रचना की है कि प्रसंग चाहे कितनी ही बार क्यों न हो, गर्भ कभी-कभी ही रह जाता है। उसे रोकने के सहज तरीके भी है। एक बात यह कि विषय-प्रसंग मे पुरुष को तभी आनन्द आता है जब उसका वीर्यपात हो। स्त्री को शुरू से ही आनन्द आता है।[1] इसी लिए प्रायः स्त्रियो का पात विलम्ब से होता है और पुरुष पहले ही खाली हो जाता है, अत गर्भाधान नही हो पाता। कुछ इन्ही कारणो से स्त्री को अधिक कामातुर, कामेच्छुक तथा एक बार रसास्वादन के बाद अधिक प्रबल वेगवाली कहा है। इसीलिए हमारे शास्त्रकारो ने स्त्री को बार-बार ब्रह्मचर्य तथा मन को वश मे रखने की शिक्षा दी है। इसी लिए मनु ने भी उसे पति के मरने पर शुद्ध मन से ब्रह्मचारिणी रहने का उपदेश दिया है।[2] और यही कारण भी है कि पुरुष वीर्यपात के लिए जितना उच्छृंखल हो सकता है, स्त्री उतना ही अपने मन को दबाकर काबू में रख सकती है। उसमें इच्छा को दबाने की बडी शक्ति होती है।

अस्तु, तो जिस बिन्दु पर जाति तथा राष्ट्र की रचना, उसकी सन्तान, उसका समाज निर्भर करता है , उसकी रक्षा बड़ा भारी काम है। यदि उस बिन्दु का दुरुपयोग न रोका गया तो समाज ही नष्ट हो जाता है। कामशास्त्र ऐसे मामलो मे बडा सहायक होता है। यदि संसार मे पुरुष तथा स्त्री की संख्या बराबर होती तो शायद दुराचार की समस्या कम होती या यदि स्त्रियाँ ज्यादा होती, जैसा कि प्रथम महायुद्ध के बाद से तथा दूसरे महायुद्ध के बाद और भी अधिक इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि में हो गया है, तो समाज की समस्या और ही कुछ होती। पर कुछ ही देशों को छोड़कर, विश्व का औसत यह है कि माता के स्तन का दूध पीनेवाले प्राणियों में पुरुषों की

१. इस वैज्ञानिक खोज को वात्स्यायन अपने कामसूत्र में बहुत पहले लिख गये हैं—

"सुरतान्ते सुखं पुंसां स्त्रीणां तु सततं सुखम्।"

(पुरुष को स्खलन पर तथा स्त्री को बराबर आनन्द मिलता है)—"वात्सायन, अधि० २, अ० १—श्लोक २२.

२. "मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥" (अ० ५ श्लो० १६०)

पैदावार अधिक है। मानव योनि मे हमारे भारतवर्ष मे ही देखिए कि सन् १९५१ में १५ से २४ वर्ष की उम्र के बीच मे ३.६ करोड़ पुरुष तथा ३ करोड स्त्रियां थी।[१] लड़कियों की शादी जल्दी होती है। अतएव १५–२४ वर्ष के १ ३६ करोड लडके तथा २.४० करोड़ लड़कियाँ विवाहिता थी—बहुतों में शादी २४ वर्ष से ऊपर उम्र वालो की हुई होगी। उत्तर भारत मे फी १००० पुरुष पीछे ८२० स्त्रियां तथा पूर्वी भारत मे केवल ७१९ स्त्रियां है। यह भी नगरो का औसत है। स्मरण रहे कि दुनिया भर का हिसाब है कि नगरो से ज्यादा बच्चे देहातो मे पैदा होते है। सन् १९२६ का औसत था कि नगर मे जब १०३८ बच्चे पैदा होते थे तो देहातो में १०४३।

अस्तु, स्तन से दूध पीनेवाले प्राणियों में पुरुष-लिंगी ज्यादा पैदा होते है।[२] तीस वर्ष पूर्व का हिसाब है कि प्रति १०० स्त्री पीछे—

मनुष्यों मे	१०३ से १०७ पुलिग (पुरुष) है,
घोड़ो मे	९८.३ (घोडियाँ अधिक है)
कुत्तों में	११८.५,
गाय बैल आदि में	१०७.३,
भेड़ो में	९७.७ (भेडें अधिक हैं)
सूअरो में	१११.८,
खरगोशो मे	१०४.६,
चूहो में	१०१ से ११८ पुलिग है।

गर्भ मे लड़का या लड़की कैसे आते है, इसका एक लम्बा विज्ञान है। पर अब यह तय हो चुका है कि यदि स्त्री के रज का लडकी का कण पुरुष के रज के लड़की के कण के साथ ही अंड मे आता है तो लड़की होती है। यदि स्त्री का लड़की का कण

१. देखिए Govrnment of India Census Report–1957
भारतवर्ष में आबादी बड़ी तेजी से बढ़ रही है, ५ बच्चे प्रति मिनट. सन् १९५२ में ३६ करोड आबादी थी पर सन् १९५६ में ३९ करोड़ हो गयी।

२. F. A. E. Crew "Animal Genetics" Edition 1925. **यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पुरुष मरते ज्यादा है, स्त्रियाँ कम, इसलिए विधुर पुरुषों से विधवाएँ अधिक है। हमारे देश में सन् १९५१ में १०.५२ लाख विधुर तथा २१.१९ लाख विधवाएँ थीं।**

पुरुष के वीर्य के लड़के के कण के साथ जाता है तो लडका होता है।[१] किस समय के संभोग से लडका होगा, वह तो भारतीय शास्त्रकारों ने लिखा है। हम यहाँ नये विज्ञान की बात लिख रहे है। प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री मे एक दूसरे के अश वर्तमान है। इस सम्बंध मे यूनानी पुराण की कथा हम दे चुके है।[२] उस कथा मे भी दम है। यह तो प्राय. सुनने में आता है कि पैदायशी लडके बडे होकर लड़की बन जाते हैं तथा लड़की लड़का बन जाती है। नित्य के स्वभाव मे भी देखा जाता है कि कोई पुरुष स्त्री की तरह से कोमल, डरपोक और दबकर चलनेवाला होता है। अपराधशास्त्र ने अप्राकृतिक संभोग करानेवाले पुरुष या पुरुष के ऊपर चढनेवाली स्त्री को क्रमशः स्त्री तथा पुरुष-स्वभाव का बतलाया है। इन सब बातों से यही निचोड़ निकलता है कि समाज की तथा राष्ट्र की रक्षा के लिए स्त्री-पुरुष सम्बंध को नियंत्रित करना, उसे क़ायदे के दायरे मे लाना जरूरी है।

वासना का मंदिर

पर ऐसे कायदे के हिमायती को यह नही भूलना चाहिए कि वासना भावना से ही उत्पन्न होती है। वासना स्वाभाविक है। अप्राकृतिक नही है। सगम की इच्छा स्वाभाविक है। यह इच्छा मन, मस्तिष्क तथा हृदय से सम्बध रखती है। जिसका दिल मजबूत होगा, उसका दिमाग़ भी मजबूत होगा। पर आजकल की सभ्यता में साधारण स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। यदि तन्दुरुस्त तथा कसरती आदमी हुआ तो उसका हृदय एक मिनट में ६० बार धड़कता है, सोने के समय ५० बार प्रति मिनट। इस प्रकार उसके हृदय को वर्ष भर मे १८ दिन की छुट्टी (अवकाश, विश्राम) मिल जाता है। जब कि साधारण व्यक्ति का हृदय ८० बार प्रति क्षण धड़कता है। उसे आराम नही मिलता।[३] अक्सर यह भी देखा गया है कि बहुत तन्दुरुस्त लोग, बड़े-बड़े योद्धा लोग नपुसक होते है। उनका मन मर गया रहता है। दुबले-पतले व्यक्ति कामुक अधिक होते है। मस्तिष्क को रक्त का भोजन हृदय से मिलता है। मस्तिष्क के केन्द्र मे ही वह

१. W. Bateson Mendel' s Principles of Heredity (3rd Edition 1913)

२. Hermaphrodites

३. English Digest Feb., 1959

स्थान है[१] जहाँ से भावना तथा निद्रा पैदा होती है। इसी लिए दिल का बीमार, प्रेम का बीमार रात को सो भी नही सकता।

इन्ही सब बातों को समझकर भारतवर्ष में सदाचार के प्राकृतिक नियम बनाये गये थे। जहाँ तक छूट दे सकते थे, दे दी—जहाँ कड़ाई करनी थी, कर दी। पर मूर्ख विदेशी लेखको ने हमारे शास्त्र को समझा ही नही है। डा० शेवर्स ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि "भारत ऐसे देशों मे, जहाँ असली नैतिकता लोग जानते ही नही–"।[२] ऐसे पढे-लिखे पर वास्तव मे अपढ मूर्खों का कोई भी इलाज नही है।

नैतिकता कहते किसे है। वेस्टरमार्क ने ठीक ही लिखा है कि जिस वस्तु के प्रति हमारी जैसी भावना बन जाय, वह वैसी हो जाती है। जिसे हम पसंद करे या नापसंद करे, वही उसके सम्बध मे नैतिक विचार होता है।[३] मनुष्य तथा अन्य प्राणियो मे अन्तर यही है कि वह अपनी कामुक वासना या वासना को रोक सकता है,[४] दबा सकता है, मन मार सकता है, पर जानवर तो ऐसा नही करेगा। इसी नियंत्रण के दबाव या रोकथाम के लिए उसने (मानव) ने विवाह-नियम बनाया। विवाह और कुछ नही तो केवल कामुक वासना के लिए एक सामाजिक नियत्रण मात्र है।[५] यह भावना केवल पुरुषो मे ही नहीं है, स्त्रियो में ही नही है, दोनों मे मिली-जुली वर्तमान है।[६] मानव के दोनो अगो को सन्तुष्ट रखते हुए भी जाति की वृद्धि तथा पवित्रता कायम रखने के लिए ही सुकरात ऐसे पंडित ने बड़े वैज्ञानिक विचार तथा ध्यान देने की सलाह दी थी। पर सब बातो को देखते हुए कटनर ने अपनी पुस्तक मे बड़ा कटु सत्य लिखा है कि विवाह का असली मतलब ही यह है कि पुरुष संतुष्ट रहे, एक से संतुष्ट रहे। पर "स्वभाव से ही पुरुष बहु-स्त्री-प्रेमी पशु है। यदि उसकी भागती हुई इच्छाओं

१. Central Thermostat–in a region called Hypothalamus

२. Dr. Chevers–Page 712

३. Edward Westermarck—"The Origin and Development of the Moral ideas"—Macmillan & Co., London. Edition 1921 Vol. I–Page 4

४. Taylor-Sex in History

५. Westermarck की पुस्तक

६. Harry Benjamin (न्यूयार्क)

की पूर्ति का साधन सीधे-सीधे न प्राप्त होगा तो वह गुप्त रूप से उन्हें पूरा करेगा।"[१]

ऐसे कठिन पुरुष को सम्हालकर कैसे चला जाय? पर स्त्री भी देखने मे जैसी लगती है, वह वैसी नही है। एक बडे मनोवैज्ञानिक का कथन है कि "प्रत्येक स्त्री पैदायशी नखरेबाज है। वह दूसरों की निगाहों में जॅचना चाहती है।" यह भी सही है कि सतीत्व आदि की भावना उसमे भरकर उसके स्वभाव को रोकने का प्रयत्न किया जाता है। पर, वह अपने मन का जोड़ा जरूर ढूँढने का प्रयास करती है। "मानव के विकास" तथा "बन्दर से मनुष्य" बनने के सिद्धान्त को प्रतिपादित करनेवाले विद्वान् डारविन का कथन है कि जाति की वृद्धि तथा विकास के लिए प्राणी अपने समनुकूल जोडा ढूँढ लेता है और ऐसे जोड़े "स्वभावत" मिलकर, उनके सयोग से नयी पैदावार होती है।[२] पर कुछ प्राणियों मे, जैसे एक प्रकार के हिरन या मोर-मोरनी मे केवल कामुक आकर्षण की भावना ही काम देती है—यह भी वे मानते है। नये विज्ञान ने इस सिद्धान्त में भी काफी उलट-पुलट किया है पर वह इस नतीजे पर ही पहुॅचा है कि प्रसग तो अन्ततोगत्वा किसी भी दशा में हो जाय पर जिस नर मे अधिक आकर्षण-शक्ति होती है, मादा उसकी ओर ज्यादा झुकती है और उसके साथ रति में उसे विशेष आनन्द मिलता है। इसका प्रयोग ड्रोसोफिला[३] नामक छोटी मक्खी पर किया गया। नर मक्खी अपने डैनो को विचित्र ढग से उभाडकर मादा की ओर बढती है। मादा इससे बडी आकृष्ट होती है। प्रयोग मे एक नर के डैने काटकर मादा के साथ रखा गया। उसी मादा ने इसकी तुलना मे डैनेवाले के साथ अधिक आनन्द किया।[४] यही दशा पुरुष-स्त्री की भी है। डैने कटे भी हों तो क्या, आकर्षण न होते हुए भी काम चलता ही है। प्रश्न केवल सतोष तथा आनन्द का है। इसी सन्तोष तथा आनन्द की तलाश मे "व्यभिचार" कहिए या "स्वाभाविक संसर्ग" कहिए, होता ही है। क्या ऐसा स्वाभाविक काम अपराध है? हॉ। यह सवाल हो सकता है कि आज के जमाने में आदमी ने अपने संतोष तथा आनन्द के भाव को ही इतना विकृत कर दिया है कि

१. Cutner—A Short History of Sex Worship पृष्ठ २१३

२. C. Darwin—The Descent of Man

३. Drosophila

४. J. T. Cunminghan—Sexual Dimorphism in the animal kingdom (Edition 1900)

उसे किसी प्रकार सन्तुष्टि नही मिल सकती। अतएव यदि थोड़ी रोक-थाम भी हो तथा स्वाभाविक वासना को दबाने का प्रयत्न भी न किया जाय तो समाज का कल्याण अधिक होगा तथा अपराधशास्त्र की समस्या हल हो जायगी।

वासना की महत्ता को स्वीकार करके ही मानव-समाज ने एक ओर सदाचार का मत्र दिया, दूसरी ओर वेश्या की भी रचना कर दी। उसे समाज में वास्तविक आदर नही दिया। बहुत कुछ अपमानजनक शब्द उसके लिए थे। उसे पैसे की स्त्री—पण्यङ्गना, भोग्या, भुजिष्या आदि नामों से सम्बोधित करते थे।[1] किन्तु, इच्छा की तृप्ति अगर उससे हो जाय तो फिर उतना बुरा भी नही था। काम का दूसरा नाम इच्छा भी है।[2] अपराध हमारे यहाँ उसी को मानते थे जो "अकार्य" हो, न करने योग्य हो।[3] दड का अर्थ दमन है। जो न करने योग्य कार्य है उसको करने पर दमन करना चाहिए, यही राजधर्म है। अव हम यह वतलाना चाहते हैं कि जिस समाज की काम-वासना का ऊपर के पन्नो मे दिया हुआ रूप हो, वहाँ दमन का, दंड का भी विधान था—और यदि था तो किसलिए?

१. वेश्या—गणिका, अभिसारका भी, देखिए श्लोक—

पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता।
तृतीये वृषली ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली स्मृता॥
वेश्या च पञ्चमे षष्ठे पुङ्गी च सप्तमेष्टमे।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या सास्पृश्यासर्वजातिषु॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण ४९०

(वह सब जातियों के लिए अस्पृश्य थी)।

२. हलायुध कोश – सम्पादक– जयशंकर जोशी, प्रकाशक सरस्वती भवन, वाराणसी १९५५–पृष्ठ २१९

३. वही पृष्ठ १२३–"अकार्यादि दोषः।"

अध्याय ७

वासना के अपराध पर दंड

भारतीय शास्त्रकारों की व्यवस्था

भारतीय शास्त्रकारों ने लौकिक तथा पारलौकिक, दोनों प्रकार के दंड बतलाये है। इस लोक में भी दड मिलता है और उस लोक में भी। मरने के बाद का दंड मनुष्य को काफी रोकथाम मे रखता है। पाप-पुण्य की इसी भावना से समाज में बड़ा नियंत्रण रहता था। आज के समाज से यह भावना लुप्त हो गयी है। इसी लिए आज अपराध, अपराधी दोनो ही बढ गये है। स्त्री को पतिव्रत की शिक्षा दी जाती थी और पति को "भार्याव्रत" की।[१] महाभारत में कपिल ने उपदेश दिया है कि अपनी पत्नी मे ही सतुष्ट रहे।[२] जो सदाचारी है, उसका प्राण अन्त समय में सिर की ओर से, उसे फोड़कर निकलेगा; जो पापी है, उसका नीचे से,[३] पाखाने के मार्ग से।[४] दुराचारी अल्पायु होगा, वह रौरव नरक में जायगा।[५] यदि दुराचारी ब्राह्मण जाति का नही है तो उसे प्राणदंड मिलना चाहिए।[६] दुराचारी (व्यभिचारी) ने यदि किसी कुमारी कन्या को भ्रष्ट किया है तो उसकी सम्पत्ति जब्त कर ले, उसका शिश्न तथा अण्डकोष काट ले तथा यदि वह कन्या प्रायश्चित्त करने का वचन दे तो उसके अभिभावक के जिम्मे कर दे।[७] व्यभिचारी को चोर की सजा मिलनी चाहिए।[८]

१. मनु ९–१०१
२. महाभारत अधि० १२, अ० २६९ श्लोक २७
३. अग्निपुराण ३७१––३
४. गरुड़ पुराण ९–३६
५. मार्कण्डेय पुराण ३४–६२
६. बोधायन २–२–४–१
७. आपस्तम्ब–अधि० २–२६–२०–२१
८. याज्ञवल्क्य २–३०१

परायी स्त्री के साथ व्यभिचार मे सम्पत्ति-हरण, देशनिकाला, शरीर दाग देना, शिश्न आदि काट लेना तथा प्राणदंड की भी सजा मिलनी चाहिए।[1] सात प्रकार के "आततायियों" मे व्यभिचारी भी है। महानिर्वाण तंत्र के अनुसार[2] यदि कोई व्यक्ति अपनी स्त्री को पराये की गोद मे देखे तो दोनो को मार डाले। इस हत्या से उस पर कोई आँच नही आयेगी। किसी की दासी या रखेली (परिग्रह) के साथ व्यभिचार भी मना है। जिसकी दासी के साथ भोग करे उसका दास बनकर रहना पड़ेगा।[3] याज्ञवल्क्य के अनसार[4] इस अपराध मे ५० पण दंड देना होगा। प्रसग (व्यभिचार) केवल वास्तविक कार्य को ही नही कहते। पर-स्त्री गमन के अपराधों मे नारद तथा बृहस्पति ने[5] नदी के संगम पर, बाग मे, नहानेवाले घाट पर या जगल मे, कही भी परायी स्त्री से बोलना, खेलना, तोहफा भेजना, चूमना, आँखे मारना, कपडा गहना या शरीर छू लेना या उसे अपने को छूने देना, उसकी खाट पर बैठ जाना, हाथ पकड़ लेना, केश पकड़ लेना—यह सब व्यभिचार माना है। शास्त्रकारों ने अब्रह्मचर्य के ८ प्रकार माने है—

१. स्मरण करना, २. कीर्त्तन करना (उसके बारे में बातचीत करना), ३. केलि (छेडछाड), ४. प्रेक्षण (घूरना), ५ गुह्य भाषण, ६. संकल्प (विषय का इरादा करना), ७ अध्यवसाय (प्रसंग का निश्चय करना) तथा ८. क्रिया-निष्पत्ति—वास्तविक प्रसंग करना।

इतनी विशद व्याख्या मे हमारे समाज मे लोग अपना दिल टटोलकर देखे कि कौन अपराधी नही है। स्त्रियाँ भी चार प्रकार की "स्वैरिणी" मानी गयी हैं और ये दंडनीय है—(१) अपने पति को छोडकर दूसरे के साथ रहनेवाली, (२) पति की मृत्यु पर अपने देवर या अन्य रिश्तेदार को छोड़कर किसी अजनबी से सम्बंध करनेवाली, (३) पैसे के लिए अपने को पराये को सौपनेवाली तथा (४) वैध विवाह के बाद ज़बर्दस्ती दूसरे की पत्नी बनाये जाने पर। ये दंडनीय हैं।[6] स्त्री के

१. नारद स्मृति–१६–२ तथा बृहस्पति २२–१

२. ११–५३

३. बृहस्पति–१५.७

४. याज्ञ० २–२९०

५. नारद, १२ श्लो० ६२–६९, वृह० २३–२

६. नारद १२–४९। स्त्री के लिए शास्त्रकारों ने कठोर दंड की व्यवस्था बिरले ही की है, व्यभिचार का दोषी पुरुष अधिक माना गया है।

लिए पुरुषो की तुलना मे दड कही कोमल है। प्रायश्चित्त, व्रतोपवास से भी उसका पाप धुल जाता है। गुरुपत्नी के साथ संभोग करनेवाले को स्त्री की लौह-प्रतिमा बनाकर उसे खूब गर्म कर, उसी से चिपटा देना चाहिए[1] या वह अपना शिश्न तथा अण्ड-कोष काटकर अपने हाथो मे लेकर दक्षिण-पूर्व की दिशा मे चलता रहे और तब तक चलता रहे जब तक मरकर गिर न पड़े। हाँ, यदि किसी ब्राह्मण[2] की रक्षा के लिए उसने प्राण दे दिये तो उसका पाप धुल जाता है। ऐसे अपराधो के लिए गो-सेवा, अश्वमेध या अग्निष्टोम आदि प्रायश्चित्त भी है। पर अपने से उच्च वर्णवाली स्त्री के साथ भोग पर, अपनी सरक्षकता मे रहनेवाली कन्या से, कुमारी (अक्षतयोनि) से, मित्र-पत्नी से, बहन की सखी से, सगोत्रा से, परिव्राजिका से—प्रसंग करने पर कठोर दड दिये जाते थे।[3] उच्च वर्ण की स्त्री यदि नीच वर्ण के साथ प्रसंग करे तो उसे कुत्तो से नुचवा देना चाहिए (अर्दयेत्)। विप्रदुष्टा स्त्रियो के लिए—जो किसी की रोकथाम की नही है, बड़ा कठोर दड था। दस्युकन्या से प्रसंग करनेवाला ब्राह्मण नरक जाता था।[4] शूद्रा से प्रसंग करने वाला देश निकाला पाता था।[5] अन्त्यज कन्या से सभोग करनेवाले को प्राणदंड मिलना चाहिए।[6] जाति तथा कुल की मर्यादा क़ायम रखने के लिए ऊँच-नीच के प्रसंग का बडा निषेध था। शूद्र यदि वैश्य या क्षत्रिय कन्या से प्रसंग करे तो उसका शिश्न काट लेते थे या जिन्दा जला देते थे। ब्राह्मण कन्या को भ्रष्ट करनेवाले क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को नारद, मनु, गौतम, याज्ञवल्क्य आदि स्मृति-कारों के अनुसार मार डालना चाहिए या जला देना चाहिए। यदि ब्राह्मण स्त्री स्वेच्छा से क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के साथ रमण करे तो सर घुटाकर उस पर दही मलकर तीनो जातियो के अनुसार क्रमशः सफेद, पीले या काले गधे पर नंगी बिठाकर शहर मे घुमा

१. मनु, आपस्तम्ब, गौतम, याज्ञवल्क्य मे गुरुपत्नी-सम्भोग पर ऊपर लिखे कठिन दंड हैं।

२. ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण स्मृतिकारों ने पक्षपात किया हैं पर ब्राह्मणों मे भी पतित होते थे। आपस्तम्ब (अधि० २-६, १४-१३) के अनुसार "बकरा और वेदपाठी ब्राह्मण बड़े विलासी होते है।"

३ विष्णुपुराण, ३६-४, याज्ञवल्क्य, ३-२३१

४. गरुड़पुराण, ४-३७

५. आप० २-१०-२७

६. विष्णु, ५-४३

दिया जाय। भ्रूणहत्या करनेवाली या "निहिन वर्ग्गानाम्"—नीच-रति करनेवाली स्त्री के नाक-कान काट ले, या स्तन काट ले या कूएं मे डालकर प्रायश्चित्त कराये। इस सम्बंध में मनु, याज्ञवल्क्य, अग्निपुराण आदि मे भिन्न-भिन्न दंड है।[1] भिन्न देशों में बाल-हत्या पर भिन्न प्रकार के दंड थे।[2] जो स्त्री स्वय पर-पुरुष के घर जाय, उसमे पुरुष को कम दोषी समझा गया था तथा स्त्री को प्राणदड या अगच्छेद का दड होना चाहिए।[3] घोर व्यभिचारिणी स्त्री को तो अवश्य मार डालना चाहिए।[4] स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के विरुद्ध अदालत मे अभियोग नही लाना चाहिए (नारद १२–८९)। आजकल तलाक के मामले में रोज स्त्री-पुरुष अदालत दौड़ते है। ब्रह्मचारी यदि स्त्री के पास जाय तो छ महीने तक बैल की खाल पहनकर प्रायश्चित्त करे। (महाभारत—१२, २४)। पति अपनी व्यभिचारिणी स्त्री को अनेक प्रकार के दंड दे सकता है। वशिष्ठ के अनुसार उसे साल भर घी मे भीगे कपड़े पहनकर कुशा, घास या गोबर पर सोना चाहिए। नारद के अनुसार वह जमीन पर सोये, कु-वास (खराब स्थान) मे रखी जाय, मुट्ठी भर भोजन मिले, इत्यादि। पुरानी जर्मन सभ्यता की तरह, भारत मे भी पत्नी पति की सम्पत्ति थी। अतएव पत्नी के पापों का दंड पति को भी देने का अधिकार था।

पत्नी पर पुरुष के अधिकार का सब निचोड़ मनु के इन दो श्लोकों से मिल जाता है—

१. याज्ञवल्क्य २–२८६, अग्निपुराण–२५८–५९

२. Westermarck के The Origin and Development of Moral ideas में पृष्ठ ४१२–१३ में दिया है कि चीन में तथा भारत में राजपूतों में कन्या पैदा होते ही तुरत मार डालना वैध था। बच्चों को मार डालने की प्रथा की ईसाई प्रचारकों ने बड़ी निन्दा की है। सन् ८५२ में मेंज (Mentz) की सभा में यह निश्चय हुआ कि यदि माता बिना बपतिस्मा (ईसाई धर्म दीक्षा) किये बच्चे को मारे तो बपतिस्मा किये बच्चे को मारने पर दंड से अधिक दंड दिया जाय, रोमन नरेश वेलेंटिनियन प्रथम बच्चे की हत्या करनेवाली माता को जिन्दा जला देते थे। सन् १५५६ में फ्रेंच नरेश हेनरी द्वितीय ने गर्भ छिपानेवाली, सन्तानोत्पत्ति छिपानेवाली या मरा बच्चा पैदा करनेवाली को प्राणदंड की सजा घोषित की थी।

३. बृह० २३–१५

४. विष्णुपुराण–५–१८

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद् व्रतम्॥
सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम्॥

मनुस्मृति के ११ वे अध्याय के ये १७६ तथा १७७ वें श्लोक पुरुष के अधिकार को अक्षुण्ण बना देते है। मनु कहते है कि अपनी इच्छा से व्यभिचार करनेवाली स्त्री को उसका पति एक घर में बन्द कर रखे और पर-स्त्री गमन मे पुरुष के लिए जो प्रायश्चित्त कहा है, वही उससे कराये। रोकी जाने पर भी यदि वह स्त्री सजातीय पुरुष के साथ व्यभिचार करे तो उसकी शुद्धि के लिए उससे कृच्छ चान्द्रायण व्रत कराना चाहिए।

अस्तु, प्रायश्चित्त तथा शारीरिक दंड दोनों को मिला देने से नैतिकता केवल लोकाचार की या सरकारी कायदे कानून की नही, बल्कि आत्मा तथा मानवता की वस्तु बन जाती है। अन्य किसी भी देश ने अपराधशास्त्र को ऐसा रूप नही दिया। आज भी, इन्ही कारणो से भारत मे और देशो की तुलना मे, नैतिकता के विरुद्ध अपराध कम होते है।

रोम मे दंड

रोम का साम्राज्य उसके वीर पुत्रों के भुजबल से स्थापित हुआ था। उसे योद्धाओं की, युवकों की, पुत्रो की जरूरत थी। इसलिए वहाँ के पडितों ने साम्राज्य के आरम्भ के दिनों मे विवाह की पवित्रता पर बडा जोर दिया था। चूँकि वहाँ की राजनीति में पुरुषों का ही हाथ था, अतएव स्त्रियो को कोई अधिकार नही प्राप्त था। दंड देने का काम पति या पिता का था। यदि पुरुष लम्पटता की ओर जाता था तो स्त्री को कुछ बोलने का हक भी नही था। प्लाटस नामक लेखक ने एक कथा[1] दी है कि एक लड़की ने अपने पिता से अपने पति की लम्पटता की शिकायत की। पिता ने उत्तर दिया कि "मैंने तुमसे कह दिया कि अपने पति की इज्जत करो, वह कहाँ जाता है, क्या करता है, क्या सोचता है, इससे तुमसे कोई मतलब नही।" जब उस लड़की ने और भी शिकायत की तो पिता ने कहा—"अच्छा, तुम अपने पति पर इतनी कड़ी

१. Plautus—Menaechim—787

निगाह रखती हो? यदि ऐसा है तो मै उसकी लम्पटता मे उसकी सहायता करूँगा। वह तुमको गहने, कपडे, भोजन तथा नौकरानियाँ देता है, अब तुमको और क्या चाहिए।"

स्त्री को लोग विपत्ति भी समझते थे। दार्शनिक यानी विद्वान् को स्त्री से दूर रहना ही ठीक समझा जाता था। प्रसिद्ध विद्वान् सिसरो ने जब अपनी पत्नी तेरेतिया को त्याग दिया तो हिरतियस ने उसे अपनी बहिन व्याह देना चाहा। सिसरो ने कहा कि "दर्शन शास्त्र तथा स्त्री दोनो एक साथ नही चल सकते।" अपने एक ग्रन्थ[1] मे उन्होने लिखा है—"जिसके पास औरत है, वह कभी स्वतंत्र नही रह सकता। जिस व्यक्ति पर स्त्री शासन करती हो, नियत्रण रखती हो, 'यह करो—वह न करो' कहती रहती हो, वह आदमी कही स्वतन्त्र रह सकता है?" किन्तु ऐसे विचार रोमन सभ्यता मे तब आये जब साम्राज्य स्थिर हो चुका था, विजय के लिए योद्धाओं की जरूरत नही थी। लोगों मे विलासिता आ गयी थी। स्त्री विवाह-बधन के लिए, भोग की सामग्री बन गयी थी। प्रसिद्ध रोमन विचारक सेनेक्का (द्वितीय) ने तो यहाँ तक लिख दिया कि "संसार मे सबसे मूर्खता की बात है कि अपनी सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए, बुढापे में पोषण के लिए या अपना नाम चलाने के लोभ से, संतान उत्पन्न करने के लिए विवाह करना।"[2] रोमन इतिहास इस बात का साक्षी है कि रोम के लोग शुरू से ही विवाह करने के हिमायती नही थे। वे खुला प्रेम ज्यादा पसंद करते थे। लोगो को विवाह के लिए बाध्य करने की नीयत से ही रोमन कानून में अविवाहितों को अधिक सरकारी कर देना पड़ता था। इसी लिए चिढ़कर सिसरो ने कहा है कि "सरकारी कानून आदमी को ब्रह्मचारी नही रहने देते।" वेलेरियस मैक्सियस के कथनानुसार ईसा से ४०३ वर्ष पूर्व रोम में अविवाहितों के विरुद्ध कानून थे।[3] ईसा से १३१ वर्ष पूर्व, विधायक मेटेलस ने एक प्रसिद्ध व्याख्यान दिया था—

"यदि हम बिना पत्नी के रह सकें तो यह सब कष्ट उठाने की जरूरत नही है। पर प्रकृति ने हमें ऐसा बनाया है कि बिना उसके रह नही सकते और उसके साथ चैन

१. Paradoxa

२. **किन्तु रोम में सन्तानोत्पत्ति को प्रोत्साहन दिया जाता था और पुत्रवान् पिता पर सरकारी कर नहीं लगता था**—Lecky "History of European Morals"—II, 27

३. Kiefer—Sexual life in Ancient Rome—Page 34

से भी नही रह सकते। इसलिए अस्थायी सुख के स्थान पर स्थायी सुख के विचार से रहने का नियम होना चाहिए।"

यह बात उस व्यक्ति ने कही है जिसकी स्त्री सुन्दर थी, सुशील थी, जिससे उसको चार लड़के, दो लड़कियाँ और ११ पौत्र-पोत्रियाँ थी। मैटेलस की बात आज भी काटी नही जा सकती। सामान्यत. विवाह तो करना ही होगा; चेष्टा यह करनी चाहिए कि उससे अधिक से अधिक सतोष प्राप्त हो सके।

लोगों की विलासिता तथा उन्मुक्त प्रेम की बढती भावना को देखकर उसे रोकने का प्रयत्न किया जाने लगा। सम्राट् आगस्टस ने ईसा के पूर्व १८ वर्ष से ईसा के बाद ९ वर्ष के बीच मे कई नियम[१] बनाकर २० से ६० वर्ष की उम्र के बीच के अविवाहित पुरुष तथा २० से ५० वर्ष की उम्र से ऊपर के पुरुष तथा बीस वर्ष के ऊपर की सन्तान-हीन स्त्री को सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया। तीन या उससे अधिक सन्तान वालो के लिए राजकीय सुविधाएँ दी। राज्यपरिषद् ने सदस्यो के लिए उप-युक्त विवाह का नियम बनाया तथा तलाक की प्रथा में सुधार किया। आगस्टस ने उपदेश दिया कि "संसार में पत्नी तथा सन्तान के साथ सुखमय जीवन बिताने से बढ़कर और कोई सुख नही है।"

किन्तु रोमन वीरों की दिग्विजय का एक परिणाम यह भी हुआ कि उनमे विलासिता आने लगी। ईसा से १८६ वर्ष पूर्व जब रोमन सिपाहियो ने एशिया के प्राचीन धनी राज्यो को जीता तो वहाँ के वैभव तथा विलास की सामग्री से रोम का जीवन बदल गया। शासन की कुर्सियाँ, गद्दे, कालीन, गलीचे, दीवार के परदे तथा सिल्क के कपड़ों से समाज मे नया जीवन आ गया। जीते हुए राज्यो से इतना कच्चा माल तथा गल्ला इटली आने लगा कि किसानों की खेती समाप्त होने लगी—विदेशी गल्ला सस्ता पड़ने लगा। रोमन लोगों मे धनी तथा समृद्ध सरदारों का, जमीदार तथा रईसों का वर्ग पैदा हो गया। लोगो में एक नया दूषण पैदा हो गया। "लालच उत्पन्न हो गया। लालचवश बर्बरता, क्रूरता होने लगी . जिस काम से लाभ हो, उसे करने मे कोई हिचक नही होती थी।"[२] ऐसे काल मे स्त्रियो ने भी सिर उठाया। वे बंधन तोड़कर बाहर निकलने लगी। सालस्त[३] ने एक ऐसी महिला का जिक्र किया है जो

१. वही, पृष्ठ ३६
२ Kiefer—Velleius quoted, Page 43
३. Sallust—Bellum Catilinea, Kiefer पृष्ठ ४५

बड़ी सुन्दर थी, धनी थी, सम्पन्न थी, कई बच्चों की माता थी, कवि थी, लेखिका थी, कई भाषाओं की जानकार थी। पर वह घोर विलासिनी थी। उसे ऐसी हवस थी कि मर्द उसे तलाशे, इससे अधिक वह स्वयं मर्दों को तलाश करती थी। इस का नाम सेम्प्रोनिया था। ऐसी विलासिनी औरतो की संख्या रोम मे बहुत बढ गयी थी। ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व के मध्यकाल मे रोम साम्राज्य मे "पुरुष मे अप्राकृतिक व्यभिचार तथा स्त्रियो मे खुले आम अपने को बेच देने का रिवाज बहुत बढ गया था।"[1] होरेस ने लिखा है कि "वह युग चला गया जब शुद्ध विवाह होते थे तथा शुद्ध सन्तान उत्पन्न होती थी। अब तो ऐसी कोई कुमारी नही मिलेगी जो जवान हो और प्रेम करना और काम की संतुष्टि करना न जानती हो। ब्याहता स्त्री जब उसका पति शराब पीता रहता है, किसी जवान आवारे का इशारा पाकर अंधेरे कमरे मे चली जाती है, पति देखता रहता है और वह किसी स्पेनी मल्लाह के हाथ शरीर बेच आती है।" प्राप-र्टियस ने अपनी एक कविता मे लिखा है कि "रोम के लिए बडे सौभाग्य की बात होगी अगर एक भी सच्चरित्र औरत मिल जाय।"[2] स्त्रियों का यह विलास उस बंधन की प्रतिक्रिया थी जिसमे शुरू रोमन साम्राज्य मे स्त्रियो को रखा गया था। डा० वार्टिग[3] ने रोम के "मर्दाने" राज्य में आन्तरिक जनानी प्रतिक्रिया का बड़ा अच्छा वर्णन किया है। एक बार जब बधन खुलता है तो उसे सभाला नही जा सकता। रोम का साम्राज्य अपनी विलासिता के कारण उसी प्रकार नष्ट हुआ जिस प्रकार, किसी अंश तक, आज के जमाने में परम विलासी फ्रेंच लोग द्वितीय महायुद्ध मे जर्मनो के गुलाम बन गये थे।

प्राचीन रोम मे सन्तान की पवित्रता तथा उसके अधिकार पर बहुत ज़ोर दिया गया है। पत्नी की मृत्यु के बाद सन्तानवान् लोग रखेल रखते थे ताकि सन्तान के अधिकार पर आँच न आये। सम्राट् वेसपासियन तथा मार्कस आरेलियस आदि ने भी यही किया था। अविवाहितों को विवाह कर संतानोत्पत्ति का आदेश देते हुए सम्राट् आगस्टस ने अपने व्याख्यान मे कहा था—

१. Kiefer—पृष्ठ ४६

२. वही, पृष्ठ ४७

३. Dr. M. Vaerting—"The charactor of Women in a masculune State and the character of women in a faminine state"–Pub. Karlsruhe, 1921—Page 35

"मैं तुमको क्या कहूँ, मर्द! नगर नष्ट हो रहा है। तुम उसके नाश के लिए सब कुछ कर रहे हो। नगर उसके मकानात, बाजार या बडी इमारतों से नही बनता। उसमे स्त्री-पुरुष रहते है—पहले के रोमन लोग विदेशी भूमि मे भी जाकर बच्चे पैदा करा आते थे। और तुम—तुम कोई ऐसे साधु तो हो नही कि अकेले रहते, खाते पीते या सोते हो? तुमको अत्यधिक भोगविलास के लिए आजादी चाहिए।"[1]

आगस्टस के कठोर नियमों का परिणाम बुरा भी हुआ। वेश्या को हर तरह की छूट थी। उसे व्यभिचार करने मे रोकटोक नही थी इसलिए बहुत सी अच्छे घरानों की औरतें विलास के सुख के लिए वेश्या की पोशाक पहनने लगी।[2]

रोमन तलाक

प्राचीन रोम मे विवाह की बडी पवित्रता थी। धार्मिक रीति से किया गया विवाह टूट नही सकता था। दायोनोसियस के अनुसार रोमन साम्राज्य के आरम्भ के ५२० वर्ष तक कोई तलाक नही हुआ। रोम मे स्त्री को तलाक देनेवाले पहले व्यक्ति स्पुरियस कार्विलियस थे। उन्होंने भी इसलिए तलाक़ दिया था कि उनकी बीबी बाँझ थी। फिर भी, समाज मे उनका पद गिर गया था। सम्राट् रोमुलस ने बड़े कठोर नियम बनाये कि स्त्री पति को नही छोड़ सकती थी और पति को अपनी स्त्री को तभी छोड़ने का अधिकार था जब वह बच्चों को विष देकर मार डाले, पति के बक्स के ताले की कुन्जी की नकली कुन्जी बना ले या व्यभिचार करे।[3] रोम के प्रसिद्ध बारह नियमो में पत्नी को तलाक़ देने के लिए उसकी भर्त्सना करनी चाहिए। वेलेरियस मैक्सिमस के अनुसार पहला तलाक ईसा से ३०६ वर्ष पूर्व हुआ था। पश्चिमीय सभ्यता मे यह पहला तलाक़ रहा होगा। नियम था कि पति को अपने पत्नी की भर्त्सना करने के लिए अपने मित्रो तथा परिवारवालों की सभा बुलानी चाहिए। आज कल भारत की अनेक जातियों मे इस प्रकार की "पंचायत" होती है।

ब्याही स्त्रियों को दुराचार के लिए बड़ा कठोर दंड मिलता था और चूँकि उनके कोई सामाजिक अधिकार नहीं थे अतएव वे बहुत दबी हुई रहती थी। व्यभिचार

१. Kiefer, पृष्ठ ३८
२. वही, पृष्ठ ३९
३. वही, पृष्ठ ३०
४. Twelve tables

के दोष मे वे बडी बेइज्जती के साथ घर से निकाल दी जाती थीं और पति की उपस्थिति मे परिवार की सभा बुलाकर उन्हे प्राणदंड भी दिया जा सकता था। रोमन लोगों मे पति से अधिक पिता को अपनी विवाहिता कन्या को प्राणदंड देने का हक़ था। पर-पत्नी से व्यभिचार करनेवाले पुरुष को कोडे मारते थे, या उसका शिश्न काट लेते थे या नौकरों के सुपुर्द कर देते थे जो उस पुरुष के साथ सभोग कर उसकी बेइज्जती करते तथा खूब पीटते भी थे। वेश्या तथा दासी-कन्या के साथ व्यभिचार उतना बुरा नही समझते थे। सिपियो अफ्रिकानस (अफ्रीका के विजेता) की पत्नी ने जब देखा कि उसकी नौकरानी से पति का सम्बध हो गया है तो उसने इस अवगुण के प्रति नेत्र मूँद लिये।

एक बात ध्यान में रखने की है कि रोमन कानूनो मे व्यभिचार के लिए थोडे बहुत दडो की व्यवस्था बहुत बाद मे हुई। इसका कारण यही है कि पति को अपनी दुराचारिणी पत्नी को हर प्रकार का दड देने का स्वयं अधिकार था।[१] केटो ने लिखा है कि "यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो तो पति उसे जान से मार सकता है पर यदि पति दुराचारी हो तो पत्नी को उँगली उठाने का भी अधिकार नही है। व्यभिचार के लिए कानूनन दंड की व्यवस्था सम्राट् आगस्टस ने की--देशनिकाला, सम्पत्ति-हरण या नीच वर्गों के लिए शारीरिक दड इत्यादि। सम्राट् कांस्तैलियस ने व्यभि-चारिणी को जिदा जला देने का नियम बनाया, या उनके नियमानुसार बोरे मे भरकर उसे पानी में डुबा देना चाहिए। पिता की हत्या करनेवाले को एक बोरे में साँप, कुत्ता तथा बिल्ली के साथ बन्द करके पानी में डुबा देते थे। सम्राट् जास्तिनियन की आज्ञा थी कि दुराचारिणी को धार्मिक महिला-आश्रमो में बन्द कर दो।[२]

रोम साम्राज्य मे बहुत छोटे कारणों पर भी तलाक हो जाता था। उदाहरण के लिए, वैलेरियस मैक्सिमस के अनुसार एक तलाक इसलिए हो गया कि पत्नी बिना पति से पूछे कोई सार्वजनिक खेल देखने चली गयी थी। रोमन गणतंत्र के अतिम काल में स्त्रियाँ भी अपना अधिकार ग्रहण कर चुकी थीं। वे भी तलाक़ लेने लगी थीं। सिसरो ने अपने एक पत्र में लिखा है कि स्त्री का पति नगर के बाहर गया। उसने जल्दी से तलाक़ ले लिया, क्योकि वह किसी दूसरे से प्रेम करती थी। सेनेका ने लिखा है कि "कोई स्त्री अपने तलाक पर लज्जित न होगी। अब तो वे अपनी उम्र अपने

१. कीफ़र, पृष्ठ ३१

२. मामसेन ने इसी को "पवित्र क्रूरता" या Pious Savagery कहा है।

विवाहों से गिनती है। वे तलाक़ लेती है ताकि फिर विवाह करे, विवाह करती हैं ताकि फिर तलाक़ ले।" जुवेनल ने अपने एक व्यंग्यात्मक काव्य में एक स्त्री का ज़िक्र किया है जिसने पाँच साल में आठ विवाह किये।[१]

रोमन स्वभावत. बड़े क्रूर तथा निर्दय लोग थे। विश्वविजय की महत्त्वाकाक्षा ने उनको ऐसा बना दिया था। इस सम्बन्ध मे वियेना (आस्ट्रिया की राजधानी) के मनोवैज्ञानिक स्टेकेल ने दूसरे को कष्ट देने या दूसरो से दिये गये कष्ट को सहने के ऊपर एक बडी अच्छी पुस्तक लिखी है।[२] उसमें वे लिखते हैं कि "क्रूरता घृणा तथा अधिकार की इच्छा की अभिव्यक्ति है।" अधिकार-लोलुप लोग ही अधिक क्रूर तथा निर्भय होंगे। रोमन लोगो का स्वभाव ही ऐसा हो गया था कि वे "असहिष्णुता" तथा "क्रोध" भी न्यायसंगत समझते थे। यूनानी दर्शन तथा दार्शनिकों की तरह, रोमन जीवन की अन्य मधुर अवस्थाओ से या तो परिचित नही थे, या उनमे उनको विश्वास नही था। सुकरात या प्लेटो की तरह वे आत्मा, उच्च भाव तथा अध्यात्म के हिमायती नही थे। अतएव क्षुद्र स्वार्थ तथा क्रूरता उनके स्वभाव मे रम गयी थी। उनका राज्य-चिह्न भी क्रूरतापूर्ण था—नंगी कुल्हाड़ी। इसी लिए उनका दंड भी बड़ा क्रूर होता था। उनका मनोरंजन भी बड़ा क्रूर होता था। आदमी-आदमी तलवार लेकर लडते थे, भाला लेकर लड़ते थे—दो मे से एक की जान जाती ही थी। शेर और आदमी की, भैंसों और आदमी की क्रूर लड़ाइयाँ होती थी। ऐसी क्रूरता की प्रतिक्रिया कामुक उत्तेजना होती है। निर्दयता का अंत कामुकता में होता है। इसी लिए रोमन लोग ऐसे क्रूर खेलों को देखकर बहुत उन्मत्त हो जाते थे। खेलों के बाद वे विलास करते थे।[३]

सन्तान के प्रति क्रूरता

मनोविज्ञान तथा कामशास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि भोगी, विलासी व्यक्ति अपनी संतान के प्रति प्राय निर्दय होते हैं। रोमन पिता को कानूनन अपने लड़के पर पूर्ण अधिकार होता था। बच्चा चाहे कितना भी बड़ा हो जाय, पिता का उस पर अधिकार रहता था।[४] कन्या का विवाह हो जाने पर भी, वह पिता के अधिकार में

१. कीफ़र, पृष्ठ ३३–३४
२. Sadism and Masochism by Stekel
३. गिबंस—Decline and Fall of Roman Empire
४. दायोनिसियस ने इसका अच्छा वर्णन किया है।

पति से अधिक थी। पिता अपनी संतान को कमरे में बंद कर सकता था, कोड़े मार सकता था, खेत पर काम ले सकता था और जान से भी मार सकता था। पिता का इतना अधिकार था कि यदि उसका विद्वान् पुत्र, व्याख्यान में प्रवीण पुत्र, जनता की ओर से राज्य के शासको के विरुद्ध कही व्याख्यान दे रहा हो, तो पिता उसे मंच पर से खीचकर मारता-पीटता घर ले जाता था और घर पर और मरम्मत भी कर सकता था। पिता परिवार का प्रधान होता था। उसे परिवार भर मे सबको दंड देने का अधिकार था।

दासो को काँटेदार चाबुको से मारते थे। बच्चों को चमड़े या झाड़ूनुमा बेंत से मारते थे। स्कूल में बच्चो को खूब पीटते थे। मारते-मारते अधमरा कर देते थे। स्कूल मे बच्चो को पीटने के विरोध में आज सभी सभ्य समाज है। अपराधी को बेत की सजा देने के विरोध में आज सभी अपराध-शास्त्री है। पर यह जानकर हमे संतोष होगा कि आज से १९०० वर्ष पूर्व भी स्कूल में शारीरिक दंड तथा किसी भी अपराध के लिए शारीरिक दंड के विरोध मे आवाज उठानेवाले पैदा हो चुके थे। हमारे विचार से सभ्य संसार मे ऐसे दडो का सर्वप्रथम विरोधी क्विंटिलियन नामक महान् वक्ता था जिसका समय ईसवीय सन् ३५ से ९५ है। क्विटिलियन का मत था कि नवयुवकों को आध्यात्मिक शिक्षा देनी चाहिए। वे कहते हैं—"मैं शारीरिक दंड का विरोधी हूँ, शिक्षा के लिए शारीरिक दंड देना बहुत ही बुरा है....यदि अध्यापक मे छात्र को सहायता देने की भावना हो तथा धीरज हो तो ऐसे दंड की आवश्यकता ही नही है.....उन युवको का क्या कीजिएगा जो मार से भयभीत नही होते, जिनके मन में भय नही है...पिट जाने से जो लज्जा उत्पन्न होती है, उसकी भावना से व्यक्ति की आत्मा दब जाती है और वह दिन के प्रकाश तथा जीवन के प्रकाश से दूर भागने लगता है।"

क्विंटिलियन के ये शब्द आज के शिक्षा तथा समाजविज्ञान के सबसे आगे बढे हुए विचारकों के समान है और अपराधशास्त्र के विद्यार्थी को एक महत्त्वपूर्ण निर्णय में सहायक होंगे। हम आगे चलकर इस विषय पर इस पुस्तक के तीसरे भाग मे विचार करेंगे।

जोनसार भावर में

हमने रोमन स्त्री के अधिकार-हीन जीवन का कुछ वर्णन किया है। पर इसी सिलसिले मे हमें अपने देश की एक पिछड़ी जाति मे स्त्री के अधिकार-हीन जीवन की तुलना करनी चाहिए। पति के यहाँ पत्नी को अधिकार-हीन बनाकर, पिता

के यहाँ उसे पूर्ण अधिकार देकर किस सुन्दरता से उसका जीवन सतुलित किया गया है।

उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा पूर्वी पंजाब में खासा जाति में सभी भाइयों के बीच में एक पत्नी रहती है। बाकायदा बारात लेकर शादी बड़ा भाई करता है। पर घर मे आकर पत्नी सभी भाइयो की पत्नी बन जाती है चाहे उसका सबसे छोटा पति चार-पाँच वर्ष की उम्र का बालक ही क्यों न हो। बड़े भाई के सामने अन्य भाई इस "पत्नी" से बातें भी नहीं कर सकते। कई वर्गो मे यह नियम है कि बड़ा भाई जब तक घर में है, कोई "पत्नी" से बात नही कर सकता। यह जाति उत्तर प्रदेश मे देहरादून के जिले में चकराता के पास जौनसार भावर के इलाके में रहती है। इनमे नियम है कि हर भाई के लिए 'पत्नी' का दिन मुकर्रर है।[1]

जौनसार भावर में 'पत्नी' को पति के घर में "रहांती" कहते हैं। सबेरे तड़के से उठकर इसे काम में जुट जाना पड़ता है। घर-गृहस्थी का पूरा काम, कुएँ से पानी लाना, धान कूटना, घास छीलकर ले आना, जानवरो को चारा पानी देना, खेत काटना, रसोई-पानी करना और फिर रात मे एक न एक भाई "पति" की कामवासना को शान्त करना पड़ता है।

पर, पर्व तथा त्यौहारो पर वह अपने मायके जाती है। पिता के घर पहुँचते ही उसे पूरी आजादी मिल जाती है। वह खूब आनन्द करती है। नाचती-गाती है और अगर वह चाहे तो बिना किसी रोक-टोक के अपने विवाह के पहले के "प्रेमियो" के साथ जो चाहे वह कर सकती है। पिता के घर में जाकर "रहाती" "घरियाबी" बन जाती है। अगर वह अपने पहले पतियों के यहाँ न जाना चाहे तो उनको कुछ आर्थिक हरजाना देकर नया पति बना ले। आर्थिक हरजाना नया पति देगा। दस साल पहले ५०-६० रुपये में काम चल जाता था। अब २-३ हजार रुपये तक माँगने लगे है। यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो—यानी अपने पतियों के अलावा, ससुराल मे रहते किसी से सम्बन्ध कर चुकी हो (पिता के यहाँ उसे सब अधिकार है) तो पति लोग उसे छोड़ सकते है। पत्नी को "छूट" (तलाक) देने का सरल तरीका है। जब वह अपने मायके (मायता) जाय, तो ससुरालवाले कहला देते है कि "हमने छूट दे दी।"

१. इस जाति तथा उसके रीति रिवाज का बड़ा अच्छा वर्णन देखिए—
Dr. R. N. Saksena—"Social Economy of a Polyandrous People"-Agra University—1955–Pages 35-36-37

फिर भी पति को हरजाना मिलता ही है। यदि बच्चे पैदा करनेवाली लड़की छूट में मिले तो लोग जल्दी व्याहने को तैयार हो जाते है। डा० सक्सेना ने अपनी पुस्तक[1] में २५ वर्ष के एक नवयुवक का जिक्र किया है जिसने १३ वर्ष की लड़की छोडकर ४० वर्ष की एक औरत से इसलिए विवाह किया तथा काफ़ी मूल्य देकर उसे खरीदा, क्योंकि वह तीन घर तलाक दे चुकी थी पर तीनों घरो मे काफ़ी बच्चे पैदा कर आयी थी। स्त्री जिस परिवार मे बच्चा पैदा करती है, उसी परिवार में सन्तान रह जाती है। इन लोगों मे भी विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है।

१. डा० सक्सेना की पुस्तक, पृष्ठ ३८

उनको पानी में डुबा देते या जिन्दा गाड़ देते थे।[1] उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका में बच्चों को मार डालने का बड़ा रिवाज़ था। अलीपोनीज जाति मे किसी स्त्री के दो-तीन बच्चे से ज़्यादा नही पाये जाते, क्योकि इससे ज्यादा बच्चे होने पर वे मार डालते थे। गुआना जाति मे लडकियो को जिन्दा गाड देते थे। मुवाया जाति में एक लड़का तथा एक लड़की तक जीवित रखते थे। शेष सब बच्चो को मार डालते थे। मध्य आस्ट्रेलिया की एक जाति मे कमजोर बच्चे को पालने के लिए मोटे बच्चे को मार-कर उसका मांस कमजोर बच्चे को खिलाते थे। मगोलियनो की एक जाति चीन में है जिसको हक्का कहते है। इस जाति मे रिवाज था कि लडकियो को इसलिए मार डालते कि उसकी आत्मा दूसरी बार लडका होकर ही पैदा हो। रोम मे भी बेढंगे, कमजोर, पंगु बच्चों को पानी मे डुबाकर मार डालते थे। रोमन सम्राट् रोमुलस ने विलासी रोमन लोगो को बच्चों के प्रति उदासीन होते देखकर यह नियम बनाया था कि पिता-माता कम से कम तीन वर्ष तक अपने बच्चे का अवश्य पालन-पोषण करे। उसका तात्पर्य था कि इस अवधि के बाद उस बच्चे के प्रति स्वत. प्रेम पैदा हो जायगा, तब मार डालने का सवाल नही उठेगा। रोमुलस की कठोर आज्ञा थी कि ज्येष्ठ पुत्री को कदापि न मारा जाय। समोआ जाति मे बच्चे को मार डालने का बड़ा रिवाज़ था। दकोता जाति में भी यही प्रथा थी।

स्त्री की हत्या

स्त्री की हत्या के लिए भी भिन्न जातियो मे भिन्न नियम थे। विक्टोरिया (आस्ट्रे-लिया) मे बंगेरंग नामक जाति मे पति पत्नी को जान से मार सकता है, पर उसके भाई को अपनी बहिन की हत्या का बदला लेने का अधिकार है।[2] वहाँ गाय को तथा बाक-विनी जातियों में स्त्री को मार डालना हत्या गिना जाता था एवं उसी प्रकार दंडनीय था। जापान मे अभी हाल मे यह नियम समाप्त हुआ है कि पति को अपनी स्त्री के जीवन-मरण पर अधिकार है।[3] रूस में १७वी सदी तक नियम था कि यदि स्त्री अपने पति को मार डाले तो उसे जिन्दा गाड़ देते थे। बर्मा मे पुरुष के सामने स्त्री का आर्थिक मूल्य (दड के विचार से) कही कम है। मुसलिम शरीयत के अनुसार पुरुष का रक्त

१. Westermarck—Moral Ideas—Page 395.
२. वेस्टरमार्क, पृष्ठ ४१८
३. वही, पृष्ठ ४२४

गिराने का मूल्य स्त्री के रक्त गिराने की तुलना में दुगुना होता है।[१] गलास जाति में आदमी को मारने पर १००० गाय-बैल दंड देना पड़ता है पर औरत मारने पर केवल ५० गाय से ही काम चल जाता है। कही-कही स्त्री की हत्या पर अधिक दंड देना होता है। सुमात्रा की रेजांग जाति में पुरुष की हत्या पर ८० डालर (वहाँ का सिक्का) तथा स्त्री की हत्या पर १५० डालर देना पड़ता है। स्त्री की हत्या पर दिनका जाति मे ४० गौएँ देनी पड़ती थी तथा पुरुष की हत्या पर ३० गौएँ।

प्रश्न यह है कि कितनी जातियों, मनुष्यो या पशु-पक्षियों की बातें बतलाकर कामशास्त्र तथा अपराधशास्त्र का सम्बन्ध स्थापित किया जाय। विशेषज्ञों का कहना है कि इस पृथ्वी पर १०,००,००० प्रकार के जानवर है, ८,००,००० प्रकार के कीड़े-मकोड़े है तथा ३०,००० प्रकार की मछलियाँ हैं, ९,००० प्रकार की चिड़ियाँ है और २,५०,००० प्रकार के पेड़-पौधे हैं। मनुष्यो का प्रकार अभी तक गिना नहीं जा सका। ८५ देशो मे लगभग २५,००० प्रकार के (भिन्न सभ्यता के) नर-नारी रहते है। इनका पूरा अध्ययन कैसे हो सकता है?

नर-बलि

मनुष्य क्या नही करता? उसकी वासना उससे क्या नही कराती। वह बच्चे ही नही मारता, नर बलि भी बराबर करता चला आ रहा है। आर्य जाति में, सब देशों में नर-बलि का रिवाज़ था।[२] ईसवी सन् २ तक अर्काडिया मे ज्यूस हाइकारस देवता के सामने नर-बलि होती थी। प्रसिद्ध यूनानी युद्ध, सलामिस की लड़ाई के पहले थेमोस्टीकिलीज ने युद्ध में बन्दी बनाये तीन फारसियो का बलिदान किया था। पिल्नी के अनुसार ईसा से ९७ वर्ष पहले रोमन सिनेट ने एक कानून पास कर मानव (नर) बलि की मनाही की थी। जूपिटर लैतियारिस के सम्मान मे मनाये जानेवाले त्यौहार में रोम मे एक आदमी का गला काटकर चढ़ाते थे। उत्तरी अफ्रीका मे, टाइ-बेरियस के ज़माने में, शनि देवता की सेवा मे बच्चों की भेट चढाते थे। इंग्लैंड के ट्यूटन, केल्ट तथा स्लाव लोग नर-बलि करते थे।[३] जापान तथा मेक्सिको में भी यही

१. Lam—Arabian Society in the Middle ages—Page 18

२. Hehn—"Wanderings of plants and animals from the first Home"–Page 144

३. वेस्टरमार्क, पृष्ठ ४३५

प्रथा थी। मेक्सिको के विषय मे प्रेसकोट[१] ने लिखा है कि उस राज्य में हर साल १०,००० से ५०,००० नर-बलि होती थी। प्रशान्त महासागर की माया जाति मे अब भी नर-बलि होती है। फ़ीजी द्वीप मे ताहिती लोग भी ऐसा करते थे। अफ्रीका में जो जाति जितनी ही शक्तिशाली होती थी, उतनी ही नर-बलि करती थी।[२] गाइना (अफ्रीका) की नीगरे जाति मे खेत मे अच्छी फसल के लिए युवती लड़की के शरीर में आरपार लकड़ी करके मार डालते थे।[३]

महाभारत के अरण्य पर्व की कथा है कि राजा सोमक की सौ रानिया थी। उनको जन्तु नामक एक लडका पैदा हुआ। ऋत्विक् (पुरोहित) ने कहा कि यज्ञ के बाद जन्तु का बलिदान कर दो, उसके मास की आहुति अग्नि मे दो। उसका धूआँ सौ रानियाँ सूँघे। जन्तु समेत सौ पुत्र पैदा होंगे। जन्तु जब जन्म लेगा तो उसकी पीठ पर स्वर्ण-चिह्न होगा। ऐसा ही किया गया। सौ पुत्र पैदा हुए। जन्तु ज्येष्ठ पुत्र हुआ। पर ऋत्विक् की मृत्यु हो गयी। काफी समय तक वे रौरव नरक मे यातना भोगते रहे।

सती-प्रथा भी एक प्रकार से स्त्री का बलिदान ही है। भारतवर्ष में स्वेच्छया भी सती होती थी पर राजा राममोहनराय के जमाने मे, १९वी सदी के मध्य मे, जबर्दस्ती भी क़ाफी होती थी। भारत मे ही नही, आर्य सभ्यता के सभी केन्द्रो मे, जर्मनी में, भारत मे सती-प्रथा प्रचलित थी। पत्नी को पति के साथ मरना पड़ता था।[४] मिस्र में भी उच्च घरानो मे यही होता था।

पराधीन स्त्री

चीन में पत्नी से अधिक माता की मर्यादा थी। भाई का मनुष्य के हाथ पैर के समान महत्त्व था। स्त्री शरीर के वस्त्र के समान थी। कपड़ा पुराना हो जाने पर बदला जा सकता है। कनफ्यूसियस ने लिखा है कि "पुरुष स्वर्ग का प्रतिनिधि है। वह सब प्राणियों के ऊपर है। स्त्री उसकी आज्ञा मानने के लिए है।" जापान मे

१. Prescot-History of the conquest of Mexico

२. वेस्टरमार्क, पृष्ठ ४३७

३. वही, पृष्ठ ४४९

४. Scharder—"Pre-Historic antiquities of the Aryan-Peoples"—Page-391

पत्नी को पति पर क्रुद्ध होने का अधिकार नही है। जब वह मरती है तो पति उसको दफनाने नही जाता, सन्तान जाती है। बाइबिल मे भी ईसा मसीह ने स्त्री से कहा है—"तेरी इच्छा तेरे पति के अधीन है। वही तेरे ऊपर शासन करेगा।"[1] मनु ने[2] स्त्री के जैसे कर्त्तव्य बतलाये है, वैसे ही जरथ्रसु (पारसी मजहब के प्रणेता) ने पवित्र स्त्री उसे कहा है जो पति की आज्ञा मानती हो। यूनान में स्त्रियों को आदेश था कि अपने पति के आचरण को आदर्श समझें।[3]

पिता-माता के साथ दुर्व्यवहार

प्रत्येक वस्तु और कार्य की देश, काल तथा पात्र के अनुसार मर्यादा होती है। एथेस (यूनान की राजधानी) मे यह नियम था कि किसी को मजिस्ट्रेट नियुक्त करने के पूर्व इस बात का सबूत लेते थे कि उसने अपने पिता-माता के साथ सदा अच्छा व्यवहार किया है। जो व्यक्ति अपने बूढे माँ-बाप का पोषण नही करता था उसे राष्ट्रीय सभा मे बोलने के अधिकार से वंचित कर देते थे।[4]

पर हर समाज में अपने-अपने रीति-रिवाज है। आधा नंगा जंगली भी उतना ही विनम्र हो सकता है जितना सभ्य पुरुष।[5] पर अधिकांश जंगली लोगो के यहाँ कोई विधान नही होता। केवल कुछ परम्पराएँ होती है जिनके अनुसार वे कार्य करते है।[6] इन परम्पराओ का अपना विशिष्ट कारण भी होता है। एस्किमो जाति मे सबसे बडा दंड है ताना मारना, मजाक उड़ाना। इतने से ही अपराधी घायल हो जाता है। वहाँ बच्चो को चपत भी नही लगा सकते—और वहाँ अभी तक एक भी बाल अपराधी नही हुआ। तिकोपिया लोगो मे चोरी करनेवाले को वाग्बाण ही मारते है। तिकोपिया में ही दूसरे के खेत में भी जाकर खेती कर सकते है पर शर्त्त यह है कि उत्पत्ति का कुछ अंश खेत के मालिक को देना होगा।[7] एक ऐसी भी जाति

१. Genesis iii–16
२. मनु० ५–१४७, १४८, १५०, १५१
३. वेस्टरमार्क, ६४७–६५२
४. वेस्टरमार्क, पृष्ठ ५३६
५. Raymond Firth—Human Types, पृष्ठ १३२
६. वही, पृष्ठ १३५
७. वही पृष्ठ १४९

है जिसमे नियम है कि जब स्त्री या पुरुष, बुढापे के भार के कारण चल-फिर न सकता हो, उसे भूखों मरने के लिए एक टापू मे छोड़ देते हैं जहाँ एक बूद पानी नही होता, खाने को घास भी नही होती।[१] उत्तरी अमेरिका की कुछ जातियो में, ब्रेज़ील की कुछ जातियो मे, दक्षिण सागर के टापुओं में, आस्ट्रेलिया की कुछ जातियों मे और अफ्रीका के कुछ जंगलियों मे बुढापे मे स्त्री या पुरुष को, पिता-माता को मार डालने या त्याग देने का नियम है। वे तो कहते है कि बूढ़ो को जाड़े मे सर्दी खिलाने से क्या लाभ ?[२]

१. Hearne—"Journey to the Northern Ocean–"Page 346
२. वेस्टरमार्क, ३८९

अध्याय ९

प्राचीन दण्ड-विधान

यूनान में दंड

यूनान की दंडप्रणाली पर कुछ विशेष नही लिखा जा सकता। इसका कारण है। यूनान की सभ्यता, यूनान का साहित्य, यूनानी भाषा, यूनान के प्रकाण्ड विद्वान्, दार्शनिक तथा वक्ता—ससार में इनका जितना नाम है, उतना बड़ा यह देश कभी नही था। एजियन सागर में फैले हुए बहुत से टापुओ मे, सिसली मे, स्पार्टा तथा एथेंस में—बस यही यूनान का राज्य था जिसमें कुछ दिनो के लिए एथेंस का साम्राज्य था जिसे ई०.पूर्व ४१३ मे सिसली की लड़ाई मे समाप्त कर दिया गया। कुछ दिनो तक स्पार्टा का साम्राज्य रहा, वह भी ३८७ ई० पूर्व में समाप्त हो गया। पर ये साम्राज्य उन्हीं छोटे छोटे टापुओ पर ही थे और इनके समाप्त होने का एक मात्र कारण था कि इस गरीब, खेती के लिए कम भूमि तथा विलास के साधनो की कमी से दु:खी देश के पास एक खास चीज थी—हर नगर का अपने शासन में स्वतंत्र होने का प्रेम, हर एक नगर आजाद था। एक नगर अपने आसपास के गाँवों को मिलाकर एक राज्य था। जब एथेंस या स्पार्टा का साम्राज्य हुआ भी तो वह पहला साम्राज्य था जिसमें शासक भी प्रजातंत्रीय प्रणाली मे हो और शासित नगर भी प्रजातंत्रीय प्रणाली में ही चलाये जाते हों।

यूनान का इतिहास १२०० ईसवीय पूर्व से मिलता है। होमर के युग की कथाओं से पता चलता है कि वहाँ पहले राजतंत्र था। राजा ही राज्य का प्रथम सिपाही, नेता तथा न्यायाधीश होता था। वही प्रधान पुरोहित भी होता था। पर हर मामले में उसे राज्य के प्रमुख लोगों से परामर्श करना पडता था। इसके बाद भी उसे हर अहम मसले को समूची जनता की सभा के सामने पेश करके स्वीकार कराना पडता था। क्रमश: राजा का सब अधिकार सामन्तो में आ गया और उन को भी दबाकर प्रजा-तन्त्र बन गया। जिन दिनों दायोदोरस तथा प्लूटार्क अपना उपदेश दे रहे थे, ई० पूर्व ४०० में यूनानी प्रजातन्त्र बन रहा था। सिकन्दर महान् ने ३३६ ई० पूर्व मे यूनान को मैसीडोनिया के अधीन कर लिया। १४६ ई० पूर्व वह रोमन साम्राज्य में मिल

गया। इसके बाद तुर्क साम्राज्य मे मिला लिया गया। वर्तमान यूनान की स्थापना सन् १८३० में, उसकी स्वतंत्रता के बाद हुई। सन् १९२३ मे लूजाँ की सधि ने उसके राज्य को स्थिर किया।

ऐसे राज्य मे दड-विधान क्या विकसित होता और कैसे होता। हर नगर का, हर जाति का, हर टापू का अपना अलग-अलग नियम था। जो कुछ था, जो कुछ विधान था, वह नगर या राज्य के सरदार-सामन्तो के मुख मे था। वे जो कुछ कह दें, वही कानून था। लिखित कानून न होने के कारण लोग मनमानी करते थे तथा परम्परा तथा रीति रिवाज का मनमाना अर्थ करते थे। इसी लिए ६८२ ईसवीय पूर्व में पहली बार, एथेस मे "छः बुजुर्गो की एक समिति" बनायी गयी जो "पुरानी रीतियो का निर्णय" करते रहे और उनके निर्णय के अनुसार मजिस्ट्रेट लोग दड दिया करे।[1]

राजा चूँकि धर्म तथा न्याय दोनो का प्रधान था अतएव मदिर तथा उसके पुरोहित भी नैतिकता आदि के संबध मे मनमाना आदेश देते रहते थे। लोग स्वयं अपना क़ानून बना लेते थे। किसी की हत्या करने के बाद हत्यारा आत्मरक्षा के लिए देश ही छोड देता था। आपस मे झगड़ा-फसाद हो जाने पर लोग पचायतो मे मामला पेश कर देते थे यानी पचायत बुला लेते थे। हत्या करनेवाला या व्यभिचार करने-वाला यदि पकड़ लिया जाता तो उसे छुडाने के लिए काफी रकम देनी पडती थी। कर्ज देनेवाला अपने ऋणी को पकड़कर घर मे बद कर सकता था। गुलामो के ऊपर मालिक का पूरा अधिकार था, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। ईसा से ७०० वर्ष पूर्व यूनानी नगर-राज्यों ने अपने कानूनो को लिखना शुरू किया। ४५० ई० पूर्व तक ये लिपिबद्ध हो चुके थे। इनसे पता चलता है कि सम्पत्ति पर उत्तराधिकार औरत का भी हो सकता था। अपराधी दो प्रकार के होते थे—उच्च श्रेणी के तथा निम्न श्रेणी के। दोनो के लिए भिन्न दडव्यवस्था थी। समाज मे स्थान के अनुसार दंड मिलता था। यदि स्वतत्र नागरिक पुरुष या स्त्री के साथ बलात्कार किया जाय तो १०० स्तातार (सिक्का) दंड देना पड़ता था, यदि अधिकार-हीन नागरिक के साथ ऐसा हो तो केवल १० सिक्का ही जुर्माना देना पडता। यदि किसी दासी या दास के साथ बलात्कार हो तो ५ सिक्के मे ही काम चल जाता था। प्रथम श्रेणी के

१. यूनानी कानून के सम्बन्ध में इस पुस्तक को जरूर देखना चाहिए—
G. M. Calhoun and G. Delamere—"A Working Bibliography of Greek land–" Pub. Cambridge–Mass–1927

नागरिक को दंड देने के लिए पाँच गवाहों की जरूरत होती थी। दूसरी श्रेणी के लिए तीन की, तीसरे के लिए एक गवाह काफी था।

ताइरेनियन लोगों में नियम था कि स्त्री समाज की सम्पत्ति है। अतएव वहाँ स्त्रियाँ मर्दों के साथ व्यायाम करती थी। मर्दो के साथ कुश्ती लड़ती थी और खुले आम नंगी घूमने में उनको कोई संकोच नही होता था। वे अपने पतियों के साथ भोजन नही करती थीं। जो आ जाय उसके साथ खाने बैठ जाती थीं। जिसके साथ चाहा शराब पी लेती थी। पुरुष भी जिस स्त्री के साथ चाहे प्रसंग कर सकता था। वह लड़कों के साथ खुले आम अप्राकृतिक संभोग भी कर सकता था। इस जाति में मालिक जब सोने जाता था तो नौकर उसके लिए लौडे या लडकियाँ, जो चाहे लाकर हाजिर कर देते थे।[1] कोलोपोहोन के रहनेवालो ने कभी सूर्योदय या सूर्यास्त नही देखा। जब सूर्योदय होता है, वे नशे में चूर रहते और जब सूर्यास्त होता, वे शराब पीने के काम मे लगे रहते थे। राजनीतिक कारणों से परायी स्त्री के साथ व्यभिचार जायज था। पर राजनीतिक व्यभिचार का बड़ा भयकर उदाहरण इतिहासकार "क्लियर्पस" ने अपनी "बायोग्रोफीज" में दिया है। सिसली के आततायी नरेश पायोसेसियस द्वितीय ने अपनी माता की नगरी लोक्रिस पर अधिकार किया। उसने वहाँ एक बड़े भवन को फूलो से सजाकर नगर की सभी युवतियो को एक के बाद दूसरी को बुलाया और उनको नंगा करके तथा स्वय भी नग्न होकर उनके साथ भद्दा से भद्दा कार्य किया। कुछ समय बाद जब दायोनोसियस का पराजय हुआ तो लोक्रिस नगर-वासियों ने उसकी पत्नी तथा लड़कियो को पकड़वा मँगवाया और उनके साथ गन्दा से गंदा व्यभिचार करके, उनके नाखूनो मे सूइयाँ घुसेड़ दी और फिर उनको मार डाला।

क़ानून की दृष्टि में "हस्तक्रिया" करना बिल्कुल वैध चीज थी। ब्रसेल्स के अजायबघर मे यूनान की एक प्राचीन मूर्ति रखी हुई है। एक सुन्दर नवयुवक गले में माला पहने हुए अपने सामने एक प्याला रखकर उसमे हस्तक्रिया कर रहा है।

किन्तु यूनानी लोग सदाचार की महिमा समझते थे। थियोगानिस ने लिखा है कि "संसार में सच्चरित्र स्त्री से बढ़कर मधुर वस्तु और कुछ नही है।"[2]

१. Hans Licht—Sexual life in Ancient Greece–Page 12

२. हांस की पुस्तक, पृष्ठ ७६

तोब्रियांद जाति में

जगली जातियों मे दंडप्रथा के विषय में पहले मैने थोड़ा बहुत जिक्र किया है। तोब्रियाद जाति के कामुक जीवन का कुछ विस्तृत विवरण भी है। इस जाति मे पति या पत्नी एक दूसरे से असन्तुष्ट होकर तलाक़[१] दे सकते है। असन्तुष्ट होने के कारणों में पति-पत्नी का आलसी होना, बदमिजाज होना, इत्यादि है। यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो (कुमारी के लिए सब कुछ माफ़ है) तो पति को उसे खूब पीटना चाहिए। एक स्त्री ने अपने पति को इसलिए छोड दिया कि वह अपनी सौतेली माता के साथ भोग कर रहा था। कुलटा स्त्री की हत्या कर डालने का पति को अधिकार है और दुराचारी पति की सार्वजनिक स्थान में भर्त्सना करने का पत्नी को भी अधिकार है।[२] पर कुलटा स्त्री को मार डालने का अधिकार पति को ही प्राप्त है।[३] विवाहिता यदि अपने प्रेमी के साथ पकड़ी जाय तो दोनो को मार डालनेवाला पति दोषी नहीं समझा जायगा।[४]

वासना सम्बन्धी निम्न कार्य अपराध समझे जाते है तथा दडनीय है[५]—

१. सगी माता के साथ संभोग की कोई कल्पना भी नही करता। ऐसा एक भी मामला कभी नही हुआ।

२. सगी बहिन के साथ सम्बन्ध एकदम वर्जित तथा असहनीय है।

३. अपनी लड़की के साथ विलास भाई-बहिन जैसा बुरा नही है, पर बुरी बात है।

४ माता की बहिन की लड़की के साथ प्रसंग बहुत बुरी बात है।

५. अपनी साली के साथ संभोग बहुत बुरी बात नहीं है पर अच्छी बात भी नही है।

६. सास या भावज के साथ संभोग करे तो अनुचित नही।

१. तलाक़ को उनकी भाषा में "वाइपाका" कहते है, वाई = विवाह, पाका = अस्वीकार करना।

२. Dr. Malinowski—Sexual life in Savages–Page 408

३. वही, पृष्ठ २७१

४. वही, पृष्ठ २७३

५. वही, पृष्ठ ४४८–४४९

इन प्राचीन दंडविधानों के अध्ययन से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। प्राचीन भारतीय दंडविधान ने जिस वैज्ञानिक ढंग से वासना के सभी अंग-उपांगों की रोक-थाम का प्रबंध किया है, वैसा अन्य किसी प्राचीन देश में नही है। हमारे यहाँ जितने मनो-वैज्ञानिक ढंग से वासना को दबाकर रखने का विधान है वैसा कही नही। पर, रोम, यूनान या अन्य प्राचीन तथा आज की जगली जातियो में वासना को धार्मिक रूप देकर नैतिकता का स्पष्टीकरण पुरोहितो पर छोड़ दिया गया, जिससे उसके राजनीतिक तथा धार्मिक दोनों ही रूप जाते रहे। हमारे यहाँ आध्यात्मिक तथा शारीरिक दोनों दंडों का आयोजन कर नैतिकता को इस लोक तथा परलोक दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण बना दिया गया।

पर दंडप्रणाली के अध्ययन से पता चलेगा कि प्रायः सभी देशों मे पतिव्रत, भार्या-व्रत, कुमारी का आदर, बलात्कार का विरोध, विवाह का महत्त्व, अप्राकृतिक संभोग के प्रति घृणा, स्त्री की मर्यादा की रक्षा, भाई-बहन, मां-बेटे तथा पिता-पुत्र के सम्बन्ध की पवित्रता—इन सब चीजों पर ज़ोर दिया गया है। सभ्यों से अधिक जंगलियो ने इस पर जोर दिया है। इसलिए पुराना समाज जहाँ भोग-विलास में डूबा रहता था, वही वह चरित्र की मर्यादा भी कायम रखता था। जब उसने मर्यादा छोड़ दी, राज्य नष्ट हो गया। बन्द कमरे में अँधेरे में स्त्री टटोलकर विवाह करनेवाले स्पार्टन नष्ट हो गये। विलासी रोमन नष्ट हो गये। फ्रांस ऐसे देश भी गिर गये। कामुकता तथा भोग-विलास राष्ट्र को निकम्मा बना देता है। व्यक्ति की बात तो है ही; इसलिए आधुनिक सभ्यता के लिए मानव को अपनी वासना पर विजय प्राप्त करनी होगी। उसे काबू में रखना होगा। यदि ऐसा न हुआ तो सभ्यता ही नष्ट हो जायगी।

अध्याय १०

आधुनिक दण्ड-विधान

(१) भारत में

वर्तमान भारतीय दड-विधान

वर्तमान भारतीय दंडविधान ब्रिटिश हुकूमत की देन है। इसके वर्तमान रूप में आने के पहले ब्रिटिश राज्य के तत्कालीन तीन मुख्य प्रदेश—बंगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रेसिडेसी—मे ब्रिटिश कानून लागू थे। उस समय के मुसलिम या हिन्दू शासकों द्वारा बनाये गये नियमो को संशोधित कर इन तीनों प्रदेशों की लेजिस्लेटिव कौसिल, या यों कहिए कि मंत्रणापरिषद् ने आग्ल-भारतीय नियम बनाये थे। इस प्रकार वर्तमान भारतीय दंडविधान के पहले न तो कोई सर्वव्यापी या हर जगह के लिए लागू कानून थे और न हर प्रदेश में इनकी सूरत ही एक सी थी। यह परिस्थिति ब्रिटिश शासन के आरम्भ काल की है। उस समय मुसलमानों के लिए भारत में मुसलिम शरीयत थी। हिन्दुओ के लिए मनु के विधान थे, जिनका समय अंग्रेज ईसा से ३५० वर्ष बाद का मानते है। अंग्रेज़ी कानून अपनी उन सब अनिश्चितताओं के साथ था, जिनके लिए अंग्रेज़ी क़ानून प्रसिद्ध है। अंग्रेज़ों का कोई लिखित दंडविधान कभी नहीं था। केवल परम्परा से चले आनेवाले फैसले तथा नजीरे थी जिनके आधार पर काम होता था। आज इंग्लैण्ड भी लिख़ित कानून पर धीरे-धीरे आ रहा है। अस्तु, जब भारतीय दंडविधान बना तो वह मुसलिम शरीयत, आंग्ल-भारतीय कानून, अंग्रेज़ी नज़ीरे और कानून तथा मनुस्मृति के आधार पर सबका एक ठोस सम्मिश्रण तैयार हुआ। इसी लिए यह सत्य कहा जाता है कि भारत का दंडविधान अपने ढंग का निराला है तथा संसार के किसी भी देश के पास ऐसा ठोस दंडविधान नही है। यह सही है कि समय तथा काल के अनुसार इसमें विशद परिवर्तनों की भी आवश्यकता है और वह काम हो भी रहा है। स्वाधीनता के बाद हमने इसी दंडविधान को स्वीकार कर लिया और उसमें काफ़ी संशोधन भी हुए है।

वर्तमान दंडविधान ६ अक्टूबर १८६० को स-परिषद् गर्वनर जनरल द्वारा स्वीकृत हुआ पर इसे लागू किया गया १ जनवरी १८६२ से। पहले यह विधान "ब्रिटिश" भारत के लिए था पर अब समूचे देश के लिए है। पाकिस्तान में भी

यही विधान लागू है। इसमें सन् १८९१ मे ऐक्ट १२ के द्वारा, फिर १९३७ में, फिर १९४८ में, फिर १९५० मे, फिर १९५१ के ऐक्ट ३ द्वारा सुधार किया गया तथा १९५४, १९५७ और १९५८ में भी संशोधन होते रहे। इस प्रकार स्वराज्य के बाद इसमें ६ बार संशोधन हो चुके।

भारतीय दंड विधान[1] ठोस कानून है। उसको क्रियारूप देने के लिए, उसका क्रियाशील विशेषण "क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड"[2] है जिसके द्वारा मुख्य क़ानून को कार्यान्वित किया जाता है। इसलिए मूल नियमों में यद्यपि साधारण परिवर्तन हुए हैं, पर क्रियाशील रूप मे काफी तथा महत्त्वपूर्ण संशोधन हुए है। उदाहरण के लिए बेत मारने की सजा एकदम उठा दी गयी है।[3] प्रथम अपराधी प्रोबेशन नियम में २४ वर्ष की कैद कर दी गयी है। दफा ३७६ के अन्तर्गत कन्या के साथ बलात्कार की उम्र १६ से १८ वर्ष बढ़ा दी गयी है।

एक बड़ा भारी सुधार यह हुआ है कि बहुत-सी दफाओं मे मुकदमा करने का अधिकार ग्राम पंचायतो को दे दिया गया है, जैसे दफा ३७९ मे (चोरी मे) पहले एक पैसे की चोरी में भी सजा हो सकती थी। अब ग्राम पंचायतो को अधिकार दिया गया है कि २५० रुपये तक के मूल्य के चोरी के मामलो में तसफीया करा दे। इसी प्रकार दफा ३२३ (झगड़ा), दफा ३२६ (खतरनाक हथियारों से जान-बूझकर चोट पहुचाना) तथा दफा ४४७ (बुरी नीयत से दूसरे की जायदाद या मकान में घुसना) के मामले भी पंचायत के जिम्मे कर दिये गये हैं। भारतीय दडविधान[4] को भारत सरकार एक कमेटी द्वारा दुहरवा रही है। इसके लिए एक समिति बना दी गयी है। सन् १९६० तक इसमें काफी संशोधन हो जाने की आशा है। क्रिमिनल प्रोसीड्योर

१. Indian Penal Code

२. Criminal Procedure Code

३. धारा ५३—दफा ३७९, ३८० (चोरी तथा मकान में घुसकर चोरी), ३८२ (जबर्दस्ती चोरी), ४४४, ४४८ (मकान में बिना अधिकार घुसना), ३७५, ३७७, ३९०, ३९१ (डकैती) की सजा में अन्य दंड के अतिरिक्त कोड़ा मारने का नियम था।

४. भारतीय दंडविधान पर सबसे अच्छी टीका मुझे रतनलाल की लगी तथा उसका सबसे अच्छा अंग्रेजी संस्करण डा० हरिसिंह गौड़ का है; प्रकाशक, ला बुक कं०, पो० बा० नं० ४ इलाहाबाद।

कोड में सन् १९५७ के संशोधन के अनुसार अपराधी को अपनी सफाई तथा अपनी रक्षा के लिए काफी गुजायश कर दी गयी है। उद्देश्य यह है कि वह यदि निर्दोष हो तो उसे अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का पर्याप्त अवसर मिले।

वासना सम्बन्धी अपराधो के लिए हमारे यहाँ दंड की काफी व्यवस्था है। भारतीय दंडविधान मे ऐसे अपराधो के लिए कुछ दंड इस प्रकार है—

धारा ३७५ के अनुसार किसी स्त्री या कन्या से उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसकी सम्मति के विरुद्ध, उसे मारने-पीटने या मौत का भय दिखाकर, स्वीकृति हो या न हो पर उसकी उम्र १८ वर्ष से कम हो, यदि पुरुष प्रसग करे तो उसे बलात्कार समझा जाय। पूरा प्रसंग न होकर केवल शिश्न-प्रवेश ही बलात्कार की सीमा में आ जाता है। यदि अपनी पत्नी हो और उसकी उम्र पन्द्रह वर्ष से कम हो तो बलात्कार नही होगा।[१]

दफा ३७६ के अनुसार बलात्कार करनेवाले को दस वर्ष या आजन्म कैद की सजा मिलेगी। यदि अपनी पत्नी हो और उसकी उम्र १२ वर्ष से कम हो तो उसके साथ बलात्कार करने पर दो वर्ष की क़ैद होगी।[२]

धारा ४९३ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री को धोखा देकर, यह कहकर कि वह उसका वैध पति है, उसके साथ प्रसग करे तो उसे दस वर्ष तक की कैद हो सकती है। इस नियम का वास्तविक अभिप्राय यह है कि यदि दुराचारी को उस स्त्री को विवाहिता पत्नी बनाकर रखने की न इच्छा हो वरन् रखेल बनाकर रखना चाहता हो, पर उस स्त्री को इसी गफलत मे रखे कि वह उसकी विवाहिता है, तो वह दंडनीय होगा।[३]

धारा ४९७ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति बिना पति की स्वीकृति के उसकी पत्नी के साथ व्यभिचार करता है तो यह अपराध बलात्कार न होते हुए भी दंडनीय है और उसे पाँच वर्ष कैद या जुर्माना दोनों हो सकता है। ऐसी परिस्थिति मे स्त्री को दंड नहीं मिलेगा।

१. इस धारा की बड़ी व्याख्या है, उदाहरणार्थ सोती हुई स्त्री से प्रसंग करना भी बलात्कार है, बाद में तो वह जाग जाती है पर निद्रावस्था में "प्रवेश" कराने के समय उसकी स्वीकृति नहीं हो सकती—रतनलाल की टीका, १९५३ संस्करण, पृष्ठ ९१५

२. रतनलाल—पृष्ठ १२१७

३. वही, पृष्ठ ९०३

धारा ३७० किसी पुरुष या स्त्री को दास के रूप मे प्रयोग करने के लिए खरीद-बिक्री को सात वर्ष तक के लिए दंडनीय समझती है। इस धारा में लड़कियो की खरीद-बिक्री भी शामिल है।[१] धारा ३७२ के अनुसार मदिर के लिए "देवदासी" देना भी (१८ वर्ष से कम उम्र की) गुनाह है। इस धारा के अंतर्गत जो भी कोई व्यक्ति वेश्या-वृत्ति या नाजायज सभोग के लिए लड़का या लड़की को खरीदता है, कोई अड्डा किराये पर चलाता है इत्यादि, या यह जानते हुए कि खरीदार उसका अनैतिक कार्यो के लिए उपयोग करेगा, उसे दस वर्ष तक की सजा मिलेगी। सन् १९५८ के "अनैतिक व्यवसाय-निरोध" नियम ने इस धारा को और भी व्यापक कर दिया है और किसी भी उम्र की स्त्री का अपने को संभोग के लिए बेचना, उसका पेशा करना इत्यादि नाजायज घोषित कर दिया है।[२] धारा ३६६ (अ) के अनुसार नाबालिग (१८ वर्ष से कम उम्र की) लड़की को अनैतिक कार्यो के लिए फुसलाकर ले आना दस वर्ष की सज़ा दिला सकता है। भगाये गये लड़के-लडकी को छिपाकर रखने मे भी उतनी ही सजा है। लडकी की इच्छा के विरुद्ध उसे दूसरे से ब्याह देना या दूसरे के पास संभोग के लिए छोड़ देना—धारा ३६५ तथा ३६६ के अनुसार सात वर्ष के लिए कारागार भेज सकता है।

पुरुष, स्त्री या पशु के साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करनेवाले को धारा ३७७ के अनुसार दस वर्ष या आजन्म कैद की सजा मिलेगी।[३] ऐसे अपराध मे स्कूल में किसी लड़के को बुरा कार्य करने के लिए पत्र भेजना भी दंडनीय है। ऐसे ही, बलात्कार के मामले में एक युवक ने एक लड़की को ज़मीन पर पटक दिया, उसके मुँह में बालू भर दी, प्रसंग करना चाहता था पर उसकी चिल्लाहट से लोग आ गये। प्रसंग नही हुआ, तब भी बलात्कार माना गया।[४]

भगायी हुई लड़की की सूचना मिलते ही, यदि वह कन्या १८ वर्ष से कम उम्र की है तो मजिस्ट्रेट को चाहिए कि मुकदमे के परिणाम की प्रतीक्षा किये बिना उसे उसके अभिभावको के हवाले कर दे।[५]

१. वही, पृष्ठ ९०३

२. Prevention of Immoral Traffic Act

३. ऐसे अपराध में यह साबित करना पड़ेगा कि अभियुक्त ने अप्राकृतिक व्यभिचार किया, जान-बूझकर किया और शिश्न प्रवेश हुआ—रतनलाल, पृष्ठ ९२४

४. वही, पृष्ठ १३२५.

५. Criminal Procedure Code Vol. V—दफ़ा ५५२

यदि कोई व्यक्ति साधन रहते अपनी पत्नी तथा जायज या नाजायज बच्चों का भरण-पोषण नही करता तो मजिस्ट्रेट उनके पोषण के लिए पति या पिता से, उसकी शक्ति के अनुसार ५०० रुपये माहवार तक दिला सकता है। यदि वह नही देता तो कुर्की करानी चाहिए।[१]

भारतीय दंडविधान में कैद दो प्रकार की है—साधारण तथा सख्त यानी सपरिश्रम। वासना के सभी अपराधों में कठोर कारावास का दंड मिलता है।

भारतीय दंडविधान की कुछ महत्त्वपूर्ण धाराओ को दिखाने का तात्पर्य है पाठकों को हमारे देश मे वासना के अपराधों की गणना, भावना तथा दंड का परिचय कराना। पर पाश्चात्य जगत् मे कामुकता के अपराधो के जो अनेक रूप हैं, जो अनेक प्रकार है, उनकी जानकारी हमको यानी हमारे देश को अभी नही हो पायी है। पर ऐसे अपराधो को समझने के लिए तथा उनके सम्बन्ध में पश्चिम के लिए आदर्श विधान जानने के लिए ब्रिटिश दंडविधान की जानकारी होनी चाहिए।

हम यह बतला आये है कि ब्रिटिश दंडविधान लिखित नही है, परम्परागत है। उसका लिखित रूप अब बन रहा है। अतएव उसे समझने में थोडी सावधानी बरतनी होगी। वासना सम्बन्धी अपराध तथा ग्रेट ब्रिटेन मे उनकी दंड-व्यवस्था को समझने के लिए हमको इस सम्बन्ध में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एक अनुसंधान तथा उसकी रिपोर्ट से सहायता लेनी होगी।[२]

(२) ग्रेट ब्रिटेन में

वासना सम्बन्धी ब्रिटिश दंड

कामुक अपराधों के लिए ग्रेट ब्रिटेन मे बहुत-सी दफ़ाओ के अन्तर्गत, जो दूसरे अपराधों के लिए बनायी गयी थी, कामुक अपराध आ जाते थे। सन् १८६१, १८६५, १९२८ आदि के नियम को, ऐसे अपराधो को दंड देनेवाले सभी नियम तथा अधिनियम परिपाटीवाले दंड आदि को १९४९ मे एकत्रित किया गया था। इनमें भी सशोधन, सुधार तथा परिवर्द्धन करके उस देश में "कामुक अपराध नियम, १९५६"[३] बना, जो

१. वही—भाग ४—दफ़ा ४८८

२. Sexual Offences—A Report of the Cambridge department of Criminal Science—Pub. Macmillan & Co , London–Edition 1957

३. Sexual Offences Act, 1956

१ जनवरी १९५७ से लागू कर दिया गया है। ग्रेट ब्रिटेन ऐसे उन्नत राज्य का यह नवीनतम नियम अपराधशास्त्र मे अपना विशेष स्थान रखता है।

इस नियम की बहुत-सी विशेषताएँ है। सजा की मियाद हटा दी गयी है। अधिक से अधिक सजा दी जा सकती है। "भोग की इच्छा से किया गया अपराध" के स्थान पर अब "सभोग" मात्र ही अपराध है। प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक संभोग सावित करने के लिए यह जरूरी नही है कि प्रसंग में वीर्यपात भी हुआ हो। शिश्न का प्रवेश करना ही प्रसग है। बलात्कार को साबित करने के लिए शिश्न-प्रवेश पर्य्याप्त है।[1] बालिग या नाबालिग दोनो ही दंडनीय है।[2] स्त्री के साथ बलात्कार अथवा "पति" बनकर, "पति का स्वांग कर" प्रसंग करना बलात्कार है। सहवास की वास्तविक रजामन्दी के बिना किया गया प्रसग बलात्कार है।[3] यदि भय दिखाकर या अज्ञानवश किसी के साथ प्रसंग प्राप्त कर लिया गया तो बलात्कार है। उदाहरण के लिए एक दवा बेचनेवाले ने १९ वर्ष की एक लड़की को, जिसे बेहोशी का दौरा होता था, "कुदरत की डोरी तोड़कर"[4] बीमारी अच्छा करने के बहाने से उसके साथ संभोग किया। यह बलात्कार माना गया। एक संगीत अध्यापक ने १६ वर्ष की अपनी एक लडकी छात्रा को उसके गले की आवाज मधुर बनाने के लिए "नीचे के मार्ग से हवा का रास्ता खोलने के लिए"[5] उसके साथ प्रसंग किया। यह भी बलात्कार हुआ। इसी प्रकार स्त्री के सामने पति का स्वाग बनाकर उसे धोखा देकर प्रसग करना भी बलात्कार है।[6] पर बलात्कार के मामले मे यह साबित करना जरूरी है कि दूसरे पक्ष की रजामंदी नही थी। यदि लड़की १६ वर्ष की है तो प्राय. देखा गया है कि लड़की भी सब कुछ जानती है, उसकी कम उम्र होना उसकी "स्वीकृति" का न होना नही साबित कर सकता।[7] असली रजामदी थी या सिर्फ "उसकी बात मान ली"—इसमे अन्तर करना बडा कठिन है।[8] एक स्त्री ने ८ आदमियो पर मुकदमा चलाया कि उन्होने

१. धारा ४४ २. धारा ४६
३. वही, धारा ४४
४. सरकार बनाम फ्लैटरी, १८७७ का केस
५. सरकार बनाम विलियम्स, १९२३ का केस
६. सन् १८८५ का कानून
७. न्यायाधीश हम्फ्रेज का फैसला, सरकार बनाम हार्लिग, सन् १९३७
८. सरकार बनाम डे—सन् १९३४

उसे एक दरवाज़े के बगल मे खड़ी कर एक के बाद दूसरे ने उसके साथ प्रसग किया। जिस मकान का जिक्र था, वह वेश्यालय था, जिस औरत ने दोष लगाया था। वह स्वयं वेश्या थी। पर न्यायाधीश कोलरिज ने जूरी लोगों से कहा कि अगर इतने आदमियों को देखकर डर के मारे वह खडी रही, अगर उसके अनुरोध पर भी सब लोगो ने पारी-पारी से उसके पास आना स्वीकार किया तथा सभी अभि-युक्त उसका इस प्रकार उपयोग कर बैठें, तो भी यह सचमुच मे बलात्कार है। इसी प्रकार एक दूसरा रोचक मुकद्दमा है। यह मान लिया जाता है कि जब किसी कन्या का विवाह होता है तो उसका मतलब ही यह है कि वह स्वीकार करती है कि उसका पति उसके शरीर का उपयोग करेगा। पर सन् १९४९ में एक मुकदमे में, सरकार बनाम क्लार्क, यह फ़ैसला हुआ कि यदि पत्नी अपने पति से कह दे कि मैं तुम्हारे साथ सहवास नही करना चाहती, तो उसके साथ पति का प्रसंग करना बलात्कार है।

धारा २ (१) के अनुसार डरा-धमकाकर प्रसंग के लिए किसी स्त्री को राजी कर लेना भी अपराध है। झूठा बहाना या झूठी बातें गढ़कर किसी स्त्री को प्रसंग के लिए फुसलाना भी अपराध है। (धारा ३-१) डरा-धमकाकर प्रसंग करने के लिए शिश्न-प्रवेश बलात्कार नही हो सकता, पर धारा ३७ के अनुसार दंडनीय है। धारा ४ (१) के अनुसार मादक दवाएँ खिलाकर भोग करना भी अपराध है। १३ वर्ष की कन्या के साथ या उससे कम उम्र वाली के साथ, स्वीकृति से भी प्रसंग करना बलात्कार है। १३ वर्ष से १६ वर्ष की लड़की के साथ किसी भी दशा में किया गया प्रसंग अपराध है, दण्डनीय है।[१]

प्रसंग या सहवास को कानून के दायरे मे बाँधने का पूरा प्रयत्न किया गया है। यदि गैर-क़ानूनी उम्र में विवाह हो भी गया हो तो वह सहवास के लिए अस्वाभाविक तथा गैर-कानूनी था। १६ वर्ष की उम्र के बाद यह समझा जाता है कि लड़की सब कुछ समझती है।[२] पहले, सन् १८८५ के क़ानून के अनुसार ऐसे मुकदमे अपराध होने

१. इंग्लैंड में कानूनन १२ वर्ष की उम्र की या इससे अधिक उम्र की लड़की के साथ विवाह जायज था, यानी १२ वर्ष की उम्र "विवाह की स्वीकृति" के लिए पर्याप्त समझी जाती थी। सन् १९२९ के Marriage Act ने यह उम्र १६ वर्ष की कर दी।

२. इस धारा के कुछ अपवाद भी हो जाते है। सन् १९३८ में चार लड़कों पर,

के तीन महीने के भीतर चलाये जाने चाहिए थे। १९२८ के कानून ने इस अवधि को बढाकर एक वर्ष कर दिया। सन् १९५६ के कानून के अनुसार यही अवधि कायम रही। इस कानून के साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि अधिकांश ब्रिटिश न्यायाधीशो का मत है कि १४ वर्ष की उम्र से कम के लड़के को वास्तविक व्यभिचार का दोषी नही बनाया जा सकता। वह "प्रयत्न" कर सकता है, पर वास्तविक कार्य नही कर सकता। इसी प्रकार १६ वर्ष की उम्र से कम की लड़की को व्यभिचार का दोषी नही बनाया जा सकता। बालिग स्त्रियाँ कम उम्र की लड़कियो को भडकाने, प्रोत्साहन करने तथा विषय कराने पर राजी करा सकती है, पर कम उम्र की लड़की को सजा नही देते।

धारा ७—विक्षिप्त, मूर्ख तथा शरीर से बेकाम स्त्री के साथ प्रसंग करना, धारा ८ (१) के अनुसार पागल, रोगी, अस्पताल मे दाखिल स्त्री से प्रसंग करना, धारा ९ (१) के अनुसार ऐसी दोषपूर्ण स्त्री को प्रसंग के लिए प्राप्त करना, यह सब अपराध है। इस कानून ने सन् १९१३ के मानसिक दोष नियम[१] की धारा ५६ को अपनी धारा ४५ के अनुसार बदलकर मानसिक दोष की नयी व्याख्या की है। इसके अनुसार मानसिक रोगी यानी पागल वह स्त्री-पुरुष है जिसको स्वयं की रक्षा के लिए तथा जिसके द्वारा दूसरे की रक्षा के लिए दूसरे के नियंत्रण तथा देखरेख मे रहना हो। या, जिसका मानसिक दोष ऐसा हो कि उसमे ऐसी दुष्ट अपराधी प्रवृत्ति पैदा हो गयी हो कि उसकी देखरेख के लिए तथा उससे दूसरों की रक्षा के लिए, उस व्यक्ति को नियंत्रण मे रखना हो। मानसिक दोष होना उसको मानते है जिसका मस्तिष्क १८ वर्ष की उम्र के पहले ठीक से विकसित न हो सका हो या किसी चोट-चपेट या आन्तरिक कारणो से दोष उत्पन्न हो गया हो।

धारा १० (१) के अनुसार अपनी पौत्री, लड़की, बहिन (चचेरी भी) तथा माता के साथ, धारा ११ (१) के अनुसार अपने पितामह, पिता, भाई (चचेरा भाई भी) या बेटे के साथ व्यभिचार अपराध है। सन् १९०८ के क़ानून के पहले इंग्लैण्ड में इस

जिनकी उम्र १६ से १८ वर्ष थी, १६ वर्ष से कम एक लड़की के साथ व्यभिचार करने का मुक़द्दमा चला, "सम्राट बनाम हैरिसन" नामक इस मुक़द्दमे में जूरियों ने चारों अभियुक्तों को यह कहकर छोड़ दिया कि उनको क़ानून की जानकारी नहीं थी—वे अनजान थे।

१. Mental Deficiency Act, 1913

प्रकार के व्यभिचार का मुकदमा मजहबी—पादरियों की अदालत में ही चल सकता था। धारा १४—१, २, ३ के अनुसार किसी महिला पर अश्लील प्रहार करना, चाहे वह प्रहार मुँह से जबानी धमकी देना ही क्यो न हो, उससे प्रसंग करने का प्रयत्न मात्र हो, या स्त्री के सामने नंगे होकर या अपनी इन्द्रिय खोलकर जाना (एक न्यायाधीश के अनुसार यदि अगला हिस्सा खोलकर न चले, पिछला खुला हो तो अश्लील प्रहार नही हुआ) अपराध है। इस अपराध के अंतर्गत यह आवश्यक नही है कि प्रसंग होकर रहे, पर अश्लील कुचेष्टा भी अपराध है। इशारेबाजी भी अपराध है। जिसके प्रति अश्लील कुचेष्टा की जाय, यदि वह राजी भी हो, तब भी अपराध है। एक १७ वर्ष की उम्र का लड़का १५ वर्ष ९ महीने उम्र की एक लडकी के प्रति अश्लील कुचेष्टा मे चार महीने के लिए दण्डित हुआ।[१]

धारा १२, १३, १४, १५, अपनी उपधाराओं सहित परस्पर प्रसंग से सम्बन्धित है। इसके प्रथम यानी १२, १ के अनुसार अपनी ही योनि के या पशु के साथ प्रसंग जघन्य अपराध है।[२] इस धारा मे यह आशा की जाती है कि जिसके साथ अप्राकृतिक प्रसग किया गया उसकी उम्र १७ वर्ष से कम है तथा शिश्न-प्रवेश पर्याप्त अपराध है। वीर्य-पात कोई जरूरी बात नही है।[३] जिसके साथ प्रसंग किया जाता है, उसे "रोगी" कहते है, तथा जो करता है उसे "एजेन्ट" कहते है। यदि कोई स्त्री पशु से प्रसंग कराती है[४] तो वह भी जघन्य अपराध है।

पशु के साथ प्रसंग के अपराध भी काफ़ी होते हैं। घर मे पालतू मुर्गे के साथ[५], कुत्ते के साथ[६] इत्यादि जघन्य अपराधो मे दंड मिल चुका है। कुत्ते के साथ पत्नी की इच्छा नही थी, पति ने कुत्ते को उत्तेजित कर पत्नी को प्रसंग कराने पर मजबूर किया। पर सजा पत्नी को मिली। पत्नी के साथ अप्राकृतिक प्रसंग भी जघन्य अपराध है।[७] एक दूसरी धारा के अनुसार बालिग-बालिग का, पुरुष या स्त्री, दोनों

१. सम्राट् बनाम लावेज, १९२९—न्यायाधीश Avory का फ़ैसला
२. Felony
३. Sexual Offences Act, 1956, Section 44
४. Rex (सम्राट्) Versus Bourne, 1952
५. सम्राट् बनाम ब्राउन, १८८९
६. सन् १९५५ की घटना
७. सम्राट् बनाम जेलीमान, १८३८

का परस्पर प्रसंग जघन्य अपराध है। परस्पर प्रसंग के लिए पत्र लिखना भी अपराध है। चाहे वह पत्र जिसके नाम लिखा गया है, और न भी पहुँचा हो।[1]

धारा ३२ के अनुसार किसी पुरुष का सार्वजनिक स्थान पर किसी पुरुष को अनैतिक कार्य यानी व्यभिचार के लिए अनुरोध करना, प्रयत्न करना, फुसलाना, मुस्कराना, जीभ से होंठो को चाटकर ललचाना इत्यादि अपराध है।

सक्षेप में, ब्रिटिश क़ानून वासना सम्बन्धी अपराधों के लिए काफी दंड देता है। ऐसे अपराधो की दो श्रेणियाँ होती है। एक वह जिनमें छोटी अदालतो मे मुकदमा नहीं चल सकता तथा दूसरे वे अपराध जो छोटी अदालतों में भी विचारणीय हैं। जघन्य अपराध छोटी अदालतो मे नही जाते। दो श्रेणी के अपराधों के अनुसार बलात्कार के लिए क्रमश: १० तथा ७ वर्ष, धमकी देकर स्त्री को प्राप्त करना अथवा इसके लिए प्रयत्न करना दो वर्ष, झूठा बहाना कर स्त्री को प्राप्त करना दो वर्ष, दवा या नशा खिलाकर प्रसग का अवसर प्राप्त करना दो वर्ष, १३ वर्ष की उम्र से नीचे की कन्या से भोग करना आजन्म कैद, ऐसा करने का प्रयत्न करना दो वर्ष, १३ से १६ वर्ष की लडकी से प्रसंग करने या ऐसा करने का प्रयत्न करने पर दो वर्ष कैद, विक्षिप्ता, भूखी, अपाहिज, रोगी स्त्री से प्रसग करने पर या प्रयत्न पर दो वर्ष कैद का दंड होगा।

माँ, बहिन, बेटी आदि से प्रसग करने पर आजन्म कैद या सात वर्ष की सजा तथा ऐसा करने का प्रयत्न करने पर दो वर्ष की सजा मिलेगी। पिता, पुत्र आदि से प्रसग पर स्त्री को सात वर्ष और वैसा प्रयत्न करने पर दो वर्ष दड होगा। महिला पर अश्लील प्रहार के लिए दो वर्ष, परस्पर प्रसंग, पुरुष-पुरुष के अप्राकृतिक व्यभिचार पर आजन्म कैद, वैसा करने का प्रयत्न करने पर दो वर्ष, ऐसे प्रसंग के लिए प्रहार करने पर दस वर्ष, पुरुष पर अभद्र प्रहार के लिए दस वर्ष, पुरुष का पुरुष के प्रति अश्लील व्यवहार पर दो वर्ष तथा अश्लील कार्य के लिए किसी पुरुष को प्राप्त करने की चेष्टा पर या पुरुष द्वारा पुरुष या स्त्री से छेडछाड़ करने पर दो वर्ष कैद की सजा मिलेगी।

ब्रिटिश क़ानून के दोष

भारत का वासना सम्बन्धी क़ानून ब्रिटिश क़ानून से बहुत कुछ समानान्तर है। यही नही, चेष्टा यह की जाती है कि ऐसे अपराधों पर ब्रिटिश क़ानून के अनुसार ही

१. सम्राट् बनाम उड्स, १९३०

कठोर से कठोर सजा मिले। पर भारत तथा ब्रिटेन दोनों देशों के क़ानून स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्बन्ध के विषय मे जितनी कठोरता चाहते है, आज का विज्ञान उनके सम्बन्ध में अब नये दृष्टिकोण से काम लेने की सलाह दे रहा है। सन् १९५६ के बने ब्रिटिश क़ानून मे सशोधन तथा परिवर्तन की चर्चा जोरों से है। भारत मे भी उसके संशोधन पर विचार हो रहा है।

उदाहरण के लिए कामवासना को पूर्णत. स्वाभाविक प्रवृत्ति मानकर तब कुछ दंड देने की बात सन् १९२२ से ही चल रही है। यदि एक चीज स्वाभाविक है तो निश्चित परिस्थितियो मे स्वाभाविक कार्य करना अपराध नही हो सकता। इसी लिए अब कहा जा रहा है कि यदि १८ वर्ष की उम्र से कम का एक स्वस्थ क्रियाशील लड़का तथा १६ वर्ष से ज़रा कम उम्र की लडकी स्वाभाविक वासना-वश आपस मे यह "अपराध" करते है तो वह "अपराध" नही है।[1]

पुरुष-पुरुष तथा स्त्री-स्त्री के परस्पर संभोग के सम्बन्ध में कठोरता कम करने का विचार हो रहा है। सन् १९५४ मे ब्रिटेन मे पुलिस को १५,६३६ अपराधों का पता चला। उनमे से ७,१८४ स्त्रियो पर अश्लील प्रहार के अपराध थे तथा ३, २८० पुरुषो पर अश्लील प्रहार के अपराध थे। ऐसे प्रहार से पीडित यानी जिन पर प्रहार किया गया—उनकी उम्र १६ वर्ष से कम थी। पुरुषों पर प्रहार अप्राकृतिक संभोग की नीयत से किये गये थे। प्रहार उसे कहते है जिसमे किसी न किसी प्रकार अवैधानिक रूप से जबर्दस्ती की गयी हो। यदि कोई लड़का या लड़की किसी दूसरे के कंधे पर इसी नीयत से हाथ रख दे तो वह प्रहार नही हुआ। दूसरे, पहले यह प्रणाली थी कि यदि कोई पुरुष १६ वर्ष से कम उम्र की कन्या के हाथ का उपयोग अपनी हस्त-क्रिया कराने के लिए करे तो वह प्रहार है अथवा नही, इसका निर्णय किये बिना प्रहार के अन्तर्गत दंड देते थे। अतएव प्रहार की व्याख्या करना कठिन है। दूसरे यदि १६ वर्ष से कम उम्र की लडकी या लड़का स्वत. राजी हो तो प्रहार कैसे हुआ। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अपराध-शास्त्र के लोगो ने जो खोज की थी, उससे पता चला कि लड़कियो पर अश्लील प्रहार के २२४ मामलों में से, जिनका सम्बन्ध ८ वर्ष से १६ वर्ष की उम्र की लड़कियो से था, ७४ मामलों में उन छोटी बच्चियों की रज़ामन्दी थी।[2]

१. L. Radzinowicz Sexual Offences–Page 425

२. Sexual Offences—पृष्ठ ४१३

रजामन्दी की उम्र

बच्चों की रजामन्दी में किये गये अपराध को अपराध माना जाय या नहीं? सन् १९२५ में ब्रिटिश गृहविभाग की एक जाँच कमेटी बैठी थी।[१] उसकी राय थी कि १६ वर्ष से कम उम्र के लड़के या लड़कियों के साथ उनकी स्वीकृति से भी व्यभिचार करने पर उसे अश्लील प्रहार मानकर दंड देना चाहिए। किन्तु सन् १९५६ के क़ानून ने इस विषय को इसी लिए स्पष्ट नही किया है कि वे स्वयं अनिश्चित है कि रजामन्दी पर क्या करना चाहिए।

इसी प्रकार एक दूसरा दोष है। तेरह वर्ष की या उससे कम उम्र की कन्या से उसकी स्वीकृति से प्रसंग करना जघन्य अपराध है[२] और उसमें आजन्म कारावास की सजा मिलती है। अब यह आन्दोलन चल रहा है कि स्वीकृति (कन्या की रजा-मंदी की उम्र) १३ से बढाकर १६ कर दी जाय। सन् १८६१ मे १० वर्ष की मियाद थी। १८७५ में १२ वर्ष हो गयी। १८८५ में १३ वर्ष कर दी गयी। १९२५ की कमेटी में तीन सदस्य १६ वर्ष की उम्र के पक्ष में थे, चार व्यक्ति सत्रह वर्ष तथा एक व्यक्ति १८ वर्ष को "स्वीकृति की उम्र" मानते थे। इधर ब्रिटेन के विवाह-विधान के अनुसार विवाह की उम्र १६ वर्ष मान ली गयी है। अतएव १६ से पहले "रजामन्दी" की उम्र नही हो सकती। सवाल तो यह है कि क्या १६ वर्ष की उम्र भी ठीक है? १९५५ की कमेटी की राय थी कि "जब हम १६ वर्ष की बच्चियों को स्कूल मे, खेलभूमि मे, कारख़ानों में देखते है तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सभी बच्चे ही है और इनको असामयिक प्रसंग से बचाना चाहिए, क्योकि इससे उनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पडेगा और यदि वे गर्भवती हो गयी तो और भी बुरा प्रभाव पड़ेगा।" पर यह सोचने की बात है कि १६ वर्ष की लड़की से विवाह करके प्रसंग करने से क्या उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नही पड़ेगा? दोनो बातों मे अन्तर कैसे होगा?[३] एक सवाल यह

१. Report of the Departmental Committee on Sex Offences against young persons 1925—Chairman Mr. (Sir) J. C. Priestley

२. Felony

३. नये अपराधशास्त्र के सामने एक बड़ी समस्या यह भी है कि प्रसंग के लिए पुरुष को दंड मिलता है पर बहुत सी लड़कियां प्रसंग करने के लिए प्रोत्साहित करती है, उनको दंड क्यों न मिले? यद्यपि Law Times, London 29th July 1922 **के अनुसार लड़कों को बुरे मार्ग में ले आनेवाली लड़कियाँ कम मिलेंगी।**

भी है कि १७, १८ वर्ष स्वीकृति के लिए भले ही मान लिया जाय पर यदि अपराधी यह कहे कि "मैने अमुक की उम्र १६ वर्ष से ऊपर समझी," तो उसे क्यों दोषी माना जाय ? जन्म की तारीख का सबूत लिये-लिये कोई नही घूमता। नये (१९५६ के) कानून ने २४ वर्ष से कम उम्र के लडके के लिए १६ वर्ष की लड़की को ही "रजामदी" देने योग्य माना है। पर उसके साथ ही यह भी गुन्जायश कर दी है कि यदि उम्र कम भी हो पर यह साबित हो जाय कि लडके को विश्वास था कि उम्र ज्यादा है तो वह दडनीय नही होगा। परिणाम यह हुआ कि १४ वर्ष की लड़की भी १६ की मान ली जाती है। कानून ने यह तो कर दिया है कि १३ से १६ वर्ष की उम्र की लडकी अगर राजी भी हो, तब भी उसे (अपराधी को) सजा मिलेगी।

समय के पूर्व यौवन

प्रसग के योग्य उम्र का निर्णय करना बड़ा कठिन है। जो लोग १६, १७, १८ वर्ष को विवाह के योग्य उम्र मानते है उनको यही उम्र प्रसंग के योग्य भी माननी पडेगी, क्योकि विवाह का परिणाम भी वही होता है। किन्तु, सबसे बड़ी समस्या यह हो गयी है कि विज्ञान की नवीनतम खोज के अनुसार आज की सभ्यता की रहन-सहन, जीवनचर्या तथा वातावरण मनुष्य को समय के पूर्व ही जवान बना देता है। ब्रिटिश मेडिकल असोशियेशन के कथनानुसार आज के लड़के या लड़कियाँ अपनी वास्तविक उम्र से पॉच वर्ष बड़े है।[1] यानी १२ वर्ष की लड़की को १७ वर्ष की समझना चाहिए। आज विश्व भर में वासना के अपराध इसी लिए बढ़ रहे है कि पिता-माता तथा अभिभावक अपने बच्चो को १२-१४ वर्ष की उम्र तक "अनजान" समझते हैं। यदि वे उनकी वास्तविक उम्र में पॉच वर्ष बढाकर चले तो परिस्थिति में बड़ा सुधार होगा। इस खोज से यह भी धारणा होती है कि हमारे शास्त्रकारो ने १२ वर्ष की उम्र यदि विवाह के लिए रखी थी तो कोई भूल नही की थी। वैसे विवाहो से वासना के अपराध अवश्य कम होते थे। क्या जल्दी विवाह कर देने से ऐसे लड़के लड़कियों की समस्या हल हो जायगी जो जल्दी जवान हो जाते है तथा जिनकी इन्द्रियाँ सचेत हो जाती है ? पर, इन्द्रियों की असामयिक चेतना से ही, लड़के-लड़कियों में, विशेष कर लडकियो में अपराध बढ़ता है, यह नही कहा जा सकता। यह जरूर है कि वासना के अधिकांश

१. Getting Married, 1958, Pub. British Medical Association

अपराधी असामयिक यौवन के शिकार प्रतीत होते है।[१] जो लड़की देखने में जितनी ही जवान मालूम होगी, उसकी कामुक भावनाएँ उतनी जाग्रत अवश्य होंगी और वह पुरुषो को उतना ही अधिक आर्कषित करेगी। यदि असामयिक यौवन के साथ बुद्धि का भी उसी के अनुपात मे विकास हो तो जवानी की भूले कम हो सकती है पर ऐसा होता नही और यह न होना ही बडा घातक होता है। लड़कियो का यौवन उनके मासिक धर्म से शुरू होता है। पर प्रथम रजोदर्शन से यौवन प्रारम्भ नही होता है। जल्दी रजोदर्शन साधारण लड़कियो में प्राप्त जीवनी-शक्ति तथा कार्यशक्ति से विशेष अधिकता प्रकट करता है।[२] इसी अवसर पर इस विशेष शक्ति को ठीक रास्ते पर उतार देना है, अन्यथा बड़ी हानि होगी। अपराधी तभी पैदा होगा जब इस शक्ति को पहचाना न जाय। हीली ने अपनी पुस्तक में ऐसे बहुत से लडके-लडकियो का जिक्र किया है जो १२ वर्ष की उम्र मे ही जवान हो गये थे। उन्होने एक १५ वर्ष के लड़के का वर्णन किया है जो अपनी आवाज वगैरह से भी काफी बडा मालूम होता था और ऐंसे लड़के खतरनाक भी होते हैं, अतएव सोचना यह होगा कि हम "रज़ामंदी" तथा विवाह की उम्र १६ साल से ऊपर रखकर ऐसे लड़कों और लडकियो को व्यभिचारी बनने दे या इनका जल्दी विवाह हो जाना ही ठीक होगा। इस सम्बन्ध में हीली लिखते हैं—

"कई मर्तबे यह कहा गया है कि ऐसे मामलो मे शीघ्र विवाह ही एक मात्र उपाय है। प्रकृति ने इन व्यक्तियों को तैयार कर दिया है और ये अब बालिग (वयस्क) कामजीवन के योग्य हो गये है। असभ्य लोगों मे या सभ्यता की साधारण श्रेणी मे सादा जीवन बितानेवाले लोगो मे यह चीज़ मुमकिन भी है। पर हमारी आर्थिक तथा अन्य पहेलियों के सामने यह सम्भव नही है। हमने प्रायः कुटुम्बवालो को कहते सुना है कि उनको असामयिक जवान लडकी का विवाह कर देने मे कोई आपत्ति नही है पर उस समय तक न तो कोई उसके प्रेम मे फँसा होता है, न कोई योग्य वर मिलता है। ऐसी कन्या से विवाह करने के लिए जो लोग आगे आते है वे स्वय बहुत बदनाम, कम उम्र, दरिद्र तथा हर प्रकार से अवांछनीय पति होते हैं। विवाह के योग्य उम्र के सम्बन्ध में रीति रिवाज अपूर्ण है। इस संबन्ध में कानून अधूरा है क्योकि यह व्यक्ति-व्यक्ति की विभिन्नता पर निर्भर करता है। प्रायः १६ वर्ष की एक लड़की शारीरिक

१. William Healy—Individual Delinquency

२. Gynecological Journal—Williams, May 1902

तथा मानसिक शक्ति के अनुसार ३० वर्ष की स्त्री के बराबर हो सकती है या १४ वर्ष का लड़का किसी बालिग़ की शक्ति रखता है।[१]

इस सम्बन्ध मे हमे आगे चलकर और विचार करना है। ब्रिटिश कानून का दोष देखते-देखते हम और भी गहरे पानी में चले गये। वासना के अपराधो की ढेरों श्रेणियाँ है। ब्रिटिश कानून उनसे संघर्ष करने का बराबर प्रयत्न कर रहा है। वहाँ एक बड़ा दोष यह चल पड़ा है कि लड़कियों तथा स्त्रियो के सामने अपनी इन्द्रिय खोल-कर दिखाते है।[२] सन् १९५४ मे पुलिस ने ऐसे अश्लील प्रदर्शन के लिए २,७२८ पुरुषों की सजा करायी थी। किन्तु अश्लील प्रदर्शन क्या है? क्या केवल इन्द्रिय को खोल देने से ही अश्लीलता हो जाती है? और बहुत से भद्दे तथा निन्दनीय प्रदर्शन अश्लील नही है?[३]

पुलिस ने सन् १९५४ में ब्रिटेन में परस्पर संभोग के १,०४३ मामले पकड़े। ऐसे कार्य के लिए अश्लील प्रहार करने के अपराध में ३, २८० मामले पकडे गये थे। इसमें से २,०३४ मामले पुरुष-पुरुष से सम्बन्धित थे। पर इतने ही मामले नही थे। ऐसे अपराधों को बहुत से नगरों में स्थानीय म्युनिसिपल उपनियमो के अतर्गत (जैसे सार्वजनिक पेशाबघर मे गन्दा काम) सजा देते है। सन् १९५४ में ऐसे उपनियमो के अन्तर्गत ३८६ चालान हुए। इस अपराध मे प्राय. यह देखा जाता है कि जोर-जबर्दस्ती कम होती है। दोनो पक्ष राजी रहते है। और जब दोनो पक्ष राज़ी हो तो सजा देनी चाहिए या नही, यह विचाराधीन बात है। प्रायः ऐसी दशा मे सजा नही देते। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अपराधशास्त्रियो ने ऐसे ९८६ मामलों की, पुरुष-पुरुष संभोग की जाँच की। इनमे से केवल दो को सज़ा मिली थी। बाकी सब छूट गये थे क्योकि "रजामन्दी" थी।"[४]

अधिकांश यूरोपीय देशों मे रज़ामन्दी से होनेवाले पुरुष-पुरुष संभोग पर अप-राधी को दंड नही देते। ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक इसको इतना जघन्य अपराध नहीं

१. Healy—पृष्ठ २४८

२. पीछे का हिस्सा दिखाना अपराध नहीं है। कानून इस विषय में मौन है।

३. इस विषय में Claude Mullins का लेख Sexual Offenders-Medico-Legal and Criminological Review, Vol. II, Para III-July 1934-Page 236 देखिए।

४. Sexual Offences—Page 431

समझते कि बहुत लम्बी सजा हो।[1] दो काफी बुजुर्ग लोग इस अपराध में दंडित हुए। उन्हें १२ महीने की सजा मिली। अपील पर वे इसलिए छूटे कि जाड़े की रात में यदि एक सार्वजनिक छायादार स्थान मे न जाते तो कहाँ जाते ?

(३) संयुक्त राज्य अमेरिका मे

संयुक्त राज्य अमेरिका में ५० राज्य है। वासना सम्बन्धी अपराधों के प्रति हर एक राज्य का दृष्टिकोण बराबर नही हो सकता। भारतवर्ष मे जिस प्रकार एक ही प्रकार का कानून समूचे देश के लिए लागू है, वैसा वहाँ नही है। भारतवर्ष में केन्द्रीय सरकार का कोई जेलखाना नही है। सभी जेल प्रादेशिक है। सयुक्त राज्य अमेरिका में केन्द्रीय सरकार ने अपने जिम्मे जो कार्य रखे है उनके विरुद्ध आचरण करनेवालों को केन्द्रीय कारागार में रखते हैं तथा प्रादेशिक अपराध करनेवाले को राज्य के कारागार में रखते है। हत्या, कामवासना के अपराध, चोरी, डकैती ये सब प्रादेशिक नियमो के अन्तर्गत है। इसलिए बहुत से राज्यों में हत्या के अपराध में प्राणदंड मिलता है, किन्तु कितने ही राज्यों में नही। केन्द्रीय सरकार अनैतिकता के उन्ही अपराधो को देखती है जो एक प्रदेश का रहनेवाला दूसरे प्रदेश के नागरिक के साथ करे। वैसी दशा में केन्द्रीय सरकार दंड देती है। केन्द्रीय सरकार प्राणदंड देती है।

हर अपराध की सजा हर एक राज्य जब स्वयं निश्चित करता है तो अपने रीति रिवाज़ तथा दृष्टिकोण के अनुसार करता होगा। जिस राज्य मे समाज की जैसी रचना होगी, वैसा नियम बनेगा। इसलिए अपराध का स्वत: कोई विशेष महत्त्व न होकर समाज का महत्त्व होता है। जैसा समाज होगा, वैसी व्यवस्था होगी। आज कौन इस बात की कल्पना कर सकता है कि ७ अप्रैल १८३२ को इंग्लैण्ड के कार्लाइल नामक नगर में जाज़ेफ टाम्पसन नामक एक व्यक्ति ने[2] अपनी स्त्री को "एक प्लेग, एक पागल कुत्ता तथा एक मरे हुए तमंचे के समान" घोषित कर उसे नीलाम कर दिया। न्यूफ़ाउंडलैंड नस्ल का एक कुत्ता तथा २० शिलिंग यानी साढ़े तेरह रुपया लेकर उसने अपनी स्त्री बेच दी। सन् १९५९ में इस प्रकार का क़ाम करनेवाला बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। इसी तरह सन् १८३२ में वहाँ यह कौन कल्पना करता

१. The Criminal Law and Sexual Offender—1949
२. English Digest, February, 1959

रहा होगा कि ब्रिटेन मे, १९५७ मे, चौरानवे अरब सिगरेट एक साल में खर्च होगी तथा वहा पर ९० प्रतिशत पुरुष तथा ४७ प्रतिशत स्त्रियाँ सिगरेट पीती रहेंगी। इग्लैंड में पुरुष एक दिन मे औसतन १६ सिगरेट तथा स्त्री औसतन ८ सिगरेट पीती है![१]

समय बदल जाता है। स्वभाव बदल जाता है। मनुष्य बदल जाता है। फ्रान्स के सम्राट् लुई तेरहवे को स्त्री जाति से चिढ थी। उन्होने वार्साई में एक महल इसलिए बनवाया कि वहाँ पर कोई औरत न जाने पायेगी और न दिखाई पड़ेगी। सन् १६४३ मे लुई चौदहवे गद्दी पर बैठे। वार्साई का राजमहल स्त्रियो से भर गया, विलासिता का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया।

महिला पुलिस तथा महिला अपराध

जिस इंग्लैण्ड मे क़ानूनन स्त्री को नीचा स्थान दिया जाता था, वही अब नगर की रक्षा तथा अपराध की रोकथाम का भार स्त्रियो पर भी है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंग्लैण्ड मे महिला पुलिस की भरती सन् १९०० से ही शुरू हो गयी थी। लन्दन के १०८ थानो मे ५७३ महिला पुलिस तैनात है। महिला कार्स्टेबुल को ८ पौड १० शिलिग प्रति सप्ताह (११३ रुपया) तथा उनके सार्जेन्ट (महिला) को २९ पौड १६ शिलिग यानी ३९३ रुपया प्रति सप्ताह वेतन मिलता है।[२]

पर महिला पुलिस की हर एक देश मे आवश्यकता इसलिए पड रही है कि महिलाओ मे अपराध बढ़ता जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय पुलिस संघ[३] के श्री पी० विलेतार्ते ने आदतन अपराधियों के विषय मे एक रिपोर्ट लन्दन के तृतीय अपराध-विज्ञान सम्मेलन[४] मे फ्रान्स के "आदतन अपराधी" यानी एक बार से अधिक सजा पानेवाले अपराधियों पर पेश की थी। उसमे उन्होने आदतन अपराधिनी महिलाओं के विषय में बड़े रोचक आँकड़े प्रस्तुत किये थे। उनके आँकड़ो से स्पष्ट होता है कि कुमारी अपराधिनियो की सख्या विधवा अपराधिनियो से अधिक है। तलाक-शुदा या

१. Readers Digest, January, 1958

२. **प्रायः सभी सभ्य देशों में महिला पुलिस दल है**

३. International Federation of Police Functioneries

४. Third International Congress on Criminology, London. Sept., 1955

परित्यक्ता विवाहिताओं से अधिक विवाहिता अपराधिनी महिलाएँ है। यानी सबसे अधिक अपराध विवाहिता स्त्रियाँ करती है। इनमे भी संतान-रहित विवाहिता स्त्री सबसे ज्यादा अपराध करती है और फिर उसके बाद दूसरा नम्बर ४ से अधिक बच्चेवाली स्त्रियों का है। नीचे दिये रोचक आँकड़े देखिए[१]—

बार-बार अपराध करनेवाली महिलाएँ

विधवा	३	सन्तानहीन	१२०
कुमारी	७३	१ संतान वाली	५८
विवाहिता	१२९	२ संतान वाली	३७
परित्यक्ता या तलाकशुदा	८९	३ संतान वाली	४४
		४ सन्तान वाली	६५

जितनी महिलाओं की गणना की जा सकी, उनकी यह दशा है। प्रायः सभी देशों के लिए यही औसत मान लेना चाहिए, खास कर इग्लैण्ड ऐसे देश में जहाँ मर्द कम, औरतें ज्यादा है। वहाँ की एक "विवाह करानेवाली संस्था" के अनुसार ४ विवाह योग्य स्त्रियों पर एक विवाह योग्य पुरुष होता है। एक दूसरी विवाह एजेन्सी का बयान है कि २१ से ३० वर्ष की उम्र मे फ़ी १२ पुरुष पीछे एक विवाह योग्य स्त्री है। पर ४० वर्ष की उम्र के ऊपर स्त्रियों की अत्यधिक अधिकता हो जाती है। ऐसी दशा में वासना के अपराध तो बढेंगे ही। पर संयुक्त राज्य अमेरिका मे वासना के अपराध बहुत ज्यादा बढे है। वहाँ पर दो विद्वानो ने १५०० नये विवाहो की छानबीन की तो पता चला कि प्रति ५ नव-विवाहित स्त्रियों में एक लड़की विवाह के पहले ही गर्भवती हो गयी थी।[२] वहाँ के एक प्रदेश कैलिफोर्निया मे क्षय के एक अस्पताल में २०० क्षय के रोगी मनोवैज्ञानिक कारणों से इस रोग के शिकार हुए थे, १०० नशेबाज़ी के कारण तथा १०० परस्पर संभोग (याने अप्राकृतिक संभोग) के कारण रोगी थे।

१. Revue Internationale De Droit Penal, Paris, May, 1959—Page 159

२. Ture Story, New York, 1958

पिता-पुत्री सम्बन्ध

सबसे जघन्य तथा मन को बेचैन कर देनेवाली मिसाल प्रो० स्टाकवेल ने दी है। मिस्सिसिपी के एक औद्योगिक विद्यालय मे, जो केवल कन्याओं के लिए है, लगभग १०० छात्राओं मे, जिनकी उम्र १२ से १८ वर्ष की थी, ८५ फी सदी छात्राओ को भोग का अनुभव प्राप्त हो चुका था। इनमें से ८ लडकियो का अपने सगे पिता से सम्बन्ध था। इनमें से एक लड़की तो अपने पिता के साथ संभोग करने में पूर्ण आनन्द का अनुभव करती थी, पर शेष सात को पिता के साथ ऐसा करने में आन्तरिक ग्लानि होती थी, फिर भी वे ऐसा करती थी। जिस समाज में आज के ज़माने मे वासना इतना नंगा रूप धारण कर ले उसमे क़ानून क्या कर सकता है?[१]

संयुक्त राज्य अमेरिका मे धन, वैभव, सम्पदा, शिक्षा सब कुछ होते हुए भी आज नैतिक स्तर बहुत गिर गया है। वहाँ पर (सन् १९५७ में) प्रति ११·३ सेकेण्ड पर एक बड़ा अपराध होता है। प्रति ३·९ मिनट पर एक हत्या, क़त्ल, प्रहार, व्यभिचार बलात्कार इत्यादि होता है। सन् १९५७ मे पिछले पाँच वर्षो की तुलना में २३·९ फ़ी सदी वृद्धि अपराधों में हुई। सन् ५७ मे २७,९६,४०० बड़े अपराध हुए। इन बड़े अपराधों के लिए २०,००,००० से अधिक व्यक्ति गिरफ्तार हुए। इनमे १४,०५,९६७ गोरे तथा ६,१८,०२८ नीग्रो अपराधी थे। प्रति १०० पुरुष अपराधी पीछे एक महिला अपराधिनी थी।[२]

इस परिस्थिति को ध्यान मे रखकर अमेरिकन क़ानून को समझने का प्रयास करना चाहिए,[३] यद्यपि यह स्पष्ट है कि क़ानून की सख्ती से वहाँ किसी प्रकार का अपराध कम नहीं हुआ है। वासना के अपराध उत्तरोत्तर बढते जा रहे है। अमेरिकन क़ानून मे वासना के अपराधों की तीन श्रेणियाँ हो गयीं है। पहली श्रेणी तो हुई वासना के अपराधों और अपराधियों की व्याख्या कर देना। दूसरी श्रेणी हुई वासना के अपराधों

१. Spencer L. Stockwell, M. S. W., Missisipi in International Journal of Sociology, August, 1953

२. Federal Bureau of Investigations, Washington–Annual Report, 1958

३. (i) Sex Offender Laws and their Administration, Federal Probation, Vol. 14, No. 3 (2) Organized Crime and Law Enforcement–Report to American Bar Association. The Grosby Press, 1952

की तथा तत्सम्बन्धी दंडों की समीक्षा और तीसरी श्रेणी हुई बार-बार ऐसा अपराध करनेवालों का निदान तथा चिकित्सा। इस प्रकार संयुक्त राज्य का कानून क्रमशः विकसित होता जा रहा है, यद्यपि प्रत्येक राज्य (प्रदेश) में इस विकास की मात्रा में कमी बेशी है। वैज्ञानिक प्रगति, मानव-स्वभाव की गहरी परख तथा नित्य नये-नये अनुभवों के कारण इस सम्बन्ध मे विचार भी बदलते जा रहे है। दंड की कठोरता न्यायाधीश के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। किसी न्यायाधीश को अनैतिक अपराधो से बड़ी चिढ़ हो और वह कठोर दंड दे सकता है, कोई न्यायाधीश सहानुभूति से काम लेगा।[१] पुरुष-पुरुष संभोग तथा बलात्कार के सम्बन्ध में प्रायः ऐसी बातें होती है। किस व्यभिचार को बलात्कार कहा जाय यानी किस प्रसग को स्त्री की इच्छा के विरुद्ध कहा जाय? बहुत से डाक्टरों ने एक नया सिद्धान्त निकाला है। उनका कहना है कि बालिग लड़की के साथ बिना उसकी इच्छा के प्रसंग हो ही नहीं सकता, योनि-छेदन हो नही सकता, इसलिए यदि बलात्कार "बिना इच्छा के प्रसंग" का नाम है तो गलत है। इच्छावश ही योनि-विस्तार होता है। चाहे वह इच्छा भय के कारण, मार या प्राण के भय से ही क्यों न हो। अतएव ऐसे प्रसंगों को "अश्लील प्रहार" की श्रेणी में रखा जाय, न कि बलात्कार की श्रेणी में। संयुक्त राज्य के कई प्रदेश "बलात्कार" को क़ानून से हटानेवाले हैं।

क़ानून में भिन्न दृष्टिकोण

अत· प्रश्न यह है कि किस उम्र में प्रसंग को बलात्कार यानी बिना इच्छा के किया गया व्यभिचार माना जाय और कन्या के लिए "स्वीकृति" की उम्र क्या हो? संयुक्त राज्य अमेरिका के दिलावेयर राज्य में यह उम्र ७ वर्ष है। चार राज्यों मे १० वर्ष है। १८ राज्य या प्रदेशो मे १८ वर्ष है। कुछ राज्यों मे भिन्न उम्र की कन्या के साथ बलात्कार की भिन्न सजा होगी। कुछ राज्यों मे, जैसे उदाहरण के लिए नेब्रास्का में, १५ से १८ वर्ष की उम्र के बीच में—यदि लड़की बदचलन हुई तो बदचलन के साथ बलात्कार करने पर सजा कम मिलती है या नही भी मिलती। कैलिफ़ोर्निया, जिआर्जिया, न्यूजर्सी और ओकला होमा प्रदेशो में वासना के अपराध पर बड़ी सख्त सजा मिलती है और विसकौसिन, टेनेस्सी, इंडियाना तथा वेस्ट वर्जिनिया ऐसे देशों में नर्म

१. Professor Paul W. Tappan In "Sexual Offences"—Page–500-501

सजा मिलती है। यह परिवर्तनशील सामाजिक विचार का ही परिणाम है।[1] प्रथम महायुद्ध के बाद संयुक्त राज्य मे व्यभिचार की बाढ आ गयी। युद्ध से लौटे सिपाही कामुक पागल की तरह घूमते थे। एक नही अनेक बार वासना का अपराध करनेवाले बढ गये। अतएव उनकी रोकथाम के लिए "दुबारा अपराधी" के साथ कड़ाई तथा सख्ती बरतने का तरीका निकला। केन्द्रीय सरकार तथा ५ प्रदेशो को छोडकर शेष ४५ प्रदेशो में "आदतन अपराधी" के लिए अलग नियम बने। अधिकाश प्रदेशों में तीसरी बार (वासना के) जघन्य अपराध करने पर आजन्म कारागार का नियम बना। अलबामा, अरिजोना, कनेक्टिकट, डिस्ट्रिक्ट आव कोलम्बिया, जियार्जिया, इलिनोम, इओबा, कांसस, लूसियाना, मेन मासाचुसेट, मोंटाना, नेब्रास्का, न्यूहेम्पशायर, न्यूयार्क, ओकलाहोमा, रोड द्वीप, उता, वर्जिनिया और विसकौसिन में दूसरे या तीसरे अपराध पर सजा बढ़ा दी गयी पर आजन्म कैद नही रखी गयी। कैलिफोर्निया, केंटकी, टेक्सस, वाशिगटन तथा वेस्ट वर्जिनिया में तीसरे अपराध पर आजन्म कैद अनिवार्य है। इदाहो में दंड जज की इच्छा पर निर्भर करता है। कोलोराडो, फ्लोरिडा, मिचिगन, मिन्नेसोता, मिसूरी, नेवादा, न्यूजर्सी, ओहियो तथा वियोमिग प्रदेश मे चौथे अपराध पर आजन्म क़ैद देना अनिवार्य है। नार्थ डकोता, औरेगोन, पेनसिलवानिया तथा साउथ डकोटा में आजन्म कैद जज की इच्छा पर निर्भर करती है।[2] किन्तु कानून की किताब में कठोर नियम बन जाने से यह नही समझ लेना चाहिए कि दंड भी उतना ही मिलता है। मासाचुसेट ऐसे पुराने खयाल के प्रदेश ने आजन्म कैद का नियम बना रखा है पर सन् १८८७ से यह नियम होते हुए भी आज तक एक भी आदतन अपराधी को आजन्म क़ैद नही मिली।[3] एक स्पेशल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि वहाँ अब तक ऐसे जघन्य अपराध में आदतन अपराधियो पर, जिन पर तीसरा या चौथा दोष था, ४६३ मामलों में ८० तीन या चार बार के निश्चित अपराधी थे, पर एक को भी आजन्म क़ैद नही हुई। १८१ को यानी ३९.१ प्रतिशत को प्रोबेशन अफसर की निगरानी में छोड़ दिया गया।

१. वही– Paul Tappan–पेज ५०१

२. फ्लोरिडा प्रदेश में बच्चों के साथ व्यभिचार करनेवालों के लिए बड़े कठोर नियम बनाये गये है।

३. Sexual Offences–पृष्ठ ५०५

मानसिक रोगी

नयी खोज के अनुसार अब कोई आदतन अपराधी नही है। मनोविज्ञान ने वासना के अपराधियों की एक श्रेणी निर्धारित की है जिसे मानसिक रोगी[1] या मानसिक कामुक रोगी कहते है। जिस तरह किसी को मृगी का या दमा का दौरा होता है, उसी प्रकार कामवासना का भी दौरा होता है और उस दौरे में वह अपने को रोक नही सकता। दोष उसका नही, मनोवैज्ञानिक आक्रमण का है। अतएव उस व्यक्ति को यातना देने से या जन्म भर कैद में सड़ाने से क्या लाभ? इस रोग की शुरुआत बचपन से ही हो जाती है। इसकी रोकथाम घर से ही होनी चाहिए। यदि नही की गयी तो पिता-माता या अध्यापक दोषी है, न कि अपराधी। सन् १९२६ में १७ वर्ष की उम्र से कम के बाल अपराधियो की जॉच की गयी[2] तो पता चला ६९४ लडके अपराधियों मे से ३३ ने कन्या से संभोग किया था, ३२ हस्तक्रिया करते थे, २९ पुरुष-पुरुष सभोग या पशु-संभोग करते थे, १५ ने अश्लील प्रहार किये थे तथा १० ने अश्लील प्रदर्शन किया था। यानी ६९४ मे से ११९ वासना के अपराधी थे। ३०६ (अपराधिनी) लड़कियो की समीक्षा से पता चला कि १८० लड़कियाँ लड़को के साथ सम्बन्ध कर चुकी थी। २२ हस्तक्रिया करती थी। ९ परस्पर स्त्री-स्त्री संभोग करती थी तथा १३ अश्लील प्रदर्शन एव प्रहार की दोषी थी। इस प्रकार ३०६ में से २२४ वासना की अपराधिनी थी। लड़के १७, १८ प्रतिशत ही व्यभिचारी थे, पर लड़कियां ७० प्रतिशत दुराचारिणी थी।

इसी लिए वासना के मानसिक रोगी के लिए सयुक्त राज्य के २२ प्रदेशों ने, जिनमें हवाई प्रदेश भी शामिल है, विशेष कानून बना रखे है तथा कनाडा राज्य ने भी अलग नियम बना लिया है। न्यूजर्सी प्रदेश ने सन् १९५० में तथा वियोमिंग ने १९५१ में इनके लिए नियम बनाये। आधुनिक अपराधशास्त्र ने मनोवैज्ञानिक से बड़ा सहारा लिया है। वासना एक सहज तथा स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह अपराध नही है। अपराध वही हो सकता है जहाँ नियत्रण तथा समाज की व्यवस्था के बाहर हो जाय। पर "क्षणिक उत्तेजना" वश, "भावुकता मे", "उचित-अनुचित का निर्णय करने में भूल के कारण", "भावुकता के कारण" या "प्रेरणा को नियंत्रण में रखने में कमजोरी"

१. Psychopath

२. जाँच संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई, देखिए Individual Delinquency (Healy)—पृष्ठ १४८, १४९, १५०

के कारण मनुष्य वासना के अपराध करता है, अत. यह मानसिक रोग हुआ। किन्तु इस रोग का निदान, इसकी पहचान या छानबीन बडी कठिन बात है। आज संयुक्त राज्य के कई प्रदेशो मे, जैसे न्यूजर्सी में ही, बलात्कार तथा अप्राकृतिक प्रसग ऐसे जघन्य अपराधो को भी मानसिक रोग के चश्मे से देखकर उदारता तथा सहानुभूति पूर्वक विचार करते है।[१] मिन्नेसोता प्रदेश का कहना उचित प्रतीत होता है कि राज्य का "सुधार का महकमा" बदलकर "मानसिक रोग-विभाग" कायम करना चाहिए।

चिकित्सा तथा सुधार

नियमानुसार वासना के अपराधी की दो मनोवैज्ञानिकों द्वारा परीक्षा करानी चाहिए। यह काम उन पर मुकदमा चलने के पहले होना चाहिए। पर न्यूजर्सी तथा वरमौट को छोड़कर सरकारी खर्च पर केवल इसी कार्य के लिए मनोवैज्ञानिक किसी ने नियुक्त नही किये है। बहुत से राज्यो मे मनोवैज्ञानिक निदान या निर्णय का काम अदालतो पर ही छोड़ दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि कारागारो मे या पागलखानो में रोगी और नीरोग, बीमार और तन्दुरुस्त, मिलजुल जाते है। एक साथ रखे जाते है, जिसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे ४८,००० मनोवैज्ञानिक है पर सरकार द्वारा पोषित बहुत कम है।

एक विचारधारा यह भी है कि कामुक भावना के प्रभाव को हर अपराध में तथा प्रत्येक कार्य के साथ नत्थी नही कर देना चाहिए तथा उसके प्रभाव की व्यापकता को बढ़ा देने से हमारे दिमाग़ से और बाते गुम हो जाती है।[२] बहुत-सी बाते तथा उनका कारण मार-पीट करके मालूम किये जाते है। मि० विलियम सार्जेन्ट के कथनानुसार ब्रिटिश पुलिस भी अपराधियो से अपराध कबूल कराने के लिए पुराने दकियानूसी तृतीय श्रेणी के तरीके, मारपीट आदि का प्रयोग करती है। यानी सब कुछ मनोविज्ञान ही नही है। समय-विज्ञान का भी महत्त्व है।

१. इस संबंध में यह लेख अवश्य पढ़ना चाहिए—"The Sexual Psychopath—A Civic—Social Responsibility"—Journal of Social Hygiene–Vol. 35, No. 8 Page 368-74

२. William Sargeant ने अपने ग्रन्थ "Battle for Mind" में इसकी बड़ी अच्छी व्याख्या की है।

न्यूयार्क मे, सन् १९५७ के दिसम्बर मास के प्रथम सप्ताह में कई हजार मनोवैज्ञानिक एकत्र हुए। अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों की संस्था[१] ने सर्वसाधारण विषय, औद्योगिक विषय तथा समाजविज्ञान पर २७ व्याख्यान कराये। पर इस अवसर पर सब बातों की एक बात श्री लिंडसे ने कही थी कि "मुझे इस बात से बड़ी परेशानी हो रही है कि मौजूदा बहुत से अहम मसलों पर भी हमारी इत्तला बहुत कम है। हम मूल कारणों की जॉच करते है। मूल कारण वही हो सकते हैं जिनकी हमको सबसे अधिक जानकारी हो, पर आज परिस्थिति यह है कि हम उसी को मूल कारण बनाते है जिसकी हमको सबसे कम जानकारी है।"[२]

यही दशा अपराधी की चिकित्सा के सम्बध में ह। अस्पतालों में इनके लिए अलग स्थान नही है। पागलखानों में इनके लिए अलग प्रबंध नही है। वासना के अपराधियों की विशेष चिकित्सा के लिए संयुक्तराज्य अमेरिका इतने बडे देश मे भी प्रबंध नही हो पाया है। और फिर इनको केवल अस्पताल में रख देने से ही चिकित्सा नही हो जाती। अदालतो में भी, वासना के अपराध मे, मानसिक रोग की दुहाई सब जगह स्वीकार नही की जाती। मिचिगन, न्यू हैम्पशायर तथा इन्डियाना मे यह दलील कि "मानसिक रोगी" है, अदालत मे मान ली जाती है। अन्यत्र इसे मानना या न मानना अदालत की इच्छा पर निर्भर करता है।

रिहाई के समय भी इस बात की छानबीन कर ली जाती है कि अपराधी मे सुधार भी हुआ है या नही? क्या इतना सुधार हो गया है कि वह अब समाज के लिए खतरनाक न साबित हो? यदि ऐसा अन्दाज़ लगे कि उसमे कुछ खराबी रह गयी है तो या तो उसकी रिहाई रोक दी जाय या किसी विशेष अस्पताल आदि मे और चिकित्सा के लिए भर्ती करा दिया जाय। यह नियम आदतन अपराधी के लिए है। इंडियाना प्रदेश मे ऐसे अपराधी की जॉच प्रति वर्ष की जाती है और रिपोर्ट अदालत को तथा "मानसिक स्वास्थ्य समिति" के पास भेजी जाती है। विसकौसिन, न्यूजर्सी तथा वियोमिग में आदतन अपराधी की सजा अनिश्चित काल के लिए होती है पर यह ध्यान रखा जाता है कि उस अपराध के लिए कानूनन जितनी सजा साधारण (प्रथम बार) अपराधी के लिए है, उससे ज्यादा न बढ़े तो उचित हो। न्यूयार्क मे नियम है कि

१. American Psychological Association

२. Lecture of Dr. Ogden Lindsey of Harward Medical School, American Psychological Association, Sept., 1957

उसी अपराध के लिए न्यायाधीश एक दिन से लेकर आजन्म कैद की सजा दे सकता है—वह जैसा उचित समझे। ओहियो, वर्जिनिया, विसकोसिन प्रदेशो मे निश्चित रूप से अनिश्चित काल तक के लिए आदतन कामुक जघन्य अपराधी को सजा देते है।

अस्तु, संयुक्त-राज्य अमेरिका मे विभिन्न प्रदेशों मे अधिक से अधिक तथा कम से कम सजा, वासना संबन्धी अपराधो के लिए निम्न प्रकार से है—

अपराध	प्रदेशो की संख्या	कम-से-कम सजा	अधिक-से-अधिक सजा
ताक झांक	६	डालर २५–५०	एक वर्ष
लम्पटपन	८	डालर ५–२५	एक वर्ष
अश्लील प्रदर्शन	३६	डालर ५–२५ या ३०दिन	तीन वर्ष
माता-पिता-भाई-बहन संभोग	५०	१ से ३ वर्ष या डालर २००–१०००	बीस वर्ष[1]
पुरुष-पुरुष संभोग	५०	१ से ३ वर्ष	आजन्म कैद[2]
बलात्कार	५०	२ से २१ वर्ष	प्राणदंड या आजन्म क़ैद[3]
वेश्यागमन	३५	डालर २०	एक से पाँच वर्ष
पर-पत्नीगमन	४४	डालर २०	पाँच वर्ष या १००० डालर
अय्याश तथा लती व्यक्ति	२८	डालर २० से १००	पाँच वर्ष या ५०० डालर
बहुपत्नी (दो)	५०	डालर ४०० से २००० या तीन महीने से ६ वर्ष	डालर ५००० तथा १० वर्ष[4]
बच्चो के साथ अय्याशी	२४	डालर २०० या १ माह से दो वर्ष	बीस वर्ष[5]
वेश्यावृत्ति	४७	पाॅच डालर से ५० डालर, या १० से ३० दिन	डालर १००० या तीन वर्ष

१. न्यू हैम्पशायर प्रदेश २. जिआर्जिया ३. देलावेयर ४. कैलिफोर्निया ५. वाशिंगटन

वीभत्स कार्य	४८	१० से ५०० डालर या ६ महीना	१० से १००० डालर या ३० दिन से १० वर्ष[१]
अय्याशी का व्यवहार	२२	डालर[२] २५	१० वर्ष[३]

सयुक्तराज्य के वासना सम्बन्धी दड-विधान का निचोड ऊपर दे दिया गया। वहाँ की परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री टप्पन लिखते है[४]—

"संयुक्त राज्य के अपराधी-समूह मे कामवासना के उग्र तथा भयावह अपराधी एक प्रकार से बहुत कम है। ऐसे अधिकाश अपराधी विनम्र, आज्ञाकारी इत्यादि है। वे समाज के लिए परेशानी का कारण हो सकते है, ख़तरा नही है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वे किसी एक प्रकार के लोगो मे से नही है बल्कि बहुत ही भिन्न श्रेणियों मे से है। वासना के अपराधियो मे बहुत कम ऐसे है जो दुबारा वही अपराध करते हैं। वे चोर डाकुओ की तरह से उसी अपराध को बारबार नही दुहराते। यदि ठिकाने से चिकित्सा की जाय तो सजा की मियाद के भीतर ही ऐसे अपराधियो का सुधार हो सकता है। पर जिन अपराधियो को हम सुधार के परे समझते है, उनको अनिश्चित काल तक के लिए रोक रखना उचित नही है। क्योकि अन्य जघन्य अपराधियों को भी बिना सुधारे छोड़ दिया जाता है.... मेरे पास जो कुछ प्रमाण है उनसे मै यही कह सकता हूँ कि इस दिशा मे वासना के अपराधी की आन्तरिक भावना तथा प्रवृत्ति की थाह लगाने मे तथा वासना के अपराधों मे रोकथाम करने मे हम सफल नही हुए है ..इस विषय मे असली खोज होनी चाहिए, न कि नये-नये क़ानून बनाते जायँ तथा लम्बी-लम्बी सजाएँ देते रहे।"

श्री टप्पन एक स्थान पर लिखते है कि "यह स्पष्ट है कि छोटे-मोटे वासना के अपराधो के लिए कुछ जुर्माना कर देना या कुछ दिनो की क़ैद से कोई फायदा नहीं होता। पर इसके साथ ही सवाल उठता है कि क्या लम्बी कैद या अनिश्चित काल के लिए क़ैद से भी कोई लाभ हुआ है? अभी तक का अनुभव यह सिद्ध करता है कि अप्राकृतिक सभोग, अश्लील व्यवहार तथा प्रदर्शन, ताक-झाक, लपक-झपक और अन्य साधारण वासना के अपराधो की रोकथाम का कोई उपाय नही है।"[५]

१. ओकलाहोमा २. एक अमेरिकन डालर लगभग पाँच रुपए के बराबर हुआ ३ नेवादा ४. Sexual Offences—पृष्ठ ५१३—५१४ (सारांश) ५. वही, पृष्ठ ५१२

(४) अन्य देशों की स्थिति

बेलजियम में

बेलजियम यूरोप का एक छोटा सा, पर बड़ा उन्नत राज्य है। वासना सम्बन्धी अपराधो में इस राज्य का दृष्टिकोण ही बिल्कुल भिन्न है। इस देश में अनैतिकता का अपराध उसे ही मानते है जिससे समाज की क्षति हुई हो, जैसे या तो पीड़ित व्यक्ति बच्चा हो या उसकी स्वीकृति न प्राप्त हुई हो।[१] यदि परिवार में ही व्यभिचार हो तो उसका निदान धर्म-समाज या साधारण समाज अपनी व्यवस्था के अनुसार करे। राज्य से कोई मतलब नही है। बेलजियम विधान के अनुसार "अपराध" उसे कहते है जिसके करने पर ५ से १० वर्ष तक की क़ैद या प्राणदंड मिले। जिस कार्य पर आठ दिन से लेकर ५ वर्ष क़ैद तथा २६ फ्रैन्क से लेकर बीस गुना अधिक तक अर्थदंड मिले, वह उप-अपराध है।[२] "भूल-चूक"[३] उन अपराधो को कहते है जिनमे एक दिन क़ैद तथा एक फ्रैन्क दंड से लेकर ७ दिन क़ैद तथा २३ फ्रैन्क अर्थदंड मिले। कानून स० ७९ के अनुसार यदि अदालत चाहे तो प्राणदड की सजा को तीन वर्ष की कैद, सुपरिश्रम आजन्म कैद को तीन वर्ष, १५ वर्ष के कठिन कारावास को २ वर्ष तथा १० वर्ष से १५ वर्ष कठोर कारावास को ६ महीने की सजा मे बदल सकती है।

बेलजियम कानून की कई विचित्रताएँ हैं। वहाँ पर सार्वजनिक स्थान पर किये गये अश्लील कार्य तथा बच्चों के साथ किये गये अश्लील कार्य का दंड अधिक कठोर है। सार्वजनिक स्थान पर, जैसे सड़क पर, रात के अँधेरे में भी अश्लील कार्य करना अपराध है। "सार्वजनिक स्थान" उसे कहते है जहाँ उस काम को देखनेवाला ऐसा साक्षी मौजूद हो जो स्वयं उस काम से सहमत न हो। यदि घर मे भी १६ वर्ष की उम्र से कम लड़का या लड़की के सामने अश्लील कार्य किया जाय और वे देख रहे हों तो अश्लील कार्य समझा जायगा। आँख से अश्लील इशारा भी, जिससे ज़बर्दस्ती का अन्दाज लगता हो अश्लील कार्य है। पुरुष-पुरुष का या स्त्री-स्त्री का संभोग स्वतः कोई अपराध नही है पर अश्लील प्रहार के अन्तर्गत आ सकता है। दफा ३७९ के अनुसार वेश्यावृत्ति हर हालत में अपराध है पर पिता माता, भाई-बहिन के साथ व्यभिचार कोई अपराध तब तक नही है जब तक १६ से २१ वर्ष की अविवाहित

१. Prof. E. Dumon का लेख–Sexual Offences पृष्ठ ४९६
२. Delits
३. Contraventions

अपराधी पागल भी समझा जाय तब भी सजा दी जाती है। हॉ, उसे पागलखाने में इलाज के लिए भेज सकते है। यदि एक बार अपराध करने के बाद कोई दुबारा करे(छूटने के तीन साल के भीतर) तो उसे अनिश्चित काल के लिए जेल भेज देते है।

१५ वर्ष की उम्र से कम के बच्चे यदि अपराध करें तो वे अदालत के सामने नहीं लाये जाते, सुधार-गृह भेज दिये जाते है। धारा २१० से २३२ तक केवल वासना के अपराधो के लिए है। इनके द्वारा ३ दिन से लेकर १० वर्ष तक की सजा मिल सकती है, पुरुष-पुरुष सभोग या सह-योनि सभोग मे (धारा २२५) ३० दिन से ३ वर्ष की सजा मिलती है। पशु के साथ संभोग मे भी इतनी ही सजा है। पैसा लेकर अप्राकृतिक प्रसग करानेवाले पुरुष को ३० दिन से २ वर्ष की सजा, महिला के प्रति अश्लील व्यवहार पर एक माह से ४ वर्ष तक की सजा है। २१ वर्ष से कम उम्र की लडकी के साथ व्यभिचार पर ३ वर्ष तक की सजा है। विक्षिप्त महिला, चाहे पत्नी ही क्यों न हो, के साथ व्यभिचार पर आजन्म कैद तक की सजा हो सकती है। सोयी हुई स्त्री के साथ या दूसरे आदमी के वेष मे व्यभिचार करने पर छः वर्ष तक की कैद हो सकती है। डरा धमका या फुसला कर स्त्री को प्राप्त करने पर ८ वर्ष तक की कैद है। बलात्कार के लिए यह साबित करना होगा कि स्त्री की रज़ामन्दी नहीं थी। माता-पिता, भाई-बहिन के साथ संभोग पर आजन्म क़ैद हो सकती है।

स्वीडन-नार्वे

अपराध-शास्त्र तथा अपराध-विज्ञान की दृष्टि से नार्वे और स्वीडन दोनो ही बहुत प्रगतिशील देश समझे जाते है। इन दोनो देशों में एक बड़ा अच्छा नियम है। ब्रिटेन या भारत मे अपराधी "प्रोबेशन" पर छोडा जाता है। स्वीडन तथा नार्वे में वासना के अपराधियो के लिए विशेष "चिकित्सालय" खुले हुए है। दूसरे वहा पर अदालतों को अधिकार है कि सज़ा को "स्थगित" कर दें यानी अपराधी को घर रह कर सुधरने का मौका दें और यदि उसमें सुधार के लक्षण न पाये जायँ तो जेल भेज दें। दोनों ही देशो में आदतन अपराधी को कम-से-कम पाँच वर्ष के लिए "सुधार-गृह" भेज देते है। यदि पॉच वर्ष में न सुधरा तो और ज्यादा रहना होगा। नार्वे में सन् १९४७-५० के बीच में वासना सबन्धी ६४१ व्यक्तियो को दंड मिला, जिनमें से २७५ यानी ४३ प्रतिशत की सज़ा स्थगित कर दी गयी। सन् १९४६-४७ में ११८ सज़ाएँ स्थगित की गयी जिनमे से ८ ने पुनः अपराध किया। स्थगित सज़ा से दुबारा अपराधी को कम मौक़ा मिलता है। स्वीडन में सन् १९५१ में ३७२

व्यक्तियों को बलात्कार आदि जघन्य अपराधों के लिए सजा मिली जिनमे से २४५ यानी ६६ प्रतिशत की सजा स्थगित की गयी। दोनों ही देशों में अपराधी की इच्छा पर उसके अडकोष काटे जा सकते है या इन्द्रिय ही काट दी जा सकती है। पर इसके लिए स्वास्थ्य बोर्ड के अध्यक्ष से अनुमति लेनी पडेगी। दोनों ही देशों में वासना के अपराधी के सम्बन्ध में अदालत के सामने दो मनोवैज्ञानिकों की रिपोर्ट होनी चाहिए। दोनो ही देश पागलपन में किये गये अपराध को क्षम्य मानते है।

स्वीडन मे पुरुष-पुरुष संभोग या परस्पर योनिप्रसंग कोई अपराध नहीं है। १८ वर्ष से कम उम्र के या १८ से २१ वर्ष की उम्र के भीतर के लोगो के साथ उनकी अनुभवहीनता का लाभ उठाकर किया गया व्यभिचार होने पर दंडनीय होता है। यह सन् १९५३ के नये नियम, धारा १० और १० ए भाग १८ के अनुसार है। सन् १९४७ से १९५१ के बीच मे २१९ व्यक्तियो को इस अपराध मे दड मिला पर किसी की सजा एक वर्ष से अधिक नही थी। नार्वे मे धारा २१३ के अनुसार केवल पुरुष-पुरुष सम्बन्ध ही दडनीय है। स्त्री-स्त्री सहवास अपराध नही है। पर पुरुष-पुरुष सभोग पर भी तभी मुकदमा चलाना चाहिए जब सार्वजनिक हित में नितान्त आवश्यक हो। सजा भी केवल एक वर्ष तक है। इसी धारा के अन्तर्गत पशु-संभोग भी दंडनीय है। सन् १९५३ के नियमानुसार २१ वर्ष के नीचे के लोगों की विशेष रक्षा का प्रबंध किया गया है।

माता-पिता, भाई-बहिन आदि के साथ संभोग के संबन्ध में १ से ८ वर्ष तक कारागार का नियम नार्वे में है। १६ वर्ष के बच्चे या लडकी पर अभियोग नही लगता। भाई-बहिन के संभोग मे दो वर्ष की सजा है। सन् १९४७ से १९५० के बीच में ऐसे अपराध में १२ पुरुषों को तथा ४ स्त्रियो को धारा २०७ के अनुसार दंड मिला। स्वीडन में प्रत्यक्ष सम्बन्धियो तथा भाई-बहिन के संभोग मे भाग १८ धारा १-३ के अन्तर्गत दस वर्ष की सजा मिल सकती है। स्वीडन मे अपने आश्रितों के साथ संभोग पर विशेष कठोर दंड मिलता है। सन् १९४९ में ऐसे २१ अपराध (माता-पिता, भाई-बहिन प्रसंग) हुए। तब से अब तक प्राय: २०-३० के बीच मे ऐसे अपराध प्रति वर्ष होते हैं। स्वीडन मे वेश्यावृत्ति के लिए अपनी कन्या का या किसी दूसरे की कन्या का उपयोग करने पर ४ वर्ष तक की सज़ा मिलती है।

नार्वे मे १६ वर्ष से नीचे के बालक-बालिकाओं के साथ अश्लील कार्य करने पर ६ महीने से ३ वर्ष की सजा तथा दुबारा अपराध करने पर २ से ५ वर्ष का दंड है। १४ वर्ष की कन्या से प्रसंग करने पर कम-से-कम ३ वर्ष और अधिक-से-अधिक १५ वर्ष की क़ैद है। सन् १९४७-५० के बीच में २५७ व्यक्तियो को इस प्रकार के अपराध

मे दंड मिला। स्वीडन में अश्लील कार्य के अंतर्गत अश्लील प्रदर्शन भी आ जाता है। सन् १९५३ की धारा १३ भाग १८ के अनुसार किसी को अश्लील ढंग से छू लेना भी अपराध है। सन् १९४२ से १९५१ के बीच मे इस धारा में औसतन २४३ व्यक्तियों को दंड मिला। अधिकाश पर जुर्माना हुआ और कुछ को छः महीने तक की कैद हुई।

नार्वे के दंडविधान की धारा १९२ के अनुसार बलात्कार "उस अभद्र प्रसंग" को कहते है जो किसी के साथ उसके प्राण या स्वास्थ्य का भय दिखाकर किया जाय। इसी के अन्तर्गत यदि कोई स्त्री भी पुरुष को प्रसंग के लिए भयभीत कराये तो दंडनीय होगी। ऐसे अपराध के अन्तर्गत ३ से १० वर्ष तक की सजा हो सकती है। यदि ऐसे कार्य में मृत्यु हो जाय तो आजन्म क़ैद की सजा होगी। धोखा देकर प्रसंग करना या बेहोशी या निद्रा की हालत में किया गया प्रसंग बलात्कार नही है। जीवन तथा स्वास्थ्य का खतरा न होते हुए भी, डराकर प्रसंग करना ३ महीने से ६ वर्ष तक के लिए दंडनीय है।

स्वीडन मे बलात्कार उसे कहते है जिसमें पुरुष स्त्री से ज़बर्दस्ती प्रसंग करे। दंडविधान के भाग १५, धारा १२ के अनुसार अपराधी को कम-से-कम चार वर्ष की सजा मिलती है। अपराध की गुरुता के अनुसार आजन्म क़ैद भी हो सकती है। स्वीडन में निद्रित, बेहोश या उन्माद मे पड़ी स्त्री के साथ प्रसंग भी बलात्कार है।

अध्याय ११

वासना और अपराध का सम्बन्ध

पृथ्वी में भिन्न-भिन्न देशों में, जातियो तथा सभ्यताओं मे वासना का अपना-अपना रूप है। जो चलन है तथा समाज का उसके प्रतिकूल या अनुकूल अनुशासन है, उसके सम्बध में मेरे विचार से ऊपर के पृष्ठो मे अध्ययन की प्रचुर सामग्री दे दी गयी है। और कल के समाज तथा आज के समाज के पतन की परिभाषा भी पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है। अब सोचना यह है कि क्या काम-वासना के अपराध स्वतः अपने मे ही समाप्त हो जाते है अथवा विश्व के अन्य अपराधों में या अपराधी जगत् मे भी उनका कोई भाग होता है। सिगमंड फ्रायड ऐसे प्रकाण्ड मनोवैज्ञानिक ने समूचे अपराध का जनक कामभाव या कामवासना को माना है।[1] इस विषय पर हम आगे चलकर लिखेंगे। पर सब बातों की बात मेरी दृष्टि में सन् १८६९ में क्वेटलेट ने अपने ग्रन्थ में कह दी थी।[2] मेरे विचार से उनका वाक्य अमर है—"समाज अपराध को तैयार करता है। अपराधी उसे कार्यरूप में परिणत करता है।" प्रश्न यह है कि जहर तैयार करनेवाला दोषी है या खानेवाला या दोनों। किन्तु पुराने अपराधशास्त्री इटालियन सिजारी लोम्ब्रोजो का एक दूसरा ही मत है और उनका मत वासना तथा अन्य सभी अपराधों के लिए लागू होता है। लोम्ब्रोजो[3] आधुनिक अपराध शास्त्र के जन्मदाता कहे

१. Sigmund Freud—"The Contributions to the Sexual Theory"—New York—Journal of Mental & Nervous Diseases—Page 91

२. क्वेटलेट (जन्म १७९६—मृत्यु १८७७) "Social Physics" By Quetlet—प्रकाशित १८६९

३. लोम्ब्रोजो का जन्म १८३६ में एक यहूदी परिवार में हुआ था। १८६६ में इन्होंने मनोविश्लेषण में विशिष्ट शिक्षा समाप्त की। ये चिकित्सक (डाक्टर) भी थे। १९०९ में इनकी मृत्यु हुई।

जाते है, यद्यपि स्वयं उनके ग्रथ[१] से पता चलता है कि उनके पहले भी बड़े-बडे अपराध-शास्त्री हो गये थे। ५९०७ अपराधियो के चेहरे, मुख, आँख, नाक, कान आदि की परीक्षा कर तथा ३८३ मुर्दा खोपडियो की परीक्षा कर लोम्ब्रोजो इस नतीजे पर पहुँचे कि विशिष्ट प्रकार की नाक, आँख, कान या बनावट वाले व्यक्ति ही विशेष प्रकार के अपराध करते है। अपने निष्कर्ष की पुष्टि मे उन्होने लिखा:—

"मै जिन नतीजो पर पहुँचा हूँ वे इतिहासकाल के पहले से ही चले आ रहे हैं। होमर ने थरसाइटीज का जिक्र किया है। सोलोमन ने लिखा है कि हृदय जैसा होगा वैसा बुरे आदमी का चेहरा बदल जायगा। और सर्वोपरि अरस्तू, एविकन्ना और जे० बी० डल्ला पोर्टा ने अपराधियो के चेहरे तथा शरीर की रचना पर विचार प्रकट किये है तथा पिछले दो तो हमारे निष्कर्षो से भी आगे बढ गये है। और अब क्या कहे जब पोलोमन यहाँ तक कहते है कि अपराधी का मस्तक अमूमन पतला और कम चौड़ा होगा तथा उसका बायाँ हाथ ज्यादा चलता होगा।"

तब क्या यह माना जाय कि वासना के अपराधियों का नाक-नक्शा भी खास किस्म का होता होगा और उस प्रकार के नाक-नक्शे वालों पर नियंत्रण कर देने से, रोकथाम कर देने से, वासना के अपराध रुक जायँगे? हम रोज़ नयी बातं सीखते है, सिद्धान्त बनाते है, मिटाते है। सन् १८०१ के पहले पागलपन तथा अन्य अपराध मे कोई अन्तर नही था। दोनो को एक ही स्थान पर रखा जाता था। पागल को अलग कर उसे अपराधी न मानने का उपदेश पिनेल ने अपने ग्रन्थ[२] द्वारा १८०१ में दिया और तब से पागल को अन्य अपराधी वर्ग से पृथक् किया गया। शायद बहुत दिनों तक हम लोम्ब्रोजो के नाक-नक्शे वाले सिद्धान्त के धोखे में रहते कि अपराधी चार प्रकार के होते है—

१. जन्मजात अपराधी	२. वासना-अपराधी
३. पागल अपराधी तथा	४. समय-समय पर अपराध करनेवाले

लोम्ब्रोजो कामुक अपराधी के विषय में लिखते है—

१. Criminal Sociology Appleton & Co. 1915 **लेखक—एनरिको फेरी—इस ग्रन्थ से लोम्ब्रोजो के विचार स्पष्ट रूप से समझ में आ सकते हैं।**

२. Pinel—Medical & Philosophical Treatise on Mental Alienation-1801

"प्रभाव डालनेवाले क्षेत्र की विकृतियाँ, घृणा, बिना संकल्प के ही उत्पन्न होनेवाली द्वेष या तिरस्कार की भावना, आत्म-नियत्रण का एक दम अभाव या उसकी कमी, पैतृक प्रवृत्तियाँ—ये सब मिलकर अनैतिक रोगी की अबाधित भावनाओं को उत्पन्न करती है। यही बात जन्मजात अपराधी के लिए भी है।"[१]

आज का अपराध विज्ञान इनमें से किसी बात को नही मानता। कुछ वर्षो तक यह माना जाता था कि पैतृक कारणों से वासना के अपराध होते है, पर अब यह सिद्धान्त भी खंडित हो गया है। लोम्ब्रोजो के जीवन काल में ही उनके सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ानेवाला पैदा हो गया था। उसका नाम था एनरिको फ़ेरी।[२] सन् १८७६ मे उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।[३] फेरी का कहना था कि नाक-नक्शा या रूप रंग से अपराध का कोई संबध नही है। अपराधी जो कुछ करता है वह अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्र इच्छा से। वे लिखते है—

"कोई भी अपराध, चाहे कोई भी करे तथा किसी भी परिस्थिति में करे, उसका और कोई कारण नहीं पर केवल यही कहा जा सकता है कि वह व्यक्तिगत स्वतंत्र इच्छा से किया गया है, या फिर प्राकृतिक यानी स्वाभाविक कारणों का स्वाभाविक परिणाम है। चूँकि इस कथन का कोई वैज्ञानिक महत्त्व नही है अतएव किसी अपराध के कारण का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण भी नही हो सकता। यह तभी सम्भव है जब यह विचार किया जाय कि विशिष्ट शारीरिक तथा सामाजिक वातावरण में विशिष्ट ऐन्द्रियिक और मनोवैज्ञानिक गठन पर अमुक कारण बनता है।"[४]

अपराध या अपराधी

पर इन लोगों के सिद्धान्तो को मिलाकर गैरोफालो और भी आगे बढ़ गये। वे

१. लोम्ब्रोजो का एक व्याख्यान जरूर पढ़ना चाहिए—Speech at the sixth Congress of Criminal Anthropology at Turin in April, 1906. **इसके तीन वर्ष बाद ही वे मर गये।**

२. Enrico Ferri **इतालियन—जन्म १८५६**

३. **इनका ग्रन्थ** "The Theory of Imputability and Denial of Free Will"—Pub. 1876—**फेरी बोलोन विश्वविद्यालय मे अपराधविधान के अध्यापक थे।**

४. Ferri—Criminal Sociology—**पृष्ठ ७४–७५, सन् १९१५ का प्रकाशन।**

ऊपर लिखे दोनों अपराधशास्त्रियों के समकालीन[1] थे। नेपुल्स (इटली) के विश्वविद्यालय मे कानून के प्रोफ़ेसर थे और मजिस्ट्रेट के पद पर भी काम कर चुके थे। राज्य की कौंसिल के सदस्य भी थे। सन् १८५२ में इनका जन्म हुआ था। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ "अपराध शास्त्र" सन् १८८५ मे प्रकाशित हुआ था। लोम्ब्रोजो और फ़ेरी से इनका काफी मतभेद था पर लोम्ब्रोजो ने जिस बहुत बडी बात को शुरू किया था तथा फ़ेरी ने जिस सिद्धान्त की "पुष्टि" की थी, उसे गैरोफालो ने भी स्वीकार किया था। अपराधशास्त्रियो मे लोम्ब्रोजो पहले व्यक्ति समझे जाते थे जिन्होने इस सिद्धान्त को चालू किया कि "अपराध" को मत देखो, "अपराध" स्वत कोई वस्तु नही है, "अपराधी" का अध्ययन करो। इसलिए १९वी सदी से "पाप" नही "पापी" को, अपराध नही अपराधी को महत्त्व देना शुरू किया गया। गैरोफालो जीवविज्ञान (लोम्ब्रोजो) तथा समाजविज्ञान (फेरी) के द्वारा अपराधी की चिकित्सा नही करना चाहते थे। उनका उपचार मनोवैज्ञानिक था। वे चार प्रकार के अपराधी मानते थे—हत्यारे, उग्र अपराधी, सम्पत्ति के विरुद्ध अपराधी तथा कामुक वासना या ऐयाशी के अपराधी । इन चारो प्रकार के अपराधियों को वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुधार के परे तथा समाज के लिए घोर शत्रु समझते थे। स्वाभाविक अपराधी के प्रति दया करना वे अनुचित समझते थे। इस अपराधी-वर्ग को एकदम मिटाने के लिए उनके अनुसार प्राणदंड, आजन्म कारागार या देश-निकाला, यही तीन प्रकार की सजा होनी चाहिए। वे लिखते है कि "ऐसे अपराधी सामाजिक जीवन के अधिकारी नही है।"

धीरे-धीरे चलकर इस विचारधारा में और परिवर्तन होने लगे। यह विचार स्थिर हो गया है कि अपराध को नही, अपराधी को देखकर दंड देना चाहिए। फिर, दंड ही क्यो दिया जाय। समाज की रक्षा के लिए सुधार की भी आवश्यकता है और अपराधी को दंड न देकर उसका सुधार करना तथा अपराध की रोकथाम का उपाय करना अधिक श्रेयस्कर है। इस सिद्धान्त के अपनाने के पहले एक बीच का सिद्धान्त भी कुछ दिनों तब चालू था, जिसे "दुहरा प्रवेश" कहते है। इस मध्यम मार्ग के स्कूल के अनुसार फान हामेल ऐसे शास्त्री एक तरफ तो कुछ प्रकार के अपराधियों को कठोर दंड देने के पक्ष मे थे तथा कुछ के सुधार के पक्ष मे।[2] इसी विचारधारा के लोगों ने,

१. Refaele Garofalo लेखक "Criminology"—सन् १८८५।

२. International Union of Criminal Law. (आगे देखो)

जर्मनी के लिज्त, बेलजियम के प्रिंज तथा हालैन्ड के फान हैमेल ने पेरिस में "अपराधी दडविधान का अंतर्राष्ट्रीय संघ" सन् १८८९ में स्थापित किया। इस संघ की रचना ने अपराध-शास्त्र के जगत् मे एक नयी जाग्रति तथा एक नयी हलचल पैदा कर दी। इस संघ ने कुछ ऐसे सिद्धान्त निर्धारित किये जिनका बड़ा महत्त्व है। संघ के अनुसार—

१. सघ का निश्चय है कि अपराध तथा दड के साधनों का सामाजिक तथा न्याय की दृष्टि से पुन. समीक्षण किया जाय।

२ अपराध-विधान का उद्देश्य समाज में प्रचलित अपराधी प्रवृत्ति को दूर करना है।

३ दड का बहुत अच्छा असर पडता है, पर दंड को अन्य सामाजिक उपायों से पृथक् न कर दिया जाय। सुधार के उपायों की उपेक्षा भी न की जाय।

४. कभी-कभी अपराध करनेवाले तथा आदतन अपराध करनेवालो में अन्तर है और इसी हिसाब से कानून बनना चाहिए।

पश्चिम के लिए आधुनिक अपराधशास्त्र के जन्मदाता बक्कारिया ने जो कुछ लिखा था, वह बात तो काफी दूर पीछे रह गयी। १९वी सदी का अन्त होते-होते अपराध के स्थान पर अपराधी व्यक्ति बहुत सामने आ गया और फ्रेन्च पंडित तार्दे[1] ने नैतिक जिम्मेदारी "व्यक्तिगत विशिष्टता तथा सामाजिक समनुकूलता" पर रख दी। वे लिखते है कि "यह विशिष्टता ही मानव के साथ स्थायी रूप से लगी हुई है.. ..। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य अपनी चेतना तथा अन्तश्चेतना का समुच्चय मात्र है.....यह "मै" है जो कि सामाजिक तथा राजकीय बंधनों से बँधा हुआ है। यह "मै" है जो दूसरे के लिए अनुकरण या अनुकरण के अयोग्य होता है.....इसलिए व्यक्ति को नैतिक जिम्मेदारी महसूस कराने के लिए उस व्यक्ति को तथा उसके कार्य से पीड़ित व्यक्ति दोनो को ही महसूस कराया जाय कि दोनो एक देश के, एक समाज के तथा एक ही सामाजिक नियमों के अन्तर्गत रहनेवाले है।"

दण्डनीय कौन है ?

समाज तथा उसके प्रचलित नियम के साथ अपराधी का सम्बन्ध स्थापित करने का उद्देश्य यही था कि रोज लोग नये-नये नियमो की या अपराधों की कल्पना न किया करें। वरना, जिन्दगी दूभर हो जायगी। इसलिए इटालियन दंडविधान

१. Tarde–Penal Philosophy—पृष्ठ ११५

मे सबसे पहले तथा फ्रेन्च राज्यक्रान्ति मे "मानव के अधिकार की घोषणा" में, या पोलैण्ड के दंडविधान मे १९३२ मे, या फ्रांस के नये दंडविधान में १९३४ मे, या जर्मनी के दंडविधान मे सन् १९३७ मे यह स्पष्ट लिख दिया गया है कि "कोई भी व्यक्ति तब तक किसी कार्य के लिए दंडनीय न होगा जब तक कि उस कार्य के करने के पहले उसके सम्बन्ध मे कोई कानून न बना हो।" जर्मनी मे नाज़ी शासन-काल में भी इतनी गुन्जायश रखी गयी थी कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर राज्य के हस्तक्षेप का अनुचित प्रभाव न पडे। सन् १९३५ मे अन्तर्राष्ट्रीय दंड-विधान सम्मेलन के अवसर पर भाषण करते हुए (बर्लिन मे) नाजी शासन के न्याय-मत्री डा० गुतनर ने कहा था कि "न्यायाधीशो का काम कानून बनाना नही है। उनका कार्य है व्यवस्थापक सभा द्वारा बनाये गये कानूनो के अनुसार काम करना। यदि किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए दंड का, कानून का, विशेष संकेत नही मिलता, तो खीचतान कर, किसी क़ानून के अंतर्गत उस व्यक्ति की सज़ा करने से कही बेहतर है उस अपराधी को छोड़ देना।"

किन्तु डा० गुतनर ने जितने ऊँचे सिद्धान्त की बात कही है, उतना ऊँचा सिद्धान्त व्यवहार में नहीं आता था। डा० गुतनर ने स्वय अपने उपरिलिखित भाषण के सिल-सिले मे आगे चलकर कहा था —

"न्याय का तकाजा है कि प्रत्येक अपराध का समुचित प्रायश्चित्त हो.... न्यायाधीश को यह हिदायत होनी चाहिए कि जान बूझकर किये गये अपराध में दुर्भाव कितना था, और दुर्भाव की कमी-बेशी के हिसाब से दंड दिया जाय तथा लापरवाही से किये गये अपराध मे किस सीमा तक लापरवाही तथा अज्ञान था, उस हिसाब से ज़िम्मेदारी ठहरायी जाय।"[१]

हर अपराध दंडनीय है, यह नाजी सिद्धान्त नया नही है। इस सिद्धान्त को मानने-वाले काफी लोग है। कार्ल रोदक ने, जिनका जन्म सन् १८०६ में तथा मृत्यु १८७९ में हुई थी, दंड की महत्ता पर बहुत कुछ लिखा है। वे तो यहाँ तक कह बैठे हैं—[२]

"अपराधी को उसके कार्यो के लिए जो दंड मिलता है, वह उसे अभिशाप

१. Proceedings of the XI International Penal and Penitentiary Congress—Page 10-15

२. Bernaldo de Quiros—Modern Theories of Criminality—Pub. Little Brown & Co., 1912—Page 126

या वरदान समझता है, यह तो उसकी बुद्धि की स्थिति पर निर्भर करता है। उसके मन की जैसी नैतिक स्थिति होगी, उससे वह अनुमान लगा सकेगा कि उसका वास्तविक हित क्या है......अपराधी के लिए दंड को बुरा समझना वैसा ही है जैसे कोई मरीज अज्ञानवश दवा को बुरा समझे या बच्चा स्कूल जाने के लिए बाध्य किये जाने पर रोना शुरू करे।"

सन् १८६३ मे ब्रिटेन के प्रधान विचारपति काकबर्न ने "रॉयल कमीशन" के सामने कहा था —

"इनका (दंड का) उद्देश्य दुहरा है। पहला यह कि वैसे ही लालच मे पड़कर वैसा अपराध करने से डरे या हिचके तथा दूसरे, अपराधी का स्वतः सुधार हो। समाज की रक्षा के लिए प्रथम वस्तु अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि समाज का बहुत बड़ा स्वार्थ इसमें भी है कि अपराधी सुधरे पर ऐसा सुधार केवल एक व्यक्ति का होगा जब कि दंड के भय से समूचे समाज पर असर पड़ेगा......"

पर, दूसरे को दंड देने से क्या हमारा यानी समाज का कल्याण होता है? क्या यह सम्भव है? प्लेटो ने कहा था कि "जिसने हमारा नुकसान किया उसे नुकसान पहुँचाना कभी न्यायोचित नही होगा। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिजविक लिखते हैं—

"पुराने ढंग की सजाएँ दड सम्बंधी लोकप्रिय भावनाओं में अब भी वर्तमान है। यह अब भी समझा जाता है कि न्याय का तकाजा है कि जिसने भूल की है उसे पीड़ा पहुँचायी जाय। मैं इस भावना का घोर विरोधी हूँ। मै समझता हूँ कि यह भावना साधारण समझदारी से भी दूर है। धीरे-धीरे प्रगतिशील समुदायो मे शिक्षित समाज इसके विरुद्ध होता जा रहा है।"[१]

इस प्रकार परस्पर-विरोधी भावनाओ के सामञ्जस्य की कोई सूरत न पैदा होती यदि सन् १९२६ में, दण्डविधान के प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में ३५० प्रमुख न्याय-पंडित एकत्र न होते। ब्रसेल्स काग्रेस के एक प्रस्ताव ने हलचल तो बहुत मचा दी पर यह भी सत्य है कि उस प्रस्ताव ने अपराधी के लिए नया मार्ग खोल दिया। प्रस्ताव के अनुसार "समाज की रक्षा तथा दड, दोनो ही न्यायाधीश के दायरे की चीजें है। न्याया-धीश को प्रत्येक मामले में घटनाओ को ठीक से समझकर, अपराधी के व्यक्तित्व का अध्ययन कर यह निश्चय करना चाहिए कि वह दंड का पात्र है या सुधार का।" सन्

१. Sidgwick—Methods of Ethics—Pub. Macmillan & Co., London, Fifth Edition, 1893—Page 281

१९२५ में लन्दन मे ९वें अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे लार्ड हाल्डेन ने ब्रसेल्स के प्रस्ताव की पृष्ठ-भूमि पर ही अपना प्रसिद्ध व्याख्यान दिया था। उन्होने कहा था कि "दड की प्रतिशोधात्मक विशेषता हो सकती है, और सुधारात्मक विशेषता भी हो सकती है। इन दोनो रूपो से भिन्न भी एक रूप हो सकता है। अपराधी के लिए दड निजी प्रायश्चित्त का भी रूप ग्रहण कर सकता है . . . अपनी स्वतत्रता मे रुकावट पडने की पीड़ा या अपने जीवन की हानि के भी दु:ख को स्वीकार कर वह समाज के उन उसूलों को स्वीकार कर रहा है जिनके आधार पर दड के नियम बने है और कानून के फल को स्वीकार कर वह अपराधी अपने साथियो की इच्छा तथा संकल्प को स्वीकार कर रहा है. . . .इस उसूल को मान लेने से भला बनने तथा भला करने का एक नया रास्ता खुल जाता है और जेलो मे इस उसूल की ओर कैदी का ध्यान दिला-कर उसका बडा कल्याण किया जा सकता है. . . .नैतिकता धर्म से भिन्न है और बिना धर्म का सहारा लिये भी उसकी सत्ता है।"

लार्ड हाल्डेन ने भी दंड का महत्त्व व्यक्ति के विचार से ही माना है, अपराध के विचार से नही। पर आज से पचास वर्ष पूर्व, ब्रिटिश पार्लमेण्ट मे तत्कालीन गृहमत्री विंस्टन चर्चिल ने एक ऐसा महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था जो आज भी अपनी विशेषत रखता है। उन्होने कहा था—"अपराध तथा अपराधी के प्रति जनता की कैसी भावना है तथा दृष्टि है, उसीसे उस देश की सभ्यता का वास्तविक अनुमान लग सकता है। अपराधी तथा दडित व्यक्ति के अधिकारो को समझदारी तथा निर्मम भाव से स्वीकार करना, दड देने का काम जिनके जिम्मे है उनका बराबर अपने हृदय को टटोलते रहना, जिन्होने दंड का अभिशाप प्राप्त कर लिया है, उनको उद्योग की दुनिया मे फिर से बसा देना, अपराधी मनोवृत्ति मे सुधार तथा नयी भावना की जाग्रति के उपायों को अनवरत रूप से ढूँढते रहना, इस विषय मे अटल विश्वास कि यदि आप चाहे तो हर एक हृदय मे जो खजाना छिपा है उसे ढूँढ़कर निकाल सकते हैं—अपराध तथा अपराधी के प्रति व्यवहार मे ये वे प्रतीक या चिह्न है जिनसे राष्ट्र की अन्त:शक्ति का अनुमान लगता है तथा राष्ट्र के भीतर वर्तमान सजीव गुणों का लक्षण तथा प्रमाण है।"

चर्चिल के उपरिलिखित महान् वाक्य आज भी अपराधशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए अति मूल्यवान् है और वास्तव मे समाज के भीतर जो छिपा हुआ गुण है, वही इस बात का सबूत देता है कि हम सामाजिक नियमो की अवज्ञा करनेवाले का किस रूप मे उपचार करना चाहते है। हमने पुस्तक के आरम्भ मे ही हिन्दू धर्मशास्त्रों का उद्धरण देकर दंड की नीति बतलायी है। प्रत्येक धर्मशास्त्री ने अपराध पर विचार न कर व्यक्ति को, व्यक्तिविशेष को दोषी माना है तथा दंड की कल्पना न कर

प्रायश्चित्त की कल्पना की है। अतएव पश्चिम मे भी पूर्व का यह मंत्र पहुँच गया है कि कानून का उद्देश्य व्यक्ति का सुधार करना है। व्यक्ति सदैव मुख्य वस्तु है, अपराध गौण है।

नीयत क्या है

इसी लिए ब्रिटिश कानून की सबसे बड़ी शक्ति है "नीयत का सबूत"। यदि अपराध हो गया और अपराधी की अपराध करने की नीयत नही थी तो वह निर्दोष है। इसी लिए सायर[१] ने आज के २७ वर्ष पूर्व लिखा था कि—"जब क़ानून घोर अपराधों के लिए ऐसे लोगों को दंड देने लगता है जो निर्दोष है तथा नैतिक दृष्टि से बेगुनाह है, वे व्यक्ति समाज के प्रतिष्ठित तथा सम्भ्रान्त सदस्य भी हो सकते है, तो उस कानून की अपराध को रोकने की शक्ति समाप्त हो जाती है।" इसी लिए निर्दोष की रक्षा के लिए किसी भी अपराध को प्रमाणित करने के लिए यह साबित करना होगा कि अपराधी ने वह काम "दुर्भाव से, स्वेच्छया, जान-बूझकर, धूर्ततापूर्वक किया, कराया, करने दिया या होने दिया।"[२]

ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मत्री श्री रैमजे मैकडोनल्ड जब मजदूर दल के नेता थे, उनके पास किसी व्यक्ति ने एक पुलिस इंस्पेक्टर की हत्या करने की धमकी का पत्र भेजा। उस आदमी पर मुकदमा चला। उसके मामले मे सजा देते हुए जज डालिग ने अपने फैसले मे कहा था—"आदमी बहुत से ऐसे दुर्भावपूर्ण कार्य करता रहता है जो अनुचित होते है और अत्यप्रक्ष रूप से बुरी नीयत से किये जाते है....मेरे विचार से दुर्भाव शब्द का अर्थ ऐसा कार्य करना है जिसे करने का उस व्यक्ति को जायज अधिकार न हो और न किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ऐसे उपाय अपनाये जो कि अनुचित हो।"[३]

जस्टिस डार्लिंग की यह व्याख्या ध्यान में रखनी चाहिए। आगे चलकर यह

१. Sayre—Public Welfare Offences (1933), 33 Edition—L. R. 55

२. Maliciously, Wilfully, Knowingly, Permitting, Suffering, Causing, Allowing, Fraudulently.

३. J. Edwards—"Mens Rea in Statutory Offence"—Macmillan & Co., London 1955—पृष्ठ ७

बड़ा काम देगी। जो काम बुरा है, उसे करना तबतक दंडनीय नही है जब तक हम उसे बुरा समझते हुए न करें। पागल अगर सड़क पर नंगा चला जाता है तो उसे "अश्लील प्रहार" का दोषी नही ठहराते। ब्रिटेन मे सन् १४८६ मे औरत भगाने के विरुद्ध कानून पास हुआ था। पर इस कानून के अनुसार अपराध तभी था जब "जान-बूझकर किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध प्राप्त किया जाय।"

बहुत से अपराध ऐसे होते है जो अपराध होने के कारण ही अपराध नही रह जाते। ब्रिटेन मे विवाह के सम्बन्ध मे ऐसी ही बात है। तीन प्रकार के विवाह "नाजायज" या "नाजायज होने योग्य" है, अतएव उसको करनेवाला दंडनीय भी नही रह जाता। जैसे (१) यदि वर या वधू १६ वर्ष से कम उम्र की हुई तो वह विवाह हुआ ही नहीं समझा जायगा; (२) यदि वर-वधू मे से कोई भी पूर्व विवाहित है तो वह विवाह हुआ ही नही समझा जायगा; (३) यदि अपने ही कुल मे, निकट रिश्तेदार से विवाह हो गया तो वह विवाह नाजायज होने योग्य है और उसे विवाह मानना ही नही चाहिए।[1] इससे एक नयी बात पैदा होती है। वह यह कि नाजायज काम को नाजायज कह देने से ही समाज की रक्षा का काम चल गया। अब और ज्यादा मामला बढ़ाने से क्या लाभ? इसी प्रकार "धूर्ततापूर्ण" कार्य मे भी धूर्तता की इच्छा का होना जरूरी है। यदि जल्दी मे गलती से कोई रेलवे स्टेशन पर दूसरे का बक्स उठा ले तो वह चोरी नही हुई।[2]

१. वही, पृष्ठ ७१–७२

२. वही, पृष्ठ १८३––लार्ड गोर्डाड कहते है––जो दूसर की सम्पत्ति को यह जानते हुए कि दूसरे की है, गलती से नहीं जान बूझकर उठाता है...वह अपराधी है।

अध्याय १२

असाधारण कामुकता

अपराध की उपरिलिखित पृष्ठ भूमि देने के उपरान्त हम इस बात की समीक्षा करना चाहते है कि क्या वासना अपराध है ? क्या कामुकता से और अन्य प्रकार के अपराधो से कोई सम्बन्ध है ? सर्व-गुण-सम्पन्न न तो कोई समाज बना है और न कोई व्यक्ति। धूप और छॉह दोनो साथ-साथ चलते है। लेडी अलेन[1] ने सत्य लिखा है कि "छाया तथा गोधूलि वेला भी शिशु के लिए उतने ही आवश्यक है जितना सूर्य का प्रकाश तथा ताजी हवा।" यही दशा समाज की भी है। उसे धूप-छाँह मे सॅभलकर ले चलने के लिए ही शासनविधान तथा कानून बनते है। पर इनकी रचना करने-वालो कें विचार चाहे कितने ही उदार क्यों न हों, जिन कागजों पर ये कानून लिखे रहते है, "वे निर्जीव होते है, स्वयं उनको कार्यरूप में नही परिणत किया जा सकता। इसके लिए एक मानवी एजेन्सी की जरूरत है।"[2] यह मानवी एजेन्सी अदालत समझी जाती है। पर अदालत मे जो बैठता है, वह भी हमारा भाई है। अतएव इस एजेन्सी यानी वास्तव मे मनुष्य को मनुष्य को पहचानना होगा। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही कानून बनता है। जे० हूवर[3] ने इसी लिए लिखा है कि "कोई भी समुदाय जैसा चाहता है या आग्रह करता है उससे बेहतर कानून का पालन नही करा सकता।"

कामुकता पेट से या परिवार से ही नही आती, सग-साथ का भी बडा प्रभाव पडता है। जेल मे जवान-बूढ़े, हर प्रकार के कैदी एक साथ रख दिये जाते है और

१. Lady Allen of Hurtwood

२. John R. Dethmers, Chief justice, Supreme Court of Michigan (U. S. A.)—In U. S. News & World Report, Dec., 12, 1958, Page—88

३. J. Edgar Hoover, Director, Federal Bureau of Investigations, U. S. A.

वहाँ रहकर वे नये-नये सबक सीख लेते है। एक जेलयात्री ने लिखा है—"तीन महीने जेल में रहकर मैने जो शिक्षा प्राप्त की है उससे मेरे पेशे में बड़ी तरक्की हुई है। सरकार ने तो मुझे ऐसी जगह रख दिया कि मै व्यवसाय सीखूँ और जब सीख लिया तो उस पर अमल करना ही चाहिए।"[१] दर्जनो मर्त्तवा हमारे पास ऐसे उदाहरण आये है जब कि जेलजीवन से ही वास्तविक पतन प्रारम्भ हुआ है। दो नौजवान जो कभी के परिचित नही थे, जेल मे जाकर एक-दूसरे से परिचय प्राप्त कर लेते है और फिर जेल के बाहर निकल कर अपनी बुरी आदत चालू रखते है। मनुष्य का स्वभाव प्रेमी है। एक दूसरे से प्रेम करना चाहता है। जेल मे ही ऐसा प्रेम पैदा हो जाता है और फिर वही भ्रष्ट रूप धारण कर लेता है। जेलो मे कैदियो के बीच मे कामवासना खूब चलती है। परस्पर सभोग बहुत अधिक होता है। यह कोई भारत की ही बात नही है बल्कि संसार भर के जेलो का यह बडा भारी अवगुण है। सयुक्तराज्य अमेरिका के नेब्रास्का राज्य के जेलो का अध्ययन कर श्री वाइडेन ने लिखा है[२] कि उन्होने जिन युवक कैदियो से बात की उससे स्पष्ट हो गया कि ६० प्रतिशत कैदियो मे काम्क अवगुण वर्तमान थे तथा जेलो मे ६० फीसदी व्यक्ति परस्पर सभोग करते थे। इस विषय मे एक मार्के की बात हीली ने लिखी है। उनके कथनानुसार बालिग लडकियो मे परस्पर सभोग लडको की अपेक्षा जल्दी शुरू हो जाता है। यानी, जेलों में लड़कियाँ लडकों की अपेक्षा कुटेव जल्दी सीखती है। हीली लिखते हैं कि बहुत-सी लड़कियों ने हमसे कहा कि सभोग के बारे में जितना वह जिन्दगी भर नही सीख पायी थी, उतना वह जेल मे रहकर २४ घण्टे में सीख गयी।[३]

वासना की ऐसी असाधारण शिक्षा मे मानव कैसे सावधान रह सकता है। कैसे सँभल सकता है। वासना स्वत अपनी ही सीमा तक अपराधो को सीमित नही रखती, उससे अनेक अनर्थ उत्पन्न होते है। मानव के स्वभाव की रचना मे मन तथा शरीर दोनो का हाथ है। कौन कह सकता है कि जो मनुष्य समाज-विरोधी कामुक प्रवृत्तियो को प्रकट करता है उसके शरीर के भीतर कुछ ऐसे रस की उत्पत्ति हो रही है जिससे वह ऐसा कर रहा है या उसके मन की कल्पनाशक्ति इतनी बढ़ी हुई है कि

१. Healy—"Individual Delinquency" पृष्ठ ३१४

२. L. E. Widen—"Young Criminals in Nebraska State Penitentiary"—The Survey, Nov., 18, 1957, पृष्ठ १२२१-१२२४

३. Healy—पृष्ठ ३१३

वह बिना वासना के रह नही सकता, या फिर वह ऐसे वातावरण में रहता है या ऐसे शरीरजन्य अनुभव प्राप्त कर चुका है कि उसकी वासना रोके नही रुकती या सँभाले नही सँभलती। कही किसी के मामले में यह कहा जा सकता है कि परिवार या पिता माता का बुरा प्रभाव पड़ा है, तो उससे अधिक ऐसे मामले सामने आते है जिनमें साधु तथा सज्जन परिवार मे भी ऐसे भयंकर रोगी मिलते है। यह भी स्पष्ट है कि कामुक वासना के कारण ही बहुत से अपराध पैदा होते है। जर्मनी में एक व्यक्ति केवल कामुक उत्तेजना प्राप्त करने के लिए खून करता था। ऐसे अनेक मामले मिलेंगे जिनमें केवल कामुकता के कारण पुरुष या स्त्री में दूसरे को पीडा देने की भावना पैदा होती है और वह मार पीट करते हैं। अतृप्त कामवासना के कारण लाखों व्यक्ति चिड-चिडे स्वभाव के या क्रोधी हो जाते है। नपुसकता की ग्लानि के कारण कितने ही व्यक्ति डकैती करने लगते है। कामवासना से अनेक ही नही, अनगिनत अनर्थ पैदा होते है---बलात्कार, निकट सम्बन्धी के साथ संभोग, सह-योनि प्रसंग, इत्यादि। ये सब परेशान दिमाग या दिमागी उलझन या दूषित वातावरण के कारण अच्छे खासे सीधे-सादे व्यक्ति मे भी उत्पन्न हो सकते है। असाधारण कामुकता का बहुत बडा कारण बचपन का अनुभव होता है। अच्छे स्वस्थ लड़के तथा लडकियाँ जल्दी शिक्षा पाने लगती है। कभी-कभी घर पर माता-पिता का प्रसग वे देख लेते हैं, माता-पिता तो सोचते है कि वे सो रहे है। हीली ने १५ वर्ष की एक लडकी की कथा लिखी है कि वह इतनी कामोन्मत्त थी कि कोई अवसर नही चूकती थी। उसे इस बात का घमंड था कि उसने अत्यधिक पुरुषों का प्रसंग प्राप्त किया है। १५ वर्ष की उम्र में ही वह गर्भवती हो गयी थी। उसका इतिहास जानने पर पता चला कि बचपन में ही उसके साथ बलात्कार किया गया था, जिससे उसे नसीहत मिल गयी थी।

पर हीली यह भी लिखते है कि यह असाधारण कामुकता भिन्न दशाओं में भी पायी जाती है। अमेरिका में गोरी लड़कियाँ नीग्रो (काले) लडकों पर बहुत आसक्त हो जाती है—यह क्या बात है। केवल असाधारण कामुकता का ही परिणाम है। छोटी उम्र में बहुत से बच्चे चोर तथा गिरहकट हो जाते है—यह भी उनमें व्याप्त असाधारण कामुकता है।[1] कामुकता सबमें है और उसकी संतुष्टि के लिए समाज ने नियम बना रखे है पर जो व्यक्ति—चाहे पुरुष हो या स्त्री, आत्मसयम करना नहीं जानता, वही विशेष परिस्थितियो मे पडकर, सामाजिक दायरे के बाहर निकलकर

१. हीली—पृष्ठ ४०३

आत्म-सन्तुष्टि करता है। समाज मे ऐसे रोगी भी होते है जिनको "हर युवती के पीछे भागने" का रोग होता है या ऐसी स्त्रियाँ भी होती है। पर डाक्टरी जाँच से पता चला है कि ऐसे लोगों का मन का विकार उतना दोषी नही है जितना कि उनके शरीर की बनावट, जिसमे ऐसी ग्लैड होती है जिनसे कामुकता का विचित्र रस द्रवित होता रहता है, जो उनको उग्र कामोन्मत्त बनाने पर मजबूर करता है। ऐसे लोगो की दवा जेल मे नही, अस्पताल मे होती है। ऐसे रोगियो से समाज की रक्षा करनी होगी, यह सही बात है। ऐसी रक्षा के लिए ऐसे रोगियों को अलग ही रखना होगा, क्योकि वे स्वस्थ पुरुषो को यानी सदाचारी स्त्री-पुरुषो को भ्रष्ट करते रहते हैं।

कुछ का मन इतना कमज़ोर होता है कि काम की उत्पत्ति होते ही वे काबू के बाहर हो जाते है। वे अपने को सँभाल नही सकते। जब उत्तेजना को शान्त करने के लिए और कोई साधन नही मिलता तो वासना के बजाय वे अन्य प्रकार के अपराध करने लगते हैं। पागल तथा उन्मत्त व्यक्ति भी इसी वासना के रोगी हो सकते है। कामोन्माद का रोगी प्राय. दूसरो की उपासना या आराधना की चीजे, जैसे मूर्त्तियाँ चुराया करता है। उसकी वासना को इसी मे सतुष्टि मिलती है।[१] ऐसे कामुक चोर प्राय औरतो के रूमाल या उनके जूते चुराया करते है। अत्यधिक काम-भावनावाली स्त्रियाँ जिनको पुरुषो के आघात मे आनन्द आता है, वासना के ही कारण पुरुषो की "दासी" बन जाती है। बहुत-सी स्त्रियो को पुरुषो के हाथो पिटने पर अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है, पर ऐसी स्त्रियाँ बड़ी ख़तरनाक भी होती है। वे वासना की सन्तुष्टि मे कमी पाकर पुरुषो के प्राण भी ले सकती है। बहुत से पुरुषो में कामोत्तेजना तभी होती है जब वे अपनी पत्नियो या रखेलियो से पिटते है। ऐसे ही व्यक्ति दूसरों को पीटने, कोड़ा, मारने, दूसरे के साथ उद्दंडता करने मे सुख का अनुभव करते है। उन्हें तो सज़ा मिलती है मारपीट की और उनका अपराध कुछ और ही होता है। बहुत से ऐसे अपराधी होते है जिनकी कामवासना इसी से सन्तुष्ट हो जाती है कि स्त्री के शरीर का जो भाग उन्हें सब से सुन्दर प्रतीत हो, उसे काट ले। औरतो की नाक या कान काट लेने का भी प्रायः यही कारण होता है।

कुछ मर्दो मे आदत होती है कि गुप्त रूप से स्त्रियों की ताक-झाँक किया करें। कैसे कपडा पहनती है, कैसे शौचालय मे बैठती है, इत्यादि। कुछ स्त्रियो मे भी यह

१. Havelock Ellis—"The Criminal"—3rd Edition, London Scott & Co., 1907—पृष्ठ ४१९

आदत होती है। इन दोनो प्रकार के लोगों को इस प्रकार की ताक-झॉक से ही वासना की सन्तुष्टि प्राप्त होती है। कुछ लोगो मे कम उम्र की लड़कियों को भ्रष्ट करने का बडा मर्ज होता है। वे उनके साथ बलात्कार भी नही करते पर अन्य प्रकार से उनका कामुक उपयोग करते रहते है। हीली एक ऐसे व्यक्ति का जिक्र करते है[1] जो छोटी उम्र की लडकियो को बिगाडने के अपराध में पॉच बार जेल हो आया था। छूटने के कुछ ही महीने के भीतर उसने कई बच्चो को खराब किया। अब यह मान लिया गया है कि छोटे बच्चों को ख़राब करनेवाले ज्यादातर लोगो को सजा नही मिल पाती। वे अदालत तक जा भी नही पाते और उनके कार्य का भयानक परिणाम लाखो निर्बोध, सीधे, भोले बच्चो का जीवन नष्ट कर देता है। कुछ पुरुषो की आदत होती है कि स्त्रियो के सामने सीना तानकर चलना, अपना बल-वीर्य दिखलाना, पर पुरुषों से ज्यादा स्त्रियो मे यह अवगुण होता है। प्रायः प्रत्येक स्त्री चाहती है कि दूसरो की निगाहों मे अच्छी लगे और अपने स्तन को ऊँचा उठाकर, आधा खुला छोड़कर या बारीक चादर से ढँक कर, कामुक आकर्षण करते हुए चलना भी एक प्रकार का वैसा कामुक अपराध है जो आजकल पढ़ी लिखी लडकियाँ ज्यादा करती है।

हस्तक्रिया की आदत से बहुत से अपराध होते है। हस्तक्रिया में एक ख़ास बात है, उसके करने से जितनी शारीरिक हानि नही होती उससे अधिक हानि हस्तक्रिया के बाद उत्पन्न हुई ग्लानि तथा उसे करने या न करने की चिन्ता से होती है। यह अवगुण लड़के तथा लड़कियों में काफी पाया जाता है। हस्तक्रिया करनेवाला या वाली का मन बराबर इस बोझ से दवा रहता है कि "यह काम बुरा है"। फिर, उसे एकान्त की बड़ी तलाश रहती है। इससे इस कुटेव के रोगी के मन का नैतिक बल एकदम समाप्त हो जाता है। रोगी निरुद्यमी तथा आलसी हो जाता है। अपना आलस्य दूर करने के लिए सिगरेट-बीडी पीना शुरू करता है। अत्यधिक चाय या कहवा पीनेवाले भी हस्तक्रिया या अन्य कामुक उत्तेजना के मरीज हो सकते है। हीली एक १६ वर्ष की लड़की का जिक्र करते है जो हस्तक्रिया करती थी और उसकी प्रतिक्रिया में छोटी-मोटी चोरियाँ करती थी। उस कन्या की माता ने बडे परिश्रम से उसकी आदत छुडा दी। उसका सब ऐब भी जाता रहा। इस सम्बन्ध मे एक चीज ध्यान में रखनी चाहिए। बचपन मे कामोत्तेजना की सीख प्रायः लड़के को लडके से ही तथा लड़की को लड़की से ही मिलती है। एक दूसरी योनिवाले से नही मिलती।

१. Healy—पृष्ठ ४०६

इसलिए जो लोग यह सोचकर अपने बच्चो से निश्चिन्त हो जाते है कि लडके-लड़के एक साथ है, या लड़कियाँ-लडकियाँ एक साथ है, वे भारी भूल कर रहे है। केवल नैतिक दुर्बलता के कारण ही अप्राकृतिक सभोग या परस्पर-योनि संभोग का प्रारम्भ हुआ है, यह सोचना भूल है।[१] बुरी सोहबत तथा बुरे वातावरण और मानसिक दुर्बलता से ये कुटेव शरीर मे घुन कर लेती है। बीभत्स रूप से प्रसग करने के प्रेमी, विपरीत प्रसग के हिमायती तथा अनुचित प्रसगवाले व्यक्ति प्राय. समाज, सभ्यता, वातावरण या बुरे साथ के शिकार नही होते। वे मनोवैज्ञानिक रोगी भी होते है। उनके मन की चिकित्सा करनी चाहिए।[२] पर मन की चिकित्सा जेल में रखने से नही हो सकती।

१. P. Nacke—"Homo-Sexuology and Psychosis"—Pub. 1911

२. Sigmund Freud—"Three Contributions to the Sexual Theory", New York-Journal of Mental & Nervous Diseases-1910—Page 91

अध्याय १३

वासना के अपराधों की व्यापकता

विचार बदलते रहते है

ब्रिटिश जेलों के भूतपूर्व कमिश्नर सर विलियम नारउड ईस्ट ने[१] बिल्कुल सत्य लिखा है कि आधुनिक समाज के प्रवाह में कामुक अपराधी पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। हम उनके विचारो को नीचे संक्षेप मे देने का प्रयास करेगे। वास्तव में यह बात समझने की है कि समाज किस प्रकार अपने ही नये नियमो के जाल मे फँसकर नये अपराध करा रहा है। उदाहरण के लिए पश्चिमीय देशो मे एक पत्नी रहते दूसरा विवाह नही किया जा सकता। सन् १८५८ में, आज के १०१ वर्ष पूर्व जब तलाक़ का क़ानून बनने लगा था, इंग्लैण्ड मे कुछ लोगो ने सलाह दी कि पर-पत्नी सम्भोग को दंडनीय बना दिया जाय। पर घोर विरोध के कारण वैसा न हो सका और आज तलाक़ के क़ानून की बदौलत हर साल लाखो व्यक्ति नयी पत्नी या नया पति प्राप्त करते हैं या बदलते है। बहु-विवाह से अधिक निन्दनीय तथा घृणित स्थिति हो गयी है।

नारउड लिखते है कि समय के अनुसार विचार भी बदलते जाते है। हजरत मूसा के विधान के अनुसार विवाहित पति-पत्नी को व्यभिचार करने पर, दोनो को प्राणदंड मिलता था। प्राचीन रोमन नियम के अनुसार व्यभिचारिणी पत्नी दंडित होती थी, पति नही। पिता अपनी व्यभिचारिणी पुत्री को जान से मार सकता था पर पति नही। एक दूसरे प्राचीन देश के नियम के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री की नाक, कान काट लेते थे। १७ वी सदी मे ईसाई पादरी व्यभिचारिणी पत्नी को घोर दंड देते थे। पर आज स्विट्जरलैंड मे सन् १९३७ के कानून के अनुसार केवल एक वर्ष

१. Sir William Norwood East, M. D., in "Sexual Crime"—The Journal of Criminal Science, Vol. I, Macmillan & Co., Pub. 1948—Page—45

की सजा हो सकती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यभिचारिणी पत्नी तथा पति दोनों दडनीय है पर इधर दो दर्जन वर्षो से इस कानून पर अमल नही किया गया है। इंग्लैड मे सन् १९५८ में लगभग ४,००,००० विवाह हुए,[१] इनमे से एक तिहाई का तलाक़ जरूर होगा क्योकि वैवाहिक जीवन के "प्रथम दो वर्ष बडे कठिन होते है।"[२] यदि ये दो वर्ष ठीक से बीत गये तो फिर वैवाहिक जीवन मे स्थिरता आ जायगी।

डा० यूस्टेन चेसर लिखते है—"हमें मालूम हो या न मालूम हो, कामुक वासना हमारे जीवन के प्रत्येक जीवित क्षण को प्रभावित कर रही है।"[३] यह कहना भी कठिन है कि विवाह हो जाने के बाद आदमी सुधर जाता है। नारउड के कथनानुसार उन्होने अश्लील प्रदर्शन के लिए दोषी १५० मर्दो के मामले की छानबीन की तो उनमें से ९० अविवाहित या अकेले थे, ५७ विवाहित थे तथा ३ विधुर थे।[४] वासना के विचित्र अपराध होते है। अतृप्त वासना के कारण ही बहुत से लोग मकानों में सेंध लगाते है, चोरी करते है और कुछ कामी पुरुष औरतो की चोली या जम्पर या नीचे का जाँघिया चुराकर ही संतोष प्राप्त करते हैं। ऐसे भी मामले हुए तथा होते है जब बलात्कार करते समय विरोध करने पर उस स्त्री की हत्या केवल कामुक तृप्ति के लिए की जाती है या बीच सड़क में औरत को पटककर उसका जूता छीन ले जाने मे कामुक सन्तोश प्राप्त होता है।

स्त्री की तुलना मे पुरुष अधिक कामी होता है। स्त्री अपने मन को दबा सकती है, काबू में रख सकती है। अब तो आजन्म ब्रह्मचारिणी स्त्रियाँ तथा पुरुष भी काफी मिलते है। ऊँचे पद पर प्राय. अविवाहिता स्त्रियाँ ही मिलती है। नारउड की गणना के अनुसार सन् १९३८ में कामी अपराधों मे पुरुष अपराधी की संख्या स्त्री अपराधिनी से दस गुना अधिक थी। सन् १९१० से १९३१ के बीच में, इग्लैड तथा वेल्स में कामी अपराधियों की संख्या फी १,००,००० व्यक्ति पीछे ४ से ७ के बीच में थी। प्रथम महायुद्ध के बाद, सन् १९३० में सबसे ज्यादा यानी ७ प्रति लाख पीछे थी। इन अपराधियों की उम्र १६ वर्ष से ऊपर थी। सन् १९३८ में ऐसे अपराधी ५ प्रतिशत

१. Getting Married—1958—Pub. British Medical Association—Page 67

२. वही, इलेनगी का लेख, पृष्ठ १०९

३. वही, पृष्ठ ७२

४. The Journal of Criminal Science–Vol. I पृष्ठ ४७

१४ वर्ष से कम उम्र के थे, १५ प्रतिशत १७ से २० वर्ष की उम्र के, ९ प्रतिशत २१ से २५ वर्ष की उम्र के बीच के, १२ प्रतिशत २५ से ३० वर्ष की उम्र के, ५६ प्रतिशत ३० की उम्र के नीचे तथा ४४ प्रतिशत ३० से ऊपर की उम्र के थे—पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों। सन् १९३८ में कामी अपराध के लिए २३२१ को दड मिला था। अपील करने पर जितने लोगों की सज़ा बहाल रही, वह इस प्रकार है—

अपराध	दडित पुरुष	दंडित स्त्री
अप्राकृतिक व्यभिचार	५८	०
अप्राकृतिक व्यभिचार की चेष्टा	७६	१
पुरुषों के साथ अश्लीलता	१४१	०
बलात्कार	४०	०
स्त्रियो पर अश्लील प्रहार	११५	०
१३ वर्ष से कम उम्र की लड़कियों से भ्रष्टाचार करना	३१	०
१३ से १६ वर्ष की उम्र की लड़कियों से भ्रष्टाचार करना	१७९	०
निकट सम्बन्धी से प्रसंग	४०	४
व्यभिचार के लिए प्राप्त करना	१५	२
व्यभिचार के लिए भगा लाना	४	१
एक से अधिक पुरुष या स्त्री सम्बंध	१९५	८१
	८९४	८८

इसी वर्ष में १५४ पुरुष तथा ३२ स्त्रियों पर वेश्यावृत्ति को जीविका का साधन बनाने पर मुकदमा चला। ५ पुरुष तथा १७२ स्त्रियो पर वेश्याकार्य के लिए मुकदमा चला तथा ४४९ पुरुष तथा ८१ स्त्रियो पर अश्लील ढंग से शरीर प्रदर्शन के लिए दंड मिला।

वासना की प्रतिद्वन्द्विता

पशु हो या मनुष्य, जैसे वासना स्वाभाविक है, वैसे ही उसके साथ द्वेष तथा ईर्ष्या और "अपना बनाकर रखने की भावना" भी स्वाभाविक है। नारउड ने एक मज़बूत घोडे का जिक्र किया है जिसके जिम्मे दो घोडियाँ थी। इनमें से एक के प्रति उसका विशेष अनुराग अवश्य था क्योकि जब वह दूसरी घोड़ी से प्रसंग करने चलता

और उसकी प्रियतमा घोड़ी आवाज लगाती तो वह प्रसग छोड़कर पहले उसे सान्त्वना के शब्द सुना देता, तब अपना कार्य जारी करता।[1] जंगली सॉड अपने दायरे से निकल कर दूसरे सॉड़ की तरफ जानेवाली गाय के लिए द्वद्व युद्ध करता है और दो की लडाई मे उस गाय के टुकडे-टुकडे हो जाते है। चिड़ियाखाने मे ऐसे अजीब दृश्य प्राय: देखे जाते है जब "पुरुष पशु" की लड़ाई मे स्त्री पशु की जान जाती है। ऐसी कितनी ही हत्याएँ होती है। जब कोई व्यक्ति यह देखता है कि वह जिसे प्यार करता है, वह उसकी न होकर पराये की गोद मे जानेवाली है तो उसे इसलिए मार डालता है कि दूसरा तो उसको न अपना सके। वासना एक उन्माद है, एक ऐसी वस्तु है जिसका विचित्र मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक मिश्रण है। सोमाली लोगो[2] को तभी सुख मिलता है जब सुहागरात के दिन वे अपनी नव-वधू की योनि को बुरी तरह से क्षत कर डालें। स्त्रीप्रसंग के पहले वे अपनी प्रियतमा को कोड़े से पीटते है। कामुक वासना रूप तथा लावण्य पर ही नही निर्भर करती। एक २६ वर्ष के नौजवान ने ७० वर्ष की एक अविवाहिता कुमारी बुढिया के साथ बलात्कार किया और फिर उसे मार भी डाला।[3]

वासना कैसे बढती है, कैसे जागती है, यह कुछ कहना बड़ा कठिन है। अभी तक लोग अँधेरे मे टटोल रहे है। बूढे कामी लोगो के लिए कहा जाता था कि उनके पेशाब के स्थान के ऊपर प्रास्टेट ग्लैंड मे वृद्धि हो जाने के कारण ऐसा होता था। पर अब चिकित्साविज्ञान ने इसे झूठा साबित कर दिया है। यदि यह कहा जाय कि बार-बार कामी अपराध करनेवाले का यही इलाज है कि उसकी इन्द्रिय काट लो या आधी काट लो—तो इससे भी काम नही चलेगा। फोरेल का कहना है कि जवानी मे खतना करानेवाले लोग आगे चलकर अपनी स्त्री के साथ प्रसंग के योग्य हो जाते है। यह कहना भी ग़लत है कि ऐसे अपराधी स्त्री-पुरुष को ऐसा नश्तर लगा दिया जाय कि वे सन्तान न पैदा कर सकें—क्योकि अब यह साबित हो गया है कि यह कोई जरूरी नही है कि लम्पट की औलाद भी लम्पट होती है।[4] अधिकाश लम्पटो की संतान बड़े

१ वही, पृष्ठ ५०

२. "मध्य आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी"—Roheim ने इनके विषय में विशेष अध्ययन किया है।

३. नारउड, पृष्ठ ५२

४. Dr. W. Narwood East in "Mental Abnormality & Crime", Macmillan & Co., Pub. 1949–Page 100

अच्छे मार्ग पर चलने वाली होती है। इन्द्रिय आदि के काटने से मन नही कटता। मन को जीतना है, तभी इन्द्रियों पर विजय होगी। किसी आदमी का शिश्न काट लिया जाय तो बहुत होगा वह प्रसंग न कर सकेगा। पर रातों दिन वासना उसका मन सताया करेगी। तब तो उसका जीवन और भी कष्टमय होगा। नपुसकता यदि लानी है तो मन में लानी चाहिए। इसका मनोवैज्ञानिक उपाय हो सकता है। यह न भूलना चाहिए कि मानसिक संभोग, मन ही मन बैठे व्यभिचार, बड़ी घातक तथा भयकर वस्तु है।

परन्तु व्यभिचार के अपराध संसार मे, प्रत्येक देश में, दूसरे की सम्पति अपहरण करने के अपराधो के बाद दूसरा स्थान रखते है, यद्यपि प्रथम का भी कारण वही हो सकते है। पागल, उन्मत्त, रोगी की कामवासना का कारण समझा जा सकता है पर स्वस्थ व्यक्ति की बात आसानी से समझ में नही आती। हम लोग यह भूल जाते है कि बचपन मे ही बच्चो में, लड़के-लड़कियो में, वासना की नीव पड़ती है। अनायास उनके नन्हे हाथ उनकी योनि या इन्द्रिय पर चले जाते है। यदि माता-पिता ने योनि तथा इन्द्रिय को साफ नही रखा तो खुजली भी होती है। इसलिए हाथ बार-बार जाता है। उससे कुछ सुख मिलता है और यही सुख आगे चल कर कामुक सुख का रूप धारण कर लेता है। और प्रसंग का पहला अनुभव जैसा होगा, वैसा मन का एतत्-सम्बन्धी सस्कार बनेगा। एक युवक को औरतो का जूता चुराने की बड़ी आदत थी। पर इसका कारण यह था कि जब उसने होश सँभाला, बहुत अच्छा जूता पहनने वाली एक आकर्षक लड़की ने उसका मन मोह लिया था। लड़की दूसरों की हो गयी—जूते का असर छोड गयी। एक युवक का एक लड़की से संसर्ग हुआ, जिसमे स्खलन के बाद उसके नीचे के वस्त्र गीले हो गये। गीला वस्त्र देखकर लड़की बहुत बिगड़ी। उसके इस बिगड़ने का प्रभाव युवक पर ऐसा पड़ा कि वह लड़कियों के कपड़े खराब करने में ही बड़ा सुख अनुभव करता था। एक २२ वर्ष का नौजवान पुलिस-कास्टेबुल पर प्रहार करने के अपराध मे ब्रिटिश जेल मे भेजा गया। वहाँ पर छानबीन करने पर मालूम पडा कि वह वास्तव मे भला मानुस लड़का था। उसकी माता की उम्र पिता की उम्र से बहुत कम थी। दोनो मे फूट हो गयी। माता एकान्त स्थान मे अपने बेटे को लेकर चली गयी। उस बेटे के साथ वह क्रीड़ा भी करने लगी। अब उस युवक के जीवन मे पतन के लिए और क्या चाहिए था? जिसने सिखाया, वह दोषी है।

इसी प्रकार बलात्कार की भी बात है। यदि कन्या के साथ बलात्कार हुआ और वह गर्भवती हो गयी तो उस बेचारी का सत्यानाश हो गया। पर क्या बलात्कार में कन्या गर्भवती हो सकती है? जब तक उसका स्खलन न होगा यह गर्भवती कैसे होगी?

यदि स्खलन हुआ तो इसका अर्थ है उसे सुख मिला। यह भी कहा जाता है कि अपने बराबर शक्ति वाली स्त्री के साथ पुरुष बलात्कार कर ही नही सकता। अमेरिकन वैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि वयस्क स्त्री जब तक न चाहे, उसकी योनि मे प्रवेश नही हो सकता। इंग्लैण्ड में १९२९-३८ के बीच में, २५८ पुरुषो को बलात्कार के लिए दंड मिला। इनमें से ऐसे भी मामले थे जिनमें स्त्री ने "स्वीकार" करना अस्वीकार कर दिया और जान से हाथ धो बैठी। ऐसी दशा मे बलात्कार तो प्रतीत होता है वरना आज तर्क होने लगा है कि बलात्कार स्वतः कोई वस्तु नही है। जोर, जुल्म, जबर्दस्ती आदि अपराधो के आधार पर दंड हो सकता है। इसी प्रकार पिता-पुत्री या माता-पुत्र या बहिन-भाई के प्रसंग के अपराध भी दो में से एक पक्ष की भूल से शुरू होते है। इंग्लैड में १९२९-३८ के बीच मे ऐसे अपराध से ४७१ पुरुष तथा ४९ स्त्रियाँ दडित हुई थी। ५३० स्त्रियाँ, जिनमें अधिकाशतः वेश्याएँ थीं, परस्पर प्रसग के लिए दंडित हुईं।

इस विचित्र संसार में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक अनुभव होते हैं। हैवलाक एलिस ऐसे विद्वानो ने भी सिद्ध कर दिया है कि संसार मे दो प्रकार के प्राणी होते है। एक वह जो दूसरे को पीड़ा पहुँचाकर कामुक का मानसिक सुख प्राप्त करता है तथा दूसरा वह जो पीडा सहकर सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार पुरुष तथा स्त्री दोनो ऐसे ही दो भावो मे से एक के शिकार होते है। स्त्री को पीड़ा सहने में सुख मिलता है—यह अधिकाश स्त्रियों का सहज गुण प्रतीत होता है, पुरुष को पीड़ा देने में। स्त्री प्रसंग मे पुरुष के आघात से सुख का अनुभव करती है। पर-पीड़न में सुख पानेवाले ही हत्या, मारपीट, दूसरे की सम्पत्ति का नाश, आग लगाना, दूसरे के कपड़े ही खराब कर देना या किसी पर स्याही उडेल देने का अपराध करते हैं। पुरुष ही अधिकतर ऐसा अपराध करते है। स्त्रियों में आत्म-हत्या, कुएँ में कूद पडना, पति को उत्तेजित कर उससे पिट जाना, अपने शरीर मे आग लगा लेना इत्यादि के अपराध काफ़ी होते है। पीड़ा सहकर सुख उठाने की एक बड़ी मार्के की मिसाल नारउड ने दी है। वे लिखते है कि एक युवती स्त्री प्राय. चोरी की सजा पाती थी। उसमे आदत थी कि मासिक धर्म होने के समय वह अपनी धोती मे, पैर मे, हाथ मे अपने से घाव कर देती थी, अपने ही चमड़े मे, अपने हाथो मे सुई चुभो देती। इस प्रकार पीड़ा से कराहने मे तथा अपना रक्त देखकर उसे बड़ा कामुक सुख मिलता था।[१]

१. The Journal of Criminal Science–Vol. I—पृष्ठ ७३, ७४

जब पुरुष की बुद्धि तथा उसकी पहचान इतनी कठिन वस्तु है तो उसका निदान तथा उसकी चिकित्सा भी किस प्रकार हो सकती है? अब इस विषय में दो चार बातें और लिखकर इस समस्या के दूसरे पहलू पर विचार करेंगे। मनुष्य-स्वभाव की व्याख्या करना कठिन है। हमे रोज-रोज नये-नये ढंग के नये-नये व्यक्ति मिलते है। उदाहरण के लिए कोई आदमी है जो स्वभाव का चिड़चिडा है। अक्सर जरा सी बात पर उसे क्रोध आ जाता है। वह लोगों पर बहुत जल्दी चिल्ला पड़ता है। बातें खूब करता है। उसे बाते करने का बडा शौक है। उसकी भूले यदि उसे बतलायी जायँ तो वह नाराज हो सकता है। ऐसे आदमी मनोवैज्ञानिक रूप से एक विशिष्ट अहंभाव के रोगी है। अपने को महत्त्वपूर्ण समझने का इनमे इतना बड़ा रोग है। वे मन चाहने पर खूब खर्चीले बन जाते है। खूब शराब भी पी लेते है और मौका पडा तो वासना सम्बधी अपराध भी कर बैठते है। ऐसे लोगों से मिलते-जुलते ऐसे भी व्यक्ति है जिनको यह खब्त हो जाता है कि वे अन्तरात्मा की आवाज सुन रहे है या ईश्वर से उन्हे प्रत्यक्ष आदेश प्राप्त हो रहा है। अपने सभी कार्यो को वे ईश्वरीय आदेश समझने लगते है। समाज से यदि किसी बात में उनकी खटपट हो गयी तो वे उससे चिढ़कर अपने को अपने मे ही खीच लेते है और उस खिंचाव को ईश्वरीय आदेश में मिला लेते है। उनके मन मे प्रेम तथा घृणा का ऐसा प्रवाह है जो कभी उत्तेजनावश उन्हें मजबूर करता है कि वे अपनी कामवासना से बचने के लिए अपना अंडकोष काट डालें। ऐसे ही लोग अपने विवाह के दिन ही अपनी आत्महत्या कर लेते है। मन में बैठी घृणा तथा प्रेम का मिलान न मिला सकने के कारण वे यह सब अनर्थ करते रहते है।[1]

वासना के ही मरीज ऐसे बहुत से काम करते है जिनका देखने मे प्रत्यक्षत. वासना से कोई सम्बन्ध नही रहता—जैसे भद्दी भाषा का उपयोग, दूसरे के विरुद्ध अपमानजनक बाते कहना, गालीगलौज भरा पत्र भेजना,[2] परिवार की देखरेख नही करना, दूसरे के काम मे बाधा डालना, शराब पीना, इत्यादि। कामुक वासना की उत्तेजना ही अनेकों में हत्या के भाव उत्पन्न करती है। केवल अपने मन की खीज मिटाने के लिए किसी के शीशे की खिड़की पर ढेला फेंकना भी तो यही है। वासना की ही प्रतिक्रिया होती है कि अक्सर लोगों के मन मे बिना कारण भय समा जाता है। लोग हाथ मे चाकू लेने से डरते है कि कही उस चाकू से वे किसी का गला न काट ले। एक अज्ञात

१. Mental Abnormality—पृष्ठ २२, २३

२. वही, पृष्ठ ३१

अस्पष्ट भय उनको हमेशा सताया करता है। वे मन मे बार-बार निश्चय करते है कि उस भय के ऊपर उठ जायँ पर भय दबोचे रहता है। ऐसे ही लोगो मे यह आदत हो जाती है कि खूब साफ-सुथरा कपड़ा पहनो वरना और लोग क्या समझेगे। ऐसे मरीज मन ही मन कामुकता की बाते बहुत सोचते है पर वे इतने कायर है, इतने भयभीत है कि व्यवहार रूप मे कुछ करने की उनकी हिम्मत नही पडती।[1]

मनोवैज्ञानिक रोग

बहुत से काम ऐसे हैं जो केवल मन की कमजोरी से होते है। आत्म-हत्या क्या है? व्यक्ति स्वयं अपनी असफलता पर विजय प्राप्त न कर सकने के कारण या मन मे दोष की, ग्लानि की भावना को सँभाल न सकने के कारण या फिर दूसरे को दु:ख पहुँचाकर उससे बदला लेने के लिए अपनी जान ले लेता है। वास्तविकता से दूर भागने के लिए, अपने कष्टो से निर्वाण के लिए प्राण दे देता है। यदि उसे कोई समझा सकता कि कष्टो से छुटकारा ऐसे नही मिलता तो शायद वह ऐसा न भी करता। विकृत मस्तिष्क की असंतुलित दशा में, निराशा या ग्लानि की ना-समझी की चट्टान से टकराकर, भावावेश में पुरुष या स्त्री आत्महत्या कर लेते है।[2] यदि इनके संकल्प को ढाई घटे तक टाल दिया जाय, प्राण लेने की क्रिया का प्रारम्भ होने के पूर्व ढाई घंटे[3] तक रोक दिया जाय तो आत्महत्या कभी न होगी। चूँकि यह पागलपन है अतएव ज्यादातर आत्महत्याएँ पूर्णमासी या अमावस्या के निकट होती है। यह भी मार्के की बात है, प्रमाण-सिद्ध है।

किन्तु आज का विज्ञान दूसरे की हत्या को केवल क्षणिक उन्माद या पागलपन मानने के लिए तैयार नही है। कुछ क्षणिक उन्माद के भी रोगी होते है पर कुछ ही, ज्यादातर अच्छे दिमाग के सुलझे हुए लोग होते है। पर छानबीन करने से पता चलेगा कि ऐसे हत्यारो में से अधिकाश बचपन से ही उग्र तथा तेज मिजाज के लोग रहे है। एक मर्तबा उत्तेजित हो जाने पर वे अपनी उत्तेजना को सभाल नही सकते। ज्यादातर हत्याएँ काम-भाव के कारण होती है, चाहे वह किसी स्त्री को प्राप्त करने के लिए हों, या अपने लडके को अपने काबू मे रखने के लिए। यह अवश्य है कि यह मन का रोग ही है कि किसी को रक्तपात के द्वारा ही प्राप्त किया जाय।

१. वही, पृष्ठ ७५ २. वही, पृष्ठ ११०

३. इस सम्बंध मे मनोवैज्ञानिक अनुसंधान बड़ा सही पाया गया है

डा० हैडरसन[1] का कहना है कि काम-भाव से पीड़ित तथा काम-अपराध करने-वाले अधिकांश व्यक्ति शुरू मे सह्-योनि प्रसग के शिकार होते है। वे लिखते है कि "शुरू में मेरा ऐसा खयाल था कि वासना का अपराधी डाक्टरी चिकित्सा का विषय है। मेरे अनुभव ने मुझे अपना विचार बदलने के लिए मजबूर किया है। वासना के बहुत कम अपराधी का मन रोगी सिद्ध हुआ। वह व्यक्ति और हर मामले में भद्र पुरुष है। केवल उसका वासनामय कार्य ही समाज के प्रतिकूल है। यह कहना बड़ा कठिन है कि उसके ऐसे कार्य का कितना प्रतिशत भावुकता, आवेश आदि के कारण है और कितना मानसिक रोग के कारण और कितना अन्य कारणों से। आज तक इसका उचित मापदंड नही प्राप्त किया जा सका।" इतने बड़े विद्वान् के मन मे जो शंका है, यदि वह हमारे मन को भी सता रही हो तो क्या आश्चर्य है। हैडरसन ने एक व्यक्ति का उदाहरण दिया है जो २६ दिसम्बर १९१६ से लेकर १० सितम्बर १९४० तक १२ बार सजा भोग चुका था। अपराध भी एक ही था।

१.	२६ दिसम्बर, १९१६	अश्लील व्यवहार	१० या ५ दिन कैद
२.	१५–४–१९१९	"	३० दिन कैद
३.	१२–२–१९२०	"	६० दिन कैद
४.	१०–६–१९२०	"	६० दिन कैद
५.	२३–२–१९२३	"	६० दिन कैद
६.	२९–८–१९२४	"	६० दिन कैद
७.	१३–५–१९२५	"	६० दिन कठोर कारागार
८.	९–१२–१९२५	"	३० दिन कैद
९.	८–१०–१९२६	"	८ महीना कैद
१०.	२८–९–१९३१	"	१२ महीना कैद
११.	३–१–१९३६	"	१८ महीना क़ैद
१२.	१०–९–१९४०	"	१८ महीना कैद

ऐसे ही उदाहरण हमारी बुद्धि को चकरा देते है। सजा, जेल मे सुधार के उपाय, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, सब कुछ हुआ और परिणाम कुछ न निकला। हैडरसन लिखते है—

१. डा० डी० के० हेंडरसन, मनोविज्ञान के अध्यापक, एडिनबर्ग विश्व-विद्यालय,—Mental Abnormality पृष्ठ ११४–११५

"सब बातों पर पूरी तरह से विचार करने के बाद हम यह मानने के लिए मजबूर होते है कि कामुक अपराध को चिकित्सा तथा सामाजिक सम्मिलित समस्या कहा जा सकता है। फिर भी आज तक ऐसे अपराध तथा अपराधी के साथ समुचित उपाय की हमको जानकारी नही हो पायी है।"[1]

वासना का रोगी मनोवैज्ञानिक रोगी है या समाज का रोगी? जब तक यह निर्णय न किया जाय, दंड का भी निश्चय नही हो सकता। यदि मानसिक रोगी है तो जेल या पिटाई से मरीज पर कोई असर न पडेगा। यदि साधारण चोर डाकू की तरह सजा दी जाय तो उससे अपराध मे कमी नही आ सकती। वासना का रोग शरीर की विशिष्ट बनावट तथा उसके भीतर विशिष्ट रस—सुख के कारण है, यह भी कहना बडा कठिन है। आज का विज्ञान अब इस उसूल को भी मानने को तैयार नही है। प्रत्येक डाक्टर या वैद्य यह जानता है कि बीमारी की हालत में रोगी जैसा व्यवहार करता है, स्वस्थ दशा मे वैसा नही करता।[2] पर कामुक व्यक्ति के व्यवहार मे स्वस्थ या रोगी दशा मे अन्तर नही मालूम होता। यही बात अनुसंधान के लिए बडा महत्त्व-पूर्ण विषय है। अभी तक निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

सन् १९५५ मे लन्दन में अपराध-शास्त्र विषयक द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। उसमें विचारणीय विषयो में "बार-बार अपराध करनेवाले" की समस्या थी, जिस पर बहुत विचार किया गया था। इन पक्तियों का लेखक तथा विश्व-विख्यात अपराध शास्त्री डा० शेल्डन ग्लूक और उनकी पत्नी एलिनर ग्लूक उस सम्मेलन मे उपस्थित थे। उसके निर्णयों की समीक्षा मे श्री शेल्डन ग्लूक ने एक लेख लिखा है। उसमे आप लिखते हैं[3]

"अपराधी की रचना मे पिता-माता की लापरवाही या फिर बहुत लाड़-प्यार भी महत्वपूर्ण प्रभाव रखता है। जाँच से एक बात यह मालूम होती है कि हर अपराधी का इतिहास अपनी विशेषता रखता है। उनमें एक-स्वरता (समानता) नही है। फलतः बहुत से आर्थिक अपराधो की तह मे उद्दंडता या कामुक अपराध हो सकता है या दोनो ही वर्तमान हो सकते है। जब अपराधी का इतिहास एक समान मालूम होता है तब भी मनोविश्लेषण से यह पता चल जाता है कि एक अपराधी के व्यक्तित्व के अन्तरतम में कोई गहरी उलझन या गडबड़ी छिपी हुई है।"

१. वही, पृष्ठ ११५ २. वही, पृष्ठ १५९ ३. Two International Criminologic Congresses—A Panorama—By Sheldon Glueck, Published in "Mental Hygiene"—Vol. XI. No. 3, July 1958 तथा No. 4, Oct. 1958

अध्याय १४

चुम्बन

अपराध के संस्कार अनेक कारणों से बनते है। उनमे चुम्बन भी एक बडा भारी कारण है। चुम्बन् से एक छिपी उत्तेजना होती है—चुम्बन लेनेवाले, देनेवाले तथा देखनेवाले को। हैवलाक एलिस तथा फ्रायड दोनों ने कहा है कि बच्चे को अपनी माता के स्तन से खेलने मे कामुक सुख मिलता है। पिता-माता को अपनी सन्तान का मुख चूमने में कामुक सुख मिलता है। जिन देशों में माता-पिता बच्चो के सामने परस्पर चुम्बन करते रहते है उन देशो मे बच्चे बचपन से ही कामुक शिक्षा प्राप्त करते रहते है। इसी लिए पूर्वी देशो में, जहाँ परस्पर चुम्बन अभी तक सभ्यता की सीमा के पार नही जा सका है, पश्चिम की तुलना मे वासना के अपराध कम होते है।

चुम्बन से बचपन मे ही कामोत्तेजना का उपदेश मिलता है। हीली ने ११ वर्ष के एक बच्चे की कथा दी है जो प्राय. चोरी करता रहता था। रात-रात भर घर से ग़ायब रहता था। पता लगाने पर मालूम हुआ कि जब वह चार वर्ष का था, एक लड़की ने उसे प्रसंग का पहला पाठ पढाया। इस शिक्षा का उसने एक लड़के पर उपयोग किया और पकडा गया। तबसे उसे सँभालने का प्रयत्न किया गया, पर सफलता नही मिली। यह बच्चा सिनेमा जाने का बड़ा शौक़ीन था। माता-पिता के मना करने पर भी यह सिनेमा जाता था और सिनेमा जाने के लिए पैसे की चोरी करता था। सिनेमा मे इसे सबसे ज़्यादा आनन्द तब आता था जब प्रेमी लोग "आपस में एक दूसरे को चूमते थे।" इस प्रकार का दृश्य देखने के बाद वह अक्सर हस्तक्रिया किया करता था।[१]

चुम्बन के इसी विनाशकारी परिणाम के कारण आज से चार सौ वर्ष पूर्व इटली में सार्वजनिक स्थान पर पति-पत्नी का चुम्बन भी प्राणदंड के योग्य अपराध था और आज भी वहाँ सार्वजनिक स्थान मे, सडक पर, होटल में, रेलवे प्लैटफार्म आदि पर, कहीं

१. हीली, अध्याय ७, पृष्ठ ३०९–३१०

भी आत्मीय से आत्मीय को चूमा नही जा सकता। पुर्तगाल तथा स्पेन मे भी सबके सामने प्रेम प्रकट करना अपराध समझा जाता है। इटली मे "चुम्बन" शब्द का दंडविधान मे प्रयोग नही है। उसे "चिढ पैदा करनेवाला," "अपमानजनक", "निजी प्रहार", "सार्वजनिक शिष्टता के विरुद्ध कार्य" आदि सम्बोधनो से इंगित किया गया है। प्राचीन रोमन कानून मे चुम्बन तीन प्रकार के होते थे, १. स्नेह का परिचायक "गाल का आलिगन,"[१] प्रेम का परिचायक "मुख का चुम्बन",[२] वासना का परिचायक "भरपूर चुम्बन"[३]। रोमन कानून मे अपनी कन्या के सामने अपनी पत्नी को चूमना भी अपराध था। आज भी अनेक इटालियन नगरो मे पुलिस की टोली गश्त लगाकर चूमनेवालो को गिरफ्तार करती रहती है। रात को पुलिस की गाडियाँ तेज रोशनी फेककर देखती रहती है कि कोई चूम तो नही रहा है।

८ मार्च १५५२ को नेपुल्स (इटली) मे, जो उस समय स्पेन के अधीन था, एक क़ानून लागू हुआ जिसके अनुसार सार्वजनिक चुम्बन पर प्राणदंड की सजा निर्धारित हुई। सन् १५८९ मे वेनिस के राजा ने इसी अपराध पर अपनी लड़की को घर से निकाल दिया। इटालियन दंडविधान की धारा ७२६ के अनुसार चुम्बन के अपराधी को एक मास कैद तथा १६,००० लिरा (इटालियन सिक्का) यानी १३८० रुपये जुर्माना देना पड़ेगा। चूमने के विरुद्ध १८वीं सदी मे पोप का भी फ़तवा जारी हुआ था।

पर, सन् १९०९ से चुम्बन के हिमायतियों का आन्दोलन शुरू हुआ। इटली के सेरजेतो नगर मे लिस्तुरे नामक युवक का मेरिया नामक लड़की से प्रेम हो गया। कुछ समय बाद मेरिया ने दूसरे नौजवान को अपना लिया। लिस्तुरे ने यह सम्बध तोड़ने के लिए एक उपाय किया। एक दिन मेरिया बीच बाज़ार मे से अपने नये प्रेमी के साथ जा रही थी। लिस्तुरे ने दौडकर उसे भरमुह चूम लिया। लिस्तुरे का लक्ष्य पूरा हुआ। मेरिया का नया प्रेमी चिढ़कर चला गया। पर युवक पर चुम्बन के लिए मुकदमा चला और तबसे अदालतो के सामने यह समस्या है कि ऐसे अवसरो पर दड दे या न दे। लिस्तुरे छोटी तथा बडी अदालत से, दोनो से छूट गया था। सन् १९२९ मे, २१ जनवरी को एक अपील कोर्ट ने फैसला किया कि अपने भावी पति या पत्नी को सार्वजनिक स्थान मे चूमना अपराध नही है। पर, १९५१ की जुलाई में इटली के सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला किया कि यदि "चुम्बन कामुकता अथवा कामवासना को व्यक्त

१. Osculum २. Basium ३. Savium

नहीं करता" तो वह अपराध नही है। पर, जून १९५५ में एक अपीलकोर्ट ने पुनः फ़ैसला दिया कि "चुम्बन अश्लील कार्यों में से है।" सन् १९५८ मे रोम में एक युवक पर एक कन्या को सार्वजनिक उद्यान में चूम लेने का अभियोग लगा, पर जब यह सफ़ाई दी गयी कि लड़के ने चूमा पर लडकी ने चूमने का जवाब चूमकर नहीं दिया तो अपराधी छोड़ दिया गया।

वासना के सबसे अधिक अपराध फ्रान्स मे होते है। संयुक्त-राष्ट्रपरिषद् के अनुसार सन् १९५३-५४ मे मिस्त्र में प्रति दस लाख व्यक्ति पीछे वासना के ९ अपराध हुए, जापान मे ३६ का औसत था, तुर्किस्तान में १०३५ तथा फ्रान्स मे ५०३६ अपराध हुए।[१] मिस्त्र तथा जापान मे गार्हस्थ्य जीवन की मर्यादा कही अधिक है। पूर्वी देशों मे तथा मुसलिम राज्यो मे सार्वजनिक चुम्बन पर रोकथाम है। चुम्बन की सबसे ज्यादा आजादी फ्रान्स मे है। वहाँ पर हर गली, कूचा, चौराहा पर लोग एक-दूसरे से चिपटे-चूमते नजर आयँगे। उसका परिणाम भी प्रत्यक्ष है।

१. राष्ट्रपरिषद् की रिपोर्ट, १९५५

अध्याय १५

विवाह तथा तलाक

सामाजिक जीवन मे स्थिरता लाने के लिए, परस्पर प्रेम-भाव कायम रखने के लिए तथा साथ ही वासना को एक नियत्रण मे रखने के लिए विवाह से वढकर कोई वस्तु नही है। पर इस सम्बध मे भारतीय सभ्यता ने जो ऊँचा आदर्श प्रतिपादित किया है वह कही नही है—विवाह भोग के लिए नहीं, सन्तानोत्पत्ति के लिए, पितृ-ऋण से मुक्ति पाने के लिए है। यह आदर्श मानकर चलने से पत्नी को वेश्या भी नहीं बनाया जा सकता। पर हिन्दू धर्म मे भले-बुरे की सभी गुन्जायश है।[1] ज्योतिष की गणना करके किस समय कहाँ पर प्रसग हो, यह भी निर्देश कर दिया गया है। "जातक-पारिजात" के अनुसार सुख-स्थान मे यदि सूर्य हो तो घर के अतिरिक्त वन या उद्यान मे प्रसंग करना चाहिए। सुख-स्थान मे चन्द्रमा हो तो रमणीय गृह में, मंगल हो तो कुटी मे, बुध हो तो विहार के स्थान में हं। विहार हो, गुरु सुख-स्थान मे हो तो मंदिर

१. ज्योतिष शास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक "जातक पारिजात" दैवज्ञ श्री वैद्यनाथ विरचित, काशी संस्कृत सीरीज ग्रंथमाला, १०. प्रकाशक जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा, वाराणसी, सन् १९४२—मे श्लोक है—

वंध्यासंगमिनेऽस्तगे समवधूकेलिर्निशानायके
भूपुत्रे तु रजस्वलाजनरतिं वंध्यावधूमेति वा
वेश्यामिन्दुसुते तु विप्रवनितां जीवे सिते गर्भिणीं
नीचस्त्रीरतिमर्कजोरगशिखिप्राप्तेऽथवा पुष्पिणीम् ॥३९॥

(सप्तमाष्टमनवम भाव फलम्, अ० १३)

यानी सूर्य सप्तम हों तो वंध्या स्त्री से संगम हो, चन्द्रमा सप्तम हों तो अपने समान स्त्री से, मंगल में रजस्वला से, बृहस्पति सप्तम हों तो ब्राह्मणी से, शुक्र सप्तम में गर्भिणी से, बुध में वेश्या से, शनि, राहु वा केतु सप्तम हों तो नीच स्त्री या रजस्वला से रति हो।

में प्रसंग हो। शुक्र हो तो जल के समीप हो, शनि, राहु तथा केतु, इनमें से कोई यदि सुख-स्थान में हो तो शंकर, देवी या गणेश के मन्दिर में प्रसंग हो।[1] देखने मे यह श्लोक मूर्खता-पूर्ण मालूम होता है। पर इसका एक फल अवश्य है। इतना विचार कर, ग्रह, नक्षत्र आदि देखकर चलने वाला बिरला ही अपनी कामुकता का अवसर प्राप्त करेगा। ये सब भी वास्तव में वासना की रुकावट के लिए बंधन है। जहाँ बंधन नही है वहाँ की परिस्थिति बड़ी खराब है। वहाँ का वातावरण नयी सभ्यता की चमक-दमक में इतना दूषित हो गया है कि पग पग पर काम-वासना को उत्तेजना मिलती है। जेन अदाम्स ने बहुत पते की बात लिखी है कि आजकल के समाज का मनोरंजन का साधन ही ऐसा है कि "पग-पग पर वासना पैदा करता है, अपराधी बनाता है। नाच, गाना, खेल, कूद, सिनेमा, थियेटर, रेडियो, टेलीविजन, सड़क के साधारण मनोविनोद, जिधर देखिए वासना को प्रोत्साहन मिलता है।"[2] रजस्वला होने के बाद, उठती हुई जवानी में, चपल, चंचल घूमनेवाली लड़कियाँ पुरुषों को उत्तेजित करती हुई, ललचाती हुई, प्रसंग द्वारा उनको रोगी तथा निकम्मा बनाती हुई, अपनी समवयस्क लड़कियों को बुरी नसीहत देती हुई, समाज के लिए खतरे की घंटी है।[3]

पश्चिमी देशों में चरित्र इतना गिर गया है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में फी १००० व्यक्ति पीछे, २.२ तलाक होते है। रूमानियां (कम्यूनिस्ट) में १.९ तथा हंगरी (कम्यूनिस्ट) में १.८ और डेन्मार्क में १.५ का औसत है। उत्तरी आयरलैंड में फी एक हजार आबादी पीछे ०.०७ तथा पुर्त्तगाल में ०.०९ का औसत है। इंग्लैड, फ्रान्स आदि में १.२५ से लेकर अन्य यूरोपीय देशों में ०.५ तक का औसत है।

बहुत से देश ऐसे है जहाँ विवाह योग्य स्त्रियों की कमी है। बहुत से स्थान ऐसे

१. क्रीड़ागारमिने वनं सुखगते चारु स्वगेहं विधौ
भूपुत्रे सति कुड्यमिच्छति बुधे जातो विहारस्थलम्।
जीवे देव गृहे सिते तु सलिले मन्देऽथवा पन्नगे
केतौ माधवशंकरप्रियसुतस्थानं वधूसंगमे ॥ ४० ॥ अ० १३
(जातक पारिजात, पृष्ठ ४७८).

२. Jane Addams—"The Spirit of Youth and the City Streets"—Macmillan, New York, 1909

३. हीली—चतुर्थ अध्याय, पृष्ठ २४८.

है जहाँ विवाह योग्य पुरुषों की कमी है। अलास्का या फाल्कलैंड द्वीप समूह मे, सन् १९५५, ५६, ५७ के साल मे १५ वर्ष से ऊपर, विवाह योग्य स्त्रियो मे फ़ी १००० पीछे २०५, १५१ तथा १४९ का विवाह हो गया। इसी अवधि मे इसी उम्र की विवाह योग्य स्त्रियो मे फी १००० पीछे केवल ८७ का विवाह सयुक्तराज्य अमेरिका तथा वेस्ट इंडीज मे हुआ। संसार मे ७२ ऐसे देश है जहाँ पर विवाह योग्य स्त्रियो की अधिकता है। पूर्व जर्मनी (कम्यूनिस्ट) का स्थान ऑकडो से इन देशो में प्रधान प्रतीत होता है। वैसे पश्चिमी जर्मनी, पोलैंड आदि मे भी यही दशा है। सन् १९५७ मे पूर्वी जर्मनी मे विवाह योग्य १००० पुरुषो में ११३ का विवाह हो गया।[1] ससार में विवाहित लोगो की संख्या इधर बराबर बढ रही है। बहुत से देशो ने विवाह करने के लिए तरह-तरह के प्रलोभन दे रखे है। इंग्लैंड मे ४२ पौड (६३० रुपये) टैक्स मे छूट मिलती है। फ्रांस मे संतान होने पर सरकारी सहायता मिलती है। जो हो, विवाहित लोगों की संख्या बढ रही है। राष्ट्रपरिषद् के अनुसार "४५-५४ उम्र के बीच के अविवाहित पुरुषों की संख्या घट गयी है।" यह बात प्राय. हर एक देश मे है। यद्यपि भारत के लिए ऑकड़े नही दिये गये है पर वहाँ भी यही स्थिति है। विश्व के इतिहास मे "इतने अधिक विवाह नही हुए थे जितने कि आजकल यानी पिछले तीन साल मे।" सयुक्तराज्य अमेरिका मे ४५-५४ वर्ष की उम्र के बीच मे केवल ८.५ प्रतिशत व्यक्ति अविवाहित है। इस उम्र के ७५ प्रतिशत लोग वहाँ विवाहित है बाकी या तो विधुर है या तलाक दिये जा जुके है। भारत तथा थाईलैंड (स्याम) मे इस उम्र के केवल ४ प्रतिशत लोग बिना स्त्री के हैं। सयुक्त अरब प्रजातन्त्र, मोरक्को, अल्जीरिया, लीबिया, तुर्किस्तान आदि मे इस उम्र के केवल ५ प्रतिशत अकेले है। कनाडा, पश्चिमी यूरोप आदि मे लगभग संयुक्तराज्य अमेरिका का औसत है। आयरलैंड मे विवाह बहुत कम होते है—हजार पीछे पॉच और ४५-५४ के उम्र के बीच मे वहाँ ३१ प्रतिशत अकेले है। मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका मे २२ प्रतिशत अविवाहित हैं तथा कोलम्बिया, निकारागुआ, पारागुये, क्यूबा आदि में १५ से १८ प्रतिशत।

पश्चिमी यूरोपीय देशों मे ४५ से ५४ वर्ष की उम्र की १०-१४ प्रतिशत स्त्रियाँ बिना ब्याही है। आयरलैंड मे २४ से २६ प्रतिशत स्त्रियाँ कुमारी है। पर वहाँ की स्त्रियो का चरित्र अन्य देशो की तुलना मे कही अधिक अच्छा है। वहाँ कुमारी

१. ये सब आंकड़े राष्ट्र संघ द्वारा प्रथम वार प्रकाशित रिपोर्ट से लिये गये है—
U. N. Demographic Year Book, 1958

गर्भवती बहुत कम मिलेगी, इसी लिए वहाँ १००० पीछे सतानोत्पत्ति २० का औसत है जब कि अविवाहिता का औसत प्राय. वही होते हुए भी पनामा तथा वेनेजुएला में बच्चों की उत्पत्ति का औसत १००० पीछे ४० तथा ४६ है। वेनेजुएला मे कुमारियों की संख्या ३४ प्रतिशत है।

ससार के सभी देशो का औसत मिलाने पर पता चलता है कि दूल्हनो की औसत उम्र २४ वर्ष की है। दूल्हो की औसत उम्र २७ वर्ष की है। संयुक्त राज्य अमेरिका मे औसत उम्र दूल्हे की साढे चोबीस, दूल्हन की २२ है। ११५ देशो मे औसतन वधू की उम्र १९ से ३१ वर्ष है। सब से छोटी उम्र की बधू फीजी द्वीप, अलबानिया, मिस्र आदि मे तथा सबसे बड़ी उम्र की वधू—३१ वर्ष फ्रेंच गाइना, वेस्ट इडीज आदि में मिलेगी। फीजी आदि मे वर की उम्र औसतन २३ वर्ष की है। फिलप्पीन, मेक्सिको, बलगारिया आदि मे औसतन २७ वर्ष, वर-वधू की उम्र मे ४ से ७ वर्ष तक का औसतन अन्तर प्रतीत होता है। सबसे कम अन्तर मिस्र, स्पेन आदि मे होता है।

आजकल, कुछ वर्षो से विवाह जल्दी होने लगे है। कुछ देश ऐसे है जहाँ विवाह की उम्र बढ़ गयी है, जिनमें भारत तथा जापान मुख्य है। जहाँ पर जल्दी विवाह होने लगे है उनमे सयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैड, कनाडा, न्यूजीलैड, आस्ट्रेलिया आदि प्रमुख है। पर "विवाह" का अर्थ यह नही है कि सभी का विवाह पहला विवाह होता है। अलास्का मे प्रति वर्ष जो विवाह होते है उनमे केवल ५० प्रतिशत वर या वधू ऐसे होते है जिनका विवाह पहले नही हुआ रहता। मिस्र में ६२ प्रतिशत का औसत है। सयुक्त-राज्य अमेरिका मे नव-विवाहितो मे ६९ प्रतिशत वर या वधू की पहली शादी होती है। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैड ऐसे देशो मे ९० प्रतिशत का प्रथम विवाह होता है।

सवाल यह है कि क्या जल्दी विवाह हो जाने से यानी विवाह की उम्र न टालने से वासना के अपराध घट सकते है। आज हर एक सभ्य देश मे जल्दी विवाह कर लेने की सलाह दी जा रही है ताकि वासना के अपराध कम हो। हीली लिखते है[1]—

"असभ्य तथ सादी जिन्दगी वाले लोगो मे शीघ्र विवाह हो जाता है। पर हमारे साथ आर्थिक तथा अनेक परिस्थितियाँ इसके विपरीत है। हमने बहुत से परिवार वालो को कहते सुना है कि वे अपनी समय से पूर्व युवती हुई कन्या के शीघ्र विवाह की महत्ता को समझते है पर उसका विवाह करना असम्भव होता है, क्योकि या तो कोई उस समय तक उसका प्रेमी नही होता या फिर बहुत ही कम उम्र का, अप्रतिष्ठित, आर्थिक दृष्टि

१. हीली. अध्याय ४, पृष्ठ २४८.

से एकदम निकम्मा पति मिलता है. . .अक्सर १६ वर्ष की लड़की या लड़का ३० वर्ष के स्त्री या पुरुष के बराबर कामुक दृष्टि से होते है पर. . . . ."

विवाह क्यों तथा कब ?

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने सन् १९५० मे जब शिक्षामन्त्री के पद से युवक-युवतियो को सलाह दी कि वे जल्दी विवाह करें, तो लोगो ने उनके कथन की अहमियत को नही समझा। पर अब धीरे-धीरे लोग यह स्वीकार करने लगे है कि आर्थिक स्थिरता के लिए भी तथा सामाजिक स्थिरता के लिए बहुत देर का विवाह हानिकर होता है। जवानी उभडते ही वासना जरूर जागती है। उसे रोक-थाम लेना बिरलो का ही काम है। जो सँभाल सकते है वे वास्तव में संसार में अमर काम भी कर जाते है।

जवानी आते ही पुरुष तथा स्त्री के दृष्टिकोण में एक बडा अन्तर होता है। लड़की एक अति सहनशील कार्य की तैयारी करती है—उसे पूर्ण मातृत्व की तैयारी करनी है। उसकी तैयारी केवल शारीरिक ही नही है, वह मनोवैज्ञानिक, भावनामय तथा आध्यात्मिक होती है। कामुक संसर्ग उसके लिए उस महान कार्य में केवल एक घटना मात्र है।[1] जब वह किसी जवान लड़के से प्रेम करती है तो वह कहती है—"मै तुमसे प्रेम करती हूँ। चलो हम लोग विवाह कर लें"। पर जवान होता हुआ लड़का किसी युवती से कहता है—"मै तुमको प्यार करता हूँ। चलो हम हम-विस्तर हों।" इस-लिए अनेक दृष्टियो से लड़के को अधिक शिक्षा मिलनी चाहिए। उसे शारीरिक आवश्यकता का आभास होता है। पर भावुकता उसके पल्ले नही पड़ती।"[2]

पर, पुरुष की भूलों को समाज सुधारता था। आज से सौ दो-सौ वर्ष पहले के पश्चिम के लोग यदि आजकल की तरह लड़के-लड़कियों का पूर्ण स्वतंत्र रीति से मिलना देखें तो घबड़ा जायँ। उन दिनो भी व्यभिचार आदि होते थे पर पारिवारिक जीवन अधिक स्थिर था। पति को न प्यार करने पर भी स्त्री उसके साथ रहती थी, इसलिए कि और कोई दूसरा चारा नहीं था। पुरुष अपनी स्त्री को छोड़ नही देता था, इसलिए कि यदि वह ऐसा करता तो समाज मे नक्कू बन जाता और उसकी प्रगति में भयंकर

१. "Ahead of Marriage"—By Dr. E. Chesser in "Getting Married—1958. पृष्ठ ७४

२. वही, पृष्ठ ७५

है जो धार्मिक विश्वासी होते है। जिस परिवार मे धार्मिक भावना होगी, उसके बच्चे अधिक सुखी होगे। आज के वैवाहिक जीवन की कटुता का कारण पति-पत्नी का अलग-अलग घोर स्वार्थी होना है। जहाँ पुरुष तथा स्त्री अपना-अपना स्वार्थ लेकर खीचते है, कटुता होगी ही, पर जिनका विश्वास होता है कि "भगवान् की इच्छा सर्वोपरि है", वे निजी स्वार्थ को सर्वोपरि नही मानेगे। सच्ची धार्मिकता क्षुद्र स्वार्थ को परास्त कर देती है।[१] ईश्वर ने सृष्टि की रचना की। अब हम "सृष्टि की रचना कर यानी सन्तान उत्पन्न कर" ईश्वर का कार्य कर रहे है। इस भाव से संतान का पैदा करना समाज का परम कल्याण करना है। आज जो लोग विवाह को धार्मिक कृत्य नही मानते उनके मन में भी धर्म के प्रति आस्था है। इग्लैड में सरे नगर के गिरजाघर के पास विवाह की रजिस्ट्री का दफ्तर है। जो लोग गिरजा में विवाह न कर रजिस्ट्री कराते है उनमे ९० फ़ी सदी पास के गिरजा के जीने पर पति-पत्नी की तसवीर खिचा लेते है? क्यों आज इंग्लैड और वेल्स में प्रति १० विवाह पीछे सात धार्मिक रूप से होने लगे है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि धार्मिक रीति से किया गया विवाह सदैव श्रेष्ठ समझा गया है।[२]

निकट-सम्बन्धी विवाह और अपराध

हिन्दू शास्त्र मे गोत्र तथा निकट सम्बध बचाकर विवाह करने की सलाह दी गयी है। आज विज्ञान भी इस बात को स्वीकार कर रहा है कि निकट सम्बन्धी विवाह बड़ा हानिकारक है।[३] ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान अधिक अपराधिनी या अपराधी होती है। निकट सम्बधियो में विवाह के कारण ही स्पार्टा, यूनान या रोम ऐसी सभ्यताए नष्ट हो गयी। यूनान मे सगे भाई-बहिन का विवाह होने लगा था। प्लेटो ने ऐसे विवाह की बड़ी निन्दा की है। पादरी जी० आई० मेंडल ने वर्षों खोज करके

१. What Matters Most—Joseph Brayshaw–Getting Married, 1958, पृष्ठ ९१

२. वही, पृष्ठ ८७

३. इस विषय में देखिए "Is Racidivism due to Natural Urge for Crime or Defective Marriages—" By Paripurnanand Varma, Address to Third Inter-national Congress on Criminology, London, 12-18th Sept., 1955.

यह पता लगाया था कि निकट सम्बन्धी विवाह से पैदा होनेवाली संतान प्रायः बदजात होती है। सन् १२१५ मे ही पादरियो की महासभा ने सम्बधियों की चार श्रेणी का बराव करके विवाह करने की हिदायत दी थी। ब्रिटिश नरेश हेनरी आठवें ने सोलहवी सदी में सगी साली से भी विवाह करने की मनाही कर दी थी। सन् १५६३ मे बडे पादरी पार्कर ने "किन-किन से विवाह नही करना चाहिए" का नक्शा तैयार किया था। सन् १६०३ में वह समूचे ईसाई जगत् में मान्य हो गया। स्पेन तथा पुर्तगाल में ममेरा, चचेरा, मौसेरा रिश्ता भी नही हो सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका में, वाशिगटन समेत १६ राज्यों में चचेरे भाई-बहिन या मौसेरे भाई-बहिन के साथ विवाह वर्जित है। सन् १६७३ में सायमन डुगार्ड का एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें यह सिद्ध किया गया था कि निकट सम्बन्धियो के विवाह से पैदा होनेवाली संतान मरती अधिक है, जीवित कम रहती है। सन्तानोत्पत्ति की संख्या तो प्रायः बराबर रहती है, क्योकि पियर्सन तथा नेटलशिप की खोज के अनुसार ११८ परिवारों में, जिनमें निकट सम्बन्धी विवाह हुआ था, औसतन ५ से ६ बच्चे थे तथा २२४ परिवार जिनमें रिश्तेदारी मे विवाह नही हुआ था, औसतन ५·४ बच्चे थे। पर कोलम्बिया विश्वविद्यालय के श्री आर्नर की खोज के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में २० वर्ष से कम उम्र के मरनेवाले लड़के-लड़कियों में १६.७ प्रतिशत चचेरे या मौसेरे पति-पत्नी की संतान थे, १४ ९ प्रतिशत अन्य निकट सम्बधियों की सन्तान थे तथा ११·६ प्रतिशत साधारण विवाह की सन्तान थे। इस प्रकार निकट सम्बधी की सन्तान की उम्र कम होती है। यही डारविन का भी मत है।

सन् १८६५में सर आर्थर मिचेल ने साबित किया था कि निकट सम्बंधी विवाह की संतान अन्य सन्तान की तुलना में पागलपन तथा दोषी मस्तिष्क की अधिक शिकार होती है। अमेरिका के श्री फे का कहना है कि ऐसे विवाह की सन्तान का कम से कम ३ प्रतिशत बहरा या गूंगा होता है। आयरलैंड के जनगणना विभाग का कथन है कि ऐसी सन्तान मे ७ प्रतिशत, गूंगी बहरी होती है। डाक्टरी खोज का निचोड़ है कि ऐसे बच्चो मे क्षयी रोग अधिक होता है, लगभग ४ से ६ प्रतिशत तक ऐसे बच्चों में अपराधी प्रवृत्ति, अपराधी भावना, कामुक वासना, शारीरिक दोष, मस्तिष्क विकार, उन्माद आदि रोग अन्य बच्चो की तुलना मे अधिक होते है। ऐसे रोगी तथा अपराधी संसार मे कही अधिक होते, पर निकट संबधी विवाह ही कम होते है। डारविन के कथनानुसार सन् १८७२-७३ में इंग्लैंड में ऐसे विवाहो का औसत १ प्रतिशत ही था। प्रो० पियर्सन को ब्रिटिश मेडिकल जर्नल ने ४·७ प्रतिशत संख्या बतलायी थी। श्री आर्नर के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में ५ प्रतिशत है और प्रो० पीट का कहना है कि

सभ्य देशों के सभी विवाहों में निकट सम्बधियो के विवाह का २ प्रतिशत का औसत पड़ेगा।

निकट-सम्बधी विवाह के मना करने का वैज्ञानिक कारण यह है कि एल्डरटन के अनुसार एक ही खून के लोगो में विवाह होने से एक ही प्रकार के गुण या अवगुण सन्तान में आते है। पर, चूँकि गुण और अवगुण के मेल में स्वभावत· अवगुण पहले घर कर लेता है अतएव एक ही रक्त का दोनो का सिम्मिलित अवगुण बच्चे मे समा जाता है। यदि दो प्रकार के प्राणी मिलेंगे तो दोनो के भिन्न-भिन्न गुण-अवगुण मे जो दोनों का सम्मिलित गुण होगा, वही अधिक बलशाली होगा। वैज्ञानिक खोज से[१] सिद्ध हो चुका है कि निकट-सम्बंधी विवाह में स्वभाव तथा बुद्धि मे समानता सबसे अधिक होती है। फलत. पिता-माता का सम्मिलित स्वाभाविक अवगुण शिशु मे जल्दी प्रवेश करता है। यह बात भाई, बहिन, चाचा, भतीजा, चाचा, चाची-भतीजा, चाचा-भतीजी आदि मे पूरी तरह से लागू होती है। अतएव आजकल अपराध रोकने का प्रयत्न करने-वाले यदि अपराधो मे कमी करना चाहते हैं तो इस प्रकार के विवाह भी अवश्य बन्द होने चाहिए।

विवाह शीघ्र करें

डा० सम्पूर्णानन्दजी ने शीघ्र विवाह करने पर ज़ोर दिया है। डा० जी० आई० एम० स्वायर[२] भी उन्ही के मत मे हैं यद्यपि डा० सम्पूर्णानन्दजी के कथन के ८ वर्ष बाद स्वायर उसी नतीजे पर पहुँचे है। उनका कहना है कि विवाह कब करें, इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि तुम कौन हो, तुम्हारी क्या उम्र है, तुम क्यो विवाह करना चाहते हो। यदि पचास के ऊपर के विधुर या विधवा विवाह करेंगे तो उनके लिए समस्या ही दूसरी होगी। वास्तव मे यह पहेली नवयुवक तथा नवयुवती के लिए है।

जो निजी जीवन का सुख चाहते है, जो सुरक्षा तथा स्थिरता चाहते है, वे जितनी जल्दी विवाह कर लें, उचित है। यदि सतान चाहिए तो तभी विवाह कर लो जब तक स्त्री में उत्पादनशक्ति है। बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य रखनेवाले स्त्री-पुरुष प्रायः नपुंसक

१. The Biometrics and Eugenics Laboratories.

२. "The Right Age to Marry—" G. I. M. Swyer Getting Married 1958, पृष्ठ १०६ से १०८

भी हो जाते है और कामना जब एक बार मर जाती है तो जगाये नही जगती। ऐसी हज़ रो-लाखो लड़कियाँ है जिन्होने विवाह की इच्छा को दबा लिया। उनकी कामना मर गयी और फिर जगाये न जागी। उनको पुरुष की कभी जरूरत नही पडी।[१] यह सही है कि कम उम्र में जवानी या व्यक्तित्व दोनों पूर्ण रूप से विकसित नही हो पाते पर लडकी की तुलना मे लड़के में कामभाव जल्दी आता है। यदि वह विवाह न करेगा तो पथ-भ्रष्ट होगा। यह सही है कि २०-२१ वर्ष की उम्र के पहले कामुक शक्ति पूरी तरह से नही उन्नत हो पाती। यदि वह उन्नत हो जाय, जीविका का साधन सामने हो, भरण-पोषण की समस्या न हो, तो विवाह कर लेना चाहिए। स्त्री २० से ३० वर्ष की उम्र मे गर्भ धारण करने की सबसे अधिक शक्ति रखती है। ३० के बाद उसकी यह शक्ति क्षीण होने लगती है। अतएव यदि संतान का सुख चाहिए तो २० से ३० वर्ष की उम्र में ही प्राप्त होगा। श्री स्वायर कहते है—

"विवाह करने का उचित समय अभी है. . . .अभी जवानी है। विवाह कर लो और जितना बड़ा परिवार बनाना चाहो, वैसा प्रबंध कर लो। जब तुम्हारे बच्चे बड़े होंगे, उस समय तक तुम दोनों भी जवान से ही रहोगे। यह बड़े संतोष की बात होगी।"

यह अवश्य है कि जहाँ आर्थिक समस्या हो, पेट की समस्या हो, वहाँ शीघ्र विवाह ही नही, विवाह मात्र भी हानिकारक हो सकता है।

१. Marie Stopes–Married Love., 1927.

अध्याय १६

आज की कृत्रिम सभ्यता

परिवार की महत्ता

वासना सम्बन्धी अपराध को रोकने के लिए, समाज में बढते हुए हर प्रकार के अपराधों को रोकने के लिए, तथा बाल-अपराध के वेग कम करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम समाज में परम्परा तथा शिष्टता की मर्यादा पुन. स्थापित करें। शहरों की चकाचौध से आज मानव अपनी मानवता को जिस प्रकार खो रहा है, उसे बचा लें।[१]

नगर की सभ्यता

श्री मार्गन लिखते है—" ....अनजाने ढंग से ससार के अधिकाश भागो में यह समझ लिया गया है कि नगर के जीवन के कुछ विशिष्ट गुण ही वास्तव में महत्त्वपूर्ण तथा अन्य गुणों के आधार है। प्राय· इसी कारण परम्परा के पुजारी ग्रामों से, संसार भर मे, लोग भाग-भागकर शहरो की ओर चले आ रहे है। फिर भी समाज को शक्ति देनेवाले कुछ ऐसे गुण तथा प्रवृत्तिया—जिनसे समाज में स्थिरता तथा परिष्कृति आती है—न तो मन के भीतर ऐसी बैठी हुई है कि जानवरों की तरह जहाँ चाहा, हाँक दिया और न तो वे मौजूदा पीढी की तीव्र आलोचना से ही पैदा हो सकती है। वे तो हमारी परम्परागत सास्कृतिक देन है।"

मार्गन लिखते है कि "यदि नगर की सभ्यता अपने को समुदाय की वास्तविक पृष्ठभूमि से दूर कर ले तो उसका क्या भविष्य होगा। पहले तो कोई स्पष्ट हानि नही दीखती। शिष्टाचार का स्थान सद्भावना ले सकती है। केवल अनुभवी व्यक्ति ही इसके अन्तर की थाह पा सकेगा। स्पष्टवादिता तथा सचाई का स्थान "हिकमत"

१. Arthur E. Morgan—The Community of the Future–Pub. Hindustani Talimi Sangh, Wardha–1958. पृष्ठ २७ तथा ४९

ले सकती है। नक़दी काम ज़्यादा आसान होता है और पड़ोसी के सहयोग की ज़रूरत महसूस नहीं होती। अपने क्लब में, अपने मंदिर में या अपने व्यवसाय में हमने मित्र बना रखे है तो पड़ोसी को पहचानने या उससे जान पहचान करने की क्या जरूरत है। यदि हमारे मन पर कोई बोझ है तो मनोवैज्ञानिक तो है ही, अतएव घनिष्ट मित्र बनाने की क्या जरूरत है?"

कृत्रिम सभ्यता इसी प्रकार कृत्रिमता पैदा कर हमारे सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन को नष्ट कर रही है और उनके ही नष्ट होने के कारण समाज का सारा ढाँचा ही बिगड़ गया है, बिगड़ता जा रहा है। अब यह सोचना भी भूल होगी कि विवाह के बाद जीवन सुधर जाता है, आदमी अपने को सम्भाल लेता है। मद्रास सरकार के २१ अप्रैल १९५९ के पत्र के अनुसार,[१] ४ अप्रैल १९५९ को मद्रास के जेलों में जितनी स्त्रियाँ बन्दी थी उनमें विवाहित-अविवाहित का औसत था—५·७५ विवाहित तथा १ अविवाहित। सन् १९५८ में मद्रास के जेलों में ८० व्यक्तियों को फाँसी की सजा मिली (फाँसी पर ३० ही लटकाये गये) जिनमें से ७५ मर्द थे, ५ औरतें तथा इनमें सभी स्त्रियाँ अविवाहित थीं तथा ९० फीसदी मर्द विवाहित थे। उत्तर प्रदेश की सरकार के १२ मई १९५९ के पत्र के अनुसार[२] सन् १९५८ में प्रदेश के ६२ जेलों मे ८६,५४३ क़ैदी थे जिनमें ४६,७८९ विवाहित तथा १८,१४६ अविवाहित थे। १७३ विधवाएँ थी और ४५३० विधुर थे। वेश्याएँ ४ थीं। इन आँकड़ों से तो यही स्पष्ट होता है कि हमारे पारिवारिक जीवन में भी कुछ बड़ी गड़बडी है जिस कारण हम जीवन का सुख या महत्त्व कुछ भी नहीं समझ पाते। अविवाहित की तुलना में विवाहित अपराधी अधिक हैं।

इसी लिए राष्ट्रसंघ द्वारा आयोजित प्रथम अपराध-निरोधक सम्मेलन में, जेनेवा मे ३ सितम्बर १९५५ में जो प्रस्ताव "परिवार" के सम्बंध में पास हुआ था,[३] उसकी महत्ता पर हमको विचार करना चाहिए—

"साधारणतः यह सर्वमान्य बात है कि प्रारम्भ से ही बच्चे के जीवन मे परिवार का सबसे महत्त्वपूर्ण हाथ होता है तथा उसके व्यक्तित्व, प्रवृत्तियो तथा व्यवहार के

१. अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम

२. अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम.

३. First United Nations Congress on the Prevention of Crime & Treatment of Offenders—Geneva–Report–Page 4.

निर्माण में परिवार का मौलिक हाथ होता है। यह भी मान लिया गया है कि नगरों की वृद्धि तथा औद्योगिक सभ्यता की प्रगति ने हमारे सामाजिक, पारिवारिक तथा निजी जीवन को असंगठित कर दिया है। अपराधो मे वृद्धि का एक बहुत बड़ा कारण है परिवार में सामाजिक तथा सास्कृतिक परिवर्तन। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि रोकथाम के ऐसे उपाय किये जायँ जिससे पारिवारिक बधन अधिक दृढ हो, जिससे परस्पर स्नेह, भावुक सुरक्षा तथा नियंत्रण में वृद्धि हो। बच्चे मे अपनत्व की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। उसे यह मालूम होना चाहिए कि मै अमुक परिवार का हूँ।"

परिवार की दृढ़ता ही समाज की दृढ़ता है। कुनवे का पुख़्तापन ही समाज को पुख़्ता बना सकता है। इसलिए जरूरत है कि हम समाज मैं परिवार की मर्यादा को लुप्त होने से बचायें, तभी कामवासना के अथवा अन्य प्रकार के अपराध कम होगे। आजकल युवक समुदाय अपने पिता-माता, बहिन-बेटी, पडोस की कन्या, किसी की इज्जत नही करता। उसका सर्वनाश निश्चित है, चाहे वह सर्वनाश कितना ही शनैः-शनैः क्यो न हो। आज पुरुष अपने अधिकार के लिए लड़ता है। स्त्री अपने अधिकार के लिए।[१] हम चाहते है कि लोग परिवार के अधिकार के लिए लड़े।

सदाचार की व्याख्या

दूसरी आवश्यकता यह है कि हम अपने मन में सदाचार की व्याख्या समझ ले। हर जरा सी बात को भ्रष्टाचार के दायरे में ले आना तथा "पतन" समझना भी बडी घातक चीज़ है। इससे समाज की नैतिकता का अनायास ह्रास होता है। जागर लिखते हैं—

"जिस समाज या जनसमूह का कामवासना सम्बन्धी दृष्टिकोण जितना ही संकुचित तथा नख़रेबाज़ होता है, जितना ही उस समाज में स्वाभाविक भूलो को अपराध समझा जाता है, उतना ही उस समाज में वेश्याओं का सघटन अनियत्रित तथा लज्जाजनक होता है—विष को फैलानेवाली वेश्याएँ बढ़ती ही जाती है—तथा

१. Mary Wallstonecraft (1759-1797) in "A Vindication of the Rights of Women"–Says–"Women will never attain the same degree of emancipation as man, and man will always surpass them in many things".

बड़े नगरों की अभिशाप अर्द्ध-वेश्याओं में बड़ी अधिकता हो जाती है—और मै कहता हूं कि ऐसे समाज मे गुप्त दुराचार खूब फैलता है तथा ऐसे दुराचार के शिकार लोगों को अपनी "सुन्दर" नैतिकता का बड़ा ग़र्रा रहता है। यह बात खास तौर पर इंग्लैड के लिए लागू होती है।"[१]

व्यक्तिगत नैतिकता बना लेने से, व्यक्तिगत आदर्शो के चक्कर में पड़ जाने से समाज का कल्याण नही हो पाता। समूह के साथ व्यक्ति के सुख की जितनी अच्छी कल्पना प्राचीन काल का भारतीय करता था उतना कोई नही कर सकता। श्री जितेन्द्रनाथ बनर्जी के कथनानुसार—

"प्राचीन काल के भारतीयो के चरित्र मे एक बात सबमें पायी जाती थी, वह यह कि वे अपने स्वतंत्र अनुसधानो को समाज की प्रथा में मिला देते थे, अपने व्यक्तित्व को विशद समूह मे डूबा देते थे, ताकि ज्ञान के विशेष अंगो मे प्राप्त उनके अनुभव सर्वसाधारण की सम्पत्ति बनकर अधिक अधिकारशील एव पवित्र शिला पर स्थापित हो जायँ।"[२]

सदाचार की बहुत बढ़-बढकर बाते करनेवालो से प्रो० मैकनील डिक्सन ने अपनी गिफर्ड व्याख्यानमाला मे सवाल किया है—[३]

"जो लोग जुआ और शराब बन्द कर देना चाहते है, जो यहाँ तक चाहते है कि सब लोग १० बजे रात तक सो जायँ, उनसे यह पूछना चाहिए कि क्या उनको मालूम है कि वे जीवनी-शक्ति के सोते को ही सुखा देना चाहते है। यदि वे मानव की शक्ति को जमीन मे गाड देना चाहते है तो एक दिन यह इतनी एकत्रित होकर विस्फोट करेगी कि चन्द्रमा तक पहुँच जायगी। फ्रायड ने हमको स्मरण दिलाया है कि जब हम अपनी किसी दृढ तथा बलवती इच्छा को दबा देते है, तो वह एक दिशा मे दबकर किसी दूसरी सूरत मे, दूसरी दिशा मे, दूसरे वेश में उभड़ पड़ती है और उस व्यक्ति के जीवन में भयंकर उथल-पुथल पैदा कर देती है। ऐसी ही अतृप्त तथा दबी हुई वासना के फलस्वरूप भद्दे-भद्दे रीति-रिवाज़ पैदा होते गये। प्राचीन रोम मे हर साल २३ फ़रवरी

१. Gustav Jager—"Discovery of the Soul" –Leipzig, 1884–Vol. I–Page 265.

२. The Development of Hindu Iconography by Jitendranath Bannerjee–Pub. Calcutta University, 1941–Page 14

३. Prof. Macneile Dixon–"The Human Situation".

को रोम नगर मे युवक तथा युवतियाँ एकदम नग्न होकर सड़क पर जलूस बनाकर चलते थे और एक दूसरे को कोड़ा मारते रहते थे—ऐसी बेहूदी रीति का कोई भद्दा कारण होगा।"

समाज में प्रत्येक को तरह-तरह के अनुभव होते है। "समाज वह पाठशाला है जिसमे मनुष्य भले-बुरे की पहचान करना सीखता है।"[१] समाज हमे शिक्षा देता है कि अपने लिए कम लाभवाली होने पर भी अपने को अच्छी लगनेवाली वस्तु के मुकाबले में, सबके लिए अधिक लाभवाली वस्तु को अधिक पसन्द करें।[२] सर जेम्स स्टीफन ने कहा है[३] कि उचित वह है जिससे दूसरों को सुख मिले। अनुचित वह है जिससे दूसरो को कष्ट मिले या उस सुख मे कमी हो।[४] बेंथम के कथनानुसार उपादेयता की दृष्टि से उचित तथा अनुचित की पहचान करनी चाहिए।[५] काम कुछ भी हो, परिणाम कुछ भी हो। काम का औचित्य और अनौचित्य काम करनेवालो की नीयत से समझना चाहिए—यानी असली चीज नीयत है, काम कुछ महत्त्व नही रखता। वेस्टरमार्क लिखते है—

"यद्यपि हमारी प्रकृति के भावुक आधार मे गहरी जड जमाये हुए भी हों, पर नैतिकता के सम्बंध मे हमारे विचार तर्क तथा बुद्धि द्वारा ठीक किये जा सकते है। उनकी सुन सकते है। हर समाज मे, अधिकाश लोग परंपरा से चली आनेवाली उचित-अनुचित की भावना को, भले-बुरे की भावना को, कर्तव्याकर्तव्य की भावना को स्वीकार करते है। प्रचलित भावना के बारे मे विशेष ऊहापोह भी नही करते। यदि ऐसी भावनाओ के प्रारम्भ या उद्गम की छानबीन की जाय तो पता चलेगा कि इनमें से बहुतो के पीछे निजी उपेक्षा, घृणा या स्वीकृति, पसन्द या नापसन्द की भावना छिपी होती है। इसलिए समझदार, विचारवान् को ऐसी घृणा या प्रेम की छानबीन करके तब उसके भले-बुरेपन का फैसला करना चाहिए।" यद्यपि दक्षिण सागर के द्वीपों

१. Dr. Edward Westermarch–"The Origin and Development of Moral Ideas"—Macmillan & Co., London 1912–Vol. I page 9

२. प्रो० सिजविक

३. सर जेम्स स्टीफन–पृष्ठ ३३८.

४. Benthem—"Principles of Morals and Legislation"–Page 4.

५. वही, पृष्ठ ११

में यह नियम है कि कोई सरदार यदि किसी साधारण स्त्री से विवाह कर ले तो उसे प्राणदंड मिलता है, पर इतनी ज़रा सी बात पर प्राणदंड देने के औचित्य या अनौचित्य कां निर्णय तो करना ही पडेगा।

भीतर बैठी हुई कामुक वासना ही मनुष्य को निर्दय तथा हृदयहीन बना देती है। यदि दड देते समय मनुष्य भावना-शून्य हो जाय तो वह शायद न्याय भी कर सकता है, उदारता भी कर सकता है। किन्तु क्या बिना हृदयहीन बने न्याय का काम नहीं चल सकता। ब्रिटेन के सम्राट् चार्ल्स प्रथम को प्राणदंड की सजा देते समय पाँच न्यायाधीशो की जो अदालत बैठी थी उसने अपने फ़ैसले में कहा—

यहाँ से तुम उसी स्थान को जाओगे जहाँ से तुम आये थे। वहाँ से तुम एक छकडे पर बैठाकर वध-भूमि को ले जाये जाओगे। वहाँ पर तुम्हे गर्दन से तब तक लटकाया जायेगा जब तक तुम आधे मुर्दा न हो जाओ। फिर तुम उसके बाद जिन्दा काटे जाओगे। पहले तुम्हारे सामने तुम्हारे अडकोष और इन्द्रिय काटकर आग में फेंक दी जायँगी, तुम्हारा पेट चीरा जायेगा और भीतर का पाकाशय आग मे जलाया जायगा। फिर तुम्हारे धड से सिर अलग किया जायेगा। तुम्हारे शरीर के चार टुकडे करके सरकार जैसे चाहेगी उसका उपयोग करेगी।[१]

यह न्याय नही, सामाजिक उद्दडता है, प्रतिहिंसा है, घोर कामुकता है जो इस प्रकार मानव-जीवन को कलंकित करती है। अदना से अदना और छोटी से छोटी बातो मे समाज की विचित्र भावनाओं का द्योतक है। पुराने ज़माने में पश्चिम के अनेक देशो मे स्त्रियाँ चाँदनी रात मे खुले मे नहीं सोती थी—इसलिए कि उनका विश्वास था कि चन्द्रमा अपनी रश्मियों से, किरणो से उनके साथ संभोग करेगा।[२]

समाज बदल गया है। धारणाएँ भी बदल गयी है। पर, पुरुष और स्त्री का जीवन के प्रति भिन्न दृष्टिकोण न तो कभी एक केन्द्र पर आकर स्थिर हुआ है और न उसकी कोई सम्भावना प्रकट होती है। दोनो के मन के भीतर एक ऐसी कामवासना बैठी है जो जिधर चाहती है, घुमा देती है। इसी लिए केसरलिग लिखते है कि "आज के

१. सम्राट चार्ल्स प्रथम को प्राणदंड मिला था. देखिए—
Sex in History–By G. Rattray Taylor, Pub. Thomas & Hudson, London–Page 183.

२. M. E. Harding–"Womens' Mysteries"–Longman Green & Co., Pub. 1935-Chapter II.

नर और नारी वासना की प्रेरणा से ही संचालित तथा परिचालित हो रहे हैं.....
अधिकांश लोगो का विवाह अनुपयुक्त है। उनका जोड़ा बेमेल है। उन्हें पता भी नही चलता पर जब वे विवाह कर लेते है तब मालूम होता है कि उनके दोनों के दृष्टिकोण तथा जीवन में कितना व्यापक अन्तर है। प्राय प्रत्येक स्त्री-पुरुष गलत व्यक्ति से प्रेम करता है। उनमे से बिरले को ही मालूम है कि विवाह का असली अर्थ क्या है ?" प्रेम उस वस्तु का नाम है जो सर्वांग सम्पूर्ण हो। विवाह वास्तविक प्रेम का परिचायक नही है।[१] यदि ईसा से ५०० वर्ष पूर्व तक यूनान में भाई-बहिन तथा चाचा-भतीजी मे विवाह होता था तो क्या यह प्रेम था। जब ज्यूस ने अपनी सगी बहिन हेरा से, हाइपरियन ने अपनी बहिन थिया[२] से विवाह किया तो क्या यह प्रेम था ? या, होमर के कथनानुसार आयोलस के ६ लडको ने अपनी ६ सगी बहिनों से विवाह किया तो क्या यह प्रेम था ? किन्तु प्रेम किसे कहें ? सदाचार किसे कहे ? यदि "नैतिकता उस वस्तु का नाम है जिसमे अपने शरीर को केवल पीड़ा ही देना है, सुखाना है"[३] तो फिर ऐसी नैतिकता कितने दिन चलेगी ?

टेलर ने सच लिखा है कि—

"मनुष्य अपने धर्म की दृष्टि से अपने लिए आचरण के जिन व्यावहारिक नियमों को बना लेता है, उसी का नाम नैतिकता है। नैतिकता उसके मन की भावना का एक प्रकट रूप है, उसके सपनो का सक्रिय कलेवर है। यदि नैतिकता को धर्म से पृथक् कर दिया जाय तो वह अपना महत्त्व खो बैठती है। केवल बुद्धिमत्तापूर्ण विचार से ही समाज मे स्थिरता नही आती। उससे केवल आदमी हाड़-मास की पुकार के ऊपर उठता है। पर केवल दार्शनिकता से काम नही चलेगा। उसके साथ भावना का भी सम्मिश्रण जरूरी है। भारत में दर्शन तथा धर्म दोनो एक साथ मिले-जुले हैं। यूनान में दोनो भिन्न है। यूनान की सभ्यता समाप्त हो गयी है। भारत की सभ्यता अमर है। जो आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाये, वही धर्म है। आवश्यकता इस बात की है कि मानव-जाति के अनुभवो के द्वारा ईश्वर का अर्थ पहचानें[४]। जिस लक्ष्य की प्राप्ति

१. Keyserling—"The Book of Marriage"—Part I

२. "Sex in History" **पुस्तक इस प्रकार के उदाहरणों से भरी पड़ी है.**

३. James—"The Varieties of Religious Experience"—Pub. 1912

४. Hocking

की कल्पना करके हम चलते है, उसका नाम है धर्म। पैर संसार में हों और आँख उस पार लगी हो—इसमें कुछ समन्वय तो करना ही होगा।

सभ्यता में समन्वय

आज सभ्यता का रूप बिगड़ गया है। जो भले हैं वे हाथ-पैर सिकोडे वासनाओं से दूर बैठे है। जो बुरे है वे गहरी वासनाओ से खेल रहे है।[1] आज चारों ओर समस्याएँ ही समस्याएँ है। व्यापारिक वंधनो ने आर्थिक शक्ति को कुण्ठित कर दिया है। मानव इतना दुर्बलहृदय हो गया है कि सिगरेट का धुआँ उड़ा उड़ाकर अपने मन की जलन उड़ा रहा है। हमारा वर्त्तमान हमारे अतीत से बहुत दूर हट गया है। हेरोडेटस[2] का यह कहना सच हो सकता है कि इतिहास प्राचीन गौरवगाथाओ के भूल जाने से बचाने का प्रयत्न मात्र हो सकता है, पर थुसाइडेडीज की यह बात भी सही है कि लोग पुरानी गलतियों को दुहरायें नही, इतिहास इसका एक निराशामय प्रयत्न भी हो सकता है।[3] हमे इतिहास के बहुत से पन्ने याद रखने है और बहुत से फाड़ डालने भी है। रुचि-वैचित्र्य तथा रुचि-वैभिन्य समाज के लिए आवश्यक है, पर क़ायदे के साथ। अपनी रुचि की विभिन्नता से हम आपबीती तथा दूसरे पर बीती घटनाओं को भिन्न दृष्टि से देखते है, इसी लिए एक-दूसरे को ठीक से समझ नही सकते। कुछ वर्ष हुए जापान मे "राशोमान" नामक एक बड़ी अच्छी फिल्म बनी थी। एक लकड़हारा मानव-जाति पर विश्वास खो बैठा है। इसका कारण एक आँखों देखी घटना है। उसने जंगल में देखा कि एक पति-पत्नी चले जा रहे थे। एक लुटेरा मिला। उसने पति को मार डाला, पत्नी के साथ बलात्कार किया। पत्नी और डाकू थाने पर लाये गये। मृत पति भी प्रेतयोनि से, एक के माध्यम से वहाँ पर पहुँचा और थाने पर तीनों का विचित्र तथा भिन्न बयान सुनकर उस लकड़हारे को घोर अश्रद्धा तथा घृणा हो गयी। हमारे समाज में आज उस लकड़हारे की तरह वर्त्तमान समाज से निराशा

१. Yeats **की प्रसिद्ध पंक्तियाँ है—**
The Best lack all connections, while the worst
Are full of Passionate intensity.

२. **यूनानी इतिहासकार**

३. Charles Frankel—"The Case for Modern Man"–Pub. Macmillan & Co., London, 1957–Chapt. VIII–Page 130-131.

और घृणा करने वालों की कमी नही है। दार्शनिक हेलवातियस ने शायद सही कहा है "आदमी स्वत. बुरा नही है। वह केवल अपने स्वार्थ मे रत है। मानव की अच्छाई का अन्दाज लगाने के लिए इस नये मापदंड से उसके गुणों का पता लगाना होगा।"[१] नीबर[२] की यह बात जरूर याद रहे कि "ईश्वर की आत्मा" की यात्रा में "सुख को मुक्ति या प्रगति का पर्य्यायवाची नही समझना चाहिए।" इस सुख की तलाश मे जब कभी आदमी अपनी सीमा को लॉघ जाता है, वह पाप के गड्ढे में गिर पड़ता है।[३] सुख स्वतः कोई चीज नही है। वह दूसरो से प्राप्त होता है, आज के ससार मे सुख का अभाव इसी लिए है कि हम दूसरो से बड़ी आशा करते है।[४] हेलवातियस ने लिखा है कि "मानव-जाति से प्रेम करने के लिए यह जरूरी है कि उससे बहुत कम आशा की जाय।"[५]

पर मनुष्य मनुष्य से ही आशा करता है। वह आशा करने और जायगा कहाँ ? यह जीवन आशा तथा निराशा का उतार-चढ़ाव मात्र है। प्लेटो ने जीवन को ही "मरने की अनवरत स्थिति" कहा था। हर क्षण हम मरने के निकट जा रहे है। हर क्षण हम मरते जा रहे है। स्व० कुंवर रघुवीरसिंह ने लिखा है—

जिन्दगी मौत थी एक उम्र में मालूम हुआ।
मेरा होना था महज मेरे न होने के लिए।।

इस मरनेवाले जगत मे प्रत्येक वस्तु का मूल्य चुकाना पड़ता है। जीवन का मूल्य मृत्यु से चुकता है। जितनी ही बड़ी वस्तु होगी, उतना ही बड़ा मूल्य होगा। स्पिनोजा ने सच लिखा है कि जो ईश्वर को प्यार करता है वह निश्चित न समझे कि ईश्वर भी उसे उतना ही प्यार करेगा।[६] किसको कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी यह ठीक से ज्ञात

१. वही, पृष्ठ ९४
२. वही Niebuhr की उक्ति—पृष्ठ ९५
३. वही, पृष्ठ ८४
४. अष्टावक्र गीता में लिखा है—

"आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य"

(जो आशा के दास हैं, वह संसार भर के दास हो जाते हैं।)

५. The Case for Modern Man, पृष्ठ ९०
६. वही, पृष्ठ ५८

नही है। समाज में आज इसी "क़ीमत की आँक" से अव्यवस्था पैदा हो गयी है। हम उस अंधे आदमी की तरह है "जो एक अँधेरे कमरे मे उस काली बिल्ली की तलाश कर रहा है जो वहाँ पर मौजूद नही है।"[१]

आज हमारी प्रवृत्तियों तथा हमारी आशाओं में अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ है। चारों ओर उलझने पैदा कर दी गयी है। हम जिसे तर्क कहते है, भले-बुरे को पहचान कर असलियत समझाने वाली बुद्धि कहते है, वह आज इतनी दूषित हो गयी है कि हमारे लिए कल्याणकारी नही; हमको उत्तेजित करनेवाली वस्तु बन गयी है। आज हम अपने ही तर्कों से खेल रहे हैं। आज हम अपने भीतर के अंतर्द्वन्द्व से नही, बाहर मे फैले हुए कुहरे से भटक रहे है।

ठीक से कुछ समझ में नही आ रहा है। "जिस प्रकार एक अपराधी के मस्तिष्क मे अपराध का नरक भरा हुआ है, उसी प्रकार मध्यम श्रेणी के एक बाबू के घर में, या उसकी टोपी के नीचे (सिर मे) एक बिल्कुल भिन्न दर्शन या दृष्टिकोण का अम्बार भरा रह सकता है।"[२] इनकी असली पहचान होनी चाहिए। जो ज्ञानवान है, इन चीजों को पहचानते है, वे वास्तव में भले लोग है तथा पुण्यात्मा है, यह सोचना भी भूल होगी। ज्ञान का आज के ज़माने मे एक ही बड़ा भारी उपयोग है— उसके द्वारा हम दूसरो के विचारो से अपनी रक्षा कर सकते है।[३]

संसार में जो होना चाहिए, जो जायज है तथा जो नैतिक है, उसमें जो परस्पर अन्तर आ गया है, उसके दोषी है हम तथा हमारा समाज। श्री रेमंड फ़र्थ का कहना है[४] कि "क़ानून के नियमो में, सदाचार के नियमो में तथा वास्तविक व्यवहार के नियमों मे जो अन्तर दिखाई पड़ता है वह केवल अज्ञान के कारण नही है, लापरवाही के कारण नही है या व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण नही है, बल्कि दूसरो के प्रति सचाई, ठीक से काम पूरा करने की तबियत तथा व्यावहारिकता के अभाव से, क़ानून की अच्छाई में विश्वास की कमी तथा सार्वजनिक हितो के प्रति उपेक्षा के कारण है।"

श्री फ़र्थ लिखते है—"समाज के आदेश क्या है, इस सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत

१. "A Blind Man in a dark room looing for a black cat that is not there." (वही, पृष्ठ ५४, अध्याय ४)

२. वही अध्याय ५, पृष्ठ ७०

३. वही, अध्याय ६, पृष्ठ ९२

४. Raymond Firth–Human Types –पृष्ठ १४१

परिभाषा नहीं है। आस्टिन के समय से पुरानी न्यायसंगत परिभाषा तो यह थी कि समाज के नियमों का उल्लंघन करने पर जो दंड मिलता था, वही आदेश है। पर आज की विचारधारा में नयी व्याख्याएँ शामिल हो गयी है जिनके अनुसार व्यक्ति या समुदाय निश्चित आदेशों की अवज्ञा करके भी अपने को सही रास्ते पर चलनेवाला साबित कर सकता है। जो लोग समाज मे मनुष्य के जीवन मे रुचि रखते है, अनेको सवाल पैदा होते है, क्या दूसरे समाजो में भी आचरण के वैसे ही नियम है। यदि हाँ, तो उनमे से कितने नियम स्पष्टत: उस समाज के लोगो द्वारा निर्धारित है, उन नियमो का किस सीमा तक पालन होता है, किस हद तक उल्लंघन होता है।"[१]

"रैडक्लिफ ब्राउन ने एक अधिक सही तथा वास्तविक वर्गीकरण किया है। संगठित तथा असंगठित आदेशो मे भेद करने के बाद वे यह बतलाते है कि कौन से आदेश नैतिक तथा कर्त्तव्य की परिधि मे है और कौन प्रतिशोध तथा दंड के दायरे मे है तथा कौन आदेश धार्मिक परिपाटी की श्रेणी मे है। जो आदेश दंड तथा प्रतिशोध के दायरे मे हैं, उन्ही को क़ानूनी आदेश समझना चाहिए।"[२]

आज का मानव इन्ही "आदेशो" की समस्या में उलझा चल रहा है। चूँकि उसके सामने "आदेश"[३] स्पष्ट नही है, उसका जीवन भी स्पष्ट नही है। यह समस्या आसानी से हल नही होती दीखती। फिर फ्रेंकेल के शब्दों मे—"यह कहना कि यही समस्या है, यह कहने के बराबर है कि अपराध की समस्या तभी तक है जब तक दंड-विधान है, कानून है। तलाक की समस्या तभी तक है जब तक विवाह होता है या सिरदर्द तभी तक है जब तक सिर है।"[४]

इसलिए, जब तक कानून है, अपराध रहेगा। जब तक सिर है, सिरदर्द रहेगा या जब तक मानव है, कामवासना रहेगी, अपराध रहेगा। अत: निराश होने से काम नही चलेगा। एक स्वत. सिद्ध दूषित वातावरण में हमको अधिक से अधिक सावधानी से चलना है। मानव को मानव समझकर काम करना है।

"आज की व्यापक अव्यवस्था "कर्त्तव्य, क़ानून तथा धर्म मे एक दूसरे के प्रति

१. वही, रेमंड फर्थ—पृष्ठ १३०
२. वही, पृष्ठ १४२
३. आदेश यानी sanctions
४. The Case for Modern Man—पृष्ठ ८७

प्रतिकूलता या विभिन्नता आ जाने के कारण है, जिसने सभ्य समाज में असामंजस्य की जो परिस्थिति उत्पन्न कर दी है वह पिछड़े हुए कहे जानेवाले सरल समाजों में नही है।"[१]

आधुनिक सभ्यता अपनी सभ्यता के बोझ से ही दबी हुई है, परेशान है।

१. Human Types—पृष्ठ १४८

द्वितीय भाग

बाल-अपराध की व्याख्या

अध्याय १७

बाल अपराधी की समस्या

कतिपय कारणों पर विचार

प्रथम अध्याय मे कामवासना तथा अपराध के संबंध पर विचार करते हुए हमने यह दिखलाने का प्रयत्न किया था कि बहुत अंशों तक वासना की भूलों का ही दुष्परिणाम बाल-अपराधी है। आजकल की नित्य नयी खोजों से भी बहुत कुछ यही निष्कर्ष निकलता जा रहा है।

फिलप्पीन के कैथोलिक असोशियेसन के अध्यक्ष फेलिसियानो जोवर लेडेस्मा ने मनीला (राजधानी) के रोटरी क्लब के सामने भाषण करते हुए बाल-अपराधियों की संख्या में वृद्धि का कारण निम्नलिखित बतलाया—[1]

१. ग़लत ढग के सिनेमा-चित्र, प्रति १० फिल्मों में ८ में डकैती, लूटपाट, कम-उम्र के बच्चो की शरारतें, बन्दूकबाजी तथा प्रहार के खेल होते हैं जो लड़के-लड़कियों के मस्तिष्क पर बड़ा बुरा प्रभाव डालते है।

२. गन्दे साहित्य, नंगी, भद्दी तसवीरों की बिक्री तथा स्कूल और घर में पहुंच जानेवाली गन्दी कहानियो की पुस्तकें उनके मन को गन्दा कर देती है।

३. सरकारी अधिकारी (फ़िलप्पीन के) बच्चों के चरित्र-निर्माण पर ज़रा भी ध्यान नही देते। वे स्कूल से बहुत निकट शराबघर, नाचघर, सिनेमा आदि में कोई रुकावट नही डालते।

४. पिता-माता या अभिभावक अपने बच्चो की पारिवारिक शिक्षा की कोई चिन्ता नही करते। वे प्रायः समझते है कि बच्चों को अच्छा खाना, कपड़ा देना तथा स्कूल भेज देना उनके लिए पर्याप्त कर्त्तव्य हो गया। बच्चों की माताएँ अपने सामाजिक जीवन मे, क्लब तथा पार्टी में, खेल तथा अन्य

१. "Guide Post" Fortnightly, Manila, Philippines, 15th August, 1958.

मनोरंजनों में इतनी व्यस्त है कि उनको बच्चों के लिए अवकाश नहीं है।"

इसलिए, श्री फेलसियानो के मत के अनुसार बाल-अपराध रोकने के लिए यह आवश्यक है कि—

१. गन्दे सिनेमा-चित्र बन्द किये जायँ;
२. अश्लील खेल तथा अश्लील चित्रो पर रोक लगा दी जाय;
३. स्कूल के आसपास सिनेमा, शराबघर, नाचघर आदि बन्द कर दिये जायँ;
४. अभिभावकों या माता-पिता को अपनी सन्तान को नैतिक शिक्षा देने की नसीहत देनी चाहिए;
५. स्कूलो में चरित्र-निर्माण का एक अलग पाठ्य-विषय ही बना दिया जाय,
६. धार्मिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय तथा इसके लिए सविधान मे संशोधन किया जाय;
७. स्काउटिंग आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया जाय;
८. सरकार और सार्वजनिक संस्थाएँ युवको के लिए व्यायामशालाओं तथा खेल-कूद का प्रबन्ध करें।

बालअपराधी तथा परिवार की महत्ता पर हम आगे चलकर विशेष प्रकाश डालेंगे पर यहाँ पर हम एक बात लिख दे। पिता-माता का एक कटु-वचन बालक के ऊपर कितना स्थायी प्रभाव उत्पन्न कर देता है इसकी एक मिसाल हीली ने अपनी पुस्तक में दी है। उन्होंने एक बहुत ही सच्चरित्र तथा सिगरेट आदि दुर्गुणों से रहित ऐसे लड़के का जिक्र किया है जिसकी उम्र ११-१२ वर्ष की थी। वह अपने पिता के एक वाक्य से एकदम बदल गया। एक दिन, शाम को उसका पिता घर आया। पिता का स्वभाव उस दिन चिड़चिड़ा हो रहा था। उसने देखा कि लड़का पढ़ने के समय आराम कर रहा है। छोटे लड़के ने बतलाया कि उसकी तबियत ख़राब है, इसलिए आराम कर रहा है। पिता ने गुस्से से कहा—"झूठ बोलता है। वह मुझसे ज्यादा बीमार नहीं है।" यह बात जब उस लड़के ने सुनी तो उसने सोचा—"अच्छा, मैं झूठ बोलता हूँ, मैं बहानेबाज़ हूँ, ठीक है। मैं यही करूँगा।" और उस दिन से उसका जीवन ही बदल गया। वह निरुद्यमी, आलसी, सिगरेट-पीनेवाला और न जाने कितने दुर्गुणों से युक्त हो गया। पिता की एक ग़लत तानाज़नी ने उसकी ज़िन्दगी चौपट कर दी और समाज के हाथ से एक भला लड़का निकल गया।[1]

१. Healy—Individual Delinquency, Page 396.

चलचित्र का दुष्परिणाम

चलचित्र तथा पारिवारिक जीवन के अवगुणों पर प्रकाश डालते हुए आस्ट्रेलिया से प्रकाशित एक ताजी रिपोर्ट में बड़ी मार्के की बातें दी गयी है। रिपोर्ट में लिखा है—

"आजमाइशी तौर पर यही कहा जा सकता है कि बच्चों के पारिवारिक जीवन का जैसा भावनामय वातावरण होगा वैसा ही उनके चरित्र के निर्माण पर निश्चित प्रभाव पड़ेगा।"[१]

इसी लिए आस्ट्रेलिया में बाल-अपराधी के प्रति बड़ी उदार नीति बरती जाती है। ३० जून, १९५७ को समाप्त होनेवाले वर्ष में उस देश में सरकार के ध्यान में १३७८ ऐसे लड़के-लड़कियों के मामले आये जो अपने परिवार अथवा माता-पिता की लापरवाही से ग़लत रास्ते पर चले गये थे। इनमें से ८१२ यानी ५९ प्रतिशत मामलों में से ५३९, यानी कुल १३७८ का ३९ प्रतिशत, बिना अदालती कार्यवाही के ही निपटा दिये गये। २१४ यानी कुल के १५ ६ प्रतिशत पर अदालती कार्यवाही करनी पड़ी तथा ६१ यानी ४ प्रतिशत निजी तौर पर हल कर दिये गये अर्थात् लोगो ने व्यक्तिगत रूप से सुधार की जिम्मेदारी ले ली।

मद्रास के एक समाजशास्त्री ने मद्रास नगर के बाल अपराधियों की जॉच करके अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि सिनेमा बाल-अपराध का बड़ा भारी कारण है। उससे केवल निजी उत्तेजना ही नहीं प्राप्त होती बल्कि सिनेमा के अभिनेताओ का अति धनी होना भी नवयुवक-नवयुवतियों को बड़ा आकर्षित करता है। सिनेमा से एक लाभ होता है—दिन भर की परेशानी के बाद व्यक्ति "सब झंझटों से छुटकारा पा जाता है" और "अपनी स्थिति से भागने का अवसर मिलता है। इसी लिए, बहुत से लोग उपन्यास भी पढ़ते है।"[२]

इस प्रकार बड़े-बूढ़े तथा बच्चे, सबको अपनी परेशानी से भागने के लिए सिनेमा एक साधन बन गया है। मद्रास के समाजशास्त्री का कहना है कि धार्मिक चलचित्रों के प्रति बच्चो का आकर्षण और भी ज्यादा इसलिए है कि उनमे पोशाक इत्यादि की अश्लीलता और भी अधिक है।[३] सन् १९५८ की इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि

१. Report by the Minister on the "Child Welfare Department—Australia", for the year ended 30th June, 1957. Page 7.

२. दैनिक Pioneer, अग्रलेख ५ दिसम्बर १९५८.

३. देखिए Film Enquiry Committee Report, India, 1958.

"बाल-अपराध रोकने के लिए जिस प्रकार चलचित्रो के प्रति काफी सख्ती बरतनी चाहिए, उसी प्रकार भग्न-परिवार, माता-पिता की लापरवाही तथा पारिवारिक जीवन की पवित्रता को भी पुनः स्थापित करना जरूरी है।

धार्मिक चित्रों में से एक तामिल चित्र की आलोचना करते हुए फिल्म इनक्वायरी कमेटी ने लिखा है कि "सुब्रह्मण्यम (विष्णु) का ब्रह्मा को सीटी बजाकर भद्दे शब्दों मे बुलाना अति निन्दनीय है। पार्वती की वेश-भूषा आपत्तिजनक है। नन्दी के प्रति श्रद्धा के स्थान पर अश्रद्धा होती है। नारद और यम तो उनसे कही गये-गुजरे है।" फिल्म के नियमानुसार भारत में स्त्रियो की भीतरी पोशाक का प्रदर्शन नही हो सकता। पर दूकानो पर भद्दे ढंग से स्त्रियो के वस्त्र बिक्री के लिए क्यो रखे जाते है? जब चल-चित्र देवताओ का इतना गंदा रूप खीच सकते है तो फिर सामाजिक चित्र नितान्त गन्दे क्यों न हों। यदि इनसे बाल-अपराधी पैदा होते है तो दोष समाज का या सरकार का है, न कि बाल-अपराधी का। अपराधी का क्या दोष है जब कि समाज उसके सामने नयी नयी भावनाएँ रोज़ रखता जाता है। ब्रिटिश पार्लमेन्ट की एक प्रसिद्ध कमेटी[१] ने अप्राकृतिक प्रसंग या स्त्री-स्त्री-प्रसंग को अपराध न मानने की सलाह दी है। ऐसे नये नैतिक विचारकों के लिए डा० जी० डी० किलर्पट्रिक ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक व्याख्यान मे बड़ी मार्के की बात कही—

"इस विश्वविद्यालय के किसी बडे अध्यापक को पूरा अधिकार है कि हमारे नवयुवकों के मन मे निर्दयतापूर्वक ऐसे विचार भर दे जिससे उनका जीवन दु.ख और पाप से भर जाय। जो इस मार्ग पर चलता है उसे अपने साथ एक मनोवैज्ञानिक को रख लेना चाहिए ताकि अगर कभी उसकी ऐसी कुचेष्टा की तरफ़ क़ानून का ध्यान जाय तो मनोवैज्ञानिक की आड मे वह अपनी रक्षा कर सके।" समाज मे युवकों को पथ-भ्रष्ट करनेवाले सिद्धान्त-प्रचारक, चल-चित्र तथा भग्न परिवार, इन सब के साथ पूरी सख्ती बरतनी होगी। तब जाकर बाल-अपराधियो की संख्या में सुधार हो सकेगा।

बाल-अपराधों मे वृद्धि

समाज मे उत्पन्न दूषित वातावरण के कारण ही चारों ओर बाल-अपराध बढ़ता

१. Wolfenden Committee's Report, 1958.
२. G. D. Kilpartick, Dec., 1958.

जा रहा है। ब्रिटेन में बाल-अपराध की वृद्धि पर दो रिपोर्टों से बड़ी खेदजनक जानकारी होती है।[१] इनका सारांश है—

"सन् १९४८-५६ के बीच में १४ से १६ वर्ष के बच्चो में शराब पीकर उन्मत्त हो जाने का अपराध ८ गुना अधिक बढ गया और १७ से २० वर्ष के युवक-युवतियों मे चौगुना अधिक हो गया। अपेक्षा की जाती है कि सन् १९५७ में २१ वर्ष से नीचे के लड़को मे नशाखोरी के अपराध में १३ प्रतिशत वृद्धि सन् १९५६ की तुलना मे होगी। इसी अवधि मे सब उम्र के लोगों मे नशाखोरी के अपराधो मे ११ प्रतिशत की वृद्धि होगी। आँकड़ो मे, सन् १९५७ में इस प्रकार के अपराध मे ५,८०० लड़के तथा ६७,००० सब उम्र के लोग दण्डनीय होंगे।"

"इन्ही उम्र के लड़कों मे हिसात्मक अपराधो की संख्या दुगुनी हो गयी है। सन् १९५४ से ऐसे अपराधो की संख्या तिगुनी हो गयी है। नशेबाजी के अपराध, लड़कियो मे लड़कों की तुलना से अधिक बढे है। १४-१८ वर्ष की लड़कियों मे गर्भवती होनेवालो की संख्या बहुत बढ़ गयी है तथा १४-२० वर्ष की उम्र के बीच मे नाजायज बच्चे पैदा करनेवाली लड़कियों की संख्या इस उम्र से अधिक की स्त्रियो के नाजायज बच्चों से कही अधिक है।"

सन् १९०७ मे इंग्लैण्ड में प्रोबेशन क़ानून (प्रोबेशन अफसर की निगरानी में छोड़ने का नियम) पास हुआ था। हर्बर्ट ग्लैडस्टन उस समय गृहसचिव थे। उपसचिव थे हर्बर्ट सैमुयेल (बाद में वाइकौट सैमुयेल)। उन्होने १९०८ में पार्लमेन्ट मे "बाल-अधिनियम" पेश किया था। उसमे १३० धाराएँ थी। उसी अधिनियम के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन मे चारो ओर बाल-अपराधियो के लिए विशेष अदालते स्थापित हुई। इन अदालतो के पचास वर्ष पूरे होने पर वाइकौट सैमुयेल ने एक विशेष लेख लिखा था। उसमें वे बड़े रोचक आँकड़े देते है।[२] उनका कहना है कि पिछले निर्दय दंडविधान को बदलने से तथा अच्छे सुधारक नियम चालू करने से इंग्लैण्ड तथा वेल्स में जेलों में क़ैदियो की संख्या काफी घट गयी। सन् १९०५ में २१,००० बन्दी जेलों में थे। १९१८ मे ९,००० ही रह गये। फलत: ब्रिटेन के आधे जेल बंद कर दिये गये। पर, प्रथम महा-

१. Two Reports of the Christian Economic and Social Research Foundation, 1957, 1958.

२. Children & Crime—50 Years of Juvenile Courts–By Viscount–Samuel–The Sunday Times, London, 2nd March, 1958

युद्ध के बाद से ही जेलों की संख्या बढने लगी। दंडनीय अपराधो के लिए दंडित सभी उम्र के पुरुषों की संख्या सन् १९३८ में ६८,००० थी और १९५७ में १,०२,००० हो गयी। सन् १९३७ में दंड देने योग्य ३,००,००० अपराधो का पता लगा था। सन् १९५१ मे इनकी सख्या ५,००,००० से ऊपर हो गयी और सन् १९५७-५८ के वर्षो मे ४,८०,००० का वार्षिक औसत है।

१९३८ में पुरुष बाल-अपराधियों की संख्या ३६,००० थी। ८ वर्ष से २० वर्ष की उम्र के भीतर सन् १९५६ मे यह संख्या बढ़कर ४९,००० हो गयी।

संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे धनी देश में जहाँ रोज २०,००० नयी मोटरें तथा १०,००० टेलीविजन के सेट बनते और बिक जाते है, अपराध की संख्या बेतहाशा बढ़ती जा रही है। समाजशास्त्री डा० टप्पन का कहना है कि "अमेरिका की सास्कृतिक भूमि में अपराध की जड़ें बहुत नीचे तक चली गयी है। अत्यधिक सासारिकता तथा भौतिक सुखो के पीछे पड़े रहने के कारण, राजनीतिक सत्ता के प्रति स्वाभाविक उपेक्षा के कारण, व्यापारिक तथा राजनीतिक अत्यधिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण, जीवन के मूल्याकन मे परस्पर विरोधी भावनाओ के कारण, तथा सामाजिक नियमों के प्रति उच्छृङ्खल भावना के कारण और आचरण की मर्यादा मे बराबर ह्रास होने के कारण वहाँ अपराध बढ़ते जा रहे है।"[१]

परिणाम यह हुआ है कि अमेरिकन सरकार की रिपोर्ट के अनुसार,[२] उस देश मे प्रति ११·३ सेकेन्ड पर एक बड़ा अपराध होता है। प्रति ३·९ मिनट पर एक हत्या, एक कत्ल, एक घातक प्रहार अथवा बलात्कार का मामला होता है। सन् १९५७ में सरकार की जानकारी मे २७,९६,४०० अपराध हुए। यानी पिछले पाँच वर्षो के औसत पर २३·९ प्रतिशत की वृद्धि हुई। कुल मिलाकर एक वर्ष में लगभग २०,००,००० व्यक्ति गिरफ्तार किये गये जिनमे १४,०५,९६७ गोरे लोग तथा ६,१८,०२८ नीग्रो थे। हर १०० अपराधियों मे १ स्त्री अपराधिनी थी।

ऐसे भयंकर वेग में, अपराध की ऐसी बाढ में, संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-अपराध की संख्या यदि बेतहाशा बढ रही हो तो आश्चर्य क्या है! ब्रिटिश पार्लमेन्ट

१. Juvenile Delinquency in North America—Survey for the United Nations–Page 134. Report–By Dr. Paul W. Tappan, Professor of Sociology, New York University.

२. Federal Bureau of Investigations, U. S. A. Govt., 1958.

के सदस्य श्री मौंटगोमरी हाइड ने संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा करने के बाद लिखा है[१] कि वहाँ कम से कम प्रति वर्ष दस लाख बाल-अपराध होते है—यानी कुल २० लाख अपराधियो मे आधे अपराधी ८ से २० वर्ष की उम्र के भीतर के होते हैं। न्यूयार्क नगर में ही, सन् १९५७ में बच्चों ने ३० हत्याएँ की। इन हत्याओ के कारणों से ही पता चल जाता है कि आज वहाँ का शिशु से लेकर नवयुवक तक का समाज कितना उच्छृंखल हो गया है। चौदह वर्ष के एक लड़के ने, न्यूयार्क मे ही, ८ वर्ष के एक बच्चे को पेड़ से लटका-कर मार डाला। कारण पूछने पर उसने कहा कि "मन में ऐसी ही तरंग उठी।" कैलिफोर्निया के सैक्रामेटो नगर में १४ वर्ष के एक बड़े प्रतिभाशाली विद्यार्थी ने १० वर्ष की एक लड़की को हथौड़े से मार मारकर खत्म कर दिया, इसलिए कि उसकी "किसी को मार डालने की इच्छा" बड़ी तीव्र हो उठी थी। न्यूजरसी में १४ वर्ष के एक लड़के ने ११ वर्ष के एक बच्चे का गला घोंटकर इसलिए मार डाला कि उस बच्चे ने उसे "बुजदिल" कह दिया था। न्यूजरसी में ही १७ वर्ष की एक लड़की ने १० वर्ष के अपने छोटे भाई को इसलिए मार डाला कि उसके माता-पिता उसकी तुलना में उस लड़के से ज्यादा प्रेम करते थे। सन् १९५८ के शुरू महीने में ही न्यूयार्क नगर में १८-१९ वर्ष के एक नवयुवक ने १५ वर्ष के एक रोगी बच्चे के पेट में छुरा भोककर मार डाला और जब वह अभागा बच्चा दम तोड़ रहा था, हत्यारे ने उससे कहा "अनेक अनेक धन्यवाद।" पुलिस को उसने बयान दिया कि "बहुत दिनो से मेरी इच्छा थी कि किसी के पेट में छुरा भोंकू ताकि देखें, कैसा लगता है।"

जिस देश में बच्चों में इतनी क्षुद्र प्रवृत्तियाँ घर कर जाती हैं, उसकी समस्या बहुत ही गम्भीर होगी। न्यूयार्क के ९०० स्कूलों के प्रधानाध्यापकों ने सितम्बर-अक्टूबर, १९५८ में अपने स्कूलों से ५४४ लफंगे विद्यार्थियों को निकाल बाहर किया।[२] उनका निश्चय था कि वे आपस के और किसी स्कूल में दाखिल नही किये जायेंगे। इतने बच्चों को स्कूल से निकालने पर भी इन प्रधानाध्यापकों का कहना है कि लफंगे विद्यार्थियो या छात्राओं की केवल एक प्रतिशत संख्या ही निकाली गयी है। जिस देश में केवल एक साल में ४४०० अबोध शिशु केवल इसलिए मोटर गाडियों के नीचे कुचल गये कि उनके माता-पिता ने उन्हें संभाल कर अपने पास नही रखा—जिस देश में

१. "A Million Young Offenders',—By H. Montgomory Hyde, M. P. Sunday Times, 22nd December, 1958.

२. रायटर का संवाद, दिसम्बर १९५८

३६० बच्चे एक ही साल मे, कम उम्र में साइकिल चलाने का अभ्यास करने में गिर कर मर जाते हों,[१] वहाँ की स्थिति के बारे मे क्या कहा जाय ?

बाल-अपराध इतना क्यो बढ रहा है, तथा इसका क्या कारण है, यह बात आसानी से न तो समझी जा सकती है और न समझायी जा सकती है। बिल वाघम ने बड़ी पते की बात कही है कि "सृष्टि का क्षिति-मंडल बाल-अपराध के समान है। हम इसका जितना पता लगाते है उसकी वास्तविकता से उतनी ही दूर प्रतीत होते है।"।[२]

अस्तु, बाल-अपराध मे वृद्धि के सम्बन्ध मे हम बहुत अधिक आँकड़े न दे सकेंगे। इसके लिए सामग्री उपलब्ध नही है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् १९५३ से १९५६ के बीच में, बाल-अपराध के सम्बन्ध मे प्रत्येक देश की स्थिति की छानबीन कर छ. भागों में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। पर इतने महत्त्वपूर्ण प्रकाशन मे बाल-अपराध के वास्तविक आँकड़े ही नही है। भारत मे भी प्रत्येक प्रदेश के आँकडे उपलब्ध नही है। अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति ने राज्य की सरकारो को पत्र लिखकर कुछ आँकडे एकत्रित किये है पर वे भी अधूरे है।

उत्तर प्रदेश मे हर प्रकार के जेलो को मिलाकर जेलो की संख्या ६२ है। सन् १९५८ मे इनमें २,४२,९४३ कैदी रखे गये थे। इनमे विचाराधीन तथा सजायाफ्ता शामिल है। सजायाफ्ता क़ैदियो की सख्या ८६,४५३ तथा विचाराधीन बंदियो की संख्या १,३२,४४५ थी। बाल-अपराधियो की सख्या २३,५९९ थी।[३] मद्रास में ४ अप्रैल १९५९ को उनके कुल ११४ जेलों मे १४,४८२ दडित कैदी, १,२६५ विचाराधीन कैदी तथा बाल-अपराधी एक भी नही था[४]—इसका अर्थ यह है कि जेलों मे बाल-अपराधियो को नही रखा गया था। बम्बई के प्रदेश में पुलिस की १०६२ हवालातों को मिलाकर १४५३ जेल है। ३१ दिसम्बर १९५८ को इनमे सब प्रकार के दंडित अपराधी १३,५७८ थे। ५८३५ विचाराधीन कैदी थे। बाल-अपराधियो की संख्या ८४७ थी।[५] बम्बई मे, मद्रास की तरह, अधिकांश बाल-अपराधी जेल में नहीं रखे जाते,

१. True Story, 1958.

२. Readers' Digest, Oct., 1958

३. **प्रधान कारागार निरीक्षक, उत्तर प्रदेश, पत्र सं० १३२३४–१२ मई, १९५९**

४. **मद्रास सरकार का पत्र सं० ४०५४६. २१ अप्रैल १९५९**

५. **प्रधान कारागार निरीक्षक, बम्बई का पत्र सं० ६२२, १७ जून १९५९**

उनके लिए अलग सुधारगृह आदि है। बम्बई प्रदेश मे बच्चों के लिए २८ बाल-अपराधी अदालतो को मिलाकर १८४ सुधार-संस्थाए सन् १९५७ में थी। १९५८ मे इनकी संख्या १९२ हो गयी। ३१ मार्च १९५७ को इनमे ६८१५ पुरुष बाल-अपराधी तथा २५१४ महिला बाल-अपराधी थे। ३१ मार्च,१९५८ को यही संख्या क्रमशः ७७९० तथा २६९९ हो गयी। यानी एक वर्ष मे ही अपराधी काफी बढ गये थे। केरल प्रदेश में पुलिस विभाग की रिपोर्ट है कि सन् १९५६ में दडनीय अपराधों की संख्या ८७४५ थी तथा सन् १९५७ मे १०,४६१ यानी १९ ६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। २५६ हत्याएँ हुई। सन् १९५६ में १६७ ही थी यानी ५९ प्रतिशत वृद्धि हुई। इनमे से २५ हत्याएँ कामुक वासना के कारण, ३४ हत्याएँ पारिवारिक झगड़ो के कारण, ६ दलबंदी के कारण तथा १९१ अन्य कारणों से हुई। किन्तु बाल-अपराधी की संख्या में कमी हुई। सन् १९५६ में २११ तथा १९५७ में १४७।[1] आसाम में बाल-अपराधियों की संख्या का पता तो नहीं चलता है पर यह अवश्य है कि आसाम हाईकोर्ट की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सन् १९५५ मे, उस प्रदेश मे नागा क्षेत्र को छोड़कर, नये और पुराने दंडनीय मुकदमो की संख्या ६३,९३३ थी पर १९५६ में ७१,७९५ हो गयी।[2] मध्य प्रदेश के कुल ७६ जेलों मे ३१ मार्च, १९५९ को ५१६३ पुरुष तथा ७२ महिला दंडित क़ैदी, क्रमशः २५७५ तथा ६० विचाराधीन तथा ३० बाल-अपराधी थे।[3]

फिलप्पीन के कारागार विभाग के मुख्य संचालक श्री अलफ्रेड एम० बुनी ने संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रसिद्ध अपराधी नगर शिकागो में पत्र-प्रतिनिधियों से कहा था—"जिस प्रकार शिकागो में बाल-अपराधी बढ़ते जा रहे है उसी प्रकार फिलप्पीन द्वीप समूह मे भी। २० वर्ष से कम उम्र के बच्चों में अपराध बहुत बढ़ गया है, और अपराध भी इस प्रकार का जिसका कोई कारण नही है। वे बिना कारण हत्या कर डालते है। वे बहुत से ऐंसे अपराध करते है जिनका कोई कारण भी समझ में नही आता।"[4]

१. Administration Report of the Police Deptt. Govt. of Kerala, 1957–Page 7.

२. Report of the Administration of Criminal Justice in the State of Assam, 1956–Part I.

३. डिप्टी सेक्रेटरी, मध्य प्रदेश सरकार का पत्र सं० १४६५, ११ जुलाई १९५९.

४. "The Chicago American", May 24, 1958.

अध्याय १८

बाल अपराधी कौन है ?

"बाल" का अर्थ

बाल-अपराध के विषय में और गहराई में उतरने के पूर्व हमे यह जान लेना चाहिए कि बाल-अपराधी कहते किसे है तथा "बाल" से तात्पर्य क्या है ? जहाँ तक उम्र का सम्बन्ध है, भारत, पाकिस्तान, बर्मा तथा लंका मे "७ वर्ष की उम्र से नीचे के बच्चे द्वारा किया गया कोई भी कार्य अपराध नही है।"[१] इन्ही देशों के दंडविधान के अनुसार ७ से १२ वर्ष के बच्चों द्वारा किया गया कोई भी कार्य तब तक अपराध नही होगा जब तक कि उनमे इतनी समझ न आ जाय कि वह कार्य क्या है तथा उसका परिणाम क्या होगा।"[२] फिलप्पीन मे "९ से १५ वर्ष के भीतर बच्चे तब तक अपराधी नही है जब तक यह न मालूम हो जाय कि उन्होने भला-बुरा सोचकर वह कार्य किया है।[३] थाईलैण्ड (स्याम) मे "पूरे ७ तथा पूरे १४ वर्ष की उम्र के बीच के" लड़के-लड़कियो को "शिशु" तथा "१४ से १८ के बीच को "बाल" कहते है।[४] भारत में बंगाल, मद्रास तथा बम्बई में सन् १९२४ के बाल-अधिनियम के अनुसार ७ से १४ वर्ष को शिशु तथा १४ से १६ (अब १८) को "बाल" कहते हैं। भारत तथा पाकिस्तान मे सुधार-गृह में १५ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को रखते है। जापान मे "२० वर्ष से नीचे लड़का या लड़की बाल-अवस्था का समझा जायगा।"[५] जापान तथा भारत के नियम मे एक बड़ा अन्तर है। बर्मा, पाकिस्तान, भारत, लंका में—भारत में बम्बई

१. भारतीय, पाकिस्तान तथा बर्मी दंडविधान की धारा ८२ तथा लंका की ७५

२. वही क्रमशः ८३ तथा ७६

३. फिलप्पीन दंडविधान, धारा १२, उपधारा ३

४. १९५१ का थाई दंडविधान, धारा ४

५. जापानी बालविधान, धारा २

प्रदेश छोडकर—यह नियम है कि अदालत तथा सरकार के लिए अपराधी की उम्र दंड के समय की उम्र मानी जायगी, न कि अपराध करने के समय की उम्र। फिलप्पीन, जापान तथा थाईलैण्ड में ऐसा नही है। थाईलैण्ड मे बाल-अधिनियम की धारा २ के अनुसार यदि मुकदमा चलने के दौरान मे निश्चित उम्र पार भी कर गया हो, तो भी वही बाल-अधिनियम लागू होगा। बम्बई प्रदेश में भी यही नियम है।

सऊदी अरब तथा यमन मे कुरान शरीफ तथा शरियत के अनुसार शासन होता है। वहाँ १२ से नीचे के बच्चे अपराधी नही समझे जाते। १२ से १५ तक नवयुवक या नवयुवती तथा १७ से १८ वर्ष को बालिग़ होना मानते हैं। इसलिए १२ से १८ वर्ष के बीच के अपराध को बाल-अपराध मानते है; जार्डन मे ९ से १८ वर्ष। मिस्र, सीरिया (अरब गणतंत्र), लेबनान और ईराक मे ७ वर्ष के नीचे के शिशु को अपराधी नही मानते। मिस्र के तथा जार्डन के दंडविधान मे "बाल-अपराधी" तथा "बाल आवारा" मे अन्तर कर दिया गया है।[१] ८ अगस्त १९४९ के संशोधित नियम १२४ के अनुसार बाल आवारा की उम्र १८ वर्ष तक की मिस्र मे निश्चित की गयी है। बाल-अपराधी वह है जिसने "ऐसा कार्य किया है जिससे नियम की अवज्ञा हुई है तथा जो कार्य "अपराध" हो सकता है, दुर्व्यवहार या नियमो का उल्लंघन हो सकता है। बाल-आवारा, मिस्री दडविधान, धारा १२४ के अनुसार वह है जिसकी उम्र १८ वर्ष से कम है तथा जो—

१. भीख माँगता है—सड़क पर निरर्थक चीजे बेचता है या कसरती खेल दिखाता रहता है;
२. सड़क पर से जले हुए सिगरेट के टुकड़े या अन्य फेंकी हुई चीज़ें बटोरता है;
३. वेश्यावृत्ति, संभोग के अन्य अपराधों, जुआ आदि में रत है या ऐसे अपराधियों का साथ देता है;
४. लफंगों, गुण्डों का साथ देता है या बदनाम लोगो का साथ देता है;
५. दुश्चरित्र है, अपने माता-पिता या अभिभावक के नियंत्रण के बाहर है;
६. जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान नही है तथा जो आदतन सड़को पर सो रहता है;

१. Comparative Survey on Juvenile Delinquency—Part V. Middle-East—Published by the United Nations-Department of Social Affairs, New York, 1953—Page 2.

७. जिसके अभिभावक या माता-पिता मर गये हैं, जेल मे हैं या लापता है तथा जिसकी जीविका का कोई वैध सहारा नही है।

जार्डन में बाल-आवारा की उम्र अधिकतम १८ पर कम से कम १५ होनी चाहिए तथा बाल-अपराधियो में शामिल है—

१. मादक द्रव्य सेवी, बारबार अपराधी तथा अयोग्य अभिभावकों की देखरेख में रहनेवाले बच्चे;
२. आदतन चोर या वेश्या का साथी;
३. वेश्या के मकान में रहनेवाला या रहनेवाली, संभोग करानेवाला या वाली या अप्राकृतिक व्यभिचार का सन्देह जिस पर हो।

इस प्रकार बाल-अपराधी की उम्र में जो बड़ा अन्तर मुसलिम देशों मे है, वह इस तालिका से प्रकट हो जायगा —

देश	कम से कम उम्र	अधिक से अधिक उम्र
मिस्र	७	१५
ईरान	११	१८
ईराक	७	१५
जार्डन	९	१८
लेवनान	७	१५
सीरिया	७	१५
सऊदी अरब तथा यमन	१२-१५	१७-१८ (बालिग)

पर मध्यपूर्व के अनेक देशों मे शिशुकाल को छोड़कर केवल बालकाल तथा नवयुवक-नवयुवती को बाल-अपराधी मानते है। मिस्र, सीरिया, लेबनान, ईराक में शैशवकाल—जिसकी उम्र नीचे दी जाती है—को भी अपराध का काल मानते हैं पर तुर्किस्तान तथा ईरान में केवल बाल तथा नवयौवनकाल को ही अपराधी श्रेणी में रखते है। इस प्रकार उम्र का विभाजन नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा—

देश	शैवशकाल	बाल्यकाल	नवयौवन
मिस्र	७—१२ वर्ष	१२—१५	१५—१७
ईरान	११ वर्ष तक	११—१५	१५—१८
ईराक	७—१२	१२—१५	१५—१८
जार्डन	९—१३	१३—१५	१५—१८

देश	शैशवकाल	बाल्यकाल	नवयौवन
लेवनान	७—१२	१२—१५	१५—१८
सीरिया	७—१२	१२—१५	१५—१८
तुर्किस्तान	११ वर्ष तक	११—१५	१५—१८

सऊदी अरब तथा यमन में दो प्रकार के "बाल" माने जाते हैं, एक वह जो भले-बुरे की पहचान न कर सके। दूसरा वह जो ऐसी पहचान कर सके। ऊपर की तालिका से एक बात स्पष्ट है। ईरान तथा तुर्किस्तान में "अबोध" बच्चे की उम्र ७ वर्ष तक न मान कर ११ वर्ष तक की मानते है। सभी देशों में इस बात का ध्यान रखा गया है कि किस उम्र में या किस अवस्था में भले-बुरे की पहचान होने लगती है या हो सकती है। इसी को बाल-अपराध का बहुत बड़ा आधार माना गया है।

पश्चिमी देशों में भी "अपराध के पूर्व की उम्र" यानी अपराध की ओर झुकता हुआ बाल-काल का सिद्धान्त मान लिया गया है। यह उम्र सभी देशों में एक समान नही है। यह आगे चलकर मालूम होगा पर उसकी व्याख्या इस प्रकार है कि "निश्चित उम्र का व्यक्ति जिसने कोई अपराध नही किया है पर अपने व्यवहार से वह ऐसा प्रतीत होता है कि अपराधी हो सकता है।"

अपराधी मनोवृत्ति

पश्चिमी देशों में, जहाँ बालसुधार के काम के लिए अधिक पैसा तथा अधिक कला और ज्ञान भी है, इस समस्या पर काफ़ी समय तथा द्रव्य खर्च होता है। वहाँ बाल-अपराधी को दो भागों में बाँट दिया गया है। एक वह बालक या बालिका जिसने कोई अपराध नही किया हो पर जिसके स्वभाव तथा वातावरण को देखकर यह भय पैदा हो रहा हो कि वह अपराधी बनेगा या बनेगी। दूसरी श्रेणी अपराध करनेवालों की है।

आस्ट्रिया में बाल-कल्याण अधिनियम, १९५४[१] के अनुसार शरीर तथा नैतिकता में दुर्बल बच्चो को विशेष शिक्षा देने के लिए प्रोवेशन के अन्तर्गत, या सरकारी स्कूल या सुधार-पाठशालाओं या समाज-कल्याण की संस्थाओं में भर्ती कर देते हैं। कभी कभी ऐसे बच्चों को बालिग़ होने तक ऐसी संस्थाओं में रहना पड़ता है। बेल्जियम में[२]

१. Jugendewohlfahrtagesetz.

२. Loi Sur La Protection De La Enfance.

ऐसे लडके-लड़कियों को प्रोवेशन में या "बन्द" पाठशालाओं मे भर्ती कर देते है जो "घरेलू जीवन मे अपनी बुरी चाल-चलन से या सयम के अभाव के कारण अपने माता-पिता या अभिभावको के लिए एक समस्या बन गये हो। इनकी उम्र १८ वर्ष से कम होनी चाहिए या १६ वर्ष से कम उम्र के हो जो अपने जीवन को वेश्यावृत्ति, जुआ, लफगापन, अपराध आदि की तरफ ले जा रहे हो।" फ्रास मे ३० अक्टूबर सन् १९३५ के कानून के मुताबिक तथा सन् १९४५ के सशोधन के अनुसार ऐसे बच्चों की देखरेख का विशेष प्रबंध है जिनके माता-पिता सरकार को यह रिपोर्ट करें कि उनके बच्चे मे अपराध करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है।

पश्चिम जर्मन प्रजातन्त्र मे २८ अगस्त १९५३ के अपने कानून[१] के मुताबिक १८ वर्ष की उम्र के जिन बच्चों मे शारीरिक, मानसिक या नैतिक उपेक्षा के कारण कोई कमजोरी आ गयी हो, उनके संरक्षण का भार राज्य को लेना पडेगा। यूनान के सन् १९५० के दंडविधान के अनुसार ७ से १२ वर्ष की उम्र के ऐसे बाल-अपराधियो के लिए, जिन्होने अपराध तो किया है, पर जो अपने काम की बुराई को ठीक से नही समझते है, विशेष संस्थाओ मे रखने का प्रबध है। आयरलैण्ड मे सरकार १५ वर्ष से नीचे के उन बच्चों को अपनी निगरानी में ले लेती है जो मशहूर चोर या वेश्याओ के साथ रहते पाये जाते है। इजरायल मे १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चे, जिनको सरकारी निगरानी में रखना चाहिए, प्रोवेशन अफसरों द्वारा बाल-अपराधी अदालतो मे ले जाये जाते हैं। इटली तथा नीदरलैन्ड्स[२] मे भी १६ वर्ष तक की उम्र के बच्चो के लिए यही नियम है। स्वीडन, नार्वे, फिनलैण्ड तथा आइसलैण्ड में अपराधी तथा गैर-अपराधी दोनो को निगरानी मे रखने, शिक्षा देने आदि का नियम है। डेन्मार्क का सन् १९५१ का कानून है कि "यदि कोई लड़का या लड़की अपने घर में माता-पिता का कहना न मानता हो, उसके अभिभावक उसे शिक्षित करने में असमर्थ हो—यानी उनके पास साधन न हो—या बच्चा ही उद्दंड हो—तो सरकार उसे अपनी निगरानी मे ले लेगी। स्वीडन मे यदि १६ वर्ष से नीचे के लड़कों मे कोई खराबी देखी जाती है तो माता-पिता को सख्त चेतावनी दी जाती है तथा बच्चे को भी। यदि माता-पिता मे अनैतिकता के कारण बच्चे पर बुरा प्रभाव समझा जाता है तो चेतावनी और कठोर हो जाती है। स्विट्जर-लैड में भी "नैतिक

१. Reichsgesetz Fur Jugendwohlfahrt.

२. Burgerlijk Wetbock, 1838.

खतरे" में से बच्चों का उद्धार करते है। इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड तथा वेल्स में बाल-अपराधी तथा बाल-अपराधी-वृत्ति को रोकने के लिए अनेक नियम तथा उपाय है, जिनका जिक्र हम आगे करेंगे।[१]

विशेष व्यवहार का प्रश्न

अध्याय के प्रारंभ मे हमने "बाल अपराधी" की उम्र की व्याख्या की है। समाज के नियमो को तोड़नेवाला "अपराधी" हुआ। पर अपराधी की भी श्रेणियाँ होती है और आधुनिक समाज ने उसकी व्याख्या कर दी है। प्राय. सभी देशों ने कम से कम १७ या १८ वर्ष तक की उम्र के अपराधी को "बाल-अपराधी" कह कर उसके साथ विशेष व्यवहार तथा विशेष प्रकार का दड या सुधार-प्रणाली को अपनाने का नियम बनाया है। किन्तु ऐसा करने में समाज को सैकड़ो वर्ष लग गये। आसानी से वह यह मानने को तैयार नहीं हुआ कि बालिग और नाबालिग के अपराध और कार्य में किसी प्रकार का अन्तर है।

ब्रिटिश कानून का यह महान् सिद्धान्त है कि "कानून की जानकारी न होने से कोई अपराध क्षमा नही हो सकता।" प्रत्येक के लिए वह समान रूप से सब देशों मे लागू था। फिर भी अदालते किसी न किसी रूप मे, दड देते समय, यह साबित करने की चेष्टा करती थी कि "यह अपराध जान-बूझ कर किया गया है।" कानून चाहे उनसे इस प्रकार की सफ़ाई न भी माँगता रहा हो पर उनके मन में चोर रहता ही था कि "बिना बुरी नीयत के किया गया कोई भी काम अपराध नही है।"

ब्रिटेन के सन् १९२२ के कानून के अनुसार[२] १३ से १६ वर्ष की उम्र की कन्या के साथ प्रसंग जघन्य अपराध है। पर यदि अपराधी २३ वर्ष की उम्र से नीचे का है और उसका पहला अपराध है तो वह यह सफाई दे सकता है कि उसने लड़की की उम्र १६ वर्ष से अधिक समझी थी। पर सन् १८७५ में लन्दन में ऐसी ही एक कन्या को अनैतिक कार्य के लिए उसके घर से भगा लाने का अभियोग एक व्यक्ति पर लगा।

१. Children & Young Persons Act of England, 1952! Criminal-Justice Act, 1949—Scotland.

२. Criminal Law Amendment Act, 1922 (12 and 13, Geo, 5, 6–56– section 2)

उसने यही सफाई दी कि उसकी समझ में लड़की १६ वर्ष की उम्र से ज्यादा थी। जूरी लोगों की भी यही राय थी कि अभियुक्त सच्ची नीयत से यही समझता था कि लड़की १६ से ज्यादा है। पर विचारपति ब्रेट अपनी राय पर अड़े रहे और अन्त में अदालत ने बहुमत से इस सफाई को मानना अस्वीकार कर दिया और दंड देते समय कहा कि "कोई भी व्यक्ति यदि किसी अविवाहिता कन्या को उसके माता-पिता से बिना पूछे ले आता है तो उसे यह खतरा उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए कि उसकी उम्र १६ से कम की साबित हो जायगी।"[१]

किन्तु बाल-अपराध के बारे में इतनी छानबीन पहले नही होती थी। अभी तक इतने सुधार के बाद भी यही शिकायत है और पहले तो बहुत अधिक थी कि हम बाल-अपराधी के मामले में सही तरीका नही अपनाते थे। उनका "अपराध" समझने का भी ठीक से प्रयत्न नही होता था। सर विलियम क्लार्क हाल ने बड़ी मार्के की बात कही है। वे बाल-अपराधियों को विशेष अदालतों के सामने लाने के पक्षपाती थे। वे कहते है।[२] "असली बात तो यह है—और ऐसी बात है जिसे हमारे व्यवस्थापक एक न एक दिन समझ जायँगे—कि बाल-अपराधियों के लिए मुक़दमा करने के तरीकों को सरल बना देने से ही हम इस समस्या की तह तक नहीं पहुँच सकेंगे। जब तक हम बच्चों को "अपराधी" समझते रहेंगे, तब तक हम केवल यही प्रबंध करके प्रसन्न रहेंगे कि उनकी कम-उम्री का लिहाज करके उनके अपराध की समीक्षा हो, हम बाल अपराध की समस्या का वास्तविक उपाय नही कर सकेंगे। अपराध के निर्णय के लिए कोई नाटकीय प्रबन्ध करने से बेहतर है दुष्प्रवृत्तियों की रोकथाम करने के लिए सही उपाय सोचना. . . ।"

जेल क्यों भेजें ?

ऐसे ही उपायों में प्रोवेशन की प्रणाली भी है। बाल-अपराधी को जेल न भेजकर प्रोवेशन अफ़सर या अभिभावक की निगरानी में छोड़ दिया जाय। इंग्लैण्ड मे जब सन् १९२२ में यह नियम बना कि छोटे-मोटे अपराधों पर जेल का दंड न देकर, आर्थिक

१. Mens Rea in Statutory Offences—Macmillan & Co., 1955—Page 59.

२. "Children's Courts" by Sir William Clarke Hall—Pub. George—Allen & Unwin Ltd., London, Page 64

दंड दिया जाय और जुर्माना जमा करने के लिए भी मियाद दी जाय तो लोगों ने, यानी क़ानूनी दुनिया ने इसे "क्रान्तिकारी सुधार" समझा था। सन् १९२५ मे लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय दंड-सम्मेलन हुआ।[1] उसमें "सबको एक ही प्रकार की सजा देने या अल्पकालीन जेल की सज़ा" के विरुद्ध बोलते हुए, ब्रिटेन के प्रधान न्यायाधीश बेरी के लार्ड हिवर्ट[2] ने कहा था—

"हमारी यह राय नही है कि जेल भेजने की सजा समाप्त कर दी जाय या उसका जो ध्येय है, वही समाप्त हो जाय। समस्या यह है कि उचित मामलो मे एक ऐसा वास्तविक तथा सही सन्तोषजनक तरीका अपनाया जाय जिससे आज जो काम जेलों के द्वारा पूरा हुआ समझा जाता है, वही काम बाहर हो सके। हमें पूरे समाज की रक्षा तथा उसके हितों की ओर देखना है। हमें यह देखना है कि हममे से एक ने जो भूल की है, वही भूल और लोग न करें...अन्ततोगत्वा यह ध्यान रखना चाहिए कि समाज कुछ वर्गो को मिलकर नही, बल्कि व्यक्तियों से बनता है और हमको हर एक व्यक्ति को, उसके गुण-दोष के अनुसार देखना पड़ेगा...आम तौर से जो बात लोग ठीक से नही समझते वह यह है कि अपराधी तैयार करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है बाल-अपराधियों को अनायास जेल भेज देना...जहाँ पर वे ऐसे मनुष्यों तथा उपायों से परिचित हो जाते है जो उन्हे सदा के लिए नष्ट कर देते है...उन पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है जो किसी लड़के या लड़की को, या यों कहिए कि किसी पुरुष या स्त्री को पहली बार जेल भेज़ते है।"

बहुत काफ़ी ठोकर खाने के बाद ब्रिटेन के प्रधान विचारपति या उनके साथियों ने यह बात समझी। ग्रेट ब्रिटेन में पुराने ज़माने में, नाज़ुक से नाज़ुक उम्र का बच्चा क़ानून की अवज्ञा करने पर जेल भेज दिया जाता था। जेल में जाकर वह "अपराधों की पाठशाला" से "अपराध-पंडित" होकर बाहर निकलता था। १९वी सदी के मध्यकाल में यानी सन् १८२५ से १८७५ तक—यदि इंग्लैण्ड के जुर्मो की छानबीन की जाय तो अधिकाश अपराधियों की औसतन उम्र १५ वर्ष की मिलेगी। इग्लैण्ड में ८ वर्ष के एक बच्चे को किसी खलिहान मे "द्वेषपूर्वक, प्रतिशोध की भावना से मक्कारी तथा चतुराई से" आग लगा देने के अपराध मे प्राणदंड हुआ और वह बेचारा फॉसी पर लटका दिया गया। सन् १८३३ मे ९ वर्ष के एक छोटे बच्चे को 'एक दूकान

१. International Penitentiary Congress, London, 1925.

२. Lord Chief Justice of England, Lord Hewart of Bury.

की शीशे की खिड़की का शीशा फोड़ कर दो आने कीमत की चीज़ चुरा लेने के अपराध में प्राणदंड हुआ।[१] महारानी विक्टोरिया के जमाने में बड़ी निर्लज्जतापूर्वक खुले आम कारखाने के मालिक माता-पिता से उनके बच्चे खरीद लेते थे। ५ वर्ष से ऊपर के बच्चे लंकाशायर के कारखानों मे "अप्रेंटिस" के नाम से बेच दिये जाते थे। इस अप्रेंटिस का जीवन ऐसी नरकमय गुलामी का जीवन था जिससे बचना असम्भव था। पाच वर्ष के छोटे लड़के लडकी से बड़ों के बराबर काम लिया जाता था। कारखानो में एक व्यक्ति को १२ घंटे काम करना पड़ता था। बच्चों के लिए भी काम करने के यही घटे थे। गन्दा वातावरण, दूषित स्थिति, बुरा भोजन, सफाई का नितान्त अभाव—इतनी विकट पीडा तथा ऐसी दर्दनाक मृत्यु-जिसका वर्णन नही किया जा सकता।[२]

बच्चों की ऐसी दुर्गति देख कर ही उस देश में मैथ्यू डेवनपोर्ट हिल (१७९२-१८७२) या सिडनी टर्नर (१८१४-१८७९) ऐसे आन्दोलन करनेवाले पैदा हुए कि चार्ल्स डिकेन्स ऐसे प्रसिद्ध उपन्यासकार का ध्यान भी इस ओर गया और उनकी लौह-लेखनी ने भूखे-नंगे कामुक रोग से पीड़ित बालक या बालिका को समाज के सामने खड़ा कर दिया और इस सब सामूहिक विरोध का अच्छा परिणाम भी हुआ। सन् १८५४ का प्रथम रिफार्मेटरी स्कूल ऐक्ट (सुधारगृह) पास हुआ। बाल-अपराध की समस्या को हल करने का तथा बाल-अपराधी की नयी व्याख्या करके अन्य अपराधियो से उसे पृथक् करने का यह पहला प्रयत्न था। भारतवर्ष में, जो इंग्लैण्ड का गुलाम था, सन् १८५४ के ब्रिटिश क़ानून के ठीक ७५ वर्ष बाद बच्चों की ओर ध्यान दिया गया। १९१९-२० मे भारतीय जेल कमेटी ने अपनी सिफारिश मे "जेल के स्थान पर अन्य उपाय" पर विचार करते हुए यह सिफ़ारिश की कि अदालतों को माता-पिता के समान बाल-अपराधी के प्रति व्यवहार करना चाहिए। शरीर से दोषी बच्चो के लिए विशेष संस्थाएँ होनी चाहिए, प्रोबेशन प्रणाली, रिमाडहोम आदि का प्रबंध होना चाहिए। फिर भी, हमारे देश में बाल-अपराधी के प्रति कोई कथनीय ध्यान नही दिया जाता था। सन् १९३३ मे बंगाल में २१ वर्ष की उम्र से कम ५,३५८ बाल-अपराधी जेल भेजे गये तथा केवल १२४ बच्चे प्रोबेशन पर छोडे गये। इसी वर्ष १९३२ बाल-अपराधी मद्रास मे जेल भेजे गये थे तथा ५१४ प्रोबेशन[३] पर छोड़े गये थे।

१. सम्राट् ने यह सजा माफ कर दी।
२. Sir William Clarke Hall—"Queen's Reign for Children."
३. परिवीक्षण

बाल-वृद्ध में भेद

सभी देशो मे बाल-अपराधी को शेष अपराधी समाज से पृथक् करने में काफ़ी समय लगा, काफी संघर्ष भी रहा। इस सम्बन्ध में हम आगे चलकर विचार करेंगे। लाकासेन का यह मत माननेवाले बहुत कम मिलेंगे कि "संसार में अपराध नही है, केवल अपराधी है।"[१] और इस अपराधी को सही रास्ते पर लाने के लिए एक नही अनगिनत उपाय सोचे जा चुके है और सोचे जा रहे हैं। सन् १७७१ तथा सन् १७७५ में शायद पहली बार "बुरा काम करनेवाले या आलस मे जीवन बितानेवाले लोगों के निजी कल्याण के लिए तथा उन्हें राज्य के लिए उपयोगी बनाने के उपाय" पर घेंट (फ्रान्स) के प्रसिद्ध शासक (कोतवाल) बिलेन १४वे ने फ्लैंडर्स के राज्यों की महासभा मे अपना प्रसिद्ध वक्तव्य रखा था।[२] सन् १७७७ मे लंदन में जान हावर्ड[३] ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक[४] प्रकाशित कर ब्रिटिश जेलों की दुर्दशा का चित्रण किया था। इस पुस्तक ने बड़ी हलचल पैदा कर दी थी। इसी से पता चलता है कि पुराने जमाने मे कठोर कारावास की सजा मे बालक या वृद्ध क़ैदी से कितना निरर्थक काम लिया जाता था। जैसे केवल एक पहिया घुमाते रहना, एक गठरी को इधर से उठाकर उधर रखना, एक तख्ते पर चढना और उतरना, इत्यादि। मनुष्य को पशु से भी बुरा बना दिया गया था। सन् १७९० में फ्रान्स के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मिराबों ने "नजरबन्द करने वाले यातनागृहों को" समाप्त करने के लिए अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी। सन् १७७६ मे पेनसिलवानिया (संयुक्त राज्य अमेरिका) प्रदेश ने जेल-सुधार पर अपना प्रथम सुधारक नियम बनाया था।

ऊपर कही गयी बातों से स्पष्ट है कि इसके पहले बालक हो या वृद्ध किसी की अपराधी-वृत्ति की "चिकित्सा" की बात भी नही सोची गयी थी। हरएक को "भौतिक, शारीरिक तथा नैतिक रूप से अपने अपराध का प्रायश्चित्त करना पड़ता था। लम्बी लम्बी सज़ाएँ दी जातीं थी और लम्बी सजा का मतलब यह था कि उस

१. Lacassagne's Epigram—"There are no Crimes, there are only Criminals.

२. Vilain XIV of Ghent in the States Generai of Flanders.

३. **जिनके नाम पर विश्व-विख्यात संस्था** Howard League of Penal Reform है।

४. The State of Prisons—John Howard.

"भयानक" व्यक्ति से समाज जितना अधिक दिनों तक सुरक्षित रह सके, उतना ही उसका यानी समाज का कल्याण होगा। जेल के अधिकारियों का कर्त्तव्य था कि दो कारणों से क़ैदी को सजा देते रहे—(१) अपराधी दंड के भय से फिर अपराध न करे तथा (२) अपने गुनाह का वह प्रायश्चित्त भी करे और प्रतिशोध भी होता रहे।[१]

किन्तु, दंड का उद्देश्य धीरे धीरे बदलने लगा। सन् १८५४ मे प्रकाशित ग्लैड-स्टन कमेटी की रिपोर्ट मे लिखा है —"जेल में जो बन्दी है, वे मनुष्य है। यदि जेल का एक उद्देश्य बदी के या अपराधी के मन मे भय उत्पन्न करना है तो उसका उद्देश्य उसे समाज के लिए सुयोग्य नागरिक बनने की पुन शिक्षा-दीक्षा देना भी है। जेल का शासन ऐसा होना चाहिए कि बदी के भीतर बैठे श्रेष्ठ गुणो का विकास हो सके। उसके चित्त के सद्गुण जाग उठे। वह समाज के लिए उपयोगी तथा अधिक उपयुक्त नागरिक होकर घर लौटे।"

"जेलो के शासन का सिद्धान्त आज भी, मेरे विचार से, यही है और इस भावना के ऊपर अभी कोई बात समझ मे नही आयी है। फ्रास का सन् १८८५ का जेल-क़ानून तथा लगभग इसी समय संयुक्त राज्य अमेरिका में ब्राकवे का एलमिरा के सुधारगृह का अनुभव भी इसी सिद्धान्त को पुष्ट करता है। इसी समय से बंदी के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलने लगा। नयी खोजों ने नये नये सिद्धान्त सामने रखे। अपराधी के व्यक्तित्व की परख तथा परीक्षण, उसका वर्गीकरण, मानसिक खराबियो की जाँच तथा शिष्ट नागरिक के जीवन में उस अपराधी को पुनः स्थापित कर देने की चर्चा और उसका उपाय होना चाहिए।"[२]

जिन दिनो यह तय हो रहा था—और उसकी बडी चर्चा थी कि बन्दी के जीवन का कल्याण किस प्रकार हो तथा अपराधी के प्रति निर्दय व्यवहार के स्थान पर उदा-रता का व्यवहार होना चाहिए तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात बाल-वृद्ध, हर अपराधी के व्यक्तित्व को पुन. स्थापित करना है और उसके भीतर के छिपे हुए अथवा सोये हुए सद्गुणों को जाग्रत करना है—उन्ही दिनो यह चर्चा भी चल पड़ी कि बालिग और नाबालिग़, बच्चे और बड़ी उम्र के, नासमझ तथा समझदार के अपराध तथा कार्य, विवेक तथा बुद्धि, मन तथा प्रेरणा मे बड़ा भारी अंतर है और उस अन्तर को

१. Modern Methods of Penal Treatment. Pub. International Penal & Penitentiary Foundation–1956–Page xvii

२. Modern Methods of Penal Treatment, पृष्ठ xx.

कांश लड़के-लड़कियो का बचपन १७-१८ वर्ष की उम्र मे ही नही समाप्त हो जाता। हम इसे साबित कर देंगे कि जीवन का रचनाकाल भिन्न व्यक्तियों मे भिन्न-भिन्न होता है और बाल-अदालतों मे निश्चित उम्र में समाप्त नही हो जाता।"[१]

आदतन अपराधी

आदतन अपराधी या बार-बार अपराध करनेवाले बाल-वृद्ध की सम्मिलित व्याख्या करते हुए हीली के मत का साराश है—[२]

"बार बार अपराध करनेवाला समाज को बडी हानि पहुँचा रहा है। हमने देखा है कि बाल-अदालतो मे भी आदतन अपराधी बार बार आते है। ऐसे अपराधियों की अनेक श्रेणियाँ होती है पर एक बार अपराध करके फिर उसे न दुहराने वाला वह व्यक्ति है जिसने उस कार्य के परिणाम से ऐसी नसीहत प्राप्त कर ली है कि फिर उसे दुहराता नही है। पर अपराध को बार-बार दुहराने वाला वह व्यक्ति है जो धमकी, चेतावनी तथा दंड के बाद भी समाज-विरोधी कार्य करता रहता है। बड़े हो चाहे छोटे, ऐसे बहुत से अपराधी हैं जिनका अपराध अदालत के सामने "पहला" मालूम पड़ता है पर वे अपने परिवार मे रहते हुए भी बार बार वही अपराध करते हुए पुलिस तथा अदालत के पञ्जे में नही आये है। लेकिन इनके सम्बन्ध में बातें करते समय हम यह भी साफ कर दें कि हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि प्रथम अपराधी की तुलना में वह अधिक पापी या दुष्ट ही होगा। कानून के जिस दायरे में वह दंडनीय समझा गया है, उस दायरे के बाहर के भी बहुत से ऐसे काम, जिन पर कानून चुप है, अधिक नीच, पतित तथा दुष्ट हो सकते है और है। हमारे सामने १५-१६ वर्ष के ऐसे बहुत-से लड़के लडकियो की मिसालें मौजूद है जो सुधार का अनेक प्रयत्न करने पर भी समाज-विरोधी भावना तथा कार्य से दूर नही हो सके, दूर नही जा सके। अपराधी मनोवृत्ति के लिए स्थान, नगर या आबोहवा का वैसा प्रभाव नही पडता जैसा कि हम समझते हैं। यह समस्या मानव-स्वभाव की है। यह जटिलता मानवी मनोवृत्ति की है। इसका कोई सही हल निकाल सकना कठिन है। यह अवश्य है कि समाज, परिवार, माता-पिता तथा धार्मिक पुरोहितो की सहायता से यह बहुत कुछ हल हो सकती है।"[३]

१. वही, पृष्ठ, १७३
२. वही, पृष्ठ १३—१४
३. **बालकों के स्वभाव, बालक—बालिकाओं की मनोवृत्ति आदि के संबंध में अंग्रेजी**

बाल-अपराधी की व्याख्या

अप्रैल १९५५ में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट मे संयुक्तराष्ट्र-संघ ने "बाल अपराधी" के पूर्व की परिस्थिति यानी 'पूर्व-बाल-अपराधी' उसे माना है जो, बाल अपराधी के लिए निर्धारित अधिकतम उम्र के समानान्तर उम्र में कोई ऐसा काम नही करता या करती है जिससे उस देश के कानून की अवज्ञा हो, पर अनेक कारणो से जिसे समाज के प्रतिकूल तथा अपने आचरणो से समाज के विरुद्ध काम करनेवाला माना जा सकता है और सामाजिक नियमों की उसकी अवज्ञा इतनी अधिक हो गयी है कि यदि उसकी रोकथाम न की गयी तो अपराधी बन जायेगा।"[१]

स्पष्ट है कि पूर्व-बाल-अपराधी तथा बाल-अपराधी की उम्र—कानूनी उम्र—बराबर है।

बाल-अपराधी की व्याख्या करते हुए संयुक्त राष्ट्र-संघ कहता है—

"बाल अपराधी वह नवयुवक तथा नवयुवती है जिसने निश्चित उम्र के भीतर दंडविधान के अंतर्गत अपराध किया है और न्याय-अदालत या बाल-कल्याण समिति ऐसी विशेष संस्था के सामने पेश किया गया है ताकि उसकी ऐसी चिकित्सा का प्रबंध हो सके जिससे वह समाज द्वारा पुन स्थापित यानी स्वीकृत हो जाय बहुत से मामलों में क़ानून बाल अपराधी की अधिक से अधिक ही नही, कम से कम उम्र भी निश्चित कर देता है जिसके नीचे की उम्र का बच्चा अपने अपराधों के लिए ज़िम्मेदार नही होता।"[२]

अमेरिकन मेडिकल असोशियेसन के एक प्रकाशन में बाल अपराधी को "निजी व्यवहार मे या व्यक्तित्व में व्यक्तिक्रम का दोषी" माना है। स्कूल जानेवाले विद्यार्थियों के इस दोष के सम्बन्ध में लिखा है—

"स्कूल के बच्चों मे व्यवहार अथवा व्यक्तित्व मे व्यतिक्रम की व्याख्या इस प्रकार

में बड़ा साहित्य उपलब्ध है। पाठक खास तौर पर इस पुस्तक को पढ़ सकते हैं। Harry and Bonaro Overstreet—"When Children Come First"—Pub. National Congress of Parents & Teachers, Chicago, Illinois, 1949.

१. The Prevention of Juvenile Delinquency—U. N. O. April 1955—Page 2.

२. वही, पृष्ठ ३

की जा सकती है कि "उनका ऐसा कार्य या उनमे ऐसी प्रतिक्रिया जिससे बच्चे की शिक्षा के कार्य पर बुरा असर पड़ता हो, बाधा पड़ती हो या स्कूल के समुचित संचालन में अव्यवस्था पैदा होती हो।"[१]

बहुत सोच-समझकर की गयी यह व्याख्या बाल-अपराध तथा बाल अपराधी को समझना काफी आसान कर देती है। पर बाल अपराधी की जो व्याख्या हम नीचे दे रहे है, वह शायद बहुत ही उपयुक्त और विषय को स्पष्ट कर देनेवाली हो। संयुक्त राज्य अमेरिका के ओहियो प्रदेश की सरकार के बाल-कल्याण विभाग ने इस व्याख्या को प्रकाशित किया है और आज यह व्याख्या बहुत ही उपयुक्त तथा युक्ति-संगत समझी जाती है। उसमे लिखा है —[२]

बाल-अपराधी वह है जो —

१. प्रदेश के किसी अंग या उपांग या प्रदेश या देश (संयुक्त राज्य अमेरिका) के किसी नियम का उल्लंघन करता है।

२. अपने माता-पिता, गुरुजन, अध्यापक, अभिभावक के वाजिब नियंत्रण में नही रहता, गलत रास्ते पर चलता है, उनकी आज्ञा का पालन नही करता।

३. स्कूल या घर से अक्सर भाग जाया करता है।

४. जिसके काम ऐसे है जिनसे अपने तथा दूसरों के चरित्र तथा स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है तथा हानि होती है।

५. बिना माता-पिता या अभिभावक या वैध अधिकारी की अनुमति के, इस प्रदेश द्वारा निश्चित नियमों के विपरीत, इस प्रदेश में या बाहर किसी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

मै समझता हूँ कि बाल अपराधी की एक अच्छी, उपयुक्त व्याख्या हमारे सामने है। यदि ऊपर लिखा बालक या बालिका अपराधी है तो क्या उसको मार-पीटकर, दड देकर ठीक करना चाहिए या सुधार से भी काम चलेगा ?

१. Report of the 5th National Conference on Physicians and Schools, Oct., 12-13-14, 1955—Pub. Bureau of Health Education, American Medical Association, Page 56.

२. Manual of Child Welfare Laws, Children's Service, Division of Social Administration, Department of Public Welfare, Columbus, Ohio, 1939.

अध्याय १९

दोषी कौन है ?

मनोवैज्ञानिक बात

बाल-अपराधी की व्याख्या के उपरान्त अब यह देखना है कि दोषी कौन है? बच्चे अपराधी क्यों और कैसे बनते है? बच्चों के स्वभाव का गूढ अध्ययन कर उनकी शिक्षा-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेवाली इटालियन महिला मेरी मौटेस्सरी के नाम से आज कौन नही परिचित है? उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "मौंटेस्सरी प्रणाली" का तीसरा संस्करण सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ था। उसका एक नया अनूदित संस्करण मद्रास मे सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक मे उस प्रसिद्ध महिला का सन् १९०७ का एक भाषण है जो एक "बाल भवन" खोलने के समय किया गया था। ५३ वर्ष हो गये और ऐसा प्रतीत होता है कि वही बात आज के लिए भी लागू है। वे कहती हैं[१]—

"प्रायः हम समाचारपत्रों में ऐसे समाचार पढ़ते हैं कि एक बड़ा परिवार है, लड़के और लड़कियों की उम्र बढ़ती जा रही है और वे एक ही कमरे में सोते है। उस कमरे के एक कोने में एक दुश्चरित्र, बाहरी औरत भी रहती है जिसके यहाँ रात को व्यभिचारी लोग आते है। लड़के-लड़कियाँ यह सब दृश्य देखते हैं। उनके मन में भी दुर्भावना जाग उठती है और वे ऐसे अपराध तथा रक्तपात के दोषी बन जाते है जिससे हमारे सामने एक अति खेदजनक दृश्य का परदा उठ जाता है ...... समाचारपत्रों में प्रकाशित हिंसात्मक तथा अनैतिक अपराधों की कहानी सामने आती है जिससे ऐसी खेदजनक तथा भयावह परिस्थिति का पता चलता है और उन उदार लोगों के मन में जो इनके बीच में काम करना चाहते है, बड़ी हलचल पैदा कर देती

१. Maria Montessori, M. D., D. Litt., F. E. I. S.—"The Discovery of the Child"—Translated by Mary A. Johnstone, Pub. Kalakshetra, Adyar—Madras—1948—Page, 57, 58, 61 and 62.

है। कहने को जी चाहता है कि हर वेदना का अपना विशेष इलाज है. . .पर, उदारता है क्या चीज ? आन्तरिक खेद तथा करुणा को कार्यरूप मे परिणत करना ? पर ऐसी दानशीलता से विशेष लाभ नही भी होता। संगठन के अभाव तथा साधन की कमी से इससे केवल थोड़े से लोग लाभ उठा सकते है. . . ."

इस विषय की बहुत कुछ समीक्षा करने के बाद अन्त मे वे लिखती है—[1]

"अपने जीवन के आरम्भ के दो वर्षों मे अपनी ग्राह्य बुद्धि से शिशु व्यक्ति के चरित्र-निर्माण की तैयारी कर रहा है। वह अनजाने ही ऐसा कर रहा है। तीन वर्ष की उम्र होते ही उसमे चल शक्ति आ जाती है। वह अपनी चेतन बुद्धि के लिए निश्चित अनुभव संचय करने लगता है। उसकी यह चल शक्ति उसके हाथो मे आ जाती है, जिसका वह हर काम मे उपयोग करना चाहता है। यह सभी जानते है कि बच्चा हर एक चीज़ को छूना चाहता है और बुद्धि तथा हाथ के सम्मिलित प्रयत्न से वह खेल-कूद मे लग जाता है. . . .दो वर्ष तक उससे कुछ अधिक के अपने शैशवकाल मे अपनी अनजानी ग्राह्य शक्ति से वह अद्भुत अनुभव प्राप्त कर लेता है। उसमें इतनी शक्ति नही है कि बड़ों की तरह वाणी से बोलकर कुछ सीख सके . . . .पर यह निश्चित है कि अपनी ग्राह्य बुद्धि से वह इन दिनो जो कुछ सीखता है, वह याद-दाश्त मे न रहते हुए भी उसकी सजीव इन्द्रियो में समा जाता है और व्यक्ति के चरित्र तथा मस्तिष्क के निर्माण मे आधार बन जाता है . . . .यही उम्र है जब मानव बिना थके काम करता रहता है और जीवनदाता भोजन की तरह ज्ञानकोष सचित करता रहता है, उन मानसिक उपायो से, जिनसे मानव की बुद्धिमत्ता के गुप्त द्वार का ताला खुलता है, काम न लेने से बच्चा अनायास साधारण तथा उचित मार्ग से दूर चला जाता है. . आज मनोवैज्ञानिक लोग यह स्वीकार करने लगे हैं कि उद्दंड या अपराधी मनोवृत्ति वाले बच्चे "मानसिक भूख से पीड़ित" है, उनका विश्वास रुक गया है और वे मानव-विकास के सीधे मार्ग से विचलित हो गये है. . . .बच्चों की समस्या मनोवैज्ञानिक है।"

नशाखोरी

बचपन से जो संस्कार बनता है तथा परिवार और वातावरण का जो असर होता है, उसे अस्वीकार नही किया जा सकता। हीली लिखते है कि ठीक से तो नही कहा

१. वही, पृष्ठ ५००, ५०१ तथा ५०२

जा सकता, पर कुछ ऐसे भी प्रमाण मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि यदि शराब या किसी और नशे का सेवन कर पिता के संभोग से बच्चा गर्भ में आता है तो उसमें पैदायशी अवगुण आ जाते हैं। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। मेरे विचार से पश्चिमी देशो में बाल-अपराधो की वृद्धि मे माता-पिता का नशा-सेवन भी एक कारण है। हीली की खोज के अनुसार बाल अपराधियो मे २७ प्रतिशत नशेबाज माता-पिता की संतान थे, यद्यपि यह औसत कुछ ज्यादा नही मालूम होता। पर हीली ने १००० बाल-अपराधियों की जाँच करके यह भी पता लगाया कि ५६ प्रतिशत अपराधियों के परिवार मे किसी न किसी प्रकार का अपराध भी वर्तमान था, जिसमे नशाखोरी का अपराध भी था। उनका यह भी कथन है कि यदि गर्भवती स्त्री किसी मादक द्रव्य का सेवन करती है तो गर्भ के शिशु पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है। हीली लिखते है—[1]

"नशेबाजी से, बहुत साधारण नशा-सेवन नही, परिवार में नाना प्रकार के उपद्रव, दुर्भाव तथा झगड़े खड़े होते रहते है। प्राय. इनका परिणाम यह होता है कि बच्चे मे अपराधी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। यह कहना तो कठिन है कि शराब के कारण किस सीमा तक अपराधी भावना पनपी पर यह सभी जानते है कि शराब से ही झगड़ालू प्रवृत्ति पैदा होती है।"

अपने कथन की पुष्टि मे उन्होने एक परिवार का जिक्र किया है जिसमे माँ-बाप दोनो नशेबाज थे। उनको १२ बच्चे पैदा हुए जिनमे से सात मर गये, एक लड़का अच्छा निकला, एक लड़की बदचलन हो गयी, तीन लड़के बदमाश, अवारा, जेबकट तथा गिरहकट निकल गये।

पश्चिमी देशों में बच्चो को जरा बड़ा होने पर, उनके नवयुवक-नवयुवती होने पर, माता-पिता उन्हे शराब देने लगते हैं। इसका परिणाम उनके चरित्र पर बहुत बुरा होता है।[2] जिन देशो में बाल अपराधी बहुत बढ़ गये है, उनके बालक-बालिकाओं के जीवन पर प्रकाश डालने से पता चलेगा कि नशाखोरी का बहुत बड़ा ऐब उनमें आ गया है। अमेरिकन मनोविश्लेषक डॉ० फ्रेडरिक वर्थम[3] ने बालको मे मादक

१. Healy—Individual Delinquency, पृष्ठ २६४

२. वही, पृष्ठ २६७

३. Dr. Frederick Werthan संयुक्त राज्य अमेरिका मे कालेज के ही नहीं, स्कल के छात्रों मे भी नशाखोरी बढने पर कई साधिकार पुस्तकें प्रकाशित हुई है।

द्रव्य के उपयोग का बड़ा भयानक चित्र खीचा है। उनका कथन है कि सिनेमा या डाकाजनी आदि की बाज़ार में बिकनेवाली पत्रिकाओं में नशाखोरी की तसवीरें, उनके मुख में बेढंगे तरीके से लगे हुए सिगार या अफीम के पाइप आदि को देखकर बच्चों को भी शौक पैदा होता है कि उनकी नकल करें और वे पहले तो महज़ शौक़ में शुरू करते है, फिर उनको लुक-छिप कर, चोरी से अफ़ीम, चरस, गाँजा आदि प्राप्त करने में बड़ी उत्तेजना प्रतीत होती है और वे इनको पीकर हर प्रकार के उत्पात करते है।

संयुक्त राज्य अमेरिका मे मादक द्रव्य का उपयोग तथा उसकी समस्या काफ़ी जटिल है। वहाँ की आबोहवा भी ऐसी है कि कुछ भागों में चुपचाप भारतीय गाँजा तथा अफ़ीम की खेती होती है। "सयुक्त राज्य अमेरिका में मादक द्रव्यों के नाजायज यातायात तथा बिक्री की समस्या ग्रेट ब्रिटेन से कही अधिक कठिन है।"[१] माता-पिता जो व्यवसाय करते है, उसका प्रभाव बच्चो पर पड़ता ही है और वे भी उन घातक द्रव्यों के शिकार बन जाते है।

प्रत्येक अपराधी पर, चाहे बालक हो या वृद्ध, वातावरण तथा समाज का प्रभाव तो पड़ता ही है। जुर्म करनेवाले के सिर में कोई खास सींग नही होते। गोरिग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस विषय को स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं—

"एक ही उम्र के क़ानून तोड़नेवाले अपराधी तथा क़ानून के दायरे में रहने वाले नागरिक के मन तथा शरीर की रचना में कोई अन्तर नहीं होता। एक ही वर्ग, एक ही श्रेणी, एक ही समान सामाजिक पद तथा बुद्धि दोनों की हो सकती है। जीव-विज्ञान से किसी विशिष्ट अपराधी वर्ग को सिद्ध नहीं किया जा सकता।"[२]

इसलिए यदि हमारे बाल-बच्चे अपराध करते हैं तो हमारा दोष होगा, समाज या परिवार का दोष होगा। बहुत से अपराध-शास्त्री परिवार को ही दोषी ठहराते है। बहुत अंशों में हम भी उनसे सहमत हैं।

१. International Criminal Police Review, December, 1949—Paris. पृष्ठ २३

२. Charles Goring, "The English Convict & Statistical study", Pub. London, Wyman & sons, 1913—Page 440.

परिवार का दोष

हीली ने इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।[1] उनका कथन है कि बच्चों के प्रति घर मे जरूरत से ज्यादा सख्ती होने से भी वे अपराधी हो जाते है। बच्चे घर में आपस में लड़ते रहते है। माता-पिता चिढ़कर उन्हें पीटकर घर से बाहर कर देते है। इसकी बड़ी बुरी प्रतिक्रिया होती है। एक पिता ने अपने बच्चे को मारकर घर से बाहर ढकेल दिया। उसने सड़क पर एक लड़के को छुरा भोक दिया। बच्चों को अपनी बचपन की उद्दंडता को खर्च करने का मौका मिलना चाहिए। माता-पिता की सख्ती से यह प्रवृत्ति कुचल कर दूसरे ऐबों मे बदल जाती है। इसके विपरीत, यदि अभिभावक बच्चो पर कोई नियंत्रण या रोकथाम या प्रभाव नहीं रखते तो वे बिगड़ जाते है। प्राय देखा गया है कि अंधे, गूगे, बहरे माता-पिता की सन्तान ग़लत रास्ते पर चली जाती है। उनके दुर्बल संरक्षक उनका संरक्षण ही नही कर सकते। जिन बच्चों के माता-पिता दिन भर बाहर काम पर चले जाते हैं, अपनी जीविका की फ़िराक में रहते हैं, वे भी पथभ्रष्ट हो जाते है। कम से कम इसकी सम्भावना रहती है। कम्यूनिस्ट देश पोलैंड के एक समाचारपत्र "नोवा कल्चुरा"[2] ने सितम्बर ३, १९५६ में प्रकाशित किया था कि पोलैड में कम से कम २० लाख माताएँ कारखानों में काम करती है। इसका परिणाम यह हुआ कि बाल-अपराधी बहुत बढ गये है। पश्चिमी देशों के लिए यह समस्या निश्चयतः बड़ी गम्भीर है। औद्योगिक सभ्यता का आवाहन करना तो उचित है पर औद्योगिक सभ्यता के कतिपय अभिशापों के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा।

माता-पिता के पारस्परिक झगड़े का भी बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और उससे भी बुरा प्रभाव तब पड़ता है जब वे एक दूसरे से तलाक देकर या यों ही अलग हो जाते है।[3] हो सकता है कि माँ या बाप, दो में से किसी एक का चरित्र बहुत खराब हो और यदि वे अलग हो जायँ तो बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ना बंद हो जाय। पर पारिवारिक जीवन की इस उथल-पुथल का परिणाम बच्चों पर हर हालत में बुरा होता ही है। १००० अपराधी बालकों की समीक्षा करने के बाद हीली इसी नतीजे

१. हीली की पुस्तक, पृष्ठ २८८–२९१
२. Nowa Kultura, Warsaw, Sept., 1956.
३. हीली, पृष्ठ २९०

पर पहुँचे।[१] कभी कभी ही नही, प्राय. ही ऐसा होता है, विशेष कर पश्चिमी देशों में, कि माता अपने छोटे बच्चों को लेकर दूसरे पति के पास चली जाती है या पिता इन बच्चों के लिए दूसरी माता बना लेता है। इसलिए बच्चे के जीवन मे यकायक एक नया वातावरण, अजनबी चरित्र, विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अधिकतर बच्चे अपने को नयी परिस्थिति मे सँभाल नही पाते। बहुत से सौतेले माता-पिता अपने सौतेले बच्चों से प्रेम भी नही करते। तलाक़ दे या लेकर आये हुए नव-पति-पत्नी बड़े कामुक तथा विलासी भी होते है। इनके हास-विलास का बच्चों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। जिस परिवार के लोगों का यह खयाल है कि बच्चे उनकी हर एक चीज़ को बड़ी बारीक़ी से नही देखते, जिनका यह अनुमान है कि बड़ो के जीवन का छोटो पर कोई प्रभाव नही पड़ता, वे बड़ी गहरी भूल कर रहे है। याद रखना चाहिए कि आज हम जो भी कुछ है उसका आधा श्रेय या अपयश हमारे परिवार को हैं।

जिस परिवार के लोग बराबर एक स्थान छोड़कर दूसरा स्थान, एक नगर छोड़कर दूसरा नगर, एक घर छोड़कर दूसरा घर बदलते रहते है, उसका भी बच्चो पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। उनके जीवन मे अस्थिरता आ जाती है। "हमारा घर" की भावना निकल जाती है। इससे उस बालक या बालिका मे किसी चीज़ के प्रति सहज स्नेह नही रह जाता। क्रूरता तथा उदासीनता की भावना आ जाती है। कुछ बालक-बालिका इसलिए अपराधी हो जाते है कि उनका जन्म साधारण, सीधे-सादे परिवार में होता है पर उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ बहुत होती है। वे "दूसरो" के समान अधिक शिक्षित, अधिक मर्यादाशील तथा पद-वृद्धि चाहते है। यदि उनकी महत्त्वाकांक्षा की पुष्टि नही हुई, उसे किसी प्रकार का प्रोत्साहन नही मिला तो निराशा की प्रतिक्रिया में भी वे कुमार्ग पर चल देते हैं। माता-पिता की अपने बच्चों के प्रति उदासीनता, अपने ही मनोरंजन मे व्यस्त रहकर बच्चों को नौकर-चाकर के भरोसे छोड़ देना, बच्चो की साधारण जिज्ञासा की भी पूर्ति न करना, उनके प्रश्नो का उत्तर तक न देना, प्यार के स्थान पर झिड़क देना, इन सब बातो का बच्चों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक लापरवाही से अपराधी बननेवाले बच्चों की विशद छानबीन हीली ने की है। उन्हें १००० अपराधी बच्चों में परिवार तथा वासना के कारणों से निम्नलिखित अपराधी मिले। ताज़ी छानबीन करने से यह संख्या और भी अधिक प्रमाणित होगी।

१. वही, पृष्ठ १३४

दोषपूर्ण घरेलू वातावरण के कारण

कारण	१८ वर्ष से ऊपर के लड़के-लड़कियाँ	१८ वर्ष से नीचे के लड़के-लड़कियाँ
घरेलू झगड़ा	२६	७८
परिवार के लोगों का शराबी, दुराचारी आदि होना	६२	९५
ग़रीबी	४	५९
अभिभावकों के अज्ञान के कारण घरेलू नियंत्रण का अभाव	२	१०
बीमारी	२	२६
पिता का अधिकांशतः बाहर रहना	...	६
माता बाहर काम करती है	२१	३२
माता-पिता की अत्यधिक लापरवाही	७	३१
माता-पिता का अलग हो जाना	२०	३५
घर का अभाव, सड़क की जिन्दगी	...	१
घर का अभाव, घूमते रहनेवाली जिन्दगी	...	४
अस्पताल या बोर्डिंग स्कूल में बच्चा बदल गया	२	१७
घर में व्यभिचारी वातावरण	५	२३
	१६२	४१७

मानसिक उलझनों से भी बड़े अपराधी पैदा होते है। आखिर मन ही तो समूचे उत्पात का कारण होता है। ऐसे अपराधी बच्चों का १००० अपराधियों में औसत इस प्रकार निकला —

मानसिक उलझन के कारण

कारण	१८ वर्ष से ऊपर	१८ वर्ष से नीचे
कामुक भावना की उलझन	४३	१२
"माता-पिता कौन है" की उलझन	७	२
अज्ञात कारण से	४	...

कारण	१८ वर्ष से ऊपर	१८ वर्ष के नीचे
घरेलू परेशानी से	...	२
समाज के विरुद्ध आंतरिक घृणा	४	३
अंध-विश्वास के कारण	...	१
अपने शारीरिक दोष से ग्लानि	...	१
	५८	२१

कामवासना के कारण

कच्ची उम्र मे कामवासना की जानकारी या उसका अनुभव	३४	७३
अत्यधिक हस्तक्रिया	१२	७५
अप्राकृतिक संभोग इत्यादि	....	११
	४६	१५९

इन आँकड़ों से कई चीजे बहुत स्पष्ट हो जाती है। जिन लोगों का यह खयाल है कि गरीबी के कारण अपराध तथा अपराधी बढ़ते है, उनको बड़े आश्चर्य की बात मालूम होगी कि गृहविहीनों में भी, सड़क पर सोनेवालों मे भी अपराध कितना कम है। यह भी मार्के की बात है कि पिता की अनुपस्थिति से बच्चे का जीवन नष्ट होता है। तीसरी मार्के की बात है कि बच्चों की जिस मानसिक उलझन की बड़ों को जानकारी भी नहीं होती, वह उनका कितना पतन करा देती है। नयी नयी खोजों से तो यहाँ तक साबित हो गया है कि शारीरिक दोष से भी, अपने को औरों के सामने छोटा समझने से बड़े अवगुण उत्पन्न होते है। नाक, कान, दाँत की खराबी से, आँख दुखने से, कान बहने से, नेत्रों में रोहू इत्यादि से बच्चों में चिढ़ पैदा होती है, चिड़चिड़ापन पैदा होता है। फलतः वह अपनी चिढ़ दूसरे ढंग से निकालते हैं। आँख कान के दुःख से बराबर पीड़ित बच्चे कामवासना के अपराध में इसी लिए फँसते हैं कि उनका दुःख थोड़ी देर तक भूला रहता है। शारीरिक दोष किस सीमा तक अपराधों के लिए ज़िम्मेदार है, इसकी निश्चित छानबीन अभी तक नही हो पायी है। हीली ने जो छानबीन की थी उसके अनुसार नाक और गले की खराबी वाले ४१ बाल-अपराधी, नेत्र के दोषी ७२, सड़े दाँतवाले १९, दोषी कानवाले १३, समय से पूर्व यौवनवाले ३३, ६ दिल

की बीमारी वाले—यानी १००० में इन्ही चार-पाँच बीमारियों के १८४ मरीज़ मिले। बच्चों की किसी भी बीमारी को उपेक्षा से नही देखना चाहिए।

बुरे साथी

हम लोग कभी यह जानने-समझने की चेष्टा भी नही करते कि हमारे बच्चे कैसे लोगो के साथ खेलते-कूदते है। उनकी साथ-सोहबत क्या है। याद रखना चाहिए कि अपराधी बनाने का सबसे बड़ा कारण बुरा साथ होता है। और भी कारण है, पर बुरे साथी, दुष्ट साथी, पतित साथी से बढकर बाल-वृद्ध को गढे मे गिरानेवाला और कोई कारण नही होता। इसी लिए आम कहावत हैं—

भले संग रहना, खाना बीड़ा पान,
बुरे सग रहना, कटाना दोनों कान।"

बुरे साथियों में, घरेलू जीवन में माता-पिता भी होते है, रिश्तेदार भी होते हैं, अपना सगा भाई या बहिन भी होती है। पाठशाला के साथी का नम्बर बाद में आता है। रिश्तेदारों पर कोई शुबहा भी नही करता। समवयस्क या उम्र में काफी अन्तर वाले रिश्तेदार जितना घर के बच्चों को बिगाड़ते है उतना बाहरी लोग नहीं। इस विषय में काफी लम्बे विवेचन की आवश्यकता है। हम बुरे साथ पर आगे चलकर काफी प्रकाश डालेगे। यहाँ पर इतना ही लिख देना उचित होगा कि कुटेव या कामवासना के अपराध प्राय. बुरे साथ से शुरू होते है।

अभिभावकों को यह भी ध्यान नही रहता कि बच्चों को कौन सा सिनेमा यानी खेल तथा थियेटर दिखाना चाहिए। सिनेमा का तथा अपराध का सम्बन्ध हम ऊपर बतला चुके है। थियेटर तथा अपराध का प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध तो नही मालूम होता पर कामुक वासना को प्रोत्साहन मिलता है। थियेटर के पात्र-पात्राओ का स्वतंत्र तथा वासनामय जीवन भी लड़के-लड़कियों को आकृष्ट करता है और वे प्रायः उनका अनुकरण करना चाहते है। पर थियेटर का प्रभाव वासनामय जीवन पर ही पड़ता है। अन्य किसी प्रकार के अपराध पर भी पडता होगा, पर उसका प्रमाण नही मिलता है। अप्रत्यक्ष प्रभाव ज़रूर होता है। थियेटर के पात्र-पात्राओं की भड़कीली पोशाक, दुकानो मे सजी भड़कीली पोशाक, सड़क पर चलनेवाले स्त्री-पुरुषों की रंग बिरंगी बढ़िया पोशाको को देखकर लालचवश काफ़ी चोरियाँ होती है। चोरी करने की आदत पड़ जाती है। सार्वजनिक नाचघर, होटल, उनका विलासितामय जीवन न केवल बाल-अपराधी बल्कि चरित्र-भ्रष्ट युवक-युवती तैयार कर रहे है।

पाठशालाओं में बुरे छात्र-छात्राओं की संगत के अलावा ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे अपराधी बन जाते है। अध्यापकवर्ग किसी छात्र को बुद्धू या बोदा समझकर पीछे बिठाते है। उसके मन में भयंकर प्रतिक्रिया होती है। अध्यापकों को पता भी नही चलता। कोई छात्र अपने नेत्रों की या कान-नाक की कमजोरी छिपाने के लिए पीछे बैठ जाता है। उसकी प्रतिभा तथा बुद्धि औरों की तुलना मे अधिक होते हुए भी विकसित नही हो पाती। बहुत से छात्र पढ़ने से ज्यादा मशीन के काम के शौकीन है। उनको मार-पीटकर पढाने का प्रयत्न किया जाता है। ये सब ऐसी बाते है जिन पर ध्यान देने की जरूरत है, जिनके विषय मे यह आवश्यकता है कि समाज, शिक्षक तथा अभिभावक सभी अपनी जिम्मेदारी को समझें। उनकी लापरवाही का फल हमारे बच्चे भोगते है।

आज समाज मे बड़े-बूढ़े प्रत्येक को पथ-भ्रष्ट करने के लिए साधन बिखरे पड़े हैं। गंदे उपन्यास, कहानी की गन्दी किताबे, गन्दा साहित्य, रद्दी-भद्दी तस्वीरें, वासना, उत्तेजना तथा चोरी-डकैती से भरे समाचारपत्र, मोटे अक्षरों मे छपनेवाले अपराध के संवाद[1], ये सभी बुद्धि तथा चरित्र को भ्रष्ट करनेवाले होते है। चित्रो में जो उपन्यास प्रकाशित होते है उनमें बदमाशो की धूर्त्तता बड़े आकर्षक ढंग से दी जाती हैं। माना कि अंत मे बदमाश की हार होती है पर वह हारता इसलिए नही है कि उसका काम बुरा है, बल्कि इसलिए कि उसमे चतुराई की कमी आ गयी—ये सब अपराध के पैदा करनेवाले है। समाज में अनगिनत चीजे सम्बद्ध तथा असम्बद्ध रूप से फैली हुई है। इनमें से कौन सी चीज मनुष्य के लिए हितकर है, कौन सी कितना प्रभाव रखती है, यह कहना बड़ा कठिन है। पर समाजशास्त्र के विद्यार्थी को इसी कठिनाई के भीतर से अपना मार्ग निकालना है। मायर फ़ोर्टेज ने सही लिखा है कि "एक निश्चित समाज में सामाजिक सम्बन्धों की भिन्न श्रेणियों की एक निश्चित प्रणाली में प्रत्येक वस्तु कितनी एक दूसरे से सम्बन्धित है तथा एक दूसरे पर निर्भर करती है, इसी एक तथ्य की ओर हर एक सामाजिक ढॉचा हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।[2]" इन परस्पर-

१. Francis Fenton, "The Influence of Newspaper Presentation upon the Growth of Crime".—Thesis University of Chicago Press, 1911, Page 96.

२. Meyer Fortes—"Americal Anthropologist", Vol. 55, 1953 —Page, 22.

संबन्धित समस्याओं के बीच से ही हमको ऐसा सामाजिक हल निकालना है जिससे बाल-समाज तथा बाल-अपराध की समस्या हल हो सक।

उस समाज के विषय में क्या कहेंगे जो आज बच्चों के प्रति बिल्कुल उदासीन हो गया है। जी० के० होडेनफील्ड ने लिखा है कि "यदि अमेरिकन लोग जितनी चिन्ता तथा सावधानी अपनी मोटरकार के विषय में बरतते है, उसकी आधी भी अपने बच्चो के प्रति बरतते तो आज संयुक्त राज्य अमेरिका मे बाल-अपराध की समस्या न होती। देश की समूची पुलिस-शक्ति की एक तिहाई केवल मोटरगाड़ियो की चोरी, मोटर से होनेवाली दुर्घटना आदि के काम में लगी हुई है। पर बच्चों की देखरेख या उनकी रक्षा मे कितनी पुलिस लगी हुई है ? बहुत होगा, हर पुलिसथाना पीछे एक कांस्टेबुल होगा। आज बाल-अपराधी के लिए नियुक्त अफ़सर अपने दफ्तर में बैठा हुआ इस प्रतीक्षा में रहता है कि बाल-अपराधी उसके पास पहुँचा दिया जाय। पर, कितने ऐसे व्यक्ति है जो परिवार मे तथा घरमें जाकर बाल-अपराधी बनने के पूर्व ही बालक-बालिका की रक्षा करते है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका में ८५ प्रतिशत बाल-अपराधी व्यक्तिगत अपराधी नही है। वे किसी न किसी गरोह के, अपराधियों के गरोह के सदस्य है। ये अपराधी अकेले घूमनेवाले भेडिये नही है। इनका एक समुदाय है। इनका एक गुट है।"

इस गुट को तोड़ने के लिए हम क्या कर रहे हैं? ऐसे अपराधी गुट एक ही देश मे नही, चारो तरफ़ फैले हुए है। इस गुट से बच्चो को निकालने का क्या प्रयत्न हो रहा है। ७ वर्ष से १८ वर्ष के बच्चो की उम्र बडी कठिन, बड़ी समस्यामय तथा रहस्य-मय उम्र होती है। इस उम्र मे बच्चों को सँभालने में, उनकी बातो को तथा उनकी आवश्यकताओ को समझकर उनकी पूर्ति करने मे माता-पिता तथा अभिभावकों को बड़ी कठिनाई होती है। बहुत से इस कठिनाई को समझते है और बहुत से नही भी समझते। यह उम्र बच्चो के साधारण विकास में असाधारण परिस्थिति की है। यह वह उम्र है जिसमे न वह बच्चा है, न बालिग। दो में से किसी श्रेणी का नही है। उसके साथ किस प्रकार का आचरण किया जाय, यह समझ में नहीं आता। माता पिता विशेषज्ञो से सलाह माँगते है, वह भी नहीं मिलती। तब कैसे उनकी समुचित रक्षा या सेवा की जाय?[१]

१. Marie Battle—"Rebels With a Cause"—Article in the Hindustan Times, Ist June, 1958.

हैंस हाफ का मत

आस्ट्रिया के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रो० हैंस हॉफ[1] ने सन् १९५८ में संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा करने के बाद समाचारपत्रो मे एक लेख लिखा था। उनका कहना है कि यूरोप के बाल-अपराधियों की तुलना मे वहाँ के बाल-अपराधी कही अधिक गये गुजरे हैं। अपने एक व्याख्यान में उन्होने कहा था —

"यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बाल-अपराधियो मे मौलिक भेद है। वहाँ के अपराधी नवयुवक तथा नवयुवतियाँ कही अधिक उग्र तथा उद्दंड होते है। उदाहरण के लिए यदि आस्ट्रिया मे किसी व्यक्ति के सामने कोई नवयुवक पिस्तौल तानकर खड़ा हो जाय तो उससे बातचीत कर उसे राज़ी किया जा सकता है। पर अमेरिका में इसकी कोई सम्भावना नही है। वहाँ तो बात करना चाहे तो वह गोली दाग देगा। वहाँ पर बाल-अपराध का एक बड़ा कारण यह भी है कि जो पितृ-विहीन शरणार्थी वहाँ गये हैं, वे बच्चे जल्दी पतित हो जाते है। जिन बच्चों के पिता अंग्रेजी की कम जानकारी के कारण नौकरी पाने मे असमर्थ होते हैं, वे घर मे ही सम्मान खो बैठते है। बच्चे अपने पिता से ही नफ़रत करने लगते है। माता के प्रति तो उनका आदरभाव रहता है पर पिता का बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा अमेरिकन सिनेमा फिल्मों की डकैती की कहानी का भी बडा बुरा असर पडता है। उस देश में सबसे बुरी बात यह है कि वहाँ की अदालतो मे यह नियम नहीं है कि कुछ समय बाद प्रथम अपराधी की सजा का रेकार्ड रद्द कर दिया जाय। यूरोप मे बहुत से देशो मे ऐसा होता है। परिणाम यह होता है कि जीवन मे एक बार अपराध करनेवाला सदा के लिए कलंकित हो जाता है...पर उस देश मे बाल-अपराधियो को सन्मार्ग पर लाने का भगीरथ प्रयत्न हो रहा है और ऐसी अनेक संस्थाएँ बड़ा काम कर रही है। इन संस्थाओ का यही मत्र है कि समाज को इन बच्चो से बदला न लेकर इनका सुधार करना चाहिए।"

सहानुभूति बनाम कठोरता

लार्ड सैमुयेल[2] ने विशेषज्ञों से प्रश्न किया है कि उनको यह बतलाना चाहिए कि बाल-अपराधियों के लिए बाल-अदालतों से वाक़ई कोई लाभ भी हुआ है या नहीं।

१. Prof. Hans Hoff, Chief of Vienna's Psychiatric Neurologic University Clinic.

२. Sunday Times, २ मार्च १९५८, लन्दन

क्या उनके प्रयत्न से पारिवारिक संयम में कोई वृद्धि हुई है? क्या यह अब नहीं साबित हो गया है कि इनके साथ कठोरता के स्थान पर सहानुभूति दिखलाने से अधिक लाभ होगा? क्या यह सम्भव नही है कि डाकुओ या कामुक वासना के अपराधियो से समाज की अधिक रक्षा का प्रयत्न किया जा सके? पर मेरे विचार से इन विशेषज्ञो पर निर्भर करना बड़ा ख़तरनाक होगा। मै सिर्फ दो खास बाते कहना चाहता हूँ।

"पिछले पचास वर्षो मे विज्ञान ने मानव-स्वभाव के अध्ययन में बड़ी प्रगति की है। फ्रायड के विज्ञान ने मन के पीछे अज्ञात तथा अचेतन अवस्था मे पड़ी हुई दुष्प्रवृत्ति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस जानकारी से अपराधशास्त्र को भी नयी बातें मालूम होने का अवसर मिला है। पैतृक अर्जित वासनाएँ भी सामने आ गयी है। 'स्वतत्र इच्छा' से होनेवाले काम की बात अब पीछे पड़ गयी है। अपराधी के साथ दया तथा सहानुभूति की माँग करनेवाले दड-सुधारक अब व्यक्ति के कार्यो की "निजी जिम्मेदारी" के सिद्धान्त को ग़लत साबित कर रहे है। अब यह नही कहा जाता कि मनुष्य अपनी स्वतत्र इच्छा से काम करता है, यह गलत बात है। उसके साथ उसका पैतृक संस्कार तथा वातावरण से उत्पन्न अनुभव तथा शिक्षा भी है जो उसके चरित्र तथा आदतो को बनाती है तथा उसके मस्तिष्क के अन्तरतम में अपनी छाप छोड़ देती है। मनुष्य के कार्य इन्ही सब सम्मिलित कारणों से होते है। पर मै ऐसा नही मानता। अन्तर भावना को इतना महत्त्व दे दिया जाय कि चेतन भावना का कोई स्थान न हो; ऐसा नही है। हम देखते है कि रोजमर्रा की ज़िन्दगी मे मन के भीतर अंतर्द्वन्द्व चलता रहता है। हम कुछ काम करना चाहते है, एक तरफ मन होता है कि उसे करे, दूसरी तरफ़ कोई ताकत, कोई प्रेरणा उसे रोका भी करती है—रोकती रहती है। इसी प्रकार पैतृक सस्कारो की भी बात है। यदि हमने उन संस्कारो से वासना को प्राप्त किया है तो वासना पर नियत्रण करने की शक्ति तथा प्रेरणा भी प्राप्त की है। साधारणत: व्यक्ति अपने कार्यो के लिए स्वत: अपने को जिम्मेदार समझता है। वह अपने से, अपनी पूरी जिम्मेदारी के साथ काम करता है। समाज इसी लिए उसको जिम्मेदार समझकर दंड देता है। यदि मनुष्य अपने कार्यो के लिए जिम्मेदार न हो तो समाज चल भी नही सकता।

"मेरी दूसरी बात है अपने कानून बनानेवालों, न्याय करने वालों तथा क़ानून का पालन करानेवालो से यह पूछना कि वे अपराधी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करे, जो वास्तव मे समाज के हित का हो तथा जिससे समाज की रक्षा हो। पर सबसे बड़ा काम यह है कि किस प्रकार अपराध होने से ही रोका जाय। हमको केवल मर्ज़ की दवा ही नही करनी है, उसका कारण भी जानना है। साफ़ बात तो यह है कि

अपराध तथा अपराधी बराबर बढ़ते जा रहे है। आखिर इनकी रोकथाम का भी कोई उपाय है अथवा नही।

"यह किसी से छिपा नही है कि आजकल योनि सम्बन्ध, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध बहुत ढीला हो गया है। बडे हल्के मन से विवाह हो जाता है, बड़ी आसानी से तलाक हो जाता है। परिवार भग्न हो जाते है। घरेलू जीवन विषाक्त हो जाता है। बच्चो का जीवन संकटमय हो जाता है। उनका जीवन असंतुलित तथा असंयमित हो जाता है। ससार में चारो ओर औद्योगिक तथा अनेक प्रकार के संघर्ष छिड़े हुए है। जिस शताब्दी मे मनुष्य ने बौद्धिक जगत् मे अद्भुत विकास तथा गति प्राप्त की है, उसी शताब्दी मे दो भयकर युद्ध हो चुके तथा मानव-संहार की भीषण वेदना भी उत्पन्न हो गयी है। तीसरे तथा अन्य सब युद्धों से भयंकर युद्ध की भी संभावना हमारे सामने उठती रहती है। हम देख रहे है कि आज की दुनिया ही बीमार है, बेचैन है। वह अपनी बीमारी को समझ रही है पर बौद्धिक तथा आध्यात्मिक रूप से वह इतने घपले मे है कि उसे अपनी बीमारी का कारण ही नही समझ मे आ रहा है। यह जरूर प्रत्यक्ष है कि चारो तरफ नैतिक स्तर बहुत नीचे गिर गया है . हम बाल-सुधार के, अपराधी के सुधार के, नयें दंडविधान के, सब कुछ उपाय करते रहे पर यह सोचने की बात है कि ऐसे दूषित वातावरण मे स्वस्थ तथा चरित्रवान् बच्चे कैसे पनप सकते हैं? वे कैसे नैतिक दृष्टि से स्वस्थ तथा अच्छे हो सकते है? समाज की आबोहवा सार्वजनिक विचारधारा पर निर्भर करती है और सार्वजनिक विचारधारा के बनानेवाले हम लोग है।"

लार्ड सैमुयेल ने इतनी पते की बात कही है कि आज की बाल-अपराध की समस्या का इससे अच्छा और कोई विश्लेषण नही हो सकता। आज समाज ही बीमार है, संसार मात्र का चरित्र गिर गया है, तो फिर हम अपराधी की समस्या में अधिकतम उलझते क्यो न जायें?

धन का दुष्परिणाम

. लार्ड सैमुयेल ने यह प्रश्न किया था कि बाल-अदालतो मे कितना कल्याण हुआ है। इसका उत्तर लदन की बाल-अदालतों के अध्यक्ष जान वाटसन ने दिया है।[१] वे लिखते है—

१. John Watson, Chairman of the Metropolitan Juvenile Courts since 1936—Sunday Times, London, 9th March, 1958.

"आजकल अपराधों की इतनी वृद्धि देखकर लोग पूछते है कि क्या बाल-अदालतो से वह काम पूरा हो रहा है जिसके लिए वे बनायी गयी हैं। जनता का आम तौर से यह खयाल है कि ये अदालते इसलिए बनी है कि बाल-अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दंड दें। पर पार्लमिन्ट ने जब इस प्रकार की अदालतो की रचना की थी, उस समय उसका स्पष्ट आदेश था कि बच्चों के कल्याण की भावना सर्वोपरि रहे, और समाज की रक्षा की दृष्टि से यह बात सर्वथा उचित भी है। इस प्रकार बाल-अदालतों का लक्ष्य, उनका कार्य-क्षेत्र सभी काफी व्यापक हो जाता है। बच्चो की नैतिक आवश्यकता का अनुमान लगाकर उनके लिए ऐसे "दंड" की व्यवस्था करनी होगी जिससे उनके सुधार मे रचनात्मक कार्य भी हो सके। सभी बाल-अपराधियों के लिए ऐसी चिकित्सा की आवश्यकता नही होती। ऐसे भी पूर्ण स्वस्थ अपराधी आते हैं जो बड़े शरारती होते है। यह उम्र ही ऐसी है कि साधारण शरारत तथा अपराधी कार्य के बीच में कोई रेखा खीचना सम्भव नही होता। सब कुछ देखने के बाद हम इसी परिणाम पर पहुँचे है कि माता-पिता द्वारा देखरेख ही सबसे अच्छी चिकित्सा है। उसके सुधार के लिए इससे अच्छी कोई पाठशाला नही है।

"यह भी सही है कि सभी माता-पिता यह कार्य नही कर सकते। उनमें बहुत से गैर जिम्मेदार होते है। सब शरारतो की जड आत्म-सयम का अभाव है। बहुत से माता-पिता मे स्वयं यह वस्तु वर्त्तमान नही है अत. उनके बच्चों मे कहाँ से आये।

"दरिद्रता या अभाव अब अपराधों का प्रमुख कारण नहीं रह गया है। मेरा विश्वास है कि आज मुख्य कारण है साधारण प्रयत्न पर अत्यधिक भौतिक सुख-सामग्री का उपलब्ध होना। इन सुख-सामग्रियों की तलाश में परिवार के लोग इतन समय नष्ट करते है कि अपने बच्चो की देखरेख की उन्हे चिंता नही रहती या समय नहीं रहता। बहुत सी माताएँ बिना किसी आर्थिक कारण के यानी बिना रोजी की समस्या के भी काम के, केवल सुख-सामग्री सञ्चय करने मे अपना समय नष्ट करती है। बच्चो की वास्तविक देखरेख में तो लापरवाही की जाय और फिर उनकी जेब पैसों से भर दी जाय या उन्हे कीमती तोहफे दिये जायँ, यह कोई सन्तोष की बात नही है। इसका उलटा असर होता है कि बच्चें में भी एक से एक चीजों को प्राप्त करने की हवस बढ जाती है जो पूरी नही होती। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वह चोरी करने लगता है. . . .आज कल्याणकारी राज्य की भावना ने भी एक बड़ा दोष पैदा कर दिया है। परिवार के लोग यह सोचते है कि राज्य की तुलना में उनकी जिम्मेदारी बहुत कम है।

"किन्तु, बाल-अदालतों में हमारे लिए सबसे कठिन समस्या उन बच्चों की नहीं है जो घरेलू वातावरण मे बिगड गये है या जिनमें संयम तथा विनय का अभाव है। सबसे कठिन तो वे है जो घर मे प्रेम, सहानुभूति तथा सुरक्षा के अभाव में बिगड़ गये है। वे बड़े भयंकर अपराधी होते है—इसलिए नही कि उनका अपराध गुरुतर होता है, बल्कि उनके अपराध की पृष्ठभूमि अनुभवी से अनुभवी विचारपति को हैरत में डाल देती है।

"भला प्रेम का भूखा बच्चा प्रेम कैसे पा सकता है जब उसके माता-पिता स्वयं 'अपने को प्यार करते है।' उसे अपने घर मे सुरक्षा कैसे मिलेगी जहॉ रोज़ झगड़ा, उपद्रव, पति-पत्नी की लडाई होती रहती है, तलाक होता है, नया बाप या नयी मां आ जाती है। जिस परिवार मे पारस्परिक गाली-गलौज बहुत होता है या जहॉ माता अपने किसी एक बच्चे को प्यार करती है, पिता किसी दूसरे को और घरेलू कलह में बच्चो की दलबदी भी सामने आ जाती है— वहॉ कैसे ये बच्चे, धूर्त झूठे, अवारा, तथा लम्पट न निकलें? इनका अपराध साधारण होता है पर समस्या विकट होती है।

".....हमारे काम मे बड़ा क्लेश है, बडा खेदजन्य काम है, पर उसमें एक संतोष भी है। इन बच्चो में इतना मूल्यवान् गुण भरा हुआ है कि बस उसे तह में से निकालकर ऊपर लाने की जरूरत है। हम देखते है कि उनमे साहस है, सहिष्णुता है, नेतृत्व शक्ति है, ऐसी मौलिक ईमानदारी भरी है जो उनकी झूठी बातो के बीच से निकलकर चमक उटती है। इनमें से कुछ को दड मिलना चाहिए। पर सभी को सहायता की, उनके गुणो का विकास करने के लिए सहायता की आवश्यकता है। बाल-अदालतें उनके इन छिपे गुणों की पहचान कर, उनके विकास का मौका पैदा कर, भविष्य मे एक अधिक स्वस्थ समाज की रचना का कार्य कर सकती है।"

वाटसन ने कुछ ऐसी बातें कही है जिनसे हमे बड़ा सबक़ मिलता है। क्या बच्चों को मुट्ठी भर पैसा जेबख़र्चका दे देने से काम चल जाता है। क्या उन्हें मूल्यवान् वस्तुएँ देने से अधिक उत्तम यह न होगा कि उनको प्रेम तथा पुचकार का पुरस्कार दिया जाय? क्या बच्चों के सामने गाली-गलौज या माता-पिता की परस्पर लड़ाई बंद नही हो सकती?

आप अपनी ओर देखिए

ब्रिटेन के वर्तमान गृहमंत्री श्री बटलर ने लार्ड सैमुयेल के लेख के ही सिलसिले में स्वयं एक रोचक लेख लिखा। उन्होंने इस बात पर बड़ा खेद प्रकट किया है कि सन् १९०८ में जब बाल-अदालते खुली थी, साधारण अपराधों के लिए २०,००० तथा

बड़े अपराधों के लिए १३,००० लड़के-लड़कियाँ उनके सामने लाये गय थे। सन् १९५६ में साधारण अपराधियों की संख्या २९,००० तथा बड़े अपराधियों की संख्या ३८,००० हो गयी थी। सन् १९५२ से ब्रिटेन मे बाल-अपराधियों की संख्या गिरने लगी थी पर पिछले तीन वर्षों से फिर बढ़ने लगी है। इन बाल-अदालतों के सामने जो लोग लाये जाते है उनमें से एक तिहाई तो बिना शर्त्त रिहा हो जाते हैं, एक चौथाई प्रोबेशन पर छोड़े जाते हैं, एक तिहाई पर जुर्माना होता है, शेष अपने घर से अलग करके सुधारगृह इत्यादि मे भेजे जाते हैं। सन् १९५६ में १३३५ लड़के तथा लड़कियाँ बोर्स्टल स्कूलों में दाखिल हुईं। गृहमंत्री के कथनानुसार इधर तीन वर्षों में इस संख्या मे और अधिक वृद्धि हुई है। वे लिखते है—[१]

"मैं चाहता हूँ कि मै कुछ ऐसे एक-एक कारण बतला सकूँ जिनसे इन अपराधियों की संख्या में वृद्धि की चुनौती का कारण मालूम हो सके. . . .पर, जैसा कि लार्ड सैमुयेल ने कहा है, इसकी अनेक जड़ें हैं, पैतृक संस्कार, भग्न पारिवारिक जीवन, स्नेह तथा घरेलू सुरक्षा का अभाव, तैतृक ग़ैर-जिम्मेदारी, कम उम्र में ही खर्च करने के लिए काफी पैसा मिलना, ये सभी मिलकर अपराधी बनाते है। पर, वस्तुस्थिति यह है कि हर उम्र के अपराधियो की संख्या बढ़ती जा रही है। आज जेलो की संख्या में जो वृद्धि हो गयी है, उतनी कभी नही थी। पचास वर्ष में दंडसुधार तथा जेलसुधार के जितने कार्यक्रम हुए है उनका परिणाम अपराधों मे अत्यधिक वृद्धि है और यह सोचने पर मजबूर करती है कि आखिर क्या किया जाय कि अपराधियों की संख्या में कमी हो . . . हमको देखना है कि ये बाल-अदालतें किस सीमा तक हरएक बाल-अपराधी की चिकित्सा सही ढंग से करने में समर्थ हुई है। हमारे रचनात्मक सुधार कार्यों से क्या इन युवक युवतियों का चरित्र-निर्माण हो रहा है और यदि नहीं तो हमको सोचना पड़ेगा कि दूसरा कौन सा रास्ता अख्तियार करने से कल्याण होगा. . . . . .हमको इन प्रश्नों का सही उत्तर प्राप्त करना होगा। तभी हम सुधार के कार्यों पर अपनी आशा केन्द्रित कर भविष्य में अपराध कम करने की आशा कर सकते है। इसी कारण से मैंने गृहविभाग के साथ एक अनुसंधान विभाग भी नत्थी कर दिया है जो इन चीज़ों की बराबर छान-बीन करता रहे. . . . . .मुझे कुछ ऐसा लगता है कि अपराधों मे वृद्धि का एक कारण यह भी हो सकता है कि हम वातावरण, परिवार आदि सबकी ज़िम्मेदारी तो मानते

१. The Rt. Hon'ble R. A. Butler, M. P. Lord Privy Seal and Home-Secretary—Sunday Times, London, March 16—1959

हैं पर व्यक्तिगत जिम्मेदारी के महत्त्व को भूल जाते है। इस मशीन के युग मे, जब सभ्यता ही यंत्रीय हो चली है, हर एक को अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी का महत्त्व भी समझना पडेगा। जरा हम अपने से तो पूछे कि क्या हम स्वयं अपने बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेदारी बहुत कम समझते है ? क्या हम उनकी जिम्मेदारी बहुत कुछ स्कूलो पर, युवकसंगठनो पर, और अंत मे अदालतो पर नही छोड देते ? प्रत्येक सन्तानवाले को यह सवाल अपने से पूछना चाहिए। बर्क ने कहा था कि मानव जाति की पाठशाला निजी उदाहरण है और उससे अच्छी नसीहत और कही नही मिल सकती। मेरी सम्मति में बाल-अपराध कम करने के लिए यह नितात आवश्यक है कि माता-पिता अपनी सन्तान के लिए स्वयं उदाहरण बने। उनमे स्वयं कर्त्तव्य, सच्चरित्रता तथा जिम्मेदारी की वह भावना हो जिससे बच्चे नसीहत लें। हमको पारिवारिक जिम्मेदारी को उचित स्थान देना होगा।"

बड़ों की नकल

ब्रिटिश पार्लमेन्ट के सदस्य श्री मौटगोमरी हाइड, संयुक्त राज्य अमेरिका के अपराधी समाज का अध्ययन करने गये थे। २२ दिसम्बर १९५८ को लन्दन के "संडे टाइम्स" मे उन्होने एक रोमांचकारी लेख लिखा है। वे लिखते है कि आज सयुक्त राज्य अमेरिका यदि अपराध सम्बन्धी किसी वस्तु से बहुत परेशान है तो वह बाल-अपराध है जिसकी समस्या भयंकर रूप धारण करती जा रही है। वे लास ऐंजीलीज़ नामक प्रसिद्ध नगर मे ठहरे हुए थे कि वहाँ कुछ नवयुवकों ने एक अनजान, भोली, १५ वर्ष की लड़की को, जो मोटर से चली जा रही थी, गोली मार दी। पता चला कि उनके प्रतिद्वन्द्वी गरोह की एक लड़की की सूरत उस लड़की से मिलती जुलती थी, जिसका दंड दूसरी को भोगना पड़ा। हाइड के कथनानुसार इस प्रकार के अपराध वहाँ आम तौर पर होते रहते है। हर साल , उनके कथनानुसार, संयुक्त राज्य मे दस लाख बाल अपराधी बढते जा रहे है। इस वृद्धि में मादक द्रव्य सेवन करने वालों की संख्या भी काफ़ी बढ़ती जा रही है। सड़क पर २० वर्ष से कम उम्र के अपराधी अपने प्रतिद्वन्दी गिरोह के लोगों को गोली मारते हुए या उपद्रव मचाते हुए बेख़ौफ घूमा करते है। इसका एक बड़ा कारण गन्दे निवासस्थान तथा मज़दूर बस्तियों का वातावरण भी है। न्यूयार्क के प्रसिद्ध नगर के पूर्वी भाग में तथा शिकागो के दक्षिणी भाग में जिसने भी गश्त लगाया होगा, उसको प्रत्यक्ष दिखाई पड़ेगा कि रहन-सहन तथा वातावरण का क्या परिणाम होता है। पर अमेरिकन अपराधशास्त्री को ऐसे गन्दे वासस्थानो के रहनेवाले अपराधियों की उतनी चिन्ता नही है; उनका कहना है

कि संयुक्त राज्य मे जो हर साल दस लाख बाल अपराधी पुलिस के कब्जे मे आते हैं उनमें ज्यादातर इन बस्तियो के नही होते। यहाँ के रहनेवाले बडे होने पर ये बस्तियाँ छोड़ देते और जहाँ कही जीविका मिल जाती है, वही बस जाते है—शादी भी कर लेते है और बचपन की अपनी शरारतो को भूलकर अच्छे नागरिक बन जाते है। असली चिता का कारण सम्पन्न परिवार का बाल अपराधी है जिसके अपराध का प्रत्यक्ष कारण भी समझ मे नही आता। ऐसे अपराधो का मनोवैज्ञानिक समीक्षण करने से पता चलता है कि वे घरेलू झगड़े, घर के लोगों की विलासिता, पति-पत्नी के मतभेद, तलाक, नये माता-पिता या इनमे रद्दोबदल के कारण भावना के आघातों से उत्पन्न होते है। कही पिता बड़ा सख्त है तो कही माता ने लाड़-प्यार मे चौपट कर रखा है। भावनाओ के आघात से बने हुए ये अपराधी ठीक से न तो पकड़ में आते है और जब पकड़ मे आते है तो उनकी मनोवृत्ति को समझना कठिन हो जाता है। हाल में ही ओहियो की एक बाल-अपराधी अनुसंधान समिति[१] ने खोजकर ५४ हत्यारे लड़के-लड़कियों की समीक्षा की। इनकी उम्र ९ से १९ वर्ष के भीतर थी। इनमें से एक को छोड़कर शेष ५३ ने अनायास, बिना पहले कुछ सोचे ही हत्या की थी। और छानबीन करने पर पता चला कि "घर में या तो उनके साथ बड़ा बुरा व्यवहार होता था या उनकी निजी स्वतंत्रता मे बड़ी तानाशाही का व्यवहार था।" ये हत्याएँ वैसे व्यवहार की प्रतिक्रिया थी। कनेक्टिकट की सरकारी सार्वजनिक कल्याणसमिति[२] की खोज अधिक व्यापक थी। इस संस्था ने ४५०० बाल अपराधियो की समीक्षा की थी और उनकी रिपोर्ट का साराश यह है—

१. परिवार के कुसगठन के कारण ही अधिकाश बाल अपराध होते है।

२. परिवार का कुसंगठन अधिकांश दशा मे माता-पिता की भावुक अस्थिरता के कारण होता है।

३. "असंगठित" या "कुसंगठित" परिवार बच्चों के मन पर इतना हानिकारक प्रभाव छोड़ देता है कि वे बचपन से ही या आगे चलकर अपराधी बन जाते है।

४. असंगठित परिवार से ही और अधिक हानिकारक दोष पैदा होते है, जैसे मानसिक रोग, पागलपन, अपराध और तलाक़।

१. Bureau of Juvenile Research, Ohio.

२. Public Welfare Council, Connecticut.

अपराध के चार कारण

ऐसे अपराधियो की पूरी छानबीन करने के लिए, उनके मन तथा शरीर की पूरी परीक्षा करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में जगह जगह मनोवैज्ञानिक केन्द्र खुले हुए है। भारतवर्ष मे ऐसे केन्द्र प्रायः नही है। उत्तर प्रदेश इतने बड़े सूबे में अब, १९५९ के अन्त तक जाकर ऐसे दो केन्द्र खुलने जा रहे हैं, जिनमें ऐसे बच्चे जो या तो अपराधी है या जिनके अपराधी होने की सम्भावना हे, रखे जायंगे तथा उनके सुधार या उद्धार के लिए उचित निदान होगा। प्रदेश में केवल वाराणसी तथा आगरा मे बाल-अधिनियम[1] लागू है। अतएव वही यह प्रयोग होगा।[2]

संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसे केन्द्रो में डा० राल्फ ब्रेकेल[3] का केन्द्र बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ पर ऐसे बच्चों को ६० दिन तक रखते है। न्यूजर्सी के मेनलो पार्क का यह केन्द्र नयी नयी खोजें संसार के सामने रख रहा है। ब्रेकेल का कहना है कि अपराध के चतुर्मुखी कारण होते है। एक अपराधी दो प्रेरणाओ के संघर्ष का परिणाम होता है। एक तो है "किसी का अपना बनकर रहने यानी किसी द्वारा अपनाये जाने की इच्छा" और "प्रेम की भूख" तथा दूसरा है "उद्दंड अथवा झगडालू मनोभाव से उत्पन्न होकर दुर्बल विरोध से लेकर हत्या तक कर डालने की प्रवृत्ति।" इस परिणाम पर पहुँचने के पूर्व सन् १९४९ में ही इस सस्था ने २५०० अपराधियों की तथा २८०० कामवासना के अपराधियों की परीक्षा की थी। इन वासना के अपराधियों पर, नाबालिगों पर, कामुक प्रहार का दोष लगा था। ऐसा ही प्रयोग, पर ज़रा भिन्न ढंग से, उत्तरी कैलिफोर्निया के ट्रैसी नगर में हो रहा है। इस संस्था[4] में १२०० नवयुवक १७ से २५ वर्ष की उम्र के है। इनको हवाई जहाज की मशीन ठीक करने तक का काम सिखलाया जाता है।

डा० ब्रेंकेल के मत से आधुनिक सभी मनोवैज्ञानिक सहमत न होंगे पर कितने भी नये नये कारण ढूंढ़ निकाले जायँ, बाल-अपराध कम होता नहीं दीखता। अमेरिकन करेक्शन (सुधार) संघ के गत ३५ वर्षों से महामंत्री श्री एडवर्ड कांस ने संस्था के

१. Children's Act.

२. Child Guidance Clinic ३ जुलाई १९५९ का समाचार।

३. Run by Dr. Ralph Broncale at Menlo Park in New Jersey.

४. Denuel Vocational Institute.

५. Congress of the American Correctional Association, Chicago, 1958, Edward Cass.

सन् १९५८ के वार्षिकोत्सव मे संसार मे चारो तरफ बाल अपराध में वृद्धि का कारण बतलाते हुए कहा था कि—"यह वृद्धि क्यो हो रही है, इसका कोई सरल उत्तर देना कठिन है। सरकार तथा समाज के नियमो का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति पारिवारिक जीवन से प्रारम्भ होती है। उसकी जड़े वही पर मिलेगी।[1] . . . बाल अदालतें कायम कीजिए, बाल सुधार गृह कायम कीजिए, मनोवैज्ञानिक केन्द्र खोलिए—यह सब कीजिए, इनसे काम भी होता है, पर इस प्रकार का इलाज केवल गौण है। असली रोकथाम के लिए आवश्यकता है सामाजिक दृष्टि से चैतन्य तथा अच्छे माता-पिता या अभिभावक वाले पारिवारिक जीवन की। ऐसे परिवार की रचना की शिक्षा भी बचपन से ही मिलनी चाहिए।"

माता-पिता का महत्त्व

अन्ततोगत्वा सभी वैज्ञानिक हमारे प्राचीन भारतीय मत के होते जा रहे है। आज हम भारतीय भी "माता" तथा "पिता" का महत्त्व भूल गये है। हम स्वयं अपना महत्त्व भूल गये है। माता कौन है ? शास्त्र का वचन है—

"मान्यते पूज्यते इति माता,"
विनान्नान्नश्वरो देहो न नित्यः पितुरुद्भवः।
तयोः शतगुणा पूज्या माता मान्या च वन्दिता ॥[2]

पिता से सौगुनी अधिक वन्दनीय माता है, यदि वही माता हमारे तिरस्कार की वस्तु बन जाय या यदि वही माता अपने महान् पद के महत्त्व को भूल जाय तो सन्तान की क्या गति होगी ?

पिता का भी बड़ा महत्त्व है—

"पाति रक्षत्यपत्यं यः स पिता;"
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत्।
अहो यस्य प्रसादेन सर्वान् पश्यति मानवः॥
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम्।
तातो विस्तीर्णकरणात् कल्पनात् सा प्रजापतिः ॥

१. Warden Ragen का भी यही मत है।
२. ब्रह्मवैवर्त पुराण
३. वही

पिता के प्रसाद से ही मनुष्य सब कुछ देख समझ पाता है। यदि वही पिता अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाय, यदि वही अधा हो जाय तो बच्चे की क्या गति होगी ?

चरित्रनिर्माण में त्रुटि

ऊपर निर्दिष्ट कई विद्वानो ने साफ कह दिया है कि बाल-अपराध में वृद्धि का कारण परिवार के सगठन मे त्रुटियाँ है। प्रधान कारण यह होते हुए भी और कारण भी है। हम भारतीय तो बार बार यह कहते आ रहे है कि यदि परिवार मे धार्मिक बुद्धि होगी, धार्मिकता होगी तो उसका बच्चों पर बड़ा अच्छा असर पड़ेगा। आजकल चारो ओर धर्म के प्रति रुचि तथा आस्था समाप्त हो गयी है। कुछ ऐसे राज्य है जहाँ धर्म का नाम लेना भी गुनाह है। ऐसी दशा में केवल 'समाज'-'समाज' की रट लगाने से काम नही चलेगा। पिछले पचास वर्षो मे बाल-अपराध बहुत बढ गये है और यही समय है जब धर्म के प्रति आस्था तथा श्रद्धा सभ्यता की चकाचौध में गिरने लगी है। इग्लैण्ड के लेसेस्टर नगर के रैटक्लिफ क्लब के अध्यक्ष श्री क्लाड लीथम[१] का कहना है कि पिछली दो पीढियों से हम अपनी धार्मिक भावना को खोते जा रहे है। इसी लिए अपने बच्चो को हम सदाचार का वह दृढ मंत्र नही दे पाते जिसके मूल मे धर्म है। इसी लिए वे जीवन का तात्त्विक सिद्धान्त भी नही समझ पाते। लीथम का यह भी कहना है कि सन् १९५६ मे डाक्टरों की यह राय प्रकाशित हुई थी कि आज के लड़के-लड़कियाँ अपनी वास्तविक उम्र से पाँच वर्ष अधिक है। उनमे उम्र की अपेक्षा यौवन पाँच वर्ष पहले आ जाता है। "यौवन पहले आ जाता है और बुद्धि उस अनुपात मे विकसित नही हुई रहती। इसी लिए मानसिक हलचल सँभाले नही सँभलती।" ऐसे अवसर पर यदि धार्मिक बुद्धि पैदा हुई रहती तो कितनो का जीवन बच जाता।

चेशायर की कुमारी डोरोदी पैटेन प्राइस[२] ने भी वर्तमान परिस्थिति पर खेद प्रकट करते हुए इसका कारण बतलाया है—"हमारे ईसाई धर्म में आत्मसयम को जो महत्त्व दिया गया था, वह समाप्त हो गया है। आज के कल्याणकारी राज्य मे सुख तथा विलास के साधन सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाते है। कम परिश्रम से ही सब कुछ प्राप्य है। आज अपने बल-पौरुष तथा गुणो के बल पर प्रगति करने मे कोई शोभा नही समझी जाती। आज के युग मे तो यही मत है कि हमको जब जो चाहिए, तुरन्त मिल

१. Sunday Times, London, 16th March, 1958.
२. वही

जाय। बाल-अदालतें बड़ा अच्छा काम कर रही हैं, पर वे वह काम नही कर सकती जो ठोस तथा संयमशील बालजीवन से प्राप्त हो सकता है।"

ब्रिटिश पार्लमेन्ट के सदस्य जे० आर० एच० हचिंसन[1] का कहना है कि "आज का युवक उत्तेजना चाहता है, उसके भीतर काम करने की, संघर्ष की अपरिमित आग है। इसलिए उसको अपने वेग के अनुकूल काम नही मिलता तो वह उच्छृखल, उद्दंड तथा अपराधी हो जाता है। इधर हमारा अनुभव है कि हमने कम उम्र के सिपाहियों को कोरिया या मलाया ऐसे ख़तरनाक स्थानों में भेजा तो वे अधिक अच्छे आचरण के बने रहे; बमुकाबले कम ख़तरे के, शान्त वातावरण में। एक कारण और है, अंतर्राष्ट्रीय रूप मे हिसा की भर्त्सना की जाती है पर फिल्म की दुनिया में हिसा अनिवार्य समझी जाती है।"

लन्दन के एक मनोवैज्ञानिक ने अपना नाम न प्रकट करते हुए लिखा है[2] कि "सभी बच्चों के हृदय में एक श्रेष्ठ चरित्र का स्रोत है पर सयम तथा धार्मिक शिक्षा के अभाव से वह सूख जाता है। बहुत कुछ सोचने पर बाल-अपराध का कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव प्रतीत होता है। वाल्टर बीलीज़[3] का भी यही मत है। वे स्कूल-कालेजो की धर्मविहीन तथा सूखी, निर्जीव शिक्षा को दोषी ठहराते है। उनको वर्तमान सिनेमा तथा फिल्मों से बड़ी शिकायत है। वे कहते है कि अपराधी पैदा करने के लिए यही पाठशालाएँ है जिनको हम सिनेमाभवन कहते है। राबर्ट बार्टलेट[4] को शिकायत है कि हम आजकल अपने बच्चों को यह सिखाते है कि वे स्वय अपने माता-पिता तथा परिवार वालों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। बुजुर्गो की उपेक्षा करने की नसीहत हम देते है। और यह भी ध्यान रखने की बात है कि घर के बुजुर्गो का ही नैतिक स्तर नीचा है। यदि वे ही ख़राब आदर्श उपस्थित कर रहे हैं तो हमारे बच्चो का नैतिक स्वास्थ्य अवश्य ख़राब होता जायगा।"

कौन जाने किस कारण से बच्चे का दिमाग ख़राब होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलोराडो प्रदेश में जोजेफ़ केलाब्रीज की शादी के तीन महीने बाद एक मोटर दुर्घटना हो गयी। उनकी पत्नी एलिजेबेथ गर्भवती थी। जब उनका बच्चा डोनाल्ड

१. Sunday Times, London, 9th March, 1958.
२. वही
३. वही
४. वही

पैदा हुआ, उसका मस्तिष्क निकम्मा साबित हुआ। अभी तक वह स्वस्थ नही हुआ। डोनाल्ड का छोटा भाई लारी पॉच साल बाद पैदा हुआ। उसका भी वही हाल रहा। केवल इन बच्चो की चिकित्सा के लिए, रक्षा के लिए, दुर्बल मानसिक बच्चो के लिए एक पाठशाला ही सन् १९४८ मे खोल दी गयी। इसमे इस समय ४६ बच्चे रहते है। १७ बाहर से आते है। यही पर एक बालक डैविड है। जब वह तीन वर्ष का था, एक ट्रक से उसे चोट लग गयी। असर उसकी जबान पर हुआ। वह हकलाने लगा। आज वह भला चगा हो गया है। दूसरा बच्चा रोनी, चलती मोटर से गिर पडा था। वह चोट खा गया। आपरेशन हुआ और उसके बाद वह उद्दड तथा राक्षसो जैसी प्रवृत्तिवाला हो गया था। अब वह ठीक हो रहा है। अतएव प्रश्न समुचित चिकित्सा का है। हमारे देश में लाखो बच्चे ऐसी चिकित्सा के अभाव मे नष्ट हो रहे है। इनके लिए श्री लेखराज उल्फत की "नन्ही दुनिया"[1] ऐसी सस्थाएँ बनी भी है तो वे धन के अभाव मे दम तोड रही है।

आज अपराध की समस्या भयकर रूप धारण करती जा रही है। इग्लैण्ड ऐसे सम्पन्न तथा मध्यवर्ती देश मे सन् १९३८ में ६८,००० अपराधी दंडित थे। १९५६ में १,०२,०० थे। ब्रिटिश पुलिस रिपोर्ट के अनुसार सन् १९३९ मे कुल अपराधियो की संख्या ३ लाख थी। १९५६ में ४,८०,००० हो गयी। शायद ऐसी परिस्थिति ही मनुष्य की आँखे खुलवा देती है। ब्रिटेनकी उप-गृह-मत्रिणी कुमारी पैटहार्नबों स्मिथ ने सन् १९५८ मे लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर हाल में "अनुदार-दल-महिलासम्मेलन" मे कहा था—"अपराधों की अत्यधिक वृद्धि देख कर हम माता-पिता, धर्म तथा व्यक्तिगत जिम्मेदारी के पुराने सिद्धान्तों पर वापस आते जा रहे है।" और बिना इन सिद्धान्तों को अपनाये कोई चारा भी नही है।

स्कूलों में दलबन्दी

आधुनिक सभ्यता की एक नयी बीमारी है दलबंदी। घर में भी, बाहर भी। घर मे कुछ बच्चे माता के पक्ष में होते है, कुछ पिता के। पाठशालाओ में भी लड़के लड़कियाँ अपनी अपनी पार्टी बना लेते है। इसका बड़ा बुरा प्रभाव होता है। अच्छे लड़कों के या लड़कियो के दल से निकाले गये लड़के लड़कियाँ अपना गिरोह बना लेते है, और फिर अनायास अपने को "तिरस्कृत" समझनेवाला भी तिरस्कार करनेवाले के प्रति

१. नन्हीं दुनियाँ, इन्दर रोड, देहरादून

हिसात्मक भावना बना लेता है । "शिकागो अमेरिकन" पत्र के नगर-विभाग के सम्पादक बेजली हर्जेल का कथन है—[१]

"अच्छे लडके तिरस्कृत बच्चों को अपराध के गढे में ढकेल देते है। हर अपराधी बालक-बालिका के अपराध की पृष्ठभूमि में हो, चाहे वह परिवार से प्राप्त तिरस्कार हो या अपने ही सहपाठियों द्वारा अपनी पाठशाला में प्राप्त हो—यह दूसरा कारण और भी भयंकर है। ऐसे तिरस्कृत बच्चे एक साथ 'ग़ैर कानूनी जमात' वालों की तरह से एकत्रित होते है"। लोरिग के महिलाविद्यालय की प्रधान मार्गरेट यूलर ने लड़कियों की पाठशाला के बारे मे यही बात दुहरायी है। अब इस दिशा की ओर हर एक अध्यापक तथा अभिभावक का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। यह बड़ी भयंकर चीज है। बिना कारण ही अपने स्कूलों मे तिरस्कृत बच्चे अपराधी बने चले जा रहे है। इनकी रक्षा का प्रबंध होना ही चाहिए।

अपराधी का वर्गीकरण

हर उम्र वाले अपराधियो के वर्गीकरण का प्रयत्न फिलप्पीन देश मे बड़े अच्छे ढंग से किया गया है। सन् १९५६-५७ में "अपराध समीक्षण केन्द्र" में ३८०३ व्यक्ति दाखिल हुए, उनका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ—[२]

१. अपराध— व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध—४०·७ प्रतिशत;
सम्पत्ति के अपराधी—३८·१२ प्रतिशत;
विशेष नियमों को भंग करने पर—९·११ प्रतिशत।
विगत वर्ष की तुलना मे प्रथम श्रेणी के अपराध—८ प्रतिशत और द्वितीय श्रेणी के ७ प्रतिशत बढे है तथा तृतीय के ६·७ प्रतिशत घटे है। यानी हिसात्मक तथा चोरी डकैती के अपराध काफी बढ गये है।

२. दड— प्रथम अपराधी—८७ ६ प्रतिशत;
दुबारा अपराधी—१२ ४ प्रतिशत।

१. Wesley Hartzell, City Editor, The Chicago American, May 29, 1958.

२. Rufino Recaido, Chief, Reception and Diagnostic Centre in Guide Post, Manila, Philippines, 15th June, 1958.

(दुबारा में दूसरी बार जेल आनेवाले ६·१ प्रतिशत थे। तीसरी बार जेल आनेवाले २·४ प्रतिशत थे, चौथी बार जेल आनेवाले १·१ प्रतिशत थे तथा बिना इस प्रकार वर्गीकरण किये ३ ८ प्रतिशत थे।)

३. विवाहित या अविवाहित— अविवाहित १६५३, विवाहित १७८६, विधुर १०४, (रखेल औरत या बाजाब्ता शादी नही हुई) ४६

४. बुद्धि— बोदे तथा भोदू प्रकार के—५६·८ प्रतिशत, शेष साधारणत: प्रखर बुद्धि के।

५ शिक्षा— अशिक्षित—२६ ८ प्रतिशत
प्रारम्भिक शिक्षा—३८ ६६ प्रतिशत
मध्यम वर्ग शिक्षा—१७ ३६ प्रतिशत
हाई स्कूल तक—१२ ७५ प्रतिशत
कालेज ग्रूप—२·१४ प्रतिशत

६. धर्म— कैथोलिक-सनातनी ईसाई—८६·८ प्रतिशत
मुसलमान ४ ५ प्रतिशत
प्रोटेस्टेंट—सुधारवादी ईसाई—२·६ प्रतिशत

७. जेल में आने के समय उम्र—अधिकाश बंदी २० से २५ वर्ष की उम्र के।

८. अपराध के स्थान— सबसे ज्यादा अपराध राजधानी मनीला मे हुए, १०·२ प्रतिशत

९. व्यवसाय— ५० फीसदी बन्दी किसान, मछुए, शिकारी आदि लोग है। उसके बाद दूसरा बड़ा वर्ग है कारीगर तथा मजदूरो का। ४ प्रतिशत अध्यापक का पेशा करनेवाले लोग है।

बहुत से देशों की जेल-रिपोर्ट मैने देखी है पर इतने अच्छे ढंग का वर्गीकरण मुझे देखने को नही मिला। भारतवर्ष के अनेक प्रदेशों में तो यह भी पता नही है कि कितने क़ैदी विवाहित है तथा कितने नही। अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति काफ़ी समय से प्रधान कारागार निरीक्षकों से प्रार्थना कर रही है कि कम से कम इतनी आसान बात तो मालूम हो जाये। पर अभी तक इतना कष्ट भी नही उठाया गया है। पश्चिम बंगाल, मद्रास, बम्बई—किसी भी प्रदेश को इसकी जानकारी नही है। ऊपर के वर्गीकरण में "धर्म" भी दिया गया है। इसका मतलब यह नही है कि वे अपराधी धार्मिक है। यह तो केवल उनका पैतृक धर्म दिया गया है। सबसे रोचक बात यह मालूम होती है

कि हमारा नवयुवक समाज (नवयुवतियो का जिक्र ऊपर के ऑकड़ों में नही है) कितनी बुरी तरह से अपराधी हो रहा है, जरायमपेशा हो रहा है और यह तब तक होगा जब तक कि हम इन नवयुवकों को "नैतिक जिम्मेदारी" की नसीहत न दें।

सन् १९२६ मे सभी सभ्य देशो के लिए एक सर्वमान्य दंडविधान की रचना का प्रयत्न हुआ था, ब्रसेल्स में प्रथम बार अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन इसी उद्देश्य से हुआ। इसमे सभी देशो के कुल मिलाकर ३५० न्याय-पंडित एकत्रित हुए थे। इस सम्मेलन में "नैतिक जिम्मेदारी" का सवाल उठाया गया था पर उसके समर्थक नहीं मिले। श्री फेरी ने अपने भाषण मे कहा था कि यह चीज हमारे दायरे के बाहर की है। यह भूल गये श्री फेरी कि यदि नैतिक जिम्मेदारी की भावना को समाप्त कर दिया जाय तो दंडविधान मे किसी प्रकार के संशोधन का स्थान ही नही रह जाता। दंड चाहे कितना कठोर हो, सही है, उचित है। जब नैतिक जिम्मेदारी नही रही तो दंड की कठोरता में कमी करने का कोई तुक भी नही है। सन् १९२६ की भूल का आज तक प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है।

अध्याय २०

भिन्न देशों में भिन्न उपाय

बाल-अपराध रोकने के लिए भिन्न-भिन्न देश अपनी-अपनी बुद्धि तथा शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न उपाय कर रहे है। परिवार तथा पाठशाला दोनो का महत्त्व बराबर कायम रखने की चेष्टा की जा रही है। परिवार के सर्वोपरि महत्त्व को लोग समझने लगे है। सयुक्तराष्ट्र-संघ[1] की रिपोर्ट मे लिखा है कि बच्चा सुधारक स्कूलो मे कितनी ही प्रगति क्यो न करे पर यदि वह अपराधी है तो उसका उपचार तब और सफल प्रमाणित होगा जब स्कूल मे रहने के समय उसका घर से सम्बन्ध बना रहेगा तथा उसका परिवार उसे अपनाने के लिए तैयार रहेगा, तभी सुधारक स्कूल की वास्तविक सफलता होगी। ऐसे बच्चो के उपचार के लिए यह आवश्यक है कि जो भी कार्य हो वह परिवार के सहयोग तथा सम्पर्क से हो, परिवार पर इतनी बड़ी जिम्मेदारी लाद देना भी बड़ी जरूरी बात है।

पर यदि परिवार अपनी जिम्मेदारी न समझे, न माने तो क्या उपाय होगा ? किसे दंड दिया जाय ? प्राय देखा जाता है कि परिवार मे लडके बडे शरारती हो जाते है। वे अपराध करना जानते भी नही। केवल उनमें बाहर घूमने की आदत पड़ जाती है। वे अनायास अपराधी बन जाते है। घुमन्तूपन अपराधी बनने की भूमिका है।[2] इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को जबर्दस्ती स्कूल भेजने से ही उनका ऐब नहीं समाप्त हो जाता, उनका अपराधी बनना नही रोक देता। यह पता लगाना चाहिए कि घर का वातावरण बच्चे को क्यो काटता है। घर के बाहर, घर से दूर उसे क्यो अच्छा लगता है ? जिन देशो में बाल अपराधियो के लिए विशेष संस्थाएँ है वहाँ पर यह सोचा जा रहा है कि बिना अपराधी बने बच्चो को अपराधी बच्चो के साथ रखना ठीक नही

१. The Prevention of Juvenile Delinquency in Selected European Countries, United Nations, April, 1955, Page 58.

२. वही, पृष्ठ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९

है। अतएव केवल घुमन्तू होने के कारण उन्हे वहाँ नही रखना चाहिए। असल मे पता लगाया जाय कि वह अपने पारिवारिक जीवन से क्यो असन्तुष्ट है।

घुमन्तू बच्चे

जो लडके-लडकियाँ घर तथा स्कूल छोडकर इधर-उधर आवारागर्दी करते घूमते है या आवारो की तरह से घूमा करते है उनके लिए यूरोपीय देशो मे अनेक उपाय किये जाते है। अपढ आदमी के लिए नौकरी मिलना असम्भव है। इसलिए सभी यूरोपीय देशो मे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है। केवल वे ही अनिवार्य शिक्षा के बन्धन मे नही आते जो उन जातियो के है जो हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान घूमा करती है। बहुत से परिवार बडी नहरो मे नौकाओ पर रहते है। उनके बच्चो की शिक्षा के लिए नीदरलैड्स तथा यूनाइटेड किगडम (इग्लैड, वेल्स तथा स्कॉटलैड) ने—जिसे हम ब्रिटेन कहते है—विशेष प्रबंध कर रखा है। यूनान मे गडरियो के—चरवाहो के—बच्चो के लिए खास तौर पर स्कूल लगाये जाते है। स्वीडेन के उत्तरी भाग में जिप्सी तथा घुमन्तू लेप्पे लोग काफी रहते है। उनके लिए विशेष पाठशालाएँ तथा छात्रावास लगाये जाते है।*

अपराध के पहले उसकी शुरुआत घुमन्तू आदत या आवारागर्दी से शुरू होती है। जहाँ अनिवार्य शिक्षा है, वहाँ स्कूलो मे पढना जरूरी होने के कारण कुछ थोडी बहुत रोकथाम हो जाती है। पर केवल इतने से ही काम नही चलेगा। स्कूल की पढ़ाई के बाद भी वही आदत बनी रहती है। मौलिक कारणों की जाँच, समीक्षा तथा खोज करनी पड़ेगी और उनका उपाय करना होगा।

ऑस्ट्रिया में स्कूलो की अनिवार्य उपस्थिति के लिए कानून है पर ज्यादातर अध्यापक क़ानून से कोई सहायता न लेकर परिवार से सम्पर्क रखते है। उससे भी काम नही चलता तो युवककल्याण कार्यालय से सहायता लेते है। यदि उनसे भी काम न चला तो सुधारगृह तो है ही। बेल्जियम मे स्कूल मे हाजिरी की सूची हर महीने स्कूल इस्पेक्टरो के पास भेज दी जाती है। जिस लडके की गैरहाजिरी ज्यादा हुई उसके परिवार को चेतावनी भेजी जाती है। यदि इससे भी काम न चला तो सरकारी वकील के पास मामला भेज दिया जाता है। यह वकील अपनी छानबीन करके बच्चे के बुजुर्गो को अदालत में तलब कर सकता है। बेल्जियम मे पुलिस का कर्त्तव्य है कि स्कूल मे पढने के समय यदि लडके-लड़कियो को सडक पर घूमते देखे तो उन्हे पकड़कर स्कूल पहुँचा दे। फ्रास मे लडको की इस प्रकार की भूल के लिए माता-पिता या अभिभावक को दड मिलता है। यही नही, यदि पढने के घण्टे मे बच्चा कोई खेल-तमाशा देखने चला गया

तो स्कूल के घंटों में उसे अपने यहाँ बिठा रखने के अपराध मे तमाशा दिखानेवाले या साथी को दंड मिलेगा।[1]

पश्चिमी जर्मनी मे बच्चों को अनिवार्यत. स्कूल लाने के लिए पुलिस की मदद ली जा सकती है। पर आवारा लड़कों के संरक्षण के लिए वहाँ एक विशेष मुहकमा ही है। इससे अधिक काम लिया जाता है। पुलिस का हस्तक्षेप प्राय. हर एक देश मे "कम से कम" वाछनीय समझा जाता है। यूनान में आवारा बच्चो के बुजुर्गो या अभिभावको को दंड मिलता है। अगर उसके बार-बार अपराध करने से यह साबित हो जाय कि अब उस पर परिवारवालो का वश नही है, तब वह बाल-अदालत भेजा जाता है। हंगरी में नियम है कि पहले बुजुर्गो को चेतावनी दी जाती है और यदि उससे काम न चला तो बुजुर्गो या अभिभावकों को दंड देते है। यदि इससे भी काम नही चला और स्कूल मे हाजिरी न हुई तो अपराधी बच्चों को सरकारी छात्रावासों मे ले जाकर रख देते है। आइसलैण्ड मे तो ऐसे आवारा बच्चों के लिए, जिनको हर प्रकार से चेष्टा करने पर भी स्कूल लाना असम्भव हो जाता है, परिवार से हटाकर सरकारी छात्रावास मे रखने का प्रबंध है। उसी निवासस्थान मे पाठशाला भी लगती है। ३० बच्चो के लिए प्रबंध है।

आयरलैण्ड में १० से १४ वर्ष के बच्चो को स्कूल भेजने की जिम्मेदारी माता-पिता या अभिभावकों की है। यदि दुबारा गैरहाजिरी हुई तो बुजुर्गो को जुर्माना देना होगा तथा अदालत उस बच्चे का संरक्षक या अभिभावक "किसी अन्य योग्य व्यक्ति" को बना सकती है। इजरायल में नियम है कि पढ़ने के समय बच्चों से काम लेनेवालो को अथवा बुजुर्गों को दड मिल सकता है। स्कूल की दाइयो या अध्यापको की जिम्मेदारी है कि बच्चों की गैरहाजिरी की सूचना समाजकल्याण आफिस को दे। यदि कोई बार बार भाग जाता हो तो उसे बाल-अदालत के सामने पेश किया जाय। इटली में बच्चों की गैरहाजिरी की सजा बुजुर्गो को दी जाती है। नीदरलैंड्स मे आवारा बच्चो के बुजुर्ग दंडित होते है तथा स्कूल की हाजिरी की जॉच-पडताल और स्कूल जाने के लिए बाध्य करने का काम पुलिस का है।[2] उस देश में आवारा लडको पर देखरेख रखने के लिए एक "आवारागर्दी-निरोधक समिति" भी है। नार्वे में बच्चो को ही चेतावनी दी जाती है। यदि उससे काम न चला तो उन्हे सुधारगृह भेज देते है। स्वीडन में ऐसे बच्चे

१. Act of 1946—La Loi Du Mai, 1946.

२. Loerplicht Wet—Article 30, Law of 7th July, 1900.

बहुत कम मिलेंगे जो पढने के समय पाठशाला न जाकर घूमा करते है। यदि बिरले मिले भी तो बाल-समाजकल्याण समिति उनकी देखरेख कर लेती है। स्विटजरलैण्ड मे बुजुर्ग या अभिभावक ही दंडित होता है। तुर्किस्तान में भी यही स्थिति है। बुजुर्ग या अभिभावक पर ही अर्थदंड लगता है। ब्रिटेन में तो माता-पिता या अभिभावक अपने बच्चों को स्कूल न भेजने के अपराध में जेल तक भेजे जा सकते है।

आज बालक-बालिका के जीवन में शिक्षा की महत्ता समझने की आवश्यकता नही है। पर संसार मे अभी तक सर्वमान्य आदर्श शिक्षाप्रणाली तय नही हो पायी है। इसी प्रकार यह भी नही तय हो पाया है कि किस प्रकार की शिक्षा देने से अपराधी मनोवृत्ति के अथवा आवारागर्दी करनेवाले बच्चे सँभल जायँ। इस विषय में नये नये प्रयोग हो रहे है। औसतन बच्चे में जो शिक्षणीय कमी रह जाती है, जिसके कारण वह जीवन मे भूले करता है, उसे दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आवारा से हमारा तात्पर्य बिना उद्देश्य घूमने की लत से है। अनुभव से यह देखा गया है कि ऐसे बच्चो का इलाज दिन की पाठशाला मे नही होता। इनको ऐसे छात्रावास में रखना चाहिए जहाँ चौबीस घंटे की देखरेख हो सके तथा पढाई भी हो सके।

तिरस्कृत बच्चे

१२ सितम्बर १९५५ को लन्दन मे अपराधशास्त्रियो का तृतीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ।[१] उसके एक दिन पूर्व ब्रिटेन की प्रसिद्ध दंडसुधार-समिति, हावर्ड लीग के मंत्री श्री हग क्लेयर ने "आबजर्वर" मे एक लेख[२] लिखा था। अपराध तथा बाल-अपराधो की वृद्धि के लिए उनको भी परिवार से ही शिकायत थी। वे लिखते है—

"सभी अपराधी भग्न परिवार से नही आते पर अधिकांशत. ऐसे परिवारों से आये हैं जो या तो किसी कारण सुखी नही है, या भग्न होनेवाले हैं या कई दृष्टियों से उनका पारिवारिक जीवन दोषपूर्ण है। पर ऐसे ही परिवार का एक बच्चा अपराधी बन जाता है, दूसरा नहीं। यह कोई आश्चर्य की बात नही है। इन दोनों बच्चो का भिन्न पैतृक संस्कार हो सकता है। शरीर की रचना मे फर्क होगा, माता-पिता के स्नेह

१. **लेखक भी** Third International Congress of Criminologie **में उपस्थित था।**

२. "The Observer", London, Sept. 11, 1955—Hugh Klare—"Understanding the Criminal".

की मात्रा में अन्तर होगा। वे पृथक् स्थानो मे पैदा हुए होगे, उनका मित्रवर्ग पृथक् होगा, परिवार की किसी विकट स्थिति का उनके मस्तिष्क पर भिन्न प्रभाव पड़ा होगा।

"भग्न, दु:खी या असंतुष्ट परिवार को ही अपराध का कारण नही कहा जा सकता पर यह भी कहना गलत होगा कि अपराध करने पर इनका प्रभाव नही पडता। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गत महायुद्ध के बाद बाल-अपराधो मे वृद्धि का एक बहुत बडा कारण भग्न परिवार था या बच्चो को अजनबी जगहो मे पहुँचा दिया गया था। ऐसी जगह भी पहुँचाया गया था जहाँ कोई उनको पूछनेवाला भी नही था। यह भी याद रखना चाहिए कि पिछले महायुद्ध के समय-जैसी सामाजिक उथल-पुथल का प्रभाव अपराध और उसके रूप पर भी पडता है ..कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि जिन बच्चो के पिता युद्धभूमि मे चले गये थे, उनमें बुरी लते आ गयी थी, वे बच्चे अपराधी, अप्राकृतिक प्रसंग के दोषी इत्यादि हो गये थे। पिता की अनुपस्थिति मे लडका किसे अपना आदर्श बनाकर चले, किसका अनुकरण करे ? केवल माता का अनुकरण करने से, केवल माता की अनुरक्ति से उसमे स्त्रीजन्य स्वभाव तथा कादरता भी आ सकती है। इसकी प्रतिक्रिया मे या तो वह उद्दंडता कर सकता है या सह-योनि-प्रसग का शिकार बन जाता है।

"अच्छे से अच्छे परिवार मे अपराधी पैदा हो सकते है पर इनकी सबसे उपजाऊ भूमि "समस्यामय परिवार" है। वे परिवार है जो सामाजिक, आर्थिक या व्यक्तिगत कारणो से प्रसन्न नही है, सुखी नही है। महायुद्ध के पहले भी ऐसे परिवार थे पर आज उनकी सख्या कही अधिक है। आज समाज मे सबकी नौकरी का (इंग्लैण्ड में) प्रबध है। शिक्षा का पहले से अच्छा प्रबंध है, लोग अधिक सम्पन्न है। पर ऐसा लगता है कि इन सुखों ने उनकी समस्या को और बढा दिया है। आज के तीस वर्ष पूर्व अधिक बेकारी, अधिक गरीबी तथा असुविधाएं थी। आज प्राय. हर एक आदमी के पास काम है, वह बेकार नही है। जीवन-स्तर पहले से कही अधिक ऊँचा है ..पर ये समस्यामय परिवार बढते ही जा रहे है। इनका बुद्धि का स्तर नीचा है। इनमें व्यभिचार है। इनमें शराबी हैं, अपनी दुर्बलताओं के कारण ही ये अपने को समाज में गिरा हुआ तथा दूसरों से तिरस्कृत समझते है। आत्मग्लानि की इसी आग के कारण ये एक प्रतिशोधात्मक मनोवृत्ति धारण कर समाज के प्रति अनायास अपराधी बन जाते है। इसमें क्या आश्चर्य है कि ऐसे परिवार मे जन्म लेनेवाले बच्चे अपराधी बन जायें या अपराध के प्रति उनकी अधिक रुचि हो। कानून ने यह तो साफ कर दिया है कि क्या अपराध है और क्या नही है। पर अपराधी और गैरअपराधी का अन्तर स्पष्ट नही है। इनमें से कितने ऐसे व्यक्ति है जो सीने पर हाथ रखकर कह सकते है कि उन्होंने

कभी अपनी जवानी मे कानून के खिलाफ कोई काम नही किया या चोरबाजार से कोई चीज कभी नही खरीदी। बड़े प्रतिष्ठित लोग अपनी आमदनी तथा खर्च का जो हिसाब तैयार करते है, वह क्या एकदम सच्चा हिसाब है? कैदी तथा न्यायाधीश दोनों मे कुछ मौलिक कमजोरियाँ समान रूप से है। दोनो एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते तथा समझते भी है। बार बार अपराध करनेवाले मे एक विशेषता प्रतीत होती है।

"यह विशेषता है भावुक अपरिपक्वता, उसका स्वभाव बच्चों की तरह से होता है। वह दूसरे के कष्ट या दूसरे पर अपने काम के प्रभाव की बात नही सोच पाता। हाथ-पैर से वह स्वस्थ दीख पडता है पर उसके आचरण से भावुक अपरिपक्वता का पता चल ही जाता है। मस्तिष्क से जो विद्युत् प्रेरणा पैदा होती रहती है उसे मशीन पर रेकर्ड किया जा सकता है। ऐसे ही रेकर्ड[१] से ऊपर लिखी अपरिपक्वता का पता चला है। आज ऐसी ही खोजो से यहाँ तक पता चल गया है कि मन तथा बुद्धि के विकास के साथ ही वैसी बुद्धि का विकास होता है। आदतन अपराधियो के हाथ की उँगलियो के नाखूनों के सिरे के चमडे का फोटो लेने से बच्चों के नाखूनो के फ़ोटो जैसी बनावट मिलती है। ऐसे बहुत से प्रमाण मिल गये है जो अपराधी तथा बचपन का स्वभाव समान रूप से साबित कर देते है।

"बच्चों की तरह इन बडे बुजुर्ग आदतन अपराधियों मे एक खास बात यह है कि ऐसा अपराधी अपने को संसार से तिरस्कृत तथा अवाछित समझने लगता है और ऐसी भावना बड़ी घातक होती है। जिन्हे बचपन में घर में तिरस्कार तथा प्रेम का अभाव प्राप्त होता है उनमें यह भावना जम जाती है कि वे कभी किसी का आदर नही प्राप्त कर सकेगे। वे पाठशाला में अपनी जरा सी असफलता पर, या कभी कभी काल्पनिक भूल-चूक पर बहुत ही खीझ उठते हैं। इसी लिए वे ऐसा साथ ढूँढ़ते है जो उनकी तरह से ही तिरस्कृत है—अपराधी है। यदि समाज को उनकी आवश्यकता नही है तो उन्हें भी समाज की आवश्यकता नही है। वे ऐसे समाज के शत्रु बन जाते है। केवल पैतृक स्नेह के अभाव में ही ऐसी भावना नही पैदा होती। जो बच्चे घर मे बडे नियत्रण में, बडी सुरक्षा में, बड़े बधन मे रखे जाते है, वे संसार के सघर्षमय जीवन मे पड कर जब ठोकरे खाने लगते है तो उनके मन में भी वही छोटापन, तिरस्कार तथा उपेक्षा की भावना पैदा होने लगती है। लाड़-प्यार मे नष्ट बच्चे भी समाज के सामने आने पर अपने

१. Electro-encephalographic Records.

को छोटा तथा उपेक्षित समझकर बार बार अपराधी बन जाते है। यह हो सकता है कि मन के भीतर उपेक्षा तथा तिरस्कार की इस भावना के कारण ही अनायास बहुत से अपराधी बनते चले जा रहे है।

"इस अहम बात को लोग बहुत कम याद रखते है। प्रसिद्ध जेल-प्रबंधक सर अलेक्जेडर पेटरसन कहा करते थे कि उनके यहाँ अपराधी दड-स्वरूप भेजे जाते है, दंड के लिए नही।"

हमने श्री क्लेयर के मत को कुछ विस्तार से दिया है। इसका कारण है। श्री क्लेयर ने जो कुछ कहा है, वास्तव में उन बातो का निचोड है जिसे अनेक पंडितो ने व्यक्त किया है तथा जिनके मत को हम स्थान स्थान पर देते आये है। हम भी उनसे बहुत कुछ सहमत है। श्री क्लेयर ने बच्चो मे उपेक्षा की जिस भावना की इतनी समीक्षा की है, निस्सदेह वह भावना उनकी बड़ी हानि कर रही है।

सुधार की पद्धति

विभिन्न देशों में बाल-अपराधियों के सुधार के लिए जो कार्य हुए उसका संक्षिप्त वर्णन डा० बी० एस० हैकड़वाल ने अपनी पुस्तक के एक अध्याय में बडे-अच्छे ढंग से दिया है।[१] मार्के की बात तो यह है कि पिछले पचास साल मे इस दिशा मे विचारधारा ही एकदम बदल गयी है। घूम फिरकर लोग प्राचीन भारतीय मत के होते जा रहे है—

लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्।। (हितोपदेश)

पाँच वर्ष तक बच्चे को खूब प्यार करे। दस वर्ष तक उसके ऊपर कठिन अनुशासन करे और १६ वर्ष का हो जाने पर उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार करे, उसे मित्र के समान परामर्श दे।[२]

पश्चिमी देशो में पचास वर्ष पूर्व बाल-वृद्ध सभी अपराधियो को एक साथ रखते थे। जेलो मे वे घोर से घोर अपराध सीख जाते थे। अब तो ७ वर्ष से कम के बच्चे

१. Dr. B. S. Haikerwal—"A Comparative Study of Penology—" Pub. 1954.

२. **संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपनी रिपोर्ट** Comparative Survey on Juvenile Delinquency—Part IV **पृष्ठ ५ पर इसे उद्धृत किया है।**

को कानूनन अपराधी मानते ही नही। इस सम्बध मे हम पिछले पन्नो मे लिख आये है। ७ से १२ वर्ष की उम्र के बीच के बच्चो को किसी न किसी प्रकार का दड मिलता ही है। पर यदि उनका मस्तिष्क खराब हुआ तो कोई दंड नही मिलता। प्रायः सभी देशों में बाल-अधिनियम बन गया है। भारतवर्ष मे भी कई प्रदेशो में बाल-अधिनियम लागू है। जिन प्रदेशो मे बाल-अधिनियम चालू नही है, वहाँ सन् १८९७ का रिफार्मेटरी स्कूल्स ऐक्ट काम देता है। इसके पहले भी एक कानून ब्रिटिश हुकूमत ने बनाया जो वास्तव मे मालिक तथा बाल-मजदूरो से सम्बध रखता था। इसे अप्रेंटिस ऐक्ट, १९, १८५० का कहते है। अखण्ड भारत मे यानी आज के पाकिस्तान में तथा बर्मा मे यह नियम लागू था। सन १९१९–२० की जेल जॉच कमेटी ने यही सिफारिश की थी कि १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चो को जेलो मे न रखा जाय। उनके लिए बाल-सुरक्षागृह, जिसे रिमांड होम कहते है, खोले जायँ। इस कमेटी की यह भी सिफारिश थी कि ब्रिटिश कानून के ढंग पर भारतवर्ष मे भी बाल-अधिनियम बने।

उत्तर प्रदेश मे अभी तक बाल-सुरक्षागृह नही खुल सका है यद्यपि सन् १९५३ में यहाँ बाल-अधिनियम बन गया था। उत्तर प्रदेश में बाल-अपराधी को रिफार्मेटरी स्कूल (सुधारक सस्था) मे भेज देते है पर चूँकि ऐसे स्कूल दो ही है अतएव अब भी जेलों के एक कोने में बाल-अपराधी कक्ष मिलेगा। रिफार्मेटरीज में आना दो आना प्रति सप्ताह जेबखर्च भी मिलता है। धार्मिक विश्वास के अनुसार बाल-अपराधी को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। दिल्ली, अमृतसर, बम्बई, मद्रास आदि मे बडे अच्छे सुधारगृह मिलेगे। पश्चिम बंगाल का अलीपुर का बालसुधारगृह तथा बरेली का सुधारगृह बहुत आदर्श समझे जाते है। दोनो में हथियार या बेत लिए पहरेदार नही है। जेल की वर्दी के बजाय साधारण भद्र पुरुष की खाकी पेन्ट तथा सफेद कमीज है। इनका औद्योगिक शिक्षणकेन्द्र बहुत अच्छा काम कर रहा है। यहाँ से दस्तकारी सीखकर निकले लड़के बेकार नही रह सकते। इनमे रहनेवाले 'अपराधियो' को किसी भी स्कूल के विद्यार्थियो के समान स्वच्छन्दता प्राप्त है। यह ध्यान रखने की बात है कि १८ वर्ष के ऊपर के बच्चे इनमे नही रखे जा सकते। हर रिफार्मेटरी मे रहने की मीयाद तीन वर्ष से अधिक नही रखी जाती। यह इसलिए कि समझा जाता है कि इतनी अवधि मे रहनेवाले को कोई न कोई कला या गुण आ ही जायगा। इसका एक दूसरा रूप भी है; यदि साधारण अपराध के लिए भी बच्चे यहाँ भेजे जाते है तो उनको तीन वर्ष तो यहाँ रहना ही पड़ता है।

जिन प्रदेशो मे बाल-अधिनियम लागू हो गया है, बाल-अपराधी को 'सर्टिफाइड स्कूल' (सरकार से स्वीकृत) मे भेजते है, जैसे बम्बई प्रदेश का माटुंगा का प्रसिद्ध

स्कूल या डैविड सासून स्कूल है। यहाँ बच्चो को बाहर भाग जाने से बचाने का प्रबध तो है पर उतना नही है कि उनको यह प्रतीत हो कि वे जेल मे है। बाकायदा स्कूल लगता है। बच्चो के आमोद-प्रमोद का पूरा प्रबध रहता है। नैतिक विषयो पर अच्छे अच्छे व्याख्यान होते है। लड़कियों के लिए अलग स्कूल है। बायकुला (बम्बई का उपनगर) मे शेपर्ड आफटर केयरहोम है जिसमे वे 'अपराधी' बच्चे जिनकी "शिक्षा" की अवधि समाप्त हो गयी है, पर जिनको वापस जाने के लिए घर नही है या जीविका का साधन नही है, रखे जाते है तथा उनके लिए नौकरी का प्रबंध हो जाता है। एक महीने तक यहाँ मुफ्त में रहने का तथा रोटी का प्रबध रहता है। इसके बाद जब काम लग जाता है तो अपने ऊपर किया गया व्यय वे चुका देते है।

बाल-अधिनियम हर प्रदेश मे लागू होना चाहिए। हर प्रदेश मे ही नही, हर नगर मे लागू होना चाहिए। १४ से १६ वर्ष का प्रत्येक लड़का या लड़की इस नियम के अन्तर्गत देखरेख में रहे, गृह-विहीन, आश्रयहीन बच्चों की रक्षा का भार इस नियम के अन्तर्गत काम करनेवालो पर हो। मुझे तो ऐसा लगता है कि एशिया महाद्वीप मे बाल-अधिनियम के सिलसिले मे सबसे अधिक कार्य जापान तथा थाईलैंड यानी स्याम देश मे हुआ है। भारतवर्ष मे पराधीनता के दिनो में कुछ विशेष कार्य नहीं हुआ।[१] यो, हमारे यहाँ जो कुछ नियम बने वे ब्रिटिश ढंग पर बने थे। बहुत धीरे धीरे हमने बच्चो के प्रति उदारता की नीति अपनायी है। जापान तथा थाईलड (स्याम) तथा फिलप्पीन देशो के नियमो पर संयुक्त राज्य अमेरिका का असर प्रत्यक्ष है।

१. राष्ट्र-संघ की रिपोर्ट, पृष्ठ ४

अध्याय २१

एशियाई देशों में बाल-अपराध निरोध

एशिया के जिन देशों में बाल-अधिनियम यानी चिल्ड्रेन्स ऐक्ट जिस रूप में लागू है, उसकी तालिका इस प्रकार है—

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
१. भारतवर्ष	१ अप्रेंटिस ऐक्ट (इंडिया ऐक्ट XIX– १९५०) २. रिफार्मेंटरी स्कूल्स ऐक्ट (इंडिया ऐक्ट VII १८९७) ३. बाम्बे चिल्ड्रेन्स ऐक्ट १९२४	१. रिफार्मेंटरी स्कूल्स ऐक्ट, १८९७ २. चिल्ड्रेन्स ऐक्ट, बम्बई १९४८, मद्रास १९५०, पश्चिमी, बंगाल १९५१, आंध्र[1] १९५१, दिल्ली १९४१, केरल[2] १९४५, कोचीन[3] १९४६, मैसूर[4] १९४३	मध्यप्रदेश का बाल-अधिनियम[5] अभी पूरा नही हुआ है। बिहार प्रदेश भी ऐसा ही अधिनियम बनाने जा रहा है।

१. उस समय हैदराबाद
२. उस समय ट्रावन्कोर
३. आज केरल में
४. आज आंध्र प्रदेश में
५. Children's Act.

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
		पजाब १९४९, उत्तर प्रदेश १९५३, प्रोबेशन आव आफेंडर्स ऐक्ट — बम्बई १९३८, मद्रास १९३६, मध्यप्रदेश १९३६, उत्तर प्रदेश १९३८, मैसूर १९४३, केन्द्रीय सरकार का ऐक्ट १९५८	
२. पाकिस्तान	१. अप्रैंटिस ऐक्ट (इंडिया ऐक्ट XIX १८५०)	वही पुराने ऐक्ट लागू है	इस विषय मे सयुक्त राष्ट्र-संघ को भी कोई जानकारी नही है।
	२. रिफार्मेटरीज स्कूल्स ऐक्ट, (इडिया ऐक्ट VII १८९७)	नया अभी नही बना	
३. बर्मा	१. अप्रैंटिस ऐक्ट (इंडिया ऐक्ट XIX १८५०)	यग आफ़ेंडर्स (बाल अपराधी) ऐक्ट, बर्मा ऐक्ट —१९५०	सन् १९५२ में बाल अधिनियम बिल का मस्विदा बन गया था। इस समय तक वह अवश्य लागू हो गया होगा।
	२. रिफार्मेटरीज स्कूल्स ऐक्ट १८९७		
४. लंका	यूथफुल आफेंडर्स (बाल अपराधी) आर्डिनेंस १८८६ तथा १९२८	१. यूथफुल आफ़ेंडर्स आर्डिनेस, १८८६, १९२८	चिल्ड्रेन्स एंड यग पर्सन्स आर्डिनेस—४८—१९३९ तथा १९५१ का

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
		२. यूथफुल आफ़ें-डर्स (ट्रेनिग-स्कूल) आर्डि-नेंस, नं० २८–१९३९ का	विचाराधीन था।
		३. प्रोबेशन आव आफेंडर्स आर्डि-नेंस, नं० ४२–१९४४-४७ का	आज की स्थिति ठीक से ज्ञात नहीं है।
५. जापान	१. रिफार्मेटरी ला, १९००	१. जुवेनाइल ला १९४८	
	२. जुवेनाइल (बाल) ला (कानून) १९२२	२. चाइल्ड वेल्फेयर (शिशु कल्याण) कानून १९४७	कोई नही
	३. जुवेनाइल कंट्रोल एंड प्रोटेक्शन ला (बाल नियंत्रण तथा संरक्षण नियम) १९३३	३. आफेडर्स प्राबे-शन एंड रिहै-बिलियेशन (रोकथाम तथा पुनर्वास) क़ानून १९४८	
६. फिलप्पीन	१. सन् १९०६ का ऐक्ट नं० १४-३८ २. सन् १९१९ का ऐक्ट नं० २८१५	जुवेनाइल डेलि-क्वेंट (बाल अपराधी) ऐक्ट नं० ३२०३ १९२४ का	बाल अदालतों की स्थापना हुई है।
७. थाईलैंड (स्याम)	१. कंट्रोलिग जुवे-नाइल एंड	१. चिल्ड्रेस एंड जुवेनाइल कोर्ट	कोई नही

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
	'स्टूडेन्ट्स ऐक्ट १९३९	(बाल अदालतें) ऐक्ट १९५१	
	२. ट्रेनिग आव जुवेनाइल ऐक्ट १९३६	२. चिल्ड्रन एंड जुवेनाइल कोर्ट प्रोसीड्योर ऐक्ट १९५१	

सामाजिक सेवा

एशिया के विभिन्न देशो में बाल-समाज की सेवा के लिए सार्वजनिक तथा सरकारी काम भिन्न मात्रा में हुए है। अभी कुछ वर्ष पहले तक ब्रिटेन के अधीन देशो में, जैसे भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लंका अथवा डचो के अधीन हिन्द एशिया मे यह काम एक प्रकार से हुआ ही नही था और हुआ भी तो बहुत कम। अब जाकर कुछ-कुछ चालू हुआ है।

भारत--सरकारी तौर पर बाल-समाज का कार्य काफ़ी कम मात्रा मे भारतवर्ष में भी हुआ है। जैसा कि हम ऊपर बतला आये है, ३१ दिसम्बर १९५८ को उत्तर प्रदेश के जेलों मे, जिनमे बाल-सुधारगृह यानी बरेली का सुधारगृह, जिसे किशोर-सदन कहते है, शामिल है, ८६,४५३ बन्दी थे, १,३२,४४५ विचाराधीन क़ैदी थे तथा २३,५९९ बाल-अपराधी थे। इन बाल-अपराधियों के लिए केवल २ सुधारगृह थे जिनमें बरेली का किशोर-सदन शामिल है। मद्रास में बच्चों के लिए एक बोर्स्टल स्कूल है जो पलायम-कोट्टाई में है। बम्बई मे ३१ मार्च १९५८ को ७७९० बाल-अपराधी तथा २६९९ बालिका अपराधिनी थी जिनके लिए २७ रिमाड होम (सुरक्षागृह), ३६ सर्टिफ़ाइड स्कूल्स, ९३ "योग्य व्यक्ति संस्थाएँ" तथा २८ बाल-अदलातें यानी १८४ संस्थाएँ थी। बाल-अपराधियों के लिए इतना प्रबंध होने पर भी बम्बई प्रदेश की पुलिस की १०६२ हवालातों को मिलाकर १४५३ जेलों में १३, ५७८ क़ैदी, ५८३५ विचाराधीन कैदी तथा ८४७ बाल-अपराधी थे।[1] ये बाल-अपराधी ऊपर लिखी १८४ संस्थाओ के बावजूद भी जेलों में—मुख्य जेलों में—रखे गये है।

१. प्रधान कारागार निरीक्षक, बम्बई का पत्र सं० ६२२, १७ जून १९५९—अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम।

उड़ीसा जैसे छोटे राज्य में, जिसकी आबादी १,४६,४९,००० के लगभग है, ३१ मार्च १९५९ को समाप्त होनेवाली तिमाही में ५८ हत्याएँ, २९ डाके, ४१ डकैतियाँ (सशस्त्र नही), १००४ सेंध लगाकर चोरी करने की घटनाएँ, १७१३ चोरियाँ तथा १०८ बलवे हुए। सशस्त्र डाको का औसत प्रति एक लाख आबादी पीछे ३ था। यही औसत हत्या का भी था। डकैतियों का औसत २७ था। चोरी का औसत प्रति एक लाख व्यक्ति पीछे ६ ८ था।[१] इन आँकड़ो से बाल-अपराधियों की सख्या स्पष्ट नही होती पर यह जरूर पता चलता है कि जेबकटी के ४०, चलती गाड़ी से चोरी के ४४ तथा छिटपुट चोरी के ८ मामले हुए। अवश्य ही इनमें बाल-अपराधी है पर उड़ीसा में बाल-अपराधियों के लिए कोई विशेष प्रबंध नही है।

बाल-कल्याण के कार्यो की ओर प्रथम तथा द्वितीय दोनो पंचवर्षीय योजनाओं मे नियोजकों का ध्यान नही गया था। अब तीसरी पंचवर्षीय योजना की तैयारी मे हमारा नियोजन विभाग विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। हमारे देश मे १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चो की संख्या लगभग १५ करोड़ है।[२] यदि इतनी बड़ी संख्या की ओर से हम उदासीन रहेगे तो हमारा कल्याण कैसे होगा ? नयी योजना मे नियोजको की राय में परिवार से तिरस्कृत या उपेक्षित, परित्यक्त आदि बच्चों की रक्षा, पालन तथा शिक्षण का प्रबंध होगा। ऐसे सामाजिक कार्यकर्त्ता नियुक्त होंगे जो बच्चो के लालन-पालन आदि की शिक्षा माता-पिता तथा परिवार वालों को देंगे। अन्य सरकारी तथा समाज-कल्याण विभाग द्वारा बाल-कल्याण का जो छिटपुट कार्य होता है वह एक सूत्र मे पिरो दिया जायगा और उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, आमोद-प्रमोद आदि का कार्य भी एक ही एजेन्सी के द्वारा सम्पन्न होगा। जो सार्वजनिक संस्थाएँ बाल-कल्याण का कार्य कर रही है, उनको प्रोत्साहन दिया जायगा, उनकी सहायता की जायगी। बच्चो को पुष्टिकारक भोजन तथा स्वस्थ शिक्षा देने की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जायगा। केन्द्रीय सरकार बाल-अधिनियम तथा ऐसे सभी नियमों की जाँच करके सब प्रदेशों के लिए उपयुक्त नियम बनाने का प्रबध करेगी।

यह सब काम आगे चलकर होगा। इस समय न तो जनता और न सरकार ही इस ओर विशेष ध्यान दे रही है। सरकार ने तो कुछ किया भी है पर जनसमूह अपने

१. इंस्पेक्टर जनरल पुलिस, उड़ीसा का पत्र सं० ६३२०, २५ मई १९५९, अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम ।

२. नयी दिल्ली का १५ जून १९५९ का समाचार

ही बच्चों के प्रति एकदम उदासीन है। सब काम सरकार नही कर सकती। हमारा भी कुछ कर्त्तव्य होता है। हमारे देश मे कुछ ग़ैर-सरकारी संस्थाएँ सरकार से सहायता प्राप्त कर इस दिशा मे अच्छा कार्य कर रही है। देश में बहुत से अच्छे अच्छे अनाथालय, महिलाश्रम, बाल-उद्योगभवन, बाल-क्रीडा केन्द्र, बाल-सहायक समिति, बाल-कल्याण समिति, बाल-संरक्षण समिति, प्रोबेशन तथा आफ्टर-केयर (उत्तर-रक्षा) असोसियेशन[१], ऐसी संस्थाएँ है। इनका काम और भी आगे बढ सकता है यदि लोग सरकार की ओर देखना बन्द करके जरा अपने बच्चो के नाम पर ऐसी संस्थाओ की सहायता भी किया करे। हमारे उत्तर प्रदेश के बाल-जेलो मे या सुधारगृहो में या बरेली के किशोर-सदन मे केवल ये बालक रखे जा सकते है—

१. ऐसे प्रत्येक बालक को जिसे कठोर कारावास का दंड मिला हो, किशोर-सदन बरेली भेज देना चाहिए।
२. उसकी उम्र १८ वर्ष से ऊपर की न हो, २३ वर्ष की उम्र तक उसको अपनी सजा पूरी कर लेनी चाहिए, तथा किसी की सजा एक वर्ष से कम की न हो।
३. चेहरे से वह बालिग न मालूम पडता हो।
४. अपराधी जाति का न हो।
५. दफा १०९, ११० या १२३ (भारतीय दड-विधान) के अंतर्गत दंडित न हो।
६. अप्राकृतिक व्यभिचार के लिए दंडित न हो।
७ जितने दिन तक वह जेल में विचाराधीन रहा है, उसका चालचलन ठीक रहा हो।
८. उसे कोई छुतही बीमारी न हो, उसका स्वास्थ्य ठीक हो, उसकी बुद्धि ठीक हो।

इतनी शर्तों के बाद यदि किसी बाल-भवन में श्रेष्ठ अपराधी यानी अच्छे लड़के इकट्ठा न होंगे तो क्या बुरे लड़के पहुँचेगें? हमारी सम्मति में सुधार-गृहों में प्रवेश के लिए इतनी शर्त्तें अवांछनीय है। पर, इस विषय पर हम यहाँ विचार नही करेगे।

बर्मा—बर्मा में सन १९२८ मे परित्यक्तों के लिए एक आश्रम की स्थापना हुई

१. Probation and After care Association. **प्रोबेशन के लिए हिन्दी में "परिवीक्षण" शब्द है;** After-care **कहते है जेल से छूटने के बाद देखरेख यानी उत्तर-रक्षा।**

थी। सन् १९५१ में इस सस्था ने अपनी जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसमें लिखा है—"यह आश्रम चार प्रकार के लड़कों के लिए है। परित्यक्त और घर से भागे हुए, बाल-अपराधी कहे जानेवाले, विचाराधीन बाल-बंदी तथा घरेलू जीवन मे नियंत्रण मे न रहनेवाले बच्चे। प्रथम श्रेणी मे यानी परित्यक्त इत्यादि वे बच्चे है जो अनाथ है, बडे दरिद्र माता-पिता की सतान है, निर्दोष है, उन्हे सरकार ने हमारे पास नही भेजा है। बाल-अपराधी कहे जानेवालो मे बहुत से निर्दोष भी होते है, वे बाल-अपराधी नियम, धारा २० के अंतर्गत हमारे पास केवल नजरकैद करने के लिए भेजे जाते है। बाल-अपराधियो के लिए सरकार की ओर से २० रुपया फी अपराधी भोजन-व्यय हमको मिलता है जब कि हमारे आश्रम मे प्रति व्यक्ति पीछे ३८ रुपया ६ आना खर्च पड़ता है।"

लका—परिवीक्षण (प्रोबेशन) सेवा केन्द्र तथा अनाथालयों में बाल-अपराधी भी रखते है, यो तो साधारण जेलो का एक कोना बाल-अपराधियो के लिए काम आता है। बाल-समीक्षण केन्द्र केवल एक है, राजधानी कोलम्बों में। बाल-अपराधियों को दंड देने के पूर्व उनकी जॉच-पड़ताल का काम परिवीक्षण अधिकारी करता है। अपने कार्य में वह समाजसेवकों से भी सहायता ले सकता है।

पाकिस्तान—कराची में एक बाल-कल्याण समिति है। यह गैर-सरकारी संस्था है। यही कराची के सरकारी बाल-सुरक्षा-गृह का भी प्रबंध करती है। इस संस्था को जनता की उदासीनता के कारण बडा कष्ट है। यह सरकारी सहायता से ही जीवित है। वैसे, संयुक्त राष्ट्र-संघ के अनुसार, पाकिस्तान में बाल-सुधार या बाल-अपराधी की देखरेख का कार्य नही के बराबर है।[1]

थाईलैंड—स्याम देश में बच्चो की देखरेख के लिए इससे अधिक उपयुक्त तथा प्रशसनीय सगठन है। वहॉ नया क़ानून बनने के बाद, जिसका जिक्र हम अपनी तालिका में कर आये है, बाल-कल्याण केन्द्र तथा बाल-कल्याण समितियॉ एक में मिलाकर केन्द्रीय सगठन के अंतर्गत कर दी गयी है। पर ऐसा सगठन अभी कागज पर ही है। राजधानी बैंकाक को छोड़कर और कही इसका कार्य, आज से तीन वर्ष पूर्व तक चालू नही हो पाया था, पर यह आशा जरूर करनी चाहिए कि इस बीच में ऐसा संगठन चतुर्दिक् हो गया होगा।

फिलप्पीन—फिलप्पीन द्वीपसमूह का सरकारी समाज-कल्याण कमीशन बाल-

१. राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट–पृष्ठ १६

अपराधी, दोषी, अपाहिज, भ्रष्ट तथा परित्यक्त—हर प्रकार के बच्चों की देखरेख करता है। यह कमीशन[१] (संस्था) नजरकैद या सुरक्षागृह मे रोके हुए अपराधियो को छोड-कर परिवीक्षण का काम करता है, बाल-अपराधियों के सुधार, शिक्षा तथा पुनर्वास का प्रबंध करता है। परिवीक्षण विभाग बाल-अपराधियों में सामाजिक अनुसंधान का कार्य करता है। किन्तु यह खोज तभी की जाती है जब मनीला की बाल-अदालत के विचारपति किसी मामले में ऐसा करने का आदेश देते है। ऑकडो से पता चलता है कि बाल-अदालते बहुत कम मामलों में इनकी सहायता प्राप्त करती है।

जापान—जापान मे सार्वजनिक और सरकारी, दोनो दृष्टियों से बालसेवा तथा बाल-कल्याण का कार्य एशिया मे श्रेष्ठ होता है। उसका रूप इस प्रकार है—

१. सुप्रीम कोर्ट (सबसे ऊची अदालत) के मुख्य सचिवालय के साथ नत्थी पारिवारिक विषयसमिति[२]; इसी के अंतर्गत बाल-अदालते काम करती है।
२. न्याय मन्त्रालय के अन्तर्गत दंड-सुधारसमिति है। इसके अंतर्गत बाल-अपराधियों की नजरबन्दी, वर्गीकरणगृह (जहाँ पर छानबीन की जाती है कि किस श्रेणी में रखने योग्य अपराधी है, उनकी देखरेख, शिक्षा, पुर्नवास आदि का कार्य होता है।
३. न्याय मन्त्रालय के ही अंतर्गत पुनर्वास समिति है जिसके अतर्गत जिला युवक अपराध-निरोधक तथा पुनर्वास समिति (कमीशन)[३] तथा युवक निरीक्षण कार्यालय है, जिसको निर्णय करना पडता है कि निगरानी पर छोडा जाय या नही, परिवीक्षण पर छोड़े गये लोगो को उचित आदेश देना, इत्यादि।
४. स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा बालको-बालिकाओ के स्वास्थ्य सुधार का सब कार्य।

गिरफ़्तारी, अवरोध, निरीक्षण

बाल-अपराधियो की गिरफ्तारी के लिए बर्मा, सीलोन, लंका, फ़िलप्पीन, पाकिस्तान तथा थाईलैंड (स्याम) देशो मे कोई विशेष नियम नही है। भारत के कई प्रदेशों में यही बात है। फिलप्पीन की राजधानी मनीला तथा बर्मा की राज-

१. Social Welfare Commission

२. Family Affairs Bureau

३. District Youth Offenders' Prevention and Rehabilitation Commission called Dyopar

धानी रंगून मे वेश्याओं, महिलाओ, लडकियो तथा छोटी उम्र के बच्चों की गिरफ्तारी के लिए विशेष महिला पुलिसदल नियुक्त है। मनीला मे पुलिस का बाल-विभाग भी अलग है। यह विभाग ही गिरफ्तारी के बाद तय करता है कि कौन मामला अदालत में जाने के काबिल है और कौन डरा-धमकाकर या चेतावनी देकर छोड़ देने के योग्य है। बाल-अपराधियो की गिरफ्तारी के लिए मनीला पुलिसविभाग में हाई स्कूल के लडके या लडकियाँ (छात्राएँ) नियुक्त कर दी जाती है। सन् १९४८ मे इस नगर मे ऐसे २५०० छात्रा-छात्र कांस्टेबुल थे जिनका काम था कि बच्चों के लिए हानिकारक स्थानों मे, जैसे शराबखाने, रात्रि के क्लब, नाचघर इत्यादि में उनका जाना रोके या यदि जा रहे हों तो मना कर दें।

बम्बई मे बाल-अपराधियो के लिए एक विशेष पुलिस जत्था है, जिसमें पुरुष, स्त्री दोनों ही है। अगस्त १९५२ मे इस जत्थे की स्थापना हुई थी। यह जत्था बम्बई प्रदेश की नीम सरकारी बाल-सहायक समिति के सहयोग से केवल गिरफ्तारी का ही काम नही करता, पर बाल-अपराध रोकने, या नियत्रण का तथा अनाथ, तिरस्कृत या दरिद्र बच्चों की रक्षा का भी काम करता है।

फ़िलिप्पीन मे बाल-अधिनियम धारा १०-अ के अनुसार प्रोबेशन अफसर यानी परिवीक्षण अधिकारी को पुलिस अफसर के अधिकार प्राप्त है। बर्मा मे पुलिस विभाग के अतिरिक्त भी, वास्तविक अपराध करने के पूर्व अपराधी प्रवृत्ति के लड़के-लड़कियो को गिरफ्तार करने के लिए नागरिको मे से कुछ व्यक्तियो को यह अधिकार प्राप्त रहता है। इनकी नियुक्ति जिलाधीश करते है। शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियो को आवारा लडको को गिरफ्तार करने का अधिकार होता है। बम्बई मे भी परिवीक्षण अधिकारी को आवारा घूमनेवाले, बुरे चाल-चलन के, सड़क पर भीख माँगनेवाले, गृहविहीन, वेश्यावृत्ति करनेवाले, अनाथ, शराबी आदि लडके-लड़कियो को पकड़ने का अधिकार है। कुछ नागरिकों को भी यह अधिकार प्राप्त है। बाल-अधिनियम १९४८, धारा ७८-१ के अनुसार सब-इंस्पेक्टर के ओहदे से नीचे का पुलिसमैन बाल अपराधियों को गिरफ्तार नही कर सकता। धारा ६६ के अनुसार ऐसी गिरफ्तारी के बाद परिवीक्षण अधिकारी को तुरत सूचना देनी चाहिए। थाईलैंड के बाल-अधिनियम की धारा २४ के अनुसार गिरफ्तारी के बाद बाल-कल्याण केन्द्र अथवा समिति के संचालक तथा माता-पिता या अभिभावक को तुरत सूचना देनी चाहिए। मोटे तौर पर, यह मान लेना चाहिए कि ऊपर लिखे देशों में बाल-अपराधियो की गिरफ्तारी के बारे मे कोई खास नियम नही चालू है—कुछ स्थानों को छोडकर—केवल एक बात जरूर है कि बर्मा, भारत, पाकिस्तान तथा लंका

के दंड-विधान में इतना अवश्य लिखा है कि ऐसे "गिरफ्तार व्यक्ति पर उतना ही प्रतिबंध रहना चाहिए जितने से वह भाग न जाय।" यदि गिरफ्तार करनेवाला अफसर चाहे तो नरमी बरत सकता है।[1]

जापान मे भी साधारण दंडविधान के अतर्गत बाल-अपराधियों की गिरफ़्तारी आम पुलिस द्वारा ही होती है पर बाल-अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तारी का कार्य "बाल-अनुसधक" तथा अदालत के क्लर्क आदि करते है। ऐसी दशा मे गिरफ़्तारी का वारण्ट बाल-अनुसधक के हस्ताक्षर से जारी होता है। "परिवार अदालत" की आज्ञा से राष्ट्रीय ग्रामीण पुलिस अफसर, म्युनिसिपल पुलिस अफसर या कोर्ट क्लर्क वारंट की तामील कर सकता है। अन्य अपराधियो की भॉति बाल-अपराधी भी प्रत्येक देश मे, जमानत पर छोडा जा सकता है। पर बर्मा मे जमानत के नियम इतने कठोर हैं कि बच्चो के लिए जमानत पर छूटने मे बड़ी कठिनाई होती है।[2]

हम यह ऊपर ही लिख आये है कि एशिया के अधिकाश देशों मे गिरफ्तार होने-वाले बाल-अपराधियो को बड़ों के जेलो मे ही रखने का नियम है। कुछ देशो या प्रदेशों मे इन्हे बन्द करने के लिए विशेष आवास भी हैं। केवल जापान मे, देश भर मे ऐसे विशेष अवरोधगृह[3] बने हुए है। भारतवर्ष में दिल्ली, पश्चिमी बगाल, मद्रास तथा बम्बई मे विशेष अवरोधगृह है। अन्यथा हमारे यहॉ भी पुलिस की हवालात तथा बड़ो के जेल से काम लिया जाता है। हफ्तो, महीनों तक इनमे बाल-अपराधी सड़ते और नष्ट होते रहते है। बर्मा, पाकिस्तान, लंका तथा स्याम देश मे भी यही दशा है। रंगून में बहुत से बाल-अपराधियों को "घुमन्तू बालको या आवारा लड़कियों के लिए" दो आश्रमों मे, उनके अलग कक्ष मे रखने का प्रयास होता है। पर सभी बन्दी इन आश्रमों मे नही रखे जा सकते। फिलप्पीन की राजधानी मनीला मे ऐसे अवरोधगृह बन गये है जहॉ विचाराधीन बाल-अपराधी रखे जाते है। वही उनका मुकदमा होता है और छोटी मीयाद की सजा भी वही भोग लेते है। पाकिस्तान में, केवल कराची में एक अवरोधगृह है, बाकी तो आम जेलखाना ही काम देता है। कराची नगर में बम्बई का बाल-अधिनियम, (१९२४ का) अभी तक लागू है जिसके अनुसार "यदि १६

१. राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट, पृष्ठ १९

२. J. C. F. Hall–"Boy Crime in Burma", Pub American Baptist Mission Press, Rangoon, 1939–Page 29.

३. Detention Homes.

वर्ष के नीचे का गिरफ्तार व्यक्ति दफा १८ के अनुसार छोड़ नही दिया गया तो उसे सरकार द्वारा निर्धारित रूप में बन्द किया जायगा।" यह निर्धारित रूप है अवरोध-गृह या सुरक्षागृह में बन्द रखना। पर, जब ऐसे निवास ही नही है तो उनकी चिन्ता कौन करेगा ?

बम्बई, मद्रास, जापान तथा स्याम के कुछ भागों मे ऐसे सुरक्षागृह है जहाँ बाल-अपराधी केवल बन्दी ही नही रखा जाता, वहाँ पर उसके बारे मे आवश्यक छानबीन तथा जाँच-पड़ताल भी हो जाती है। उसका परीक्षण-निरीक्षण भी हो जाता है। पर जो सुविधा बम्बई मे बाल-अपराधियो को प्राप्त है, वह बम्बई प्रदेश मे और कही नही है। अन्य भाग में, वे साधारण जेलों मे, उनके एक अलग कक्ष में, रखे जाते है।

मद्रास बाल-अधिनियम की धारा १९-२० के अनुसार तथा बंगाल के बाल-अधिनियम की धारा १८-१९ के अनुसार यदि बाल-अपराधी की दफ़ा १७ के अंतर्गत जमानत नही हो गयी तो उसे पुलिसथाना या जेल के अतिरिक्त निश्चित स्थान में बन्दी रखा जायेगा। ऐसे अपराधी का मुकदमा जल्द से जल्द सुन लेना चाहिए। यदि अदालत किसी अपराधी को छोड़ने के बजाय उसका मुकद्दमा करना चाहती है तो ऐसी जगह उसे बन्दी रखे जो न तो जेल हो और न पुलिस की हवालात (धारा १९)। मद्रास बाल-अधिनियम इस विषय मे बहुत उदार तथा आदर्श है। उसके अनुसार बाल-अपराधी को किसी सम्मानित व्यक्ति, परोपकारी संस्था या समाज-कल्याण करनेवाली समितियाँ, गॉव का मुखिया या जहॉ सुरक्षागृह हो वहॉ रखना चाहिए। लड़कियों के लिए भी यही नियम है, बल्कि कुछ अधिक कठोर है। किसी भी दशा में लड़की को पुलिस की हवालात मे नही रखा जा सकता। मजिस्ट्रेट चाहे तो लड़की को किसी ऐसे भद्र पुरुष के जिम्मे कर सकता है जो उसे समय पर अदालत मे पेश कर दे।

बम्बई तथा मद्रास के बाल-अधिनियमों के अनुसार किसी भी स्थान को अवरोध-गृह घोषित किया जा सकता है। जिस कन्या या बालक को किसी के पास रख दिया जाय, उसका घर ही अवरोधगृह मान लेना चाहिए। कन्याओं के लिए निश्चित अवरोधगृह का निरीक्षण यथाशक्य महिलाओ द्वारा ही होना चाहिए और उन्ही के प्रबध में होना चाहिए। बम्बई सरकार ने कुछ अस्पतालों को भी, अंध आश्रम, महिला-आश्रम, अनाथालाय इत्यादि को भी "अवरोधगृह" के रूप में स्वीकार कर लिया है। बम्बई मे इस समय ऐसी ४३ संस्थाएँ सरकार से मान्यता प्राप्त है जिनके द्वारा न केवल बाल-अपराधियो के नियंत्रण का बल्कि उनके सुधार का कार्य भी होता है। इन संस्थाओं का प्रबंध गैरसरकारी समितियो के हाथ मे है। इनमे प्रमुख बम्बई प्रदेश

बाल-सहायक समिति को सरकार से पूरा खर्च मिलता है तथा अन्य समितियो को भी सहायता मिलती है।

अवरोधगृह अथवा सुरक्षागृह[१] का संगठन बम्बई तथा मद्रास मे समान रूप से है। मद्रास मे छ अवरोधगृह है। पश्चिम बगाल मे लड़को के लिए तथा लड़कियों के लिए अलग-अलग एक-एक सुरक्षा (अवरोध) गृह है। ये दोनो ही कलकत्ता में है। परिवीक्षण अधिकारी बाल-अपराधियो को जमानत पर छोडने के विरुद्ध है। उनका कहना है कि इस प्रकार छोड़ देने से उनकी निगरानी से जो बाते मालूम होती है, जो परीक्षण होता है, उसका लाभ नही प्राप्त होता ।[२]

परिवीक्षण (प्रोबेशन) का कार्य उत्तर प्रदेश में भी काफी उन्नत है। यहाँ के १४ जिलो मे परिवीक्षण अफसर है और अन्य जिलो में भी योजना को लागू करने का विचार है। इस सम्बन्ध मे हम आगे चलकर विचार करेगे। बाल-अपराधियो के लिए उचित परामर्श देने के लिए तथा आम तौर पर सभी समस्यामय बच्चो के उचित मार्ग-निर्देशन के लिए जिस प्रकार की "क्लिनिक" होनी चाहिए वह हमारे देश में प्रायः नहीं है। कुछ थोडा बहुत कार्य बम्बई तथा पूना की दो संस्थाएँ—दो "क्लिनिक" कर रही है। बाल-अपराधियो को दस्तकारी, शिक्षा, कला तथा अनेक उपयोगी कार्य सिखलाने के लिए उत्तर प्रदेश, बम्बई, मद्रास आदि में बडे अच्छे केन्द्र है। उत्तर प्रदेश का किशोर-सदन तथा बम्बई का उमरखेडी का केन्द्र इसके लिए प्रसिद्ध है। मद्रास में भी बालकेन्द्र तथा कन्याकेन्द्र में ऐसी शिक्षा का समुचित प्रबंध है।

स्याम देश में अवरोधगृह को बाल-कल्याण केन्द्र कहते हैं। बाल-कल्याण समिति का पदेन अध्यक्ष उस "चांगवाद" यानी ज़िले का कमिश्नर होता है। सभापति "मुआग" यानी नगर की म्युनिसिपल कौंसिल का चेयरमैन होता है। इसके तीन सदस्य न्याय मंत्रालय से नियुक्त होते है तथा "चांगवाद" का हेल्थ अफ़सर और ज़िला विद्यालय निरीक्षक इसके पदेन सदस्य होते है। थाई बाल-अधिनियम की धारा ३३ के अनुसार यदि अदालत उचित समझे तो बाल-अपराधी को बाल-कल्याण समिति की देखरेख में भेज सकती है। जापान के बाल-अधिनियम की धारा १७ के अनुसार "गृह

१. Detention Centres & Remand Homes.

२. Sectional Conference of Probation Officers, Bombay, 1947.

या पारिवारिक अदालतें" यह निर्णय करेगी कि विचाराधीन बाल-अपराधी परिवीक्षण अफ़सर या "अवरोधगृह" या "वर्गीकरणगृह" कहाँ रहेगा। स्याम देश की तरह जापान मे भी अवरोधगृह सरकारी प्रबंध मे है। अवरोधगृह अथवा "वर्गीकरण" (किस श्रेणी में रहने योग्य है) गृह मे केवल पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक परीक्षा ही नही होती, डाक्टरी जॉच, पारिवारिक जॉच आदि सभी कुछ होता है।

बच्चे को ऐसे आश्रमो में रखना जहॉ पर निकट से उसका "अध्ययन" किया जा सके, यह पता लगाया जा सके कि यदि वह नटखट है, दुष्ट है तो क्यों है—या क्यों उसकी प्रवृत्ति अपराधों की ओर जा रही है, इसकी जाँच की सहूलियत—अपराधी बनने के पूर्व की समीक्षा की सहूलियत भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लंका, थाईलैंड तथा फ़िलप्पीन देशों में नही है। भारत में बम्बई मे ऐसा कुछ प्रबंध है पर जिस प्रकार की ऐसी संस्थाएँ या गृह होना चाहिए वैसा प्रबंध नही है। जापान में अवश्य इसका बड़ा अच्छा संगठन है। ऐसे केन्द्र उस देश में चारो ओर है जहाँ सजा के पहले या बाद मे लड़का या लड़की बारीक जॉच के लिए भेजा जाता है, रखा जाता है। वही पर यह निश्चय होता है कि उसकी व्यक्तिगत चिकित्सा किस प्रकार से हो, उसे किस श्रेणी में रखा जाय—यानी किस प्रकार की शिक्षा उसे दी जाय। अदालत यह भी आदेश दे सकती है कि बच्चे की किस विषय में छानबीन हो, जॉच हो, सूक्ष्म परीक्षण हो। धारा १६ के अनुसार बाल अपराधी के "स्वभाव" की जाँच कराना काफ़ी जरूरी है। उसके बारे में, उसके परिवार के बारे में, उसके साथियों के बारे में—हर प्रकार की जॉच की जाती है। तब यह निश्चय हो पाता है कि उसने अपराध क्यों किया और उसे स्वस्थ नागरिक किस प्रकार बनाया जाय। स्पष्ट है कि इतनी जॉच-पड़ताल के बाद उस लड़के या लड़की के हृदय की तसवीर सरकार के सामने होती है और जहॉ पर गन्दगी हो, उसे दूर कर उसे स्वस्थ नागरिक बनाया जा सकता है।

अध्याय २२

बाल-अदालतें

बाल अपराधी को सुधारने या दंड देने के लिए आजकल विशेष अदालतें नियुक्त है जिन्हें 'बाल-अदालत' कहते है। सब एशियाई देशो में ऐसा नही है। अधिकाश देशों में साधारण अदालतें ही उनका अभियोग सुनती है।

जापान—जापान मे वही साधारण फ़ौजदारी की अदालते उनका मुकदमा सुन सकती है जिनको ऐसा अधिकार प्राप्त है तथा इनके अलावा (१) विशेष पारिवारिक अदालतें तथा (२) बाल-कल्याण केन्द्र भी यही कार्य करते है। जापान की पारिवारिक अदालतें सन् १९४७ के नियम ५९ तथा सन् १९४८ के बाल-अधिनियम सं० १६८ के अनुसार संगठित हुई थी। ये पारिवारिक अदालते २० वर्ष के नीचे के लड़के लड़कियो के मुकदमे सुनती है। उन बालिग लोगों का मुक़दमा भी यही होता है जिन पर बच्चो को बिगाडने का, भ्रष्ट करने का अभियोग होता है। पारिवारिक झगडे, माता-पिता की लडाई या अभिभावक की खराबी के कारण दूसरे अभिभावक की नियुक्ति आदि का काम भी इन्ही के द्वारा होता है। बाल-कल्याण अधिनियम के अनुसार संगठित बाल-कल्याण समितियो का अधिकार १४ वर्ष से नीचे के बच्चों पर है और ये ग़ैर-अदालती संस्थाएँ हैं जिनमे प्रथम अपराधी छोटे-मोटे अपराध के आते है। इनके सामने घुमन्तू तथा आवारागर्दी के मामले, बच्चों के साथ निर्दयता, पारिवारिक मतभेद आदि के मामले भी आते है। जापान मे पारिवारिक अदालतो तथा बाल-कल्याण केन्द्रों का ही बाल-अपराधों के सम्बन्ध में अधिकतम उपयोग होता है। ऐसे केन्द्र के प्रधान को "तो" या "दो" कहते है।

भारत—स्याम की राजधानी बैंकाक, पाकिस्तान की राजधानी कराची तथा भारतवर्ष में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विशेष बाल-अदालते है। पर आदर्श बाल-अदालत, भारतवर्ष में, केवल बम्बई मे है जिसमे एक महिला विचारपति बैठती है, जिनका अन्य किसी न्यायालय से सम्बन्ध नहीं होता तथा जिनके इजलास में पुलिस कर्मचारी बाल-अभियुक्तों के साथ अपनी वर्दी में नहीं आ सकते, यानी उनको सादे लिबास में आना पड़ता है ताकि बच्चे पर बुरा प्रभाव न पड़े। बम्बई तथा मद्रास

प्रदेश में बाल-अपराधी के सम्बन्ध में सभी कार्य सर्टिफाइड स्कूल्स, अवरोधगृह, सुरक्षागृह सुधारगृह, परिवीक्षण विभाग आदि "चीफ इंस्पेक्टर सर्टिफाइड स्कूल्स" के अन्तर्गत है। उत्तर प्रदेश तथा बिहार में परिवीक्षण-विभाग प्रधान कारागार-निरीक्षक के अधीन है। पर स्याम देश मे, जहाँ केवल बैंकाक मे एक बाल-अदालत है तथा अन्य नगरो के लिए अन्य अदालतों में काम करनेवाले विचारपतियों को "बाल-अदालत" का अधिकार दे दिया गया है, सम्राट् द्वारा नियुक्त समस्त बाल-अदालतों का एक प्रधान न्यायाधीश होता है। बाल-अपराध तथा बाल-कल्याण का समस्त कार्य इस पदाधिकारी के अधीन है। बिना इस अधिकारी की अनुमति के गैर-सरकारी बाल-छात्रावास, बाल-अस्पताल, बाल-सदन या लड़के-लड़कियो के लिए स्कूल नही खोला जा सकता। जापान, भारत—एशिया के प्रायः सभी देश अन्य अदालतों के जज लोगो को या मैजिस्ट्रेट को "बाल-अदालत" का अधिकार देकर काम चलाते है। उत्तर प्रदेश मे हर जिले में, जहाँ पर प्रोबेशन सेवा लागू है, एक प्रोबेशन मजिस्ट्रेट होता है। पर यह अधिकारी और भी काम करता है। बम्बई के बाल-अधिनियम १९४८ की धारा ३८ के अनुसार "परिवीक्षण अफसर" इस अधिनियम के अन्तर्गत अदालत का एक कर्मचारी होगा तथा बाल-अदालत के नियंत्रण में ही कार्य करेगा।" बगाल तथा मद्रास के बाल-अधिनियमों में इस प्रकार की कोई स्पष्ट धारा नही है।

जापान मे, सन् १९४८ के बाल-अधिनियम के अनुसार, पारिवारिक अदालतों के अधीन जो विचारणीय बाल अपराधी आते है, उनकी व्याख्या कानून की धारा ३ के अनुसार निम्न प्रकार से है। बाल-अपराध में रुचि रखनेवालो को यह व्याख्या रोचक प्रतीत होगी।

१. कोई बालक या बालिका जिसने कोई अपराध नही किया हो।

२. कोई बालक या बालिका जिसने किसी दंडविधान या आर्डिनेन्स की अवज्ञा की हो।

३. नीचे लिखे कारणों से जिससे यह आशंका हो कि अपने चरित्र या वातावरण के दोष से वह अपराधी बननेवाला है।

४. (क) अपने अभिभावको के साधारण नियंत्रण में भी नही रहता।
   (ख) बिना किसी ख़ास कारण के घर छोड़कर भाग जाता है।
   (ग) पहले से बदनाम और बदचलन लोगो का साथ करता है या ऐसे स्थान पर जाता है जहाँ नियम-विरुद्ध काम होता है।

(घ) वह आदतन ऐसा काम करता है जिससे उसके अथवा दूसरों के चरित्र की हानि होती है।

बम्बई, कराची, स्याम तथा जापान मे यह उपयोगी नियम है कि बाल-अपराधियों का नाम न तो जाहिर हो, न उसका विज्ञापन हो और न ऐसा कोई काम हो जिससे उनका भविष्य खराब हो जाय। बाल-अदालतों की कार्यवाही देखने की इजाजत नही है। अखबार वाले भी ऐसी अदालतो मे नही जा सकते।[1] मद्रास तथा बंगाल के बाल-अधिनियम इस विषय मे मौन है पर व्यवहार में बम्बई की प्रथा का ही वहाँ पर पालन होता है। थाईलैंड में बाल-अदालत कार्य-प्रणाली अधिनियम धारा ३९ के अनुसार—

बाल-अदालतो की कार्यवाही बन्द कमरे मे होगी और ऐसे मुकदमों के समय केवल निम्नलिखित लोग ही उपस्थित रह सकेंगे—

१. अभियुक्त, उसके कानूनी सलाहकार तथा वह व्यक्ति जो उसको (अभियुक्त को) अदालत की ओर से अपनी निगरानी मे रखे हो।

२. उसके माता-पिता, अभिभावक, या वह व्यक्ति जिसके साथ वह रहता हो।

३ अदालत अपने जिन अधिकारियो को वहाँ मौजूद रहने की इजाजत दे।

४ सरकारी वकील।

५. गवाह, विशेषज्ञ गवाह तथा दुभाषिया।

६. परिवीक्षण अधिकारी या बाल-कल्याण केन्द्र के अन्य अधिकारी या बाल-कल्याणसमिति के पदाधिकारी या सदस्य।

७ या अन्य कोई व्यक्ति जिसे उपस्थित रहने की अदालत अनुमति देती है।

बम्बई बाल-अधिनियम १९४८ की धारा १५ के अनुसार—

इस धारा में निर्दिष्ट के अतिरिक्त बाल-अदालत की किसी बैठक में वही व्यक्ति उपस्थित रहने पायेगा यदि वह—

(अ) अदालत का सदस्य या अधिकारी हो।

१. जापान का बाल अधिनियम, धारा ६२ और २२, थाईलैंड बाल-अदालत अधिनियम, धारा ५७, ६२ और ३९; बम्बई प्रदेश बाल-अधिनियम, धारा २३ और २४, पाकिस्तान में लागू बाल अधिनियम बम्बई, १९२४ धारा २७ बी०।

(आ) मुकदमे से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो, ऐसे लोगों में पुलिस कर्मचारी भी शामिल है।

(इ) जिसे अदालत विशेष अनुमति दे।

भारतवर्ष मे, जहाँ भी बच्चों के मुकदमे होते हैं, आम तौर पर खुली अदालतें नही होती और चेष्टा की जाती है कि बाल-अपराध का विज्ञापन न हो। बच्चों को कोड़ा मारने की सजा भारत मे एकदम बन्द कर दी गयी है। बच्चों को अर्थदंड भी नहीं दिया जाता। माता-पिता या अभिभावकों पर उस दशा में अर्थदंड हो सकता है जब यह साबित हो जाय कि बाल-अपराधी के क़सूर में उनकी भी जिम्मेदारी थी। यह नियम १४ वर्ष के नीचे के बच्चों के लिए है। १४ से १६ वर्ष के बच्चों पर जुर्माना होता है, पर मद्रास तथा बंगाल के क़ानून के अनुसार यह जुर्माना परिवार वालों को अदा करना पड़ता है या वे जुर्माना न देने पर जेल भी भेजे जा सकते है। जापान, थाईलैंड तथा पाकिस्तान में बाल-अपराधी को दूसरे के प्रति की गयी हानि के लिए क्षतिपूर्ति नही करनी पड़ती। बर्मा, लंका, फिलप्पीन द्वीपसमूह तथा भारत मे अदालत की अनुमति से क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है। भारतीय दंड-विधान की धारा ५४५ के अनुसार अपराधी पर लगाये गये अर्थदंड मे से पीड़ित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति की जा सकती है, पर नये बाल-अधिनियम में इसका कोई जिक्र नही है। फिर भी हमारा कानून इस दृष्टि से दोषपूर्ण है कि उसमें स्पष्ट नही किया गया है कि अर्थदंड कौन चुकायेगा, बाल अपराधी या उसका अभिभावक।

बाल-अपराधी अदालतों में, भारत तथा कराची नगर मे, अभियुक्त की ओर से कानूनन कोई वकील रखने की जरूरत नही है। बम्बई में तो नियम है कि यदि वकील रखना है तो बाल-अदालत से अनुमति लेनी पड़ेगी। जापान मे बाल अभियुक्त के लिए "पैरोकार" रखा जा सकता है। यदि वह पैरोकार वकील है तो अदालत से अनुमति लेने की जरूरत नही है, अन्यथा जरूरत पड़ेगी। पर स्याम देश में नियम है कि यदि बाल अभियुक्त अपने व्यय से वकील नही रख सकता तो वह चाहे या न चाहे, सरकारी ख़र्च से उसके मुकदमे की पैरवी के लिए वकील रखना आवश्यक है।

कोड़े लगाना

भारतवर्ष मे बच्चों को कोड़ा लगाने की प्रथा एकदम बन्द कर दी गयी। केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का इस सम्बन्ध में सन् १९५८ में आदेश जारी हो चुका है। पर बर्मा, लंका तथा पाकिस्तान में लड़कियों को छोड़कर, कोड़े लगाने का दड दिया

जा सकता है। स्याम देश मे मंत्रिमंडल के आदेश सं० ७ के अनुसार कोड़े लगाने के नियम निम्नलिखित हैं—

"किसी बच्चे या बाल अपराधी को कोड़े की सज़ा देने के समय यह आवश्यक है कि बाल-कल्याण केन्द्र के सचालक नीचे लिखी बातों का ध्यान रखें—

१. बिना डाक्टरी जॉच तथा सर्टिफिकेट के कि अभियुक्त कोड़ा खाने के योग्य है, कोडे न लगाये जायॅ।

२ कोड़ा लगाने की आज्ञा संचालक के सामने दी जाय।

३. गोल बाँस या रतन बेत की छड़ी हो जो एक सेटीमीटर से ज्यादा मोटी न हो तथा लम्बाई मे एक मीटर से बड़ी न हो।

४. बेंत तब लगाया जाय जब अपराधी खड़ा रहे तथा पैर के पीछे यानी चूतडो पर लगे।

५. छ. बार से अधिक बेत से प्रहार न किया जाय और उसके बीच में भी यदि डाक्टर मना कर दे तो कोड़ा लगाना बन्द कर दें।

६. कोडा लगाने के बाद अपराधी की डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिए।

प्रोबेशन (परिवीक्षण)

प्रोबेशन (भारत सरकार द्वारा स्वीकृत हिन्दी शब्द परिवीक्षण) का बड़ा महत्त्व है। इस प्रणाली द्वारा न केवल बाल-अपराधी का जीवन जेलों मे नष्ट होने से बचता है, बल्कि उसका सुधार भी हो जाता है। प्रोबेशन अफसर का कार्य बड़ा नाजुक तथा कठिन है। पर उसके द्वारा समाज का बड़ा कल्याण होता है। उदाहरण के लिए हम उत्तर प्रदेश में, जहाँ १८ वर्ष तक केवल १२ ज़िलों में ही प्रोबेशन अधिनियम लागू था, सन् १९३९ से १९५७ तक इस विभाग के द्वारा कितना कार्य हुआ है, यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा—

१ अक्टूबर १९३९ से ३१ दिसम्बर १९५७ तक उत्तर प्रदेश में नीचे लिखी संख्या में बाल-अपराधी प्रोबेशन अफसरों की देखरेख में छोडे गये तथा उसका निम्नलिखित परिणाम हुआ। इन अपराधियों मे रेलवे ऐक्ट धारा १२२ के अन्तर्गत भी अपराधी हैं।

१. परिवीक्षण अधिकारियों के अधीन परिवीक्षणीय अपराधियों की संख्या—२३८०

२. परिवीक्षणीय अपराधियों की संख्या जो अपनी निगरानी तथा परिवीक्षण अवधि में असफल साबित हुए—१३५ यानी ५.६ प्रतिशत।

३. परिवीक्षणीय अपराधी जो अपने सुधार की अवधि मे सुधर गये, सफल हुए—१८४४ या ७७.४ प्रतिशत।

४. ३१ दिसम्बर १९५७ को परिवीक्षण अफ़सरो की निगरानी में परिवीक्षणीय अपराधियो की संख्या ४०१ या १७ प्रतिशत।

२ अक्टूबर १९५४ से ३१ दिसम्बर १९५७ तक २४ वर्ष की उम्र के नीचे के वे प्रथम अपराधी जो परिवीक्षण में छूटने के अधिकारी थे तथा जिनको परिवीक्षण अफसर की निगरानी में रखा जा सकता था। (जितने अपराधियो का चालान हुआ, वही संख्या उपलब्ध है)।

(१)	२-१०-१९५४ से ३१-१२-१९५४ तक	२६४
(२)	१९५५	१,०९५
(३)	१९५६	८२३
(४)	१९५७	६११[1]

उपरिलिखित अपराधियो के सम्बन्ध मे कितने अपराधियो के विषय मे (२४ वर्ष की उम्र से कम के प्रथम बाल अपराधी) परिवीक्षण अफसरो ने उनके चरित्र, परिवार, अपराध करने के पूर्व का जीवन, पारिवारिक वातावरण, शारीरिक तथा मानसिक स्थिति इत्यादि की जाँच कर अदालत को सूचना दी—

(१)	२-१०-१९५४ से ३१-१२-१९५४ तक—	१५८
(२)	१९५५	७०३
(३)	१९५६	५६१
(४)	१९५७	३९५

अब हम नीचे वह तालिका दे रहे है जो इस तालिका का सबसे रोचक अंग है। २ अक्टूबर १९५४ से ३१ दिसम्बर, १९५७ तक परिवीक्षण के अंतर्गत, २४ वर्ष से कम उम्र के जितने प्रथम अपराधी परिवीक्षण अफ़सर के अंतर्गत रखे गये थे, उनका क्या परिणाम हुआ—

१. इन आँकड़ों से यह भी स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश में बाल अपराध घटा है।

वर्ष	परिवीक्षणीय अपराधियों की संख्या जिनका मामला समाप्त हुआ	परिवीक्षणीय अपराधी जिनका परिवीक्षण काल सफलतापूर्वक समाप्त हुआ	परिवीक्षणीय अपराधी जिनको सुधारने में सफलता नहीं मिल सकी
२-१०-५४ से ३१-१२-५४ तक	१७	१७ या १००%	एक भी नही
१९५५	११७	११५ या ९८·३%	दो या १·७%
१९५६	३८७	३८४ या ९९·२%	दो या ०·८%
१९५७	५७२	५६९ या ९९·५%	तीन या ० ५%
योग चार वर्ष का	१०९३	१०८५ या ९९·२ प्रतिशत	आठ या ०·८ प्रतिशत

जेल में न भेजकर, जीवन तथा चरित्र को नष्ट न कर, नये ढंग से समाज तथा खुले वातावरण मे रखकर सुधार करने के तरीके की महत्ता को स्थापित करने के लिए ऊपर दिये गये ऑकडो से बढकर और क्या प्रमाण दिया जा सकता है ? उत्तर प्रदेश के १०९३ बाल अपराधियों को जेल मे रखकर सड़ाने के बजाय, उन पर करदाता का औसतन दो रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से खर्च करने के बजाय तथा इतने ही "दुबारा अपराधी" बनाने के बजाय, हमारे-आपके इन बच्चों को सुधारने का यह कितना अच्छा उपाय है, यह पाठक स्वयं समझ जायँगे।

बर्मा मे परिवीक्षण प्रथा नही है, लंका मे है। भारतवर्ष में बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल के कुछ भाग में, मध्य प्रदेश, आंध्र तथा दिल्ली मे प्रोबेशन प्रणाली है। बिहार तथा राजस्थान मे भी शीघ्र चालू होनेवाली है। जापान में "परिवीक्षण पर (१) पारिवारिक अदालतों तथा (२) अपराधी की पुनर्वास संस्था के द्वारा अपराधी को छोड़ा जाता है। पाकिस्तान में असली प्रोबेशन प्रणाली केवल कराची नगर में लागू है। फिलप्पीन में अभी तक यह प्रथा राजधानी मनीला में ही लागू हो सकी है। थाईलैंड याने स्याम देश में अभी तक केवल राजधानी बैंकाक की बाल-अदालत के अधीन, केवल एक नगर के लिए, प्रोबेशन सेवा आयोग है।

भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न प्रदेशों ने अपना अलग-अलग प्रोबेशन ऐक्ट बना रखा था। सब जगह इसका विभाग तथा संगठन भी भिन्न था। जैसे, पश्चिम बंगाल मे (कलकत्ता मे) प्रोबेशन का मुहकमा केन्द्रीय बाल-अदालत के अधीन

था। मई १९४६ में मद्रास सरकार ने इसे प्रधान कारागार-निरीक्षक के अधीन कर दिया। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी सन् १९५६ से यही कर दिया है। बम्बई में प्रोबेशन सेवा बाल-सहायक समिति नामक नीम-सरकारी संस्था के अधीन है। जापान में ८०३ प्रोबेशन अफसर हैं।[१] इतने समूचे भारतवर्ष में नहीं हैं। हर प्रदेश में इनके अधिकारों में भी भेद है। कही २१ वर्ष तक के प्रथम अपराधी छोड़े जाते है और कही २४ वर्ष तक के प्रथम अपराधी परिवीक्षण अफसर के अधीन होते हैं।

जार्डन—पश्चिमी एशिया के राज्यों में केवल जार्डन में प्रोबेशन सर्विस है और कही नही है—मिस्र या सीरिया में भी नही है—वैसे ही भारत के बहुत से प्रदेशो मे इस नाम की कोई चीज नही है। जार्डन मे बाल-अधिनियम धारा १२—नियम सं० ८३, ५१—के अनुसार १५ वर्ष की उम्र के नीचे के बच्चों को सरकारी प्रोबेशन अफसर या समाज-कल्याण अफसर बाल-अदालत के सामने पेश कर यह सूचित कर सकता है कि "उस बच्चे की रखवाली तथा संरक्षण" की आवश्यकता है। पर इस श्रेणी में निम्न प्रकार के ही बच्चे आ सकते है—

१. वह बच्चा ऐसे परिवार या अभिभावको द्वारा पाला जा रहा है जो शराबी है तथा बच्चे की देखरेख करने में असमर्थ है।
२. बालिका किसी ऐसे पिता की लड़की है, चाहे वह जायज या नाजायज हो, जो अपनी जायज या नाजायज किसी कन्या के साथ व्यभिचार करने के लिए दंडित हो चुका है।
३ बालक या बालिका किसी प्रमाणित चोर या वेश्या का साथ देता या देती हो, बशर्त्ते कि वह वेश्या स्वय उसकी माता न हो।
४. वह लड़की किसी वेश्या के मकान में रहती हो या उसके एक कक्ष में रहती हो, जिससे उसके बर्गलाये जाने का खतरा हो।

बाल-अदालत ऐसे बच्चों को प्रोबेशन अफसर की निगरानी में रख सकती है। बाल अपराधियो को भी वह परिवीक्षक की निगरानी में छोड़ सकती है।

भारत—भारत सरकार का "प्रोबेशन आव आफेंडर्स ऐक्ट, १९५८"[२] अपराधी

१. A Guide to the Japanese Family Court, Page 7—**१९५३ में यह नियुक्तियाँ हुई थीं।**

२. The Probation of Offenders Act, 1958, No. 20 of 1958, The Gazette of India, Delhi, May, 19, 1958.

परिवीक्षण अधिनियम अब सारे देश में लागू हो गया है। कई दृष्टियों से यह बड़ा व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण नियम है। अभी तक के चालू नियमो में काफी संशोधन तथा परिवर्तन हो गया है और अपराधी के लिए अधिक उदार नियम बन गया है। इस कानून मे दोष भी हैं पर हम यहाँ पर कानूनी विवेचन नही करना चाहते। इस नियम के अनुसार —

धारा ३—दफा ३७९, ३८०, ३८१, ४०४ या ४२० (चोरी-जालसाजी आदि) के अन्तर्गत अपराध करनेवाला या ऐसा कोई अपराध करनेवाला जिसमें दो वर्ष तक की कैद हो सकती है, या जुर्माना हो सकता है, या दोनों हो सकते हैं। यदि अदालत ने उसे दोषी पाया पर जिस परिस्थिति में उसने अपराध किया है तथा उसके पूर्व के चरित्र का विचार कर अदालत उस अपराध के लिए लागू होनेवाली तत्कालीन दडविधान की धाराओं मे या इस अधिनियम की दफा ४ मे परिवीक्षण पर छोड़ने के स्थान पर केवल 'भर्त्सना' करके अपराधी को छोड़ सकती है।

धारा ४—यदि कोई व्यक्ति ऐसे अपराध के लिए अदालत द्वारा दोषी पाया गया है जिसमे प्राणदड या आजन्म कारावास की सजा न हो पर अपराध की परिस्थिति और उसके रूप को ध्यान मे रखते हुए उसे नेकचलनी के प्रोबेशन पर छोड़ देना उचित हो तो दंड-विधान की इस अपराध सम्बंधी धारा का बिना खयाल किये अदालत उसे तुरन्त कोई सजा न देकर यह आदेश दे सकती है कि उससे जामिन लेकर या बिना जामिन के यह इकरारनामा लेकर परिवीक्षण पर छोड़ सकती है कि जब कभी अदालत का आदेश होगा वह सजा प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष के भीतर हाजिर हो जायगा और इस अवधि मे वह अमन और अमान (शान्ति और व्यवस्था) कायम रखेगा तथा अपना चालचलन ठीक रखेगा।

बशर्ते कि अदालत ऐसे किसी अपराधी को परिवीक्षण पर नही छोड़ेगी जिसमें उसे संतोषजनक प्रमाण न मिल जाय कि अपराधी या यदि उसका कोई जामिन है तो वह जामिन किसी निश्चित स्थान पर रहता है, उसका नियमित कोई व्यवसाय या कामकाज है तथा वह स्थान अदालत के नियंत्रण के दायरे मे है और अपने इकरारनामे की मीयाद तक अपराधी उसी स्थान मे रहेगा।

धारा ६—यदि २१ वर्ष की उम्र से नीचे के किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा अपराध किया है जिसमे आजन्म कारावास के अतिरिक्त अन्य मीयाद का कारा-

वास मिलना चाहिए, (१) तो जब तक अदालत को यह विश्वास न हो जाय कि जिस परिस्थिति मे उसने अपराध किया है तथा जैसा उसका चरित्र रहा है उसे देखते हुए उसका कारागार के बाहर रहना ठीक नही है, वह अपराधी जेल न भेजकर परिवीक्षण पर छोड़ दिया जायगा।
(२) अपने इस सन्तोष के लिए धारा ३ तथा ४ के अन्तर्गत उसे छोडना उचित है या नही, अदालत उस व्यक्ति के सम्बंध मे प्रोबेशन अफसर से रिपोर्ट तलब करेगी जो उस व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा चरित्र की स्थिति के सम्बंध मे होगी. ...

इस कानून मे कुल मिलाकर १९ धाराएँ है। पर तीन मुख्य धाराएं इसलिए दी गयी है कि कानून की मशा समझ मे आ सके। नये नियम ने परिवीक्षण पर छोड़ने के लिए "अधिक से अधिक" २४ वर्ष की उम्र का बंधन समाप्त कर दिया है। उसके द्वारा "जघन्य अपराध", जैसे हत्या या सशस्त्र डकैती को छोड़कर प्राय. सभी अपराधों में अपराधी, चाहे वह किसी उम्र का हो, चाहे उसे दुबारा सजा भी क्यो न मिली हो, चाहे वह एक बार परिवीक्षण पर ही क्यो न छोड दिया गया हो, पुन. परिवीक्षण पर छोडा जा सकता है तथा परिवीक्षण अफसर से कोई भी अदालत अपने लिए रिपोर्ट आदि प्राप्त करने का काम ले सकती है। दूसरे महत्त्व की बात यह है कि बहुत ही विकट बात यदि न हुई तो २१ वर्ष के नीचे हर एक अपराधी को, चाहे वह आदतन अपराधी क्यो न हो, परिवीक्षण पर छोड़ना अनिवार्य है। इस नियम का अपराधी-जगत् पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ेगा। हमारा ऐसा विश्वास है कि यदि समुचित संख्या में प्रोबेशन अफसर नियुक्त हो गये तो एक ओर जेलो की आबादी मे काफी कमी होगी, दूसरी ओर मनुष्य को अपना चरित्र सुधारने का अधिक अवसर प्राप्त होगा। युगो तक अपराधी को जेल मे सड़ाकर नष्ट करने के बाद अब समाज जेल के बाहर उसकी चिकित्सा कर, समाज का उपयोगी अंग बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

यूरोप में प्रोबेशन सेवा

प्रोबेशन यूरोप की चीज़ नही है। अपराधी-जगत् के उद्धार के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की यह बहुत बडी देन है। इसका प्रारम्भ बडे रोचक ढग से हुआ। आज के प्रोबेशन अफसरों का गुरु जॉन आगस्टस नामक एक मोची था। सन् १८४९ में, संयुक्त राज्य अमेरिका के मासाचुसेट नामक प्रदेश के बोस्टन नगर के रहनेवाले इस मोची ने पुलिस की अदालत से एक शराबी आदमी को जमानत पर छुडा लिया। वह शराबी कुछ ही दिनो में एकदम सुधर गया और शिष्ट नागरिक बन गया। इस

अनुभव से प्रोत्साहित होकर १८४९ से १८५६ तक, सात वर्ष मे १५,३२० डालर (एक डालर पॉच रुपये का) की जमानत देकर जान आगस्टस ने २५३ पुरुषो तथा १४९ स्त्रियो को जेल से छुड़ाया था और उसकी जमानत की एक पाई की भी हानि नही हुई। उसके छुड़ाये हुए सभी स्त्री-पुरुषो का पूरी तरह से सुधार हो गया। इस प्रकार अवतनिक परिवीक्षण अफसर की श्रेणी तथा परम्परा का प्रारम्भ हुआ।[1] सरकारी तौर पर बोस्टन नगर तथा मासाचुसेट प्रदेश में इस प्रथा का प्रारम्भ सन् १८७८ से हुआ। बोस्टन की अदालतों में १८७२ से ही पादरी कुक बहुत जाया करते थे और उन्होंने विचारपतियों का इतना विश्वास प्राप्त कर लिया था, कि जब वे यह देखते कि किसी अभियुक्त को सजा से अधिक एक सहानुभूतिपूर्ण मित्र की आवश्यकता है, तो वे उस अपराधी को पादरी कुक के सुपुर्द कर देते थे। सन् १८७८ मे सफक प्रान्त मे, जिसमे बोस्टन नगर था, इस प्रकार निगरानी पर छोड़ना कानूनी तौर पर जायज मान लिया गया। १८८० से यह नियम समूचे प्रदेश के लिए लागू हो गया है।[2]

सन् १८९९ में रोड्स द्वीप ने तथा मिन्नेसोटा और इलनाय प्रदेशों ने "बाल तथा वयस्क" अपराधियो को प्रोबेशन पर छोड़ने का नियम बनाया। सन् १९२१ तक ३५ प्रदेशो में यह नियम लागू हो गया था और अब तो समस्त सयुक्तराज्य मे लागू है। इग्लैंड मे प्रोबेशन ऐक्ट सन् १९०७ मे पहली बार बना। सन् १९१४ के नियम ने अदालतो को आदेश दिया कि परिवीक्षण की अवधि मे बाल-अपराधी को सरकार द्वारा स्वीकृत, मान्यता-प्राप्त अथवा सहायता-प्राप्त संस्थाओं में रखा जाय और वही उसका चरित्र सुधारा जाय। सामाजिक दृष्टि से परिवीक्षण का बडा महत्त्व है। एक प्रसिद्ध पुस्तक मे लिखा है—

"सामाजिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि परिवीक्षण मैत्रीपूर्ण देखरेख में शिक्षणीय निर्देशन तथा मार्गप्रदर्शन है। केवल निगरानी करना ही देखरेख करना नही है। परिवीक्षण मे बाल अपराधी के जीवन से इतनी घनिष्ठता प्राप्त कर ली जाती है, विशेषकर उसके पारिवारिक जीवन से बडी निकटता प्राप्त कर ली जाती है। परिवीक्षण का यह प्रधान कार्य है—निकटता तथा आत्मीयता प्राप्त करना तथा इसके

१. Sutherland—"Criminology"—Lippincott, London, 1924—Page 562

२. Robinson—Penology in the United States, The John Co., Winston Co., Philadelphia, 1923, Page 195.

लिए आवश्यकता है बड़े सुलझे हुए, शिक्षित, सहानुभूतिपूर्ण अनुभवी पुरुष—स्त्री प्रोबेशन अफसरों की।"[१]

सन् १९२५ में इंग्लैंड मे अंतर्राष्ट्रीय दड सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में प्रोबेशन पर काफी गम्भीरता तथा गवेषणापूर्ण विचार हुआ। इंग्लैंड के प्रधान न्यायाधीश लार्ड हिवर्ट ने इस प्रणाली का समर्थन करते हुए कहा था—

"....समस्या यह है कि हमको एक ऐसा अधिक लाभदायक तथा सन्तोषजनक उपाय चाहिए जिससे हमारे समाज-कल्याणकारी राज्य का वह उद्देश्य पूरा हो सके जिसके लिए आज हम कारागार का दंड देते है...हमे समूचे समाज का कल्याण देखना है। हमे यह देखना है कि वैसी ही भूल और लोग न करे.. समाज वर्गो से नही, व्यक्तियो से बनता है, अतएव हर एक व्यक्ति का मामला अथवा गुण-दोष अलग-अलग देखना तथा समझना पड़ेगा। हम अक्सर लोगो को "निश्चित दंड" की बात करते सुनते हैं (यानी एक प्रकार के अपराध में एक प्रकार का ही दंड होना चाहिए) पर, इसका मतलब है विचारपति अपना काम ही, कर्त्तव्य ही छोड रहा है। मानव-जाति के लिए यह सौभाग्य की बात है कि न तो अपराधी एक प्रकार का होता है और न दंड ही; और सार्वजनिक हित की उसी दृष्टि से जिससे हम किसी को दस बरस के लिए जेल भेजते है, दूसरे को एकदम जेल न भेजे......आम तौर से लोग इस बात को नहीं समझते कि अपराधी बनाने का, तैयार करने का आसान तरीका है किसी बाल अपराधी को अनायास जेल भेज देना। जेलों में उनको आशा से अधिक आराम से रहने को मिलता है। वहाँ पर वे ऐसे लोगो के सम्पर्क में आते तथा ऐसे उपाय सीखते हैं जिनसे उनका जीवन नष्ट हो जाता है...उन लोगों पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है जो विशेष परिस्थिति को छोड़कर किसी नवयुवक या नवयुवती को जेल भेज देते है।"

इंग्लैंड—सन् १९२५ मे ही क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट इंग्लैंड में पास हुआ जिसके अनुसार परिवीक्षण क्षेत्र बना दिये गये तथा गृहसचिव को इस सम्बंध मे क्षेत्र-विभाजन का अधिकार दे दिया गया था। जिस नगर या कसबे में परिवीक्षण के मामले काफी कम हों, वहाँ पूरे समय के लिए प्रोबेशन अफसर नियुक्त करना जरूरी नही था। समाजसेवा करनेवाले किसी भी सम्भ्रान्त व्यक्ति को यह कार्य सौपा जा सकता था। आज ब्रिटेन में प्रोबेशन सेवा बहुत ही संगठित तथा उन्नत दशा मे है। प्रोबेशन अफसर केवल

१. Flexner and Baldwin—"Juvenile Courts and Probation" The Century Co., New York, 1916, Page 79.

सरकार या अदालतों द्वारा प्राप्त बच्चों की ही जिम्मेदारी नही लेते, वे गैर-सरकारी तौर पर भी, अपने मन से भी, अपराधी प्रवृत्ति के या सहायता के योग्य बच्चों की देख-रेख अपने जिम्मे ले लेते है। देश के कुछ भागो मे, जैसे डरहम मे, प्रोबेशन अफसर बच्चो को अपने से मिलने के लिए प्रोत्साहित करते रहते है, स्वयं स्कूल तथा छात्रावासों मे जाकर उनसे सम्पर्क स्थापित करते है। यह उल्लेखनीय है कि सरकार के समाज-कल्याण विभाग के कर्मचारियों की तुलना मे केवल बाल अपराधियो से सम्पर्क रखने-वाले प्रोबेशन अफसरों का कार्यभार हलका होता है। उन्हे साल मे ५० से ७० विषय सँभालने पड़ते है इसलिए वे एक-एक बच्चे पर अधिक ध्यान भी दे सकते है।

प्रोबेशन अफसर द्वारा निगरानी समाप्त होने पर बालक-बालिका को शिष्ट जीवन मे बसाने का बडा भारी काम होता है। ये लड़के या लड़कियाँ प्रोबेशन अफसर की अनुमति से ही मान्यताप्राप्त स्कूलो मे "दाखिल" किये जाते है। इन स्कूलो के प्रबधक से ही लैसेंस प्राप्त होने पर वे स्कूल के बाहर आयेगे। वही प्रबधक निश्चय करेगा कि "छूटने के बाद" वे कितने समय तक किस क्षेत्र मे रहे। ऐसे अवसर पर उनकी निगरानी तथा देखरेख अवैतनिक सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा गैर-सरकारी सस्थाओं के हाथ में होती है। वे भी बडा काम कर सकती है और कर भी रही है। समाजसेवा की दृष्टि से इस दिशा मे काम करनेवाला स्वयसेवक भी बड़ा महत्त्व रखता है। गैर-सरकारी सामाजिक सस्थाओ का भी अपना बड़ा भारी स्थान है। समाज मे प्रत्येक व्यक्ति बच्चों के सुख-कल्याण के लिए जिम्मेदार है। यह कार्य परोपकार का नहीं आत्म-रक्षा का भी है। प्रोबेशन अफसर प्राय हर देश मे, सरकार तथा समाज-कल्याण करनेवाली सस्थाओ के बीच मे एक माध्यम, मध्यस्थ मात्र, है। सरकार इन सस्थाओं का उपयोग कर इनके द्वारा लड़के-लडकियों का सुधार करा, देश के नागरिको की रक्षा कर रही है। सभ्य देशो मे प्रोबेशन अफसर की बडी प्रतिष्ठा है, बड़ा आदर है। हमारे देश में हमने अभी इस पद का महत्त्व नही समझा है। अधिकांश देशो मे प्रोबेशन अफसर केवल बाल-अपराधियो के लिए नही होता। उसका काम—और ज्यादा मेहनत का काम—है अपराधी प्रवृत्तिवाले, जिनसे अपराधी होने का भय हो, जो खतरे में हों, उनकी सेवा करना। ऐसो की रक्षा करना भी उनका धर्म है पर अपने कर्तव्य का वे तभी पालन कर सकेंगे जब सामाजिक संस्थाएँ तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ उनके साथ पूरा सहयोग करें।[1]

१. परिषद् की रिपोर्ट, अप्रैल १९५५, पृष्ठ ३८

स्विटजरलैंड—स्विटजरलैण्ड में बालक-बालिकाओं की रक्षा के लिए एक अलग विभाग है[1], उसी के अन्तर्गत प्रोबेशन अफसर भी है। भिन्न भिन्न नगरों में भिन्न प्रकार की प्रोबेशन प्रणाली है पर केन्द्रीय विभाग भी है। यह विभाग गुरुजनों, अभिभावकों तथा माता-पिता को परामर्श भी देता रहता है तथा उनकी समस्याओं को हल करने का प्रयास करता है।

स्वीडन-नार्वे—स्वीडन तथा नार्वे मे सरकारी बाल-कल्याण समितियाँ है। ये समस्या-मय बच्चो को उचित मार्ग पर लाने के लिए तथा अपराधी बच्चों के सुधार के लिए "सुपरवाइजर" नियुक्त करती है। नार्वे में ऐसे बच्चो के लिए विशेष पाठशालाएँ है। इनका एक अलग मुहकमा ही है। अपराधी बालक जब ऐसी पाठशालाओ मे से निकलता है, उसके छूटने के बाद की देखरेख की जिम्मेदारी बाल-कल्याण समिति की होती है। नार्वे मे "प्रोबेशन तथा पैरोल असोसियेशन" (संस्था) की संख्या ५५ है जो नीम-सरकारी संस्थाएँ है तथा १८ वर्ष के उन अपराधियों की देखरेख, रक्षा, नियंत्रण तथा शिक्षा का काम करती है जिनकी सजा अदालत ने स्थगित कर दी है अथवा जिन्हे जेल से मीयाद के पहले छोड़ दिया गया है। इनका काम काफी महत्त्वपूर्ण है और इनके द्वारा बाल-जीवन मे बड़ा सुधार होता है।

स्वीडन मे भी ऐसी ही बाल-कल्याण समिति है। ये समितियाँ १५ वर्ष की उम्र तक के बच्चों की तथा १५ से १८ वर्ष तक की उम्र के बच्चों की निगरानी तथा देखरेख करती हैं। बाल अपराधियों की सजा स्थगित कर इनकी देखरेख मे भेज दिया जाता है। समिति अपने प्रोबेशन अफसर या समाज-कल्याण कार्यकर्त्ता नियुक्त करती है। इन प्रोबेशन अफसरों का काम वही तथा वैसा ही है जैसा इंग्लैंड में। यह समिति ऐसे वैतनिक सामाजिक कार्यकर्त्ता भी नियुक्त करती है—आम तौर पर वे अध्यापक श्रेणी के होते है—जो निगरानी की अवधि समाप्त होने के बाद बच्चों की सुरक्षा, शिक्षा, पुनर्वास आदि की जिम्मेदारी लेते है। स्वीडन में एक ऐसी संस्था भी है जो पैरोल पर छूटे हुए १५ वर्ष की उम्र के लड़के-लडकी अपराधियो के लिए दस स्कूल चला रही है।[2] स्वीडन के प्रोबेशन अफसर यह भी तय करते हैं कि उनकी निगरानी में रहनेवाले बच्चे कितना जेबखर्च करें। कैसे खर्च करे, यह भी निश्चय करना पड़ता है। स्वीडन, नार्वे तथा फिनलैड तीनों देशो में १५ वर्ष की उम्र तक के बाल

१. "Service de Protection des Mineurs".

२. Order of Good Templars.

अपराधी अदालत मे न जाकर बाल-कल्याण समिति तथा उसके नियुक्त परिवीक्षण अधिकारियों के जिम्मे होते है और १५ से १८ वर्ष की उम्र के बीच के बाल अपराधियो को बाल-अदालतो से दंड तो मिलता है पर उनकी सजा स्थगित कर दी जाती है और वे बाल-कल्याण समिति के जिम्मे कर दिये जाते है जिसके प्रोबेशन अफसर या समाज-सेवक निगरानी, निरीक्षण, शिक्षण आदि का काम करते है।

फिनलैंड—फिनलैड मे उन पर मुकदमा चलाना ही स्थगित कर दिया जाता है। डेनमार्क में उनकी "सजा" इस शर्त पर होती है कि बाल-कल्याण-समिति उनका सुधार यदि न कर सकेगी तो वे सजा भुगतेंगे। फिनलैड में सन् १९१८ में सरकारी बाल-कल्याण समिति की रचना हो गयी थी। स्वीडन तथा नार्वे मे, इसी प्रकार फिनलैंड में भी इस प्रकार की सरकारी समिति बने ५० वर्ष के लगभग हो चले, प्रोबेशन सेवा भी इन लोगों में उतनी ही पुरानी है। नीदरलैण्ड मे प्रोबेशन अफसरो के जिम्मे अपराधी तथा "जिनसे अपराध होने की सम्भावना है"—दोनो प्रकार के बच्चे रहते है। पहले वर्ग को तो सँभालना कठिन है क्योकि वे अपराध करके अदालत के सामने हाजिर हो चुके है, पर जिन्होने कोई अपराध किया ही नही, जो कभी अदालत के सामने गये नही, उनकी विरोधी प्रवृत्ति तथा अपने ऊपर बंधन से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना सर्वथा स्वाभाविक है तथा ऐसे बच्चो को सँभालना प्रोबेशन अफसर के लिए बड़ा कठिन काम होता है।

इटली—इटली मे भी, देश मे चारों ओर प्रोबेशन अफसर है जिनको समाज-कल्याण अफसर कहते है। इटली में प्रोबेशन सेवा इंग्लैड के ही समान है।

आयरलैंड—आयरलैड के गणतंत्र मे भी प्रोबेशन अफसर है, सन् १९०८ से ही। यहाँ पर यह भी नियम है कि सरकारी सुधारगृह तथा सरकारी उद्योगगृह से न्यायमंत्री की अनुमति से या स्कूल के प्रबंधक की इच्छानुसार छः महीने तक अपराधी बालक-बालिका को रखने के बाद प्रोबेशन अफसर की निगरानी में छोड़ा जा सकता है। छोड़ने के बाद अनुमतिपत्र मे प्रबंधक "ऐसे विश्वासपात्र तथा सम्मानित व्यक्ति" का नाम लिख देगा जिसके साथ, छूटने के बाद, उस अपराधी को ठहरना पड़ेगा। आयरलैड में कई धार्मिक तथा समाज-कल्याण संस्थाएँ है जो ऐसे मुक्त बालक-बालिकाओ की देखरेख करती है।

यूनान—यूनान मे सन् १९५१ से ही परिवीक्षण विभाग खुला है। किन्तु वहाँ वैतनिक परिवीक्षण अफसर नही होते। बालसहायक समितियाँ तो नीम सरकारी है जिनके साथ यह कार्य संबद्ध है। पर इस कार्य की जिम्मेदारी यानी प्रोबेशन अफसर

का कार्य समाजसेवा में रत, सम्भ्रान्त, सम्मानित नागरिकों पर निर्भर करता है। ये अवैतनिक रूप से यह कार्य अपने ऊपर लेते है। किन्तु वैतनिक परिवीक्षण अधिकारी न होने से काम में विशेष प्रगति नही प्रतीत होती। यूनान की सरकार वैतनिक कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति पर विचार कर रही है।

फ्रांस—फ्रांस में बाल अपराधियो के लिए नियुक्त मजिस्ट्रेट कुछ श्रेणी के बाल अपराधियों को "नियंत्रित स्वाधीनता"[१] प्रदान करते है, पर वास्तविक अपराध करने के पूर्व, अपराधी प्रवृत्ति के बच्चों के लिए कोई प्रबंध नही है। वैतनिक प्रोबेशन अफ़सर[२] "नियंत्रित स्वाधीनता" मे छोड़े गये बच्चों की देखरेख के लिए नियुक्त किये जाते है और उनको अधिकार है कि वे अपने कार्य मे सहयोग देने के लिए समाजसेवा सहकारी भी नियुक्त कर लें। प्रोबेशन अफसर केवल उन्ही मामलों को लेता है जो अदालत तक पहुँच जाते है। अतएव परिवारवालों को उसकी सेवाओं से, गैर-सरकारी तौर पर, कोई लाभ नही होता। ऐसे परामर्श के लिए स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग आदि से परिवार के लोग सहायता ले सकते है। अवैतनिक रूप से संकटशील परिवार में, अपेक्षित तथा तिरस्कृत बच्चों में, नियंत्रण में न रहनेवाले बच्चों में काम करने के लिए देश भर में समाजसेवक तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ भी है।

बेल्जियम—बेल्जियम में भी फ्रांस के समान "नियंत्रित स्वाधीनता"[३] पर बाल अपराधी छोड़े जाते है जिनके ऊपर प्रोबेशन अफसर[४] नियुक्त है। बेल्जियम में परिवार वालो से बाल-सुधार के कार्य में सहायता लेने का नियम अधिक अच्छे ढंग से काम में आता है। आस्ट्रिया मे प्रोबेशन उसी दशा में अनिवार्य होगा जब अपराधी की उम्र १८ वर्ष से कम हो तथा अदालत से उसकी सजा स्थगित की गयी हो। हर जिले या म्युनिसिपैल्टी के लिए एक वैतनिक समाजसेवक (प्रोबेशन अफसर)[५] होता है। अभी इस देश में प्रोबेशन प्रणाली प्रारम्भ हुए कुछ ही वर्ष बीते हैं।

१. Supervised Liberty
२. Delegues Parmanents
३. Liberate Surveilee
४. Delegues Retribues
५. Fürsorgerin

प्रोबेशन की प्रथा तथा प्रणाली के सम्बध में इतनी जानकारी से बाल अपराधी की चिकित्सा के संबंध में काफी सूचना हमने दे दी। अमेरिकन प्रथा का कुछ अधिक जिक्र हम आगे चलकर करेंगे। परिवीक्षण या प्रोबेशन मूलतः अपराध-निरोध के लिए है। इस नियम के अन्तर्गत छोड़ने का मतलब ही यह है कि अदालत की राय मे अब उस अपराधी से और अधिक अपराध की आशंका नही करनी चाहिए। जरा-सा ध्यान देने से वह पूर्णतः सुधर जायगा।[१]

१. राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट, अप्रैल १९५५, पृष्ठ ७०

अध्याय २३

तुर्की तथा अरब देशों में बाल अपराधी

तुर्किस्तान में

तुर्किस्तान में सन् १९१४ तक उसमानिया दंडविधान चालू था। किसी रूप में सन् १९२६ तक यही दंडविधान लागू था। इसके अनुसार १३ वर्ष तक के बच्चे निर्दोष समझे जाते थे और यदि कोई अपराध करे तो इन्हें अधिक से अधिक यही दड मिलता था कि किसी शिक्षण-संस्था मे १८ वर्ष तक की उम्र के लिए पढने भेज दिये जाते थे। १५ वर्ष के ऊपर के बच्चे जेल भेजे जा सकते थे। सन् १९२६ में इस कानून में परिवर्त्तन हुआ—विशेष नही, साधारण। निर्दोष बच्चे की उम्र १३ से घटा कर ११ कर दी गयी। बाल अदालतें स्थापित हुईं और इन अदालतो को अधिकार मिला कि वे बाल अपराधी को उसके परिवार की निगरानी में सौप सकते है। बाल अपराधी पर जुर्माना हो सकता है और इसे अदा करना पडेगा अभिभावकों को। दंडविधान की धारा १०३ के अनुसार पीड़ित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करायी जायेगी। जो सम्पत्ति चोरी गयी हो, वह भी उसे मिल जायेगी जिसकी चोरी हुई है।

तुर्किस्तान के बाल-अपराधी-"सुधारगृहों" मे अथवा "बाल जेलों मे" तीन श्रेणी के अपराधी रखे जाते हैं—११ से १५ वर्ष, १५ से १८ वर्ष तथा १८ से २१ वर्ष तक। धारा ५४ से ५७ के अनुसार यदि ११ से १५ वर्ष के बीच का अपराधी बालक या बालिका जान-बूझकर अपराध करे तो उसे—

(१) प्राणदंड के योग्य अपराध हो तो ८ वर्ष का कठोर कारावास का दंड मिलेगा।

(२) आजन्म कारागार के स्थान पर ६ से १५ वर्ष तक कठोर कारावास मिलेगा।

(३) यदि उस अपराध में १२ वर्ष की सजा मिलने वाली है तो ३ से ६ वर्ष कठोर कारावास होगा।

(४) ६ से १२ वर्ष तक की सजा में १ से ५ साल की कठोर कैद होगी।

(५) अन्य सब मामलों में बालिगों को जितनी सजा मिलनी चाहिए उससे आधे से कम दी जायगी ।

(६) धारा ५५ के अनुसार १५ से १८ वर्ष तक के अपराधी को प्राणदंड के स्थान पर १० वर्ष; यही सजा आजन्म कारागार पर भी। १२ से अधिक वर्ष की सजा पर ६ से १० वर्ष, ६ से १० वर्ष की सजा पर तीन से छः वर्ष, सभी कठोर कारावास—तथा अन्य मामलो मे ऊपर लिखी सजा मिलेगी। धारा ५६ के अनुसार १८-२१ वर्ष के अपराधी को प्राणदंड के बजाय २४ वर्ष, इत्यादि—कठोर कारावास। अन्य मामलो मे दंडविधान मे निहित सजा मे १।६ की कमी हो जावेगी। धारा ५७ के अनुसार १५ वर्ष के नीचे बहरे-गूगे को अपराधी नही मानते। यह हो सकता है कि उसको २१ वर्ष की उम्र तक किसी बाल सुधारगृह मे रख दिया जाय। १५ वर्ष से ऊपर के बहरे-गूगे अपराधी को, यदि यह साबित हो जाय कि उसने जानबूझकर अपराध किया है तो, वही सजा मिलेगी जो हम ऊपर १५ वर्ष से अधिक उम्रवाले अपराधियों के लिए लिख आये है।

तुर्किस्तान में यह नियम है कि जो माता-पिता या परिवार अपने बच्चो के साथ दुर्व्यवहार करते है वे अभिभावक बनने योग्य नही है। सिविल अदालत ऐसे बच्चों की उचित देखरेख के लिए आवश्यक उपाय करेंगी। इसी प्रकार तलाक देनेवाले या पति-पत्नी को छोड़ देनेवाले परिवार के बच्चे की देखरेख का प्रबध भी सिविल अदालत करेगी। तुर्की दडविधान की धारा ४६७ के अनुसार किसी को ७ वर्ष से नीचे का बच्चा परित्यक्त मिले तो उसे तुरन्त सरकार को सूचना देनी चाहिए, अन्यथा उसे गहरा अर्थ-दंड देना होगा। धारा ४२०, ४३५ तथा ५७४ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति १८ वर्ष से कम उम्र के लड़के या लड़की को शराब पिलाता है या १५ वर्ष से कम उम्र की लड़की से वेश्यावृत्ति करता या कराता है या किसी लड़के के साथ अप्राकृतिक प्रसंग करता है तो उसे कठोर दंड मिलेगा। धारा ५४५ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति १५ वर्ष के कम उम्र के बच्चों को भीख माँगने के लिए इकट्ठा करता है तो उसे घोर आर्थिक दंड देना होगा। दीवानी धारा १५९.३ तथा १५८० के अनुसार हर नगर-प्रशासन को परित्यक्त तथा लावारिस बच्चों को पालने का तथा ६ वर्ष तक उनकी देखरेख का प्रबंध करना होगा।

अरब संघ मे

पर, बाल अपराधियों के सुधार के लिए तथा बिगड़ने वाले बच्चों को सही

मार्ग पर लाने के लिए यदि वास्तव में थोडा बहुत ठोस काम हुआ है तो मिस्र देश में तथा सीरिया (शाम) में (मिस्र तथा सीरिया मिलकर अरब संघ बनता है)। मिस्र की सरकार ने सन् १८८३ में ही, "बाल अपराधी" की अलग सत्ता स्वीकार कर ली थी। इस समय अरब-संघ मे सरकार की ओर से दो महिलाएं नियुक्त है जो समाज कल्याण विभाग के सचालक के रूप मे बाल अपराधी के सुधार तथा अपराधी मनोवृत्तिवाले बच्चों की रोकथाम का उपाय करती है। इस विभाग के अन्तर्गत केवल मिस्र मे ही छः अनाथालय है, जच्चा-बच्चा की रक्षा के लिए कई ईसाई अस्पताल है। राजधानी काहिरा तथा सिकन्दरिया में दो बड़े अच्छे जनाना अस्पताल इसी कार्य के लिए है, काम में लगी हुई माताओ के बच्चों की रक्षा तथा पालन के लिए १७ "शिशु" (नर्सरी) पाठशालाएं थी—जिनमें २,२७५ लडके तथा १,६६५ लड़कियां थी। शिक्षा विभाग ने बच्चों, नवयुवक-नवयुवतियों के लिए मनोवैज्ञानिक तैयार करने के लिए छात्रवृत्ति देकर अच्छे अच्छे विद्यार्थी विदेश भेजे है तथा कई मनोवैज्ञानिक केन्द्र भी खोले है। इनकी निश्चित सख्या ज्ञात न हो सकी। सन् १९४७ मे काहिरा मे पहला मनोवैज्ञानिक केन्द्र खोला गया था। सन् १९४८ मे इसके द्वारा १,८७७ छात्रो का, जिनमे लड़-कियाँ भी शामिल है, इलाज हो रहा था।

सीरिया (शाम) में भी सन् १९५३ मे राष्ट्रीय कल्याण-समिति की स्थापना हो गयी है और उसने ऐसे केन्द्र खोले है जिनमे परित्यक्त, लावारिस या माता द्वारा उपेक्षित बच्चे का पालन-पोषण, सब सरकार के व्यय से होता है। सार्वजनिक संस्थाओ के अलावा सरकार की ओर से काफी कपडा और दूध मुफ्त मे गरीब बच्चों मे बाँटा जाता है। सरकार की ओर से स्वास्थ्य-केन्द्र भी खोले जा रहे है। सीरिया मे पहले बाल अपराधियों के लिए तुर्की दंड-विधान ही लागू था। अब उसने अपना बाल अधिनियम बना लिया है जिसके अनुसार बाल अपराधी को जेल न भेजकर परिवार वालों को, रिश्तेदारों को या किसी योग्य व्यक्ति को उनके सुधार के लिए सौपा जा सकता है या उन्हें किसी विशिष्ट शिक्षा-संस्था के जिम्मे किया जा सकता है।

बालक-बालिका की रक्षा तथा सुधार के लिए सन् १९५० में यहाँ एक "बाल संरक्षण संघ" स्थापित हुआ था, जिसका उद्देश्य है "बालको या नवयुवको, बालिकाओं या नवयुवतियो के नैतिक तथा चारित्रिक बल को ऊँचा करना तथा अपराध की ओर जाने से उन्हें रोकना।" सीरिया की बाल अदालतों को भी ये बाल अपराधी के हितो की रक्षा करने में सहायता देते है। बाल समस्या के भिन्न भिन्न पहलुओं की जाँच करते कराते है, असाधारण बच्चों की परख, परीक्षा तथा जाँच के लिए निरीक्षण-केन्द्र स्थापित करते है।

मिस्र, सीरिया, लेबनान तथा ईराक मे "बाल अपराधी" उसे कहते है जो बाल या नवयुवक अपराध की श्रेणी में आनेवाले अपराधों के दोषी होते है। सीरिया तथा लेबनान के दंडविधान मे यह आदेश है कि १२ वर्ष की उम्र के ऊपर के उसी बाल अपराधी को बन्द करे जिसपर दुष्टता के कार्य करने का सबूत मिल गया हो। बाल अपराधियों के सम्बध मे लेबनान मे अक्टूबर, १९४४ मे नया कानून बना जिसके अनुसार बालक को जेल न भेजकर परिवार को, अभिभावक को या सुधारगृह को दे देने की गुजायश की गयी।

जार्डन में

जार्डन ने अगस्त, १९५१ मे बाल अधिनियम बनाया और निस्सन्देह मध्यपूर्व एशिया मे उसका अधिनियम बहुत ही सुलझा हुआ, नये अपराध-विज्ञान के अनुसार तथा बडे बडे उन्नत पश्चिमीय देशो के मुकाबले का है। यह कई दृष्टियो से भारत मे प्रचलित बाल अधिनियम से अच्छा है। इसके द्वारा बाल अदालते, सुधारगृह, अवरोधगृह, निरीक्षणगृह, "सर्टिफाइड स्कूल" तथा प्रोबेशन यानी परिवीक्षण प्रणाली तथा मनोवैज्ञानिक केन्द्र, सभी चीजो की गुजायश है। पर मध्यपूर्व के सभी देशो मे लड़को को हथकडी लगाकर अदालत ले आते है।

ईरान, ईराक आदि में

ईरान में कोड़ा लगाने का भी नियम है, यद्यपि ईरान का दडविधान बहुत कुछ तुर्की दंडविधान से मिलता जुलता है। ईराक का दंडविधान सन् १९१८ मे बना था। तब से अब तक उसे पाँच बार दुहराया जा चुका है। अब वहाँ की नयी हुकूमत उसे छठी बार दुहरा रही है। पुराने कानून का दसवाँ अध्याय बाल अपराधियों से सम्बध रखता है। सन् १९१८ का वह अध्याय आज तक ज्यों का त्यों है जिसमें बाल अपराधी की व्याख्या है। उसको जेल न भेजकर परिवार, उचित अभिभावक या शिक्षण सस्था को सौंपा जा सकता है। सऊदी अरब तथा यमन मे अभी तक कुरान शरीफ के ही अनुसार बाल अपराधियो के साथ न्याय होता है और वहाँ अदालत स्वयं निर्णय करती है कि अपराधी को "बाल" माने या नही। जार्डन में नियम है कि गिरफ्तारी के बाद बाल अपराधी को अदालत छोड भी सकती है या नही, वह जैसा चाहे। यदि छोडा नही गया तो उसे ऐसे विशिष्ट स्थान मे बन्द किया जायेगा जो बाल अपराधियो के लिए ही निर्दिष्ट होगा। सीरिया, लेबनान, मिस्र तथा जार्डन में बाल अपराधियो को कैद मे रखने के लिए विशेष स्थान बने हुए है। मिस्र मे ऐसा पहला स्थान सन् १९४५

में स्थापित हुआ था। वहाँ पर राजधानी काहिरा से तीन मील दूर गिरजा घर में एक बड़ा अच्छा केन्द्र है। सीरिया में बाल अपराधियों के लिए दो निरीक्षण-केन्द्र है। मिस्र में बाल-कल्याण-केन्द्र न्याय मंत्रालय के अधीन है। सिकन्दरिया (मिस्र) में जब बाल-कल्याण-केन्द्र खोला गया तो वहाँ के न्याय मंत्री ने सन्देश भेजा था—

"बालको के हित में यह नितान्त आवश्यक है कि सार्वजनिक जेलखानों के अपराधियों के साथ से उनको काफ़ी दूर रखा जाय। सरकारी वकील तथा बाल अदालते और सामाजिक कार्यकर्त्ताओ का यह कर्त्तव्य है कि प्रत्येक बच्चे की परिस्थिति तथा वातावरण की परीक्षा और जाँच करते रहें और यह देखे कि अपराधियो तथा लफंगो का उनके जीवन पर कितना प्रभाव पड़ा है।"

सिकन्दरिया का केन्द्र "निरीक्षण तथा समीक्षा" के लिए है। यह बच्चो के चरित्र, वातावरण, व्यवहार, हर एक चीज़ की परीक्षा करता है। सीरिया तथा जार्डन में १८ वर्ष के नीचे की उम्र वालो का मुकद्दमा करनेवाली अदालत का नाम बाल अदालत है।[१] सीरिया, लेबनान, जार्डन तथा मिस्र मे उस प्रकार की बाल अदालते नही हैं जैसी बम्बई में है। यह नियम हर देश में है कि बाल अपराधियों के मुकद्दमे बन्द अदालत में हों तथा समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों को वहाँ जाने की अनुमति न हो। ईराक़ में वही बाल अपराधी मैजिस्ट्रेट के सामने पेश होगे जिनकी उम्र १६ वर्ष से कम है। इससे अधिक उम्र वालों का मुकदमा बड़ी अदालत में होता है।

१. सीरिया दंडविधान धारा १७३, लेबनान दंडविधान धारा २३७.

लिए हर जिले में एक विशेष पुलिस अफसर नियुक्त होता है। इंग्लैंड तथा स्काटलैंड में कुछ नगरों में शनिवार को या हफ्ते में तीन बार तक ऐसी पाठशालाएँ चलायी जाती है जिनमें अपराधी प्रवृत्ति वाले बालक-बालिकाओ को ऐसे घण्टों मे, जब और पाठशालाओ मे छुट्टी हो जाती है, अनिवार्यतः पढ़ना पड़ता है। उन्हे सरल व्याख्यानो द्वारा जीवन का कर्त्तव्य सिखलाया जाता है।[1] ऐसे क्लास का उद्देश्य होता है इन बच्चो को सड़क पर घूमने, बुरी सोहबत में पड़ने या अन्य लड़को को खराब करने का अवसर पाने से बचाना।

नीदरलैंड--इंग्लैंड की इस प्रथा से कुछ अधिक अच्छे ढंग पर नीदरलैंड, मे शनिवार को सायकाल पाठशाला लगती है जिसे "दंड-शाला" कहते है, जिसमें अपराधी ढंग के बच्चों की हाजिरी अनिवार्य होती है।

नार्वे--नार्वे मे औसलो युवक समिति में पुलिस, स्कूल तथा परिवार के प्रतिनिधि होते हैं। बाल-अपराध रोकने के लिए इनका लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम होता है। यहाँ की पुलिस का भी एक विशेष दल है[2] जो बच्चों को शराबी होने से बचाता है। स्वेडन मे पुलिस ही बच्चों के आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, खेल-कूद आदि कार्यक्रमों की व्यवस्था करती है क्योकि आज यह सभी मानते है कि बाल अपराध तथा अपराधी रोकने का सबसे अच्छा उपाय है बच्चों को उनकी चपलता, चचलता, क्रियात्मक शक्ति तथा उठते हुए यौवन को अच्छे काम में लगाये रखना। जहाँ बच्चों को साधारण खेल-कूद का भी अवसर नही मिलता वहाँ बाल अपराध होना स्वाभाविक है।

पुलिस--इस दिशा में सफलता और अधिक मिलती है जब पुलिस भी इसे अपना कर्तव्य समझती है कि उसका काम केवल अपराध का पता लगाना ही नहीं है, वरन् अपराध की रोकथाम करने के लिए समाज-कल्याण का काम करनेवालों के साथ मिलकर सहयोग भी देना है। बड़े पुलिस अफसरों के अंतर्राष्ट्रीय संघ[3] का इस सम्बंध में स्पष्ट प्रस्ताव भी है—

"यह सत्य है कि अधिकांश देशो मे सामाजिक कार्यकर्त्ता पुलिस के प्रत्यक्ष सहयोग को अस्वीकार करते है। ऐसे प्रत्यक्ष सहयोग से अविश्वास पैदा होता है जिससे उनके उस कठिन कार्य में बाधा पड़ती है जो निश्चयतः अपराधी में अपने प्रति विश्वास प्राप्त

१. राष्ट्र संघ की रिपोर्ट, अप्रैल, १९५५, पृष्ठ ८८

२. K. 2 Group

३. International Federation of Senior Police Officers.

करने के लिए बड़े धैर्य तथा आग्रह के साथ करना पड़ता है। इसलिए, ऐसे व्यक्ति (समाज-कल्याण का काम करनेवाले) तथा संस्थाओं के साथ मिलजुल कर काम करने के लिए तथा उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि ऐसी संस्थाओं से तथा उनकी कार्य-प्रणाली से पूर्ण परिचय प्राप्त किया जाय। बच्चों की पूर्ण रक्षा के लिए इनसे सूचना प्राप्त की जाय तथा इनको सूचनाएँ दी जायँ। ऐसा संरक्षण छिटपुट प्रयत्न से या एक के ही किये से न होगा। पूरे समाज को इसमें साथ देना होगा... ..स्कूल के प्रधानाध्यापकों से परस्पर जानकारी का आदान-प्रदान होना चाहिए, जिससे बच्चो के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालनेवाली चीजों का असर रोका जा सके।"

जिन बड़े देशों तथा नगरो में पुलिस बालसुधार के कार्य में बड़ी दिलचस्पी लेती है, उनमें न्यूयार्क की पुलिस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी रखनेवाले पुलिस अफसरों की देखरेख मे बालकों के हितार्थ काफी काम होता है। उनके लिए (बच्चों के लिए) दंगल तक कराया जाता है।

इटली—इटली मे २१ वर्ष तक की उम्र के बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करनेवाले या उनके साथ उपेक्षा का व्यवहार करनेवाले परिवार को दंड मिलता है। वहाँ पर इटालियन मजदूरों के अनाथ बच्चो के संरक्षण के लिए एक बोर्ड है[१] जो १२,००० बच्चों को शिक्षा दे रहा है। उनके रहने, भोजन, कपड़े—सबका प्रबंध करता है।

सिनेमा पर प्रतिबन्ध

यूरोप में बाल अपराधी तथा अपराधी प्रवृत्तिवाले बच्चों के सम्बंध में जितना कार्य हो रहा है, उसकी लम्बी सूची देने के लिए काफी स्थान चाहिए। यत्र-तत्र हम कुछ न कुछ जिक्र करते आये हैं। पर एक विषय पर थोड़ा प्रकाश और डालकर हम यह प्रकरण समाप्त करेंगे। यह अब सिद्ध हो चुका है कि बच्चों के चरित्र पर सिनेमा का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है और आज बाल अपराध में वृद्धि का बहुत बड़ा श्रेय चल चित्रों को है। इस सम्बंध में यूरोप के अनेक देशों में काफी प्रतिबंध लगा दिये गये हैं कि अमुक प्रकार के खेलों में बच्चों को तमाशा देखने की अनुमति न दी जाय। नीचे हम उन

१. E. N. A. O. L. I.—International Child Welfare Review Vol. III No. 3, 1953.

देशो के नाम दे रहे है जिनमें उनके सामने अंकित उम्र के बच्चों के लिए सिनेमा देखने पर प्रतिबंध है—

देश	उम्र की सीमा
आस्ट्रिया	१५
बेल्जियम	१६
डेन्मार्क	१६
फ्रान्स	१६
पश्चिमी जर्मनी	१७
यूनान	१५
आयरलैंड का प्रजातन्त्र	१४
इटली	१६
नीदरलैंड्स	१४ या १८
नार्वे	१६
स्वेडन	१५
स्विट्जरलैंड	१६ या १८
तुर्किस्तान	१२
यूनाइटेड किंगडम	१६

इस सम्बन्ध मे बेल्जियम का कानून बड़ा व्यापक तथा आदर्श प्रतीत होता है। सन् १९३० मे एक कानून द्वारा यह आदेश हुआ था कि जिस फ़िल्म को सरकार द्वारा यह स्वीकृति प्राप्त हो जाय कि वह १६ वर्ष की उम्र से कम बच्चो के देखने योग्य है, उसी को वे देख सकते है। सन् १९५४ मे यह उम्र १६ से बढ़ाकर १८ कर दी गयी। असल मे इस नियम की कल्पना सन् १९२० में तत्कालीन न्याय मंत्री ने की थी।[१]

बेल्जियम मे फिल्म नियंत्रण बोर्ड है जो न्याय विभाग के अधीन है। इसमें दो विभाग है—प्रारम्भिक विभाग तथा अपील सुनने का विभाग। दोनों में पॉच पॉच सदस्य होते है। एक प्रतिनिधि फिल्म व्यवसाय का, एक प्रतिनिधि बाल अदालत

१. La Loi bue I Septubre 1920.

मैजिस्ट्रेट संघ का, एक प्रतिनिधि शिक्षा-संस्थाओ का, एक परिवारवालो का तथा एक सरकारी। इस बोर्ड द्वारा बच्चो के लिए ऐसे सभी चित्रो का निषेध कर दिया जाता है जिनमे चोरी, डकैती, लूटपाट, हिसा के कार्य, हत्या, फॉसी, राज्यक्राति, बर्बरता-पूर्ण चित्र, पारिवारिक जीवन की खिल्ली उडाना, शासन के प्रति उपेक्षा की भावना पैदा करना, क्रूर रीति रिवाज आदि दिखलाये जाते है। बेल्जियम की यह नीति प्रशसनीय तथा अनुकरणीय है। इसका महत्त्व इस बात से और भी समझ मे आ जायेगा कि बेल्जियम उन देशो मे है जहॉ पर ससार के शायद सबसे अधिक सिनेमा देखने वाले रहते है। इस देश की आबादी केवल ८० लाख है पर हर साल यहां औसतन १० करोड टिकट सिनेमावाले बेचते है।[१] यदि ऐसे देश मे कठिन सावधानी न बरती जाय तो आबादी मे चरित्र पर काफी बुरा प्रभाव पडेगा।

फ्रेंच पुलिस

पुलिस बाल अपराधी के लिए कितना कार्य कर सकती है इसकी एक मिसाल फ्रेंच सरकार के एक परिपत्र से मिलती है। १८ मार्च, १९५५ को फ्रास के राष्ट्रीय सुरक्षा विभाग के डायरेक्टर जेनरल ने हर जिले के पुलिस अधिकारी तथा डिविजनल कमिश्नर, पुलिस के नाम एक आदेशपत्र भेजा था। उसमे लिखा था—[२]

"२ जुलाई, १९५३ को मैने आपका ध्यान आकृष्ट किया था कि अपने वर्त्तमान साधनो से लाभ उठाकर बच्चो की हर प्रकार की सहायता करो। मैने कहा था कि जब भी अवसर मिले आप बाल अपराधियो से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्धित मामलो मे विशेष अनुभव प्राप्त करने का अफसरों को अवसर प्रदान कीजिए। बच्चो की रक्षा के लिए आपने भिन्न दिशाओ मे जो प्रयत्न किये है उसके फलस्वरूप बड़ी रोचक तथा जरूरी बाते मालूम हो गयी है। मै इन परिणामों से और भी लाभ उठाना चाहता हूॅ। आपके काम मे सहायक होने के लिए मै साथ मे एक पुस्तिका भेज रहा हूॅ—'बच्चों के नैतिक कल्याण के लिए पुलिस का कार्य....'

१. **राष्ट्रपरिषद् की रिपोर्ट, १९५५, पृष्ठ १३१.**

२. Revue Moderne De La Police, No. 14. Sept., Oct., 1955 Paris—Page 17, 18, 19—Order of the Directorate General of the Surete Nationale.

"जिन व्यक्तियो या संस्थाओं को बाल-कल्याण मे जरा भी रुचि हो, उनकी सूची बना लीजिए। इन सस्थाओ के प्रधान, समाज कल्याण कार्यकर्त्ता तथा अध्यापक वर्ग से सम्बन्ध स्थापित कीजिए, फैक्टरी इंस्पेक्टर, बाल मजदूरो को भर्ती करने वाले कल कारखाने, खेल कूद की सस्थाएं—इन सभी से सम्पर्क स्थापित कीजिए। बच्चो के उद्धार के लिए सभी सार्वजनिक स्थानों की, जैसे सिनेमा, नाचघर, मेला-तमाशा, रेलवे स्टेशन, उद्यान, जलपानगृह आदि की—बराबर गश्त होनी चाहिए।"

अध्याय २५

अमेरिका में बाल-अपराध-निरोध

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-अपराध की समस्या काफी गम्भीर है, पर निश्चयत· उसकी गम्भीरता तथा गुरुता कहीं अधिक होती यदि उसकी रोकथाम के लिए, बाल-सुधार के लिए तथा नवीनतम आधुनिक प्रयोगों के लिए यह देश संसार में सबसे आगे न बढ़ा हुआ होता। इस देश के अनेक प्रदेशों में बाल अपराधी को उसके विशेष अपराधो के लिए दंड नही देते बल्कि "अपराधी" होने के कारण उसकी "चिकित्सा" करते हैं। उनका उसूल है कि जिस प्रकार दीवानी के मामलो में नाबालिग कानूनन जिम्मेदार नही होता, उसी प्रकार जरायम के मामले मे भी जब तक वह बालिग न हो जाय उस पर पूरी जिम्मेदारी नही लादी जा सकती।[१] इसी लिए १६ वर्ष के नीचे के बच्चों को "ट्रेनिग स्कूल" या "औद्योगिक तथा कृषि स्कूल" में भेजा जाता है।

बोस्टन की संस्था

बाल-अपराधियों के लिए पहली संस्था सन् १८२३ में मासाचुसेट प्रदेश की राजधानी बोस्टन मे खुली थी। इसे न्यूयार्क के टामस एडी द्वारा संस्थापित "कंगाली निरोधक समिति"[२] ने स्थापित किया था। कुछ समय बाद बोस्टन की संस्था को सरकार ने मान्यता प्रदान कर दी और यह पहली सस्था थी जिसमे अदालत बाल-अपराधियो को भेज देती थी। यह आगे चलकर बहुत बढ़ गयी, बहुत उन्नति कर गयी। इसमे यह नियम है कि जब तक लडका स्वयं अपना अपराध दर्ज न कराना चाहे, कोई जान भी नही सकता कि किस लिए आया है। शारीरिक दंड एकदम मना है। यहाँ के निवासी बच्चे स्वयं अपना प्रबंध तथा शासन करते है। वे स्वयं निर्णय करते है कि संस्था का संचालन

१. Dr. Haikerwal

२. Society for Prevention of Pauperism.

किस ढंग से हो। लड़कियों के लिए भी "मेगदेलेन" गृह बने। पर ऐसे सुधार-गृहों की रचना एक प्रकार से जेल जैसी ही थी—ऊँची दीवालें, छड़, ताला इत्यादि।

घरेलू वातावरण की आवश्यकता

इनका स्थान अब उन "कुटियाओं" ने ले लिया है जिनमें २०-२५ से ज्यादा लड़के या लडकियाँ नही रखे जाते। छोटे बच्चो की कुटिया मे एक "माता" रहती है जो निरीक्षक का काम करती है। बड़े लड़के-लडकियों की कुटिया के मुखिया बुजुर्ग पति-पत्नी होते है। इस प्रकार एक छोटा परिवार बन जाता है, एक प्रकार का पारिवारिक जीवन हो जाता है। आज का अपराध-विज्ञान अब सुधार-गृह आदि मे भी रखने के विरुद्ध है। उसका कथन है कि बिना घरेलू वातावरण के असली उद्धार तथा सुधार नहीं होता। इसलिए आज चेष्टा यह की जाती है कि यदि अपराधी बालक बालिका का परिवार इस योग्य न हो तो किसी दूसरे परिवार मे उसे रख दिया जाय तथा उसी परिवार के स्वस्थ वातावरण मे उसका सुधार हो और किसी अन्य स्थान में उसकी शिक्षा आदि का प्रबंध हो।

सबसे अच्छी और बड़ी चीज जो इस देश में है वह है बाल-अपराधी की "परीक्षा।" उसकी मनोवृत्ति, उसका स्वास्थ्य, उसका परिवार, उसका रहने का वातावरण, उसकी प्रेरणा, इच्छा, संकल्प, झुकाव, काम की ओर रुझान—इन सब विषयों में बड़ी बारीक छानबीन करते है। सब छानबीन करके बाकायदा बोर्ड बैठता है। वह निश्चय करता है कि उसको कहाँ रखा जाय, क्या शिक्षा दी जाय। ऐसी ही एक बोर्ड की बैठक में संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यूयार्क के निकट एक "बाल निरीक्षण" केन्द्र में उपस्थित रहने का अवसर मुझे मिला। जिस लगन के साथ उस बोर्ड के सदस्य, जिनमें "निरीक्षण गृह" के प्रधान, डाक्टर, मनोवैज्ञानिक तथा जेल-निरीक्षक "विज़िटर" मौजूद थे, एक-एक बच्चे के अध्ययन की रिपोर्ट पढी जा रही थी तथा उस पर विचार हो रहा था और फिर उस बच्चे को बुलाकर उससे बाते की जाती थी। उसे देखकर विश्वास होता था कि वास्तव में बच्चो के जीवन की कद्र करना ये लोग ही जानते है।

हमारे सामने वहाँ एक १४ वर्ष का लड़का लाया गया। उसमें बड़ा दोष यह था कि वह उस "गृह" के किसी भी अधिकारी को देखकर उत्तेजित हो जाता था और उससे लड़ने तक पर आमादा हो जाता था। प्रबंधक लोग उस बच्चे की इस उच्छृंखलता से बड़े परेशान थे। जब उसकी समस्या पर विचार हो रहा था, मैंने यह सलाह दी—"उसे ही क्यों न अधिकारी बना दिया जाय? दस पाँच लड़कों पर उसे कप्तान बना दीजिए। स्वयं अधिकारी बन जाने पर

उसके मन का अधिकारी के प्रति विद्रोह समाप्त हो जायगा।" मेरी यह सलाह बोर्ड को बहुत पसंद आयी। बाद में मुझे पता चला कि मेरी बात काम कर गयी।

तीन वर्गो के लिए सुधार-गृह

अस्तु, संयुक्त राज्य मे तीन वर्गो के लिए सुधारगृह है। पहला तो १६ वर्ष से कम उम्रवालो के लिए है। इसे "ट्रेनिग स्कूल" या "औद्योगिक तथा कृषि पाठशाला" कहते है। दूसरी श्रेणी १६ से २१ या ३० वर्ष तक की उम्रवालों के लिए है। इनमें "कुटिया-परिवार-प्रणाली" की बड़ी अच्छी प्रथा है। बड़े-बडे खेत (फार्म) भी इनके साथ नत्थी है। सन् १८५७ मे प्रथम "ओहियो राज्य सुधार फार्म" स्थापित हुआ था। यह १८ वर्ष से कम उम्रवालो के लिए था। बालिग़ क़ैदियो के लिए सुधारगृह खोलने का कानून १८६९ में बना और १८७८ मे न्यूयार्क स्टेट रिफ़ार्मेटरी या जिसे "एलमिरा रिफार्मेटरी" के नाम से बड़ी ख्याति प्राप्त हो चुकी है, खुली। अब तो देश भर मे बन्दी के सुधार के लिए, कल्याण के लिए, सरकारी, गैर सरकारी, निजी प्राइवेट तथा प्रोबेशन प्रणाली के अन्तर्गत कार्यो की भरमार है पर इन सब कार्यो की आधार-शिला यह एलमिरा सुधारगृह का मंत्र है—

१. बन्दी का सुधार हो सकता है।

२. राज्य का कर्तव्य है तथा बन्दी का यह अधिकार है कि उसका सुधार हो।

३ प्रत्येक बन्दी का निजी तथा व्यक्तिगत रूप स्वीकार कर उसके लिए आवश्यक व्यक्तिगत चिकित्सा ही होनी चाहिए। उसकी जरूरत के अनुसार उसकी बौद्धिक, सास्कृतिक तथा नैतिक चिकित्सा होनी चाहिए।

४. बन्दी का सुधार उसी के सहयोग से अधिक सरल हो जाता है।

५ बन्दी-सुधार के लिए राज्य के पास एक बड़ा अधिकार तथा हथियार यह है कि उसके सुधार के अनुसार वह उसकी सजा की अवधि कम कर सकता है।

६. सबसे बड़ा काम है उसे शिक्षा के द्वारा सुधार देना। किसी भी बंदी को जेल के बाहर ऐसी दशा मे नही भेजना चाहिए कि वह बुरी बातो में फिर से फँसने के लालच में पड जाय।

जो बात बालिग़ अपराधी के लिए है, वही बाल-अपराधी के लिए भी। आज संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-विज्ञान की नवीनतम खोजों से जितना काम हो रहा है, उतना और किसी देश मे नही। फिर भी, वहाँ १६ करोड़ की आबादी में दस लाख बाल-अपराधी प्रति वर्ष कैसे और क्यों पैदा होते रहते है? सम्भव है, आगे के पृष्ठों में इसका उत्तर मिल सके।

अध्याय २६

बाल-अपराध की समस्या का निदान

बाल अपराधी की समस्या का रूप और उससे लड़ने के लिए भिन्न-भिन्न देशों ने जो तरीके अपनाये है, उनका वर्णन करने के बाद हम आम बातों की ओर वापस आते है। आखिर इस समस्या का हल क्या है? बच्चों की आबादी बराबर बढती जा रही है। अमीर देशों की बाते जाने दीजिए, अनुन्नत, पिछड़े देशों में इनकी जनसंख्या ७५ करोड़ है। इसमे से ६० फीसदी ऐसे मुल्कों के बच्चे है जहाँ पर लोगों की औसत आमदनी ४५० रुपये साल से कम है। १७ फीसदी बच्चे ऐसे अनुन्नत देशों के निवासी है जिनकी वार्षिक औसत आमदनी इसकी दुगुनी है। केवल २३ फीसदी ९०० रुपये वार्षिक की आमदनी से ऊपरवाले वर्ग के है।[१] अतएव ६० करोड़ बच्चों के लिए पेट और रोटी का भी सवाल है। यदि इनमें बाल अपराधियो की वृद्धि हो तो निष्कारण न होगी।

हम गरीबी को अपराध का प्रधान कारण नही मानते। पर वह गौण तथा दूसरे नम्बर का कारण तो है ही। इनमे भी लड़कों की समस्या भिन्न है तथा लड़कियों की भिन्न है। लड़कों के लिए जितने उपाय सोचे जा सकते है, उतने लड़कियों के लिए नही। सन् १९५७ के सितम्बर महीने मे संयुक्त राज्य अमेरिका के उपराष्ट्रपति श्री रिचार्ड एम० निक्सन ने न्यूयार्क मे बाल-अपराध की बढ़ती हुई समस्या पर चिन्ता प्रकट करते हुए कहा[२] था कि "लड़कों में क्रिया-शक्ति की इतनी अधिकता होती है कि उस शक्ति के समुचित उपयोग का यदि साधन प्राप्त न हो तो वे अपराधी बन जाते है। अतएव इसके उपयोग का सबसे अच्छा साधन है शारीरिक व्यायाम तथा कवायद का अधिक से

१. Unicef Bulletin—United Nations, New York, Vol. 7, No. 2, March, 1959.

२. New York Times, 9th Sept., 1957.

अधिक प्रबंध करना। समूचे देश मे अधिक से अधिक व्यायामशालाएँ खोलनी चाहिए।"

न्यूयार्क के कारपोरेशन के चुनाव मे उसी वर्ष मेयर वैगनर के खिलाफ यही सबसे बड़ा अभियोग विरोधी पक्ष के उम्मीदवार राबर्ट क्रिश्चेनवेरी ने लगाया था कि उनके शासन-काल में बाल-अपराध बहुत बढ गये थे। उन्ही दिनो रेडिओ से कोलम्बिया ब्राडकास्टिग कारपोरेशन की तरफ से न्यूयार्क के चीफ मजिस्ट्रेट श्री जान मुर्त्तघ ने कुछ लोगो के इस प्रस्ताव की निन्दा की थी कि बच्चो मे अपराध रोकने के लिए उनको रात के समय घर से निकलने की मनाही कर दी जाय यानी उनके लिए रात को 'करफ्यू' आज्ञा जारी की जाय। मुर्त्तघ ने तो यहाँ तक कह डाला था कि पुलिस का जुआ पकडनेवाला या मादक-द्रव्य की रोकथाम करनेवाला जत्था अपराध बढाने के लिए जिम्मेदार है।

लड़कियों की समस्या

पर लडकियों की समस्या लड़को से कुछ भिन्न है। व्यायामशाला से उनका काम नही चलेगा। हमारे देश मे लडकियो के लिए बम्बई ऐसे उन्नत प्रदेश में भी अपराध रोकने की दिशा में काफी कम काम हुआ है। उनकी आवश्यकता समझने का प्रयास भी नही हुआ है। मद्रास मे अवश्य इस सम्बन्ध मे अच्छा काम हो रहा है। वहाँ पर मद्रास सरकार द्वारा एक ऐसा महिला आश्रम है जिसमे निगरानी के लिए वे लड़कियाँ रखी जाती हैं जिनको चरित्रभ्रष्ट कहा जाता है तथा जिनकी उम्र १४ वर्ष से ज्यादा है। १ अगस्त १९५६ को इस आश्रम मे कुल २६५ लड़कियाँ थी जिनमें १५ वर्ष से कम उम्र की १० थी, १५ से १८ वर्ष की १३४, १८ से २५ वर्ष की ७० तथा २५ वर्ष से ऊपर की ५१ स्त्रियाँ थी। इनमें २२४ हिन्दू थी, २५ मुसलमान तथा १६ ईसाई थी। हिन्दुओं मे १३ हरिजन, ८ ब्राह्मण तथा २०३ अब्राह्मण थी। १३१ लड़कियाँ अविवाहित, १२१ विवाहित तथा १४ विधवाएँ थी।

इन आँकड़ों से कई मार्के की बातें मालूम होती है। पहले तो यह कि सबसे कम दुराचारिणी कन्याएँ सबसे छोटी जाति की है—ऊँची जातियों मे भ्रष्टाओं की संख्या अधिक थी। दूसरे, यह सोचना भी भूल होगी कि विवाह हो जाने के बाद पतन की सम्भावना कम हो जाती है। विवाहित तथा अविवाहित लड़कियों की सख्या बराबर सी है। मद्रास में एक दूसरा सरकारी "उद्धार की गयी कन्या का आश्रम" है जिसे "स्त्री-सदन" कहते है। ३ दिसम्बर १९५५ को स्त्रीसदन में ८९ लड़कियाँ थी जिन

सबकी उम्र २१ वर्ष से कम थी। उसी दिन पहले उल्लिखित महिला आश्रम में २८६ लड़कियाँ तथा १९ शिशु थे। उस समय तक उस आश्रम की १४२ लड़कियों का संस्था की ओर से विवाह कराकर उन्हे सद्-गृहस्थ बनाया जा चुका था। इसी प्रकार स्त्री-सदन की ९७ लडकियो को कुछ ही वर्षो मे सुखी गृहस्थ बना दिया गया था। पर, स्त्रीसदन की २१ वर्ष से कम उम्रवाली लड़कियों के नीचे लिखे वर्गीकरण से स्पष्ट हो जायगा कि आज के समाज मे आचरण तथा अच्छाई, अपढ़ तथा "नीची" कही जाने-वाली जातियो मे अधिक है तथा कच्ची उम्रवाली लड़कियो मे अविवाहित ही अधिक होती है। अतः भ्रष्टा लडकियो मे अविवाहिताओं की संख्या अधिक है। इस सदन की २० प्रतिशत लड़कियों को "गर्मी" (आतशक) की बीमारी थी। १ अगस्त १९५४ को सदन मे भर्ती, २१ वर्ष की उम्र के नीचे की लड़कियों की संख्या ९४ थी। उनका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ —

१.	विवाहित तथा पति द्वारा परित्यक्त	१८
२.	अविवाहित	७६
३.	विधवाएँ	५
४.	एकदम दरिद्र	२८
५	निम्न मध्यम श्रेणी की	६५
६.	उच्च मध्यम श्रेणी की	१
७.	अपढ	७
८	अच्छी तरह से पढ़ी-लिखी	५९
९.	कम पढी-लिखी	२८

इन आँकड़ो से एक और नयी बात मालूम हुई। यह कहना कि दरिद्र की लड़की के पतन की अधिक सम्भावना है, भूल होगी। एक न एक नयी बात मालूम होती रहती है। कुछ समझ में नही आता कि अपराध-निरोध का कार्य किस रूप में किया जाय, समस्या की गुरुता को ही देखकर संयुक्त-राष्ट्रसंघ ने यह निश्चय किया कि "बाल अपराधी की समस्या को बड़ी बुद्धिमत्ता तथा रचनात्मक रूप से सँभालना होगा, उसी प्रकार उपेक्षित तथा लापरवाही से पाले गये बच्चो में अपराधी प्रवृत्ति उत्पन्न होने से रोक-थाम करने के लिए उनके साथ आरम्भ से ही बड़ी सावधानी का व्यवहार करना होगा।

आज लगभग ९ वर्षो से संयुक्त-राष्ट्रसंघ इस दिशा मे दिलचस्पी ले रहा है और उसने दुनिया के कोने-कोने मे इस समस्या का अध्ययन कर अनेक उपाय ढूँढ निकाले

है और उन उपायों की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट कर रहा है।[1] राष्ट्रसंघ अपराध के कारणों की ओर न जाकर यह जानना चाहता है कि अपराध रोकने के लिए क्या विशेष कार्य किये गये । उसके अनुसार, रोकथाम की तीन श्रेणियाँ है —

१. अपराधी बननेवाले बालक बालिकाओ का शुरू से ही पता लगाकर उनकी समस्या विकट होने के पहले ही उनकी चिकित्सा प्रारम्भ कर देना चाहिए।

२. जिन बच्चो का व्यक्तितव "समस्यामय" प्रतीत हो, उनकी शुरू से ही छान-बीन करके उन्हे अपराध के मार्ग से हटा लेना चाहिए।

३ जो लडके-लड़कियाँ एक बार अपराध कर चुके हों, उनको दुबारा अपराध करने से रोकने का उपाय करना चाहिए।

रोकथाम और चिकित्सा

रोकथाम और चिकित्सा, इन दोनों का मेल कैसे होगा ? इसके सम्बन्ध मे राष्ट्र-सघ के सचिवालय की रिपोर्ट है—

"रोकथाम भी किसी मात्रा मे चिकित्सा ही है। चिकि.सा भी रोकथाम है, जैसे दुबारा अपराधी बनने से रोकना। जैसा कि हम पहले ही कह आये हैं, समाज-कल्याण के आम कार्य, जैसे अच्छा घर, अच्छा स्वास्थ्य, आर्थिक सहायता आदि बाल-अपराध रोकने मे सहायक होते है। पर यही पर्याप्त नही है। सभी भौतिक सुख होने पर भी बच्चो मे अपराधी भावना पैदा होती ही है। इस भावना का जल्दी पता लगा लेना चाहिए। उसके कारण का पता लगाकर इलाज शुरू कर देना चाहिए, अन्यथा अनेक प्रकार की दुष्टताएँ पैदा हो जायँगी। इसलिए रोकथाम के किसी भी कार्यक्रम मे इलाज का अपना स्थान रहेगा ही। जैसा कि हम कई बार कह आये है, समुचित चिकित्सा तभी होगी जब कि इस विषय में सुशिक्षित तथा अनुभवी लोग काम करते हों.....कम उन्नत देशो की आवश्यकता अधिक उन्नत देशों से भिन्न होगी। एक ही देश मे स्थान-स्थान की जरूरत मे फ़र्क होता है। इसलिए कोई कार्य-क्रम चालू करने के पहले वहाँ की हालत पूरी तरह से समझ लेनी चाहिए ......।

१. राष्ट्रसंघ के कार्य तथा इस सम्बंध में उसका संकल्प जानने के लिए देखिए— "The work of the United Nations in the field of Prevention of

"पर केवल रोकथाम के तरीकों से ही बाल-अपराध नही रुकेगा। जो बच्चे अपराधी हो गये है उनका कुछ इलाज भले ही हो जाय—चाहे प्रोबेशन हो या किसी संस्था मे भर्त्ती कर देना हो—पर जब तक वे अपने समुदाय, परिवार, स्कूल तथा वातावरण के अनुकूल अपना जीवन नही बना लेते, जब तक अपनी "चिकित्सा" से वह ऐसी शिक्षा नही प्राप्त कर लेते, इस बात की पूरी सम्भावना है कि वे पुन. अपराधी बन जायँगे। इसलिए चिकित्सा के साथ उत्तर-रक्षा[१] (बाद मे उनकी देखरेख) का काम भी निहायत ज़रूरी है। इस श्रेणी मे दो वर्ग है जो अपराध की ओर बढ़ते है—एक तो वे बच्चे जो सामाजिक दोष के कारण अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं तथा दूसरे वे जो एक बार अपराध कर चुके है। अतएव बाल-अपराध रोकने के लिए ऐसा कार्य-क्रम होना चाहिए जो इन दोनों वर्गो की रक्षा कर सके।"[२]

अब बाल-अपराधी को दंड देने की बात तो कोई नही सोचता। अंतर्राष्ट्रीय रूप से यह चीज स्वीकार की जा चुकी है कि प्रतिशोध या प्रायश्चित्त या "उपदेश", किसी भी दृष्टि से बच्चों को, नवयुवकों तथा नवयुवतियों को दंड देना अनुचित है, अवाछनीय है तथा हानिकारक है और बाल-अदालतो को तथा बाल-सुधार का कार्य करनेवालें सरकारी कर्मचारियो को यह सिद्धान्त याद रखना चाहिए।[३] बाल-अदालतो का तथा सरकारी कर्मचारियो का, परिवीक्षण अफसर का, हर एक का कर्त्तव्य है कि जो कुछ करे उसका उद्देश्य बच्चो का कल्याण हो, अन्यथा उनकी पुनः शिक्षा हो।

जून १९५१ से न्यूयार्क के निकट कनान में बर्कशायर अंतर्राष्ट्रीय सभा हुई थी। इसने अपने बाल-अपराधी सम्बन्धी प्रस्ताव की भूमिका में लिखा था—

"बाल-अपराधी से किसी प्रकार का सामाजिक बदला लेने की दार्शनिकता तथा दंड के सिद्धान्त पर किसी प्रकार का भरोसा रखना—इन दोनों बातों की हम सर्वसम्मति से भर्त्सना करते है। बच्चे को सुधारने के लिए किसी प्रकार का शारीरिक दंड या अपमानजनक उपाय करने की हम विशेष तौर पर भर्त्सना करते है।"

१. After Care

२. The Prevention of Juvenile Delinquency-Report by the Secretariat, United Nations–No. 7-8 Geneva-1955–Page 43.

सितम्बर १९५३ में रोम में छठा अंतर्राष्ट्रीय दंड-नियम सम्मेलन हुआ था। इसके अनुसार—"१६ वर्ष से कम उम्रवालो के विषय मे हर प्रकार की प्रायश्चित्तात्मक दड-प्रणाली एकदम बंद कर देनी चाहिए।" अपराध-निरोध तथा अपराधी की चिकित्सा के विषय पर एशियाई तथा सुदूरपूर्व सम्मेलन मे यह निश्चय हुआ था कि "हर प्रकार का शारीरिक दड समाप्त किया जाय।" इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि बाल अपराधी के प्रति उदारता तथा सहानुभूति के साथ ही साथ नर्मी का व्यवहार करने के सभी समर्थक है। कोडा लगाना, पीटना, जेलों मे बन्द रखना, इन सब पुरानी चीजो को बडा हानिकारक समझते है। इससे बच्चे की आत्मा मर जाती है। उसका विकास समाप्त हो जाता है। यह प्रश्न हो सकता है कि तब उसके साथ कैसा तथा क्या व्यवहार किया जाय ? राष्ट्रसघ का कथन है कि जो लोग दंड न देकर चिकित्सा के हामी है उनकी सम्मति मे —

(१) बाल अपराधी परिस्थितियों का शिकार है अतएव उसे दंड देने के बजाय उसकी आवश्यकताओ के अनुसार उसे संरक्षण तथा देखरेख प्राप्त होनी चाहिए।

(२) दंड देना या शिक्षा तथा कल्याणकारी चिकित्सा करना, इन दोनों बातो में बडा अन्तर है। दंड तब दिया जाता है जब अपराधी की व्यक्तिगत जिम्मेदारी मानी जाती है पर दूसरे प्रकार का उपाय उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के अध्ययन पर तथा उन कारणो पर आधारित है जिनसे उसने असामाजिक कार्य किया है। जब दडविधान से ही उसका नाम—बाल अपराधी का नाम—इसलिए हटा दिया गया कि वह अपने कार्यों के लिए स्वयं पूर्णत. उत्तरदायी नही है, तो फिर बाल-अदालते या बाल अपराधी के विषय मे काम करनेवाले अफसर उसके साथ दूसरा व्यवहार कैसे कर सकते है ?

(३) ऐसे कुछ बाल अपराधी हो सकते हैं जिन पर चिकित्सा, सुधार, निगरानी आदि किसी का प्रभाव न पडे। तब ऐसे बाल अपराधियों को बाल-अदालत के दायरे से ही बाहर कर अन्य अदालतो मे ले जाना चाहिए।[१]

दंड के हिमायती लोगो का कहना है कि यदि बच्चों को मालूम हो गया कि दंड नही मिलेगा तो वे डरेंगे नही। बहुत से ऐसे लड़के या लड़कियाँ है जो दड की भाषा ही समझते है। ऐसे अनेक मामले हो सकते है जिनमे दंड से ही उस अपराधी के आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत हो जाती है, अन्यथा नही। सुधारगृहों में भी किसी रूप में दंड तो वर्तमान है, अतएव दंड को अस्वीकार नही करना चाहिए।

राष्ट्रसंघ का कथन है कि इन दोनों बातों को एक में मिलाने का एक ही तरीका है—प्रायश्चित या प्रतिशोध के लिए दंड देना तो नितान्त निकम्मी तथा ग़लत बात है, पर सुधार के लिए जहाँ पर शिक्षा का कार्यक्रम असफल रहा हो, किसी रूप में दंड दिया जा सकता है। कभी-कभी शिक्षा तथा दंड को मिलाकर चलना होगा। दोनों को मिलाकर चलनेसे सुधार, शिक्षा, भय आदि हर एक उद्देश्य की पूर्ति हो जायगी[१] सन् १९५४ मे, सितम्बर के महीने मे आस्ट्रिया की राजधानी वियेना में अपराध निरोध पर यूरोप के देशो की सभा हुई थी।[२] इस सभा में यह तया हुआ था कि "यदि बाल-अपराध पर कानून क़ैदख़ाने की सजा देना ही चाहता हो तो थोड़े दिनों के लिए सजा को स्थगित कर चिकित्सा का कार्य करना चाहिए। इस प्रकार सुधार का काम भी होता रहेगा, जेल का भय भी बना रहेगा तथा अपराधी को चिन्ता बनी रहेगी।

१. वही, पृष्ठ ६२।

२. World Federation for Mental Health—Federation Mondiale

अध्याय २७

मानसिक स्वास्थ्य के सम्बंध में

सन् १९५५ के जेनेवा कांग्रेस मे मन के, दिमाग के स्वास्थ्य की चिन्ता करने वाले विश्व संघ ने एक स्मृतिपत्र वितरित किया था। उसमे लिखा था—

"सामाजिक क्रिया तथा प्रतिक्रिया के कारण ही अपराध होता है। उसकी रोक-थाम उस समुदाय के सामाजिक ढॉचे के अनुकूल उपाय करने से ही हो सकती है.... इसलिए अपराध निरोध के विषय में हर समुदाय तथा वर्ग को स्वतः सोचना पड़ेगा। पर कुछ ऐसे भी सिद्धान्त है जो मानव जाति के लिए आमतौर पर लागू होते है। व्यावहारिक दृष्टि से बाल अपराध के कारणो को तीन श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है। (१) व्यक्तिगत, (२) सामाजिक तथा (३) दोनो मिली-जुली। पहली श्रेणी मे वे कारण आते है जो व्यक्ति के निजी सम्बन्ध मे दोष के कारण पैदा होते है। सीधे सादे शब्दो में मानव शिशु के लिए यह स्वाभाविक है कि वह पैतृक स्नेह करनेवालो के समान बनने का प्रयास करते है। उनके तद्रूप बन जाते है। इस सम्बध मे यदि कोई दोष पैदा हो तो वह स्वाभाविक स्नेह नही जाग्रत होता। यही नहीं, वह विरोध, विग्रह तथा घृणा का रूप धारण कर लेता है....सामाजिक कारण वह है जिनमें किसी प्रकार के सामाजिक तनाव के कारण अपराधी मनोवृत्ति पैदा होती है। जैसे असमानता, अन्याय, या अपने घर वालों के प्रति अपनी वफ़ादारी तथा समाज की वफादारी मे संघर्ष, जैसे अपने माता-पिता को भूखों मरता देखकर कोई बच्चा रोटी चुरा लाये। मिलेजुले कारण वही है जिनके ऊपर आज अधिकाश बाल-अपराध की ज़िम्मेदारी है। एक तरफ़ सामाजिक तनाव है और दूसरी तरफ प्रेम के सम्बध में कमी है.... यदि केवल सामाजिक चिकित्सा की जाती है तो केवल सामाजिक कारणों के अपराधों पर लाभ होगा....यदि माता-पिता का जीवन संतुलित है, यदि उनके जीवन में कोई बड़ा विग्रह नही है, यदि परस्पर के सम्बध मे तथा सामाजिक जीवन मे कोई तनाव नही है, तो बच्चे के जीवन मे कोई विक्षेप नही होता। उसकी इन्द्रियां ठीक से

ठीक से नही प्राप्त होता, उसके ऐसे स्नेह-हीन जीवन मे ऐसा मनोवैज्ञानिक विप्लव पैदा होता है कि उसके मानसिक स्वास्थ्य पर, दिमागी तन्दुरुस्ती पर, बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है. . . .बालक-बालिकाओ के सुधार के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि माता-पिता भी परिपक्व हों, अधकच्चरे अनुभव से अपनी सन्तान का पालन न करें—उन्हें वह स्नेह तथा लगन प्रदान करे जिससे बच्चों का जीवन सुधरता है।"

जेनेवा कांग्रेस में बाल अपराधियो पर एक दूसरा महत्त्वपूर्ण परिपत्र विश्व स्वास्थ्य संगठन का था।[1] उसमें बाल अपराधी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिखा है कि उनके निजी व्यवहार, कार्य तथा जीवन मे जो अव्यवस्था प्रतीत होती है उसका एक कारण नही होता। "कई कारण मिलकर वैसा व्यवहार बनता है। सामाजिक, शारीरिक तथा वातावरण सम्बधी—ये सब मिलकर कारण बन जाते है—चोरी, मारपीट, लडाई-झगडा इन सब आदतो के पीछे समाज या किसी व्यक्ति के विरुद्ध विद्रोह की भावना है। अपराध तो उसे ही कहते हैं जो जानबूझ कर किया जाय। किसी अपराध का मनोविश्लेषण करने के लिए उसे करने की नीयत का पता लगाना चाहिए। नियम तथा व्यवस्था के विरुद्ध जो भी कार्य हो, चाहे उसका पता चले या न चले, हर दशा मे वह अपराधी है. . व्यवस्था, नियम, समाज या व्यक्ति के विरुद्ध विद्रोह परवार के वातावरण से या माता-पिता के व्यवहार के कारण तो नहीं प्रारम्भ हुआ है, यह बात पता लगाने की है।[2]"

हमने बाल-अपराध के विषय पर, अपनी पुस्तक के संकुचित आकार के दायरे में, अधिक से अधिक बातों को संक्षेप मे देने का प्रयास किया है। इसे रोकने के लिए, इसके बढते हुए वेग को कम करने के लिए, इसके मूल-भूत कारणो को दूर करने के लिए जितने मुख्य सिद्धान्त तथा प्रणालियाँ थीं, उनका भी कुछ न कुछ वर्णन किया ही गया है। पर जिस प्रकार हमे स्वयं इस विषय पर लिखने पर सन्तोष नहीं है, जिस प्रकार हमको स्वयं इस समस्या के हल का मार्ग स्पष्ट नही दिखाई पड रहा है, उसी प्रकार पाठकों को भी संतोष न हो तो कोई आश्चर्य की बात नही है। इसका कारण है। सिद्धान्त बनते और मिटते रहते है। एक नयी खोज होती है और कटती रहती है।

१. The Detection of the Pre-Delinquent Juvenile—World Health Organisation, 17th Aug., 1955.

पर बाल-अपराध की रोकथाम और वृद्धि को रोकने का सही उपाय समझ में नही आ रहा है। काम-वासना या अन्य प्रकार के अपराध का निदान तो समझ में आ सकता है। उसका व्यावहारिक रूप भी प्रत्यक्ष है। उन अपराधो मे कमी हुई है, पर जितना ही उपचार होता है, उतना ही बाल-अपराध बढता जा रहा है।

एक विषय मे सबकी सम्मति है। प्रत्येक दृष्टिकोण के अपराध-शास्त्री परिवार तथा माता-पिता का, पैतृक तथा पारिवारिक, अभिभावक तथा गुरुजनों का महत्त्व स्वीकार करते है, यदि हमारा पारिवारिक जीवन ठीक हो, यदि हमारा विचार तथा हमारी भावना अपने परिवार मे शुद्ध रहे तो बालकों का सुधार बहुत कुछ सम्भव है तथा समाज का कल्याण इसी में है कि हम अपने पारिवारिक जीवन की पुरानी मर्यादा को पुनः अपनाएँ, पुनः स्थापित करे तथा अपनी सन्तान की प्रगति, रक्षा, विकास और शिक्षा मे स्वयं दिलचस्पी लेना सीखें। सुदृढ पारिवारिक जीवन से ही सुदृढ समाज की रचना होती है और सुदृढ समाज मे ही अपराध तथा अपराधी मनोवृत्ति में काफ़ी कमी होती है। समाज की रक्षा परिवार से प्रारम्भ होगी।

तृतीय भाग
वयस्क अपराधी और पुनर्वास

अध्याय २८

अपराध और वयस्क अपराधी

अपराधी का मनोभाव

वायुयान से परिचित लोग चार्ल्स लिडवर्ग के नाम से परिचित है। यह पहले साहसी व्यक्ति है जिन्होने संयुक्तराज्य अमेरिका से पेरिस तक एक छलांग में वायुयान से यात्रा की थी। ससार मे उस समय इनकी जो ख्याति थी वह बिरले व्यक्ति के भाग्य मे होगी। सन् १९३२ मे उनके एकमात्र बच्चे को भगा ले जाने तथा उसकी हत्या करने का अभियोग ब्रुनो हाप्टमैन पर लगा और जब मुकद्दमा शुरू हुआ, ऐसा प्रतीत होता था कि संसार मे और कही कुछ नही हो रहा है—केवल उस सनसनीदार घटना का ही जिक्र है। पर इस मुकद्दमे के कई वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य के न्यू जर्सी नगर मे एक भयकर हत्या हुई। उस हत्या का रोमांचकारी विवरण तथा तत्संबंधी हॉल मिल्स का मुकद्दमा २४ दिन तक चलता रहा। अदालत की दिलचस्प कार्यवाही १,२०,००,००० शब्दो मे समाचारपत्रो को तार से भेजी गयी। यदि इतने शब्द पुस्तकाकार छापे जाते तो किताबों की अलमारी का २२ फुट लम्बा एक खाना भर जाता।[१]

समाचारपत्र वही सवाद विस्तार से देते है जो जनता चाहती है, जिसकी जनता को भूख होती है। आखिर आज के समाज में हत्याकाड या भयंकर घटनाओ के प्रति इतना प्रेम क्यो है? ऐसी घटनाओं से भरी लाखो पुस्तको की इतनी मॉग क्यो है? क्या ऐसा तो नही है कि सभ्य तथा शिष्ट कहे जानेवालो के दिल और दिमाग मे, उसकी तह मे अपराधी भावनाएँ भरी हुई है? समाज या शासन के भय से "अनजाने" ही वह अपराधी नही वन गया है पर दूसरे अपराधी की कहानी सुनकर उसे आत्मिक सन्तोष होता है।

१. Charles Merz—"Bigger and Better Murders"—New York, Harper & Bros., 1928—Page 81.

दूसरे, बहुत से लोग यह समझते है कि जिसे हम अपराधी कहते है, वह समाज का ऐसा शत्रु है जो "दूसरों को" पीड़ा पहुँचाया करता है। फिर भी वे खयाल करते है कि जिसको पीड़ा पहुँचती हो, वह जाने; हर एक को परेशान होने से लाभ? ऐसा विचार रखनेवाले सोचते है कि हम तो अपराधी से कोसो दूर है, हमसे क्या मतलब? पर यह कौन जानता है कि कल वे ही अपराध कर बैठे। किसे मालूम है कि कल वे ही न जाने किस हत्या मे, गबन मे, चोरी में स्वयं शिकार बन सकते है या वैसा बुरा काम स्वयं कर सकते है। कारागार मे अपराधियों को बन्दी रखनेवाला या पुलिस-मैन के रूप मे उनको गिरफ्तार करनेवाला स्वयं अपराधी बन सकता है। अपराध का कारण गरीबी होगा, अपराध का कारण बुद्धि के विकास मे कमी होगी या अपराध उन्माद है, पागलपन है—यह सब भी कहने की बाते है। अपराध का वास्तविक कारण, जितना ही हम उसका अध्ययन करते है, उतना ही "कुछ भी समझ मे नही आता।"

अपराध के कारण

यदि गरीबी के कारण आदमी अपराधी बनता तो आज संयुक्तराज्य अमेरिका ऐसा धनी देश इस परिणाम पर न पहुँचता कि "बहुत कम अपराध आवश्यकता के कारण होते है। अधिकांश अपराध लालच के कारण होते है, न कि जरूरत के कारण।"[१] मनोवैज्ञानिकों ने काफ़ी छानबीन करके यह पता लगाने की कोशिश की कि अपराधियों की बुद्धि का स्तर कैसा है। अनुमान नही, ठोस परीक्षण से पता चला कि उनमें तथा साधारण जनसमूह की बुद्धि में बहुत कम अन्तर है।[२] एक प्रकार से यह स्वीकार कर लिया गया है कि उनमें से अधिकतर की बुद्धि साधारण व्यक्ति से अधिक तीव्र होती है। यदि यह कहा जाय कि अधिकतर अपराधी उन्माद के शिकार होते है तो यह भी भूल होगी, क्योंकि पागलपन के ९९ फ़ीसदी मरीज अपराधी होते ही नही। कामुक वासना होने से ही अपराध होता है, यह कहना भी भूल है, क्योकि वासना का सबसे गन्दा अपराध अप्राकृतिक संभोग समझा जाता है और इस लत का कारण आज शरीर के भीतर की बनावट का कुछ दोष समझा जाने लगा है

१. Harry Elmer Barnes and Negely K. Teeters—"New Horizons In Criminology"—Prentice Hall, New Jersey, 1959—Page 7.

२. वही

और यह भी कहा जाता है—काफी छानबीन के बाद—कि इस प्रकार की लतवाले बहुत ज्यादा व्यक्ति अन्य सब बातों में बड़े सज्जन, शिष्ट तथा चरित्रवान् मिलेंगे।[१] यह रोग—यानी स्त्री-स्त्रीका अथवा पुरुष-पुरुष का सम्बंध न होने पर भी बहुत से जनाने मर्द तथा मर्दानी औरतें मिलेगी। जिन औरतो मे मर्द की पोशाक की नकल करने की आदत होती है या मर्द औरतों की तरह से बाल संवारने, पाउडर लगाने, या जनानी आवाज मे बोलने के व्यसनी होते है, ये दोनो प्रकार के लोग क्रमशः मर्दानी औरतें या जनाने मर्द होते है।[२] किन्तु, इनमें अपराध की प्रवृत्ति होती है, यह बात नहीं है। कामवासना और अपराधों का कारण होती है पर स्वतः यह अपराध नही है।[३] हम यह बात अपने पहले अध्याय मे साबित कर चुके है। केवल वासना-वश किये गये अपराधो की संख्या नगण्य है।[४] अमेरिका के प्रसिद्ध सिगसिंग जेल मे वासना के १०२ अपराधियो की समीक्षा की गयी तो पता चला कि उनमें कुछ को मानसिक तथा भावुक व्यतिक्रम था और अधिकाश के बचपन में पारिवारिक या सामाजिक कोई आघात, परेशानी या चोट पहुँची थी।[५] सभी व्यक्ति या सभी अपराधी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से मानसिक रोगी नही सिद्ध किये जा सकते। आजकल हर एक बात को मनोविज्ञान से जोड़ देना भी ठीक नहीं है।[६] आजकल वेश्यावृत्ति को भी अपराध माना जाता है। कुछ लोगों का यह ख़याल है कि कम उम्र में किसी कन्या के साथ बलात्कार या दुराचार करने के कारण वह आगे चलकर दुराचारी वेश्या बन जाती है पर, यदि ठीक से पता लगाया जाय तो अधिकांश वेश्याएं कपड़ा, मकान या भोजन की कमी से अपना शरीर बेचने निकलती हैं। एक बार भ्रष्ट हो जाने वाली लड़की सदैव ऐसी रहेगी, यह भाव एकदम गलत है।

१. वही, पृष्ठ ९७

२. वही, पृष्ठ ९७

३. वही, पृष्ठ ९९.

४. वही, पृष्ठ ९९

५. "Study of 102 Sex Offences in Sing Sing"—*Federal Probation*—Vol. 14, No. 3, (September, 1950)—Pages 26-32.

६. Dr. Ben Karpman, "Psychopathy as a Form of Social Parasitism—Journal of Chemical Psychopathology"—Vol. 10, No. 2–April, 1958.

जीवन भर, विवाह न कर, जीवन का सुख लेनेवाले "सदा कुमार" या "सदा कुमारी" आज संसार मे ऊँचे से ऊँचे पद पर मिलेंगे। आज के ७० वर्ष पूर्व चार्ल्स लोरिंग ने साबित कर दिया था कि वेश्या और कामुक वासनावालों में बहुत बड़ा अन्तर है।[१]

यदि मादक द्रव्य का सेवन अपराध का कारण समझा जाय तो इसे भी कोई खास कारण मान लेना कठिन है। सयुक्तराज्य अमेरिका मे १७,५०,००,००० व्यक्ति रोज शराब पीते है। इनमे से, वहा की गणना के अनुसार ३०,००,००० व्यक्ति "अति अधिक" शराब पीते है। येल नगर के डा० सेल्डन बेकन के कथनानुसार इनमें से एक चौथाई को मजबूरन ज्यादा पीना पड़ता है और बाकी लती शराबी है। ज्यादातर शराबी या तो ऐसी उलझनो के शिकार है जिनका व्यक्तित्व दूषित हो गया है, उसकी चिकित्सा होनी चाहिए।[२] पैतृक परिपाटी से शराबी बन गये है। शराबियों में ८५ प्रतिशत पुरुष होते है—२० से ६५ वर्ष की उम्र के भीतर के। यदि इनका इलाज ठीक से हो तो ये सुधर सकते है, पर इनको जेल भेजना इनकी मिट्टी खराब करना है।

अपराध का आर्थिक कारण

सन् १८९४ मे इटली के विद्वान एतोरे फर्नासारी दि वर्सी[३] ने हिसाब लगाया था कि इटली की ६० प्रतिशत जनता बहुत गरीब है। जेल मे बंद अपराधियों में ८५ से ९० प्रतिशत तक दरिद्र थे। इस हिसाब से, वर्सी के अनुसार दरिद्र ही अपराध करता है। नीदरलैंड के अपराधशास्त्री विलियम बौंगर[४] के कथनानुसार समाज की पूजीवादी रचना के कारण ही दरिद्र समाज बनता है और यही दरिद्र समाज अपराध का घर है। अमेरिकन अपराधशास्त्री चार्ल्स लोरिंग ब्रेस, जैकबरिस आदि का भी यही मत है।

१. Charles Loring Brace—"Gesta Christi"—New York Armstrong 1882—Page 317.

२. Barnes and Teeters—"New Horizon in Criminology"—Page 92.

३. Ettore Fornasari di Verce.

४. W. A. Bonger.—"Criminology and Economic Conditions"—Boston—Little Brown—1916. Page 643.

पर आधुनिक समाज-विज्ञान से यह सिद्ध है कि केवल गरीबी बिरले ही अपराध का कारण होती है।[१] असली कारण बहुत से है—निश्चित रूप से हैं। पर ज्यों ज्यों इस विषय का अध्ययन बढ़ता जा रहा है, मनोविश्लेषण करनेवाले तथा दण्डशास्त्री यानी दंडविज्ञान के पंडित का दृष्टिकोण भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न प्रतीत होता है।[२] मनोवैज्ञानिक तो मानसिक परिस्थिति में व्यतिक्रम की बात सोचकर उसी की बात सोचता है। ऐसे अनेक मामले भी सामने है जिनमें अपराधी को मार पीट कर, शरीर का दड देकर ठीक किया जा सकता है। बहुत से ऐसे अपराधी है जो बार-बार सजा पाते है और हर प्रकार का दंड देने पर भी अदालते उनको सजा देते देते थक जाती है।[३] उनका (अपराधियों का) मन तथा स्वभाव इतनी खराब हालत मे होता है कि उनकी रक्षा का कोई उपाय समझ मे नहीं आता। मनोविश्लेषण के हिमायती भी ऐसे लोगों से निराश हो जाते है। ऐसे अपराधियों की चिकित्सा का उपाय हम आगे चलकर सोचेंगे। यहाँ पर तो यही निश्चय करना है कि क्या दरिद्रता अपराध का कारण है। हम लोग तो यही समझते है कि जब किसी अपराधी को दंड दिया जाता है, अपराध करनेवाले के कार्य का कारण, काम की नीयत समझने का प्रयास किया जाता है ताकि जिस सीमा तक उसकी नीयत का पता चले, उस सीमा तक दंड दिया जा सके।[४]

दरिद्रता

इसीलिए नीयत की बात यदि प्रधान है तो स्वयं दरिद्रता नहीं, दरिद्रता की नीयत अपराध का कारण हो सकती है। बार्नेस और टीटर्स का मत है कि वस्त्र के अभाव

१. बार्नेस, टीटर्स—पृष्ठ १४८

२. Edward Glover (London)—"Prognosis or Prediction"—A Psychiatric Examination of the Concept of Recidivism"—The British Journal of Delinquency—Vol. VI Number I, Sept. 1955—Page 117.

३. वही, पृष्ठ ११७

४. Frenz Alexander and Hugo Staub and Gregory Zilboorg—"The Criminal, the Judge and the Public"—The Free Press, Glencoe, Illinosis, U. S. A. Page VIII, 1957.

में कोई चोरी नही करता या कोई लडकी कपड़े की कमी के कारण अपना शरीर नही बेचती, बल्कि अधिक अच्छे वस्त्र के लालच मे ऐसा करता या करती है। भूख से पीड़ित व्यक्ति चोरी बहुत कम करता है। यह सही है कि "अधिक अच्छी स्थिति" "अधिक अच्छा साधन", "अधिक अच्छी सामग्री" के लालच मे चोरी की जा सकती है। अतएव गरीबी नही, पर "व्यापक दृष्टि से छोटे-मोटे परम्परागत अपराधों का कारण, विशेषकर छोटी चोरियाँ, आर्थिक कारणों से होती है।"[१] पर यह नही भूलना चाहिए कि ऐसे लाखो नितान्त दरिद्र परिवार है जहा खाने का भी ठिकाना नही है पर वे लोग नितात ईमानदारी तथा सच्चाई से, अपनी परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए जीवन व्यतीत करते है।[२] ऐसा कौन-सा देश है जहाँ गरीबी नही है। ससार का सबसे धनी देश सयुक्त राज्य अमेरिका है। उसके विषय मे भी लिखा है—"गरीबी बड़ी निराशा तथा चिन्ता की बात है, जीवन के साधारण स्तर से नीचे उतर कर रहने के लिए मजबूर होना बड़ा कष्टदायक है। फिर भी इस देश मे ऐसे लाखो आदमी है जो ऐसा कष्टमय जीवन बिताते है। समृद्धि के कार्यों मे भी करीब ३० लाख परिवारो की आमदनी साधारण औसतन आय से बहुत कम थी।"[३]

लन्दन के आँकड़े

भारतवर्ष ऐसे गरीब देश मे, जहाँ करोड़ो व्यक्ति काफी गरीबी की हालत में रहते है, पश्चिम के धनी देशों की तुलना मे अपराध बहुत कम होते है। पश्चिम के देशो मे गरीब मुहल्लों मे रहनेवालो के बच्चो मे अपराधी भावना पैदा होती है पर उसके साथ रचनात्मक भाव भी कम नहीं होते। इन मुहल्लो की गिरफ्तारिया धनी मुहल्लों की तुलना मे कही कम होती है। ब्रिटेन के डा० सिरिल बर्ट ने हिसाब लगाया है कि "लंदन के समूचे अपराधियो मे से केवल १९ प्रतिशत गरीब मुहल्लों के है जबकि समूची आबादी का ८ प्रतिशत गरीब मुहल्लो मे रहता है। संक्षेप में आधे अपराधी गरीब या "साधारणतः" दरिद्र परिवार के थे पर "साधारणतः" सम्पन्न परिवारों के अधिकाश अपराधी पुलिस की जाँच या कार्रवाइयों से अपने को बचा

१. Barnes & Teeters—पृष्ठ १४८

२. वही, १४८

३. वही, पृष्ठ १४९, इस विषय में Statistical Abstract of the United States में पृष्ठ ३०९ पर सन् १९५४ के बड़े रोचक आँकड़े दिये हैं।

लेते है। . यदि अपराधियों में अधिकांश व्यक्ति जरूरतमन्द लोग है तो अधिकाश जरूरतमन्द अपराधी नही है।"[१] डा० हीली का हम पिछले अध्यायो में बार-बार जिक्र कर आये है। उनकी खोज के अनुसार जितने मामले उनके सामने आये उनमें केवल ०५ प्रतिशत ऐसे थे जिनमें गरीबी ही अपराध का मुख्य कारण थी। ७ १ प्रतिशत मामलों मे गरीबी गौण कारण थी।[२] हीली की पुस्तक की आलोचना करते हुए डा० सिरिल बर्ट कहते है कि ८०० पन्ने की पुस्तक मे गरीबी पर केवल १७ लाइने (पंक्तियां) लिखी गयी है।

डा० हीली की उपरिलिखित खोज के कई वर्षो बाद उन्होने तथा उनकी धर्मपत्नी डा० ब्रानर ने ६५६ अपराधियों की जॉच करके पता लगाया कि उनमे से २२ फ़ीसदी दरिद्र परिवारो के थे, ५ फीसदी विस्थापित तथा निराश्रित थे, ३५ फ़ीसदी "साधारण" परिवारो के, ३४ फीसदी सम्पन्न परिवारों के तथा ४ फीसदी अत्यधिक विलास में रहनेवाले परिवारो के थे। इस प्रकार निराश्रित तथा अत्यधिक सम्पन्न—दोनों की परिस्थति बराबर है। सब हिसाब लगाकर डा० हीली तथा डा० ब्रानर का कहना है कि "७३ फ़ीसदी साधारण खाते-पीते परिवार के थे. .अतएव आर्थिक परिस्थिति अपराधी भावनाओं के अध्ययन मे विशेष महत्त्व नही रखती।"[३]

द्वेष की बात

बार्नेस और टीटर्स लिखते है--

"भूख और शीत नही, द्वेष तथा महत्त्वाकाक्षा ही छोटे अपराधो के लिए प्रेरित करते है। यह उसी प्रकार से है जैसे लालच के कारण ही बडे-बड़े अपराधी बनते है. . .गरीबों को दूर कर देना आसान बात नही है. आर्थिक अरक्षा, पुष्टिकारक भोजन में कमी, आवश्यकता से कम वस्त्र, आवश्यक औषधिक तथा चिकित्सा-सम्बंधी साधनों की कमी--ये ऐसी चीजें है जिनसे अपराधी या विद्रोही भावनाएँ पैदा हो

१. Dr. Cyril Burt—"The Young Delinquent"—Ist Edition—London, University of London Press, 1938—Pages 68, 69, 92 etc.

२. Dr. William Healy—"The Young Delinquent"—Boston—Little Brown, 1915—Page 135.

३. William Healy and Augusta F. Bronner—Delinquents and Criminals—New York—Macmillan, 1926—Page 121.

सकती है। इसलिए इसमे क्या आश्चर्य है कि अपराध और गरीबी का प्राय. सम्बंध हो जाता है।"[१]

अपराधी धनी अमेरिका

बेकारी को अपराध का कारण समझना भी उचित नही समझा जाता। सिगसिंग जेल मे ८०० कैदियो में केवल ११ प्रतिशत ऐसे थे जो अपराध करने के समय बेकार थे।[२] संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे धनी देश मे, जहाँ पर साढ़े सत्रह करोड़ की आवादी मे औसतन फी व्यक्ति की आमदनी १५ से २० हजार रुपये साल है, केवल न्यूयार्क के बन्दरगाह से हर साल लगभग २ करोड़ मूल्य का माल चोरी जाता है।[३] संयुक्तराज्य के २२ प्रमुख नगरों मे फी हजार की आबादी पीछे नीचे लिखे औसतन व्यक्ति हत्या, चोरी, डकैती, सेध आदि अपराधों के दोषी थे।[४]

(फ़ी १००० व्यक्ति पीछे)

लॉस ऐंजीलीज	५१. ७	इंडियानापोलिस	२७. ५
ऐटलांटा	४४ ७	क्लेवलैंड	२३ ०
सेंट लूई	४३. ८	मिन्नेपोलिस	२१. २
डेनवर	३९. ३	बोस्टन	२१. ०
सियाटल	३९ ३	पिट्सबर्ग	२१ ७
नेवार्क	३७ ४	न्यूयार्क सिटी	१७. ७
हाउस्टन	३५. २	फिलाडेल्फिया	१६. ९
डालास	३५. २	सिंसिनाटी	१६ ०
सान फ्रेंसिस्को	३४. ८	कैंसस सिटी	१३ ३
न्यू आर्लियन्स	२९. २	शिकागो	१२ ९
डे टायट	२८. ०	बफालो	८ ५

१. Barnes and Teeters—Page 162.
२. वही, पृष्ठ १५३
३. Journal of Commerce, New York, 13 Jan. 1956.
४. Time Magazine, New York, June 30, 1958—Page 18.

इन आँकडो से स्पष्ट है कि पहले जो शिकागो नगर अत्यधिक अपराधी समझा जाता था, वैसा अब नही है। १९२९–३० के जमाने का शिकागो अब बदल गया है। उसी प्रकार अपराध की सूरत और श्रेणी भी बदल गयी है। "आँख पर पट्टी बाँधे" जिन प्रसिद्ध अमेरिकन बदमाशो की कहानियाँ सुनी जाती है, उनका जमाना प्रथम महायुद्ध के समय गिरने लगा। संयुक्तराज्य में मादक द्रव्य निषेध के जमाने मे कानून तोडकर मादक द्रव्य बनाने और बेचनेवालो की नयी श्रेणी तैयार हो गयी। कई वर्षों तक बदमाशों के लिए येही सबसे लाभदायक काम रह गया। द्वितीय महायुद्ध के जमाने मे अपराधियों के गिरोह-गुट बनने लगे। उनका नियमित तथा निश्चित सगठन था और वे समाज का गला काटते थे तथा आपस मे भी मारकाट करते थे।

द्वितीय महायुद्ध के बाद एक नयी श्रेणी का अपराधी पैदा हो गया है। वह है "सफेदपोश", सभ्य तथा सम्मानित समझा जानेवाला अपराधी, जो सरकार, व्यवसाय तथा व्यापार सभी क्षेत्रों मे फैला हुआ है।[१] संयुक्तराज्य अमेरिका के २०० जेलो के (सुधारगृह मिलाकर) २,००,००० के औसतन सालाना कैदियो मे इसकी अच्छी खासी संख्या है। सन् १८७७ मे रिचार्ड डगडेल ने जो मीमासा की थी, वह आज भी सत्य प्रतीत होती है। उन्होंने लिखा था कि तीन प्रकार के लोगों को अपराध करने मे लाभ है—

१ अपराध-विशेषज्ञ, इनके अपराध का पता लगाना कठिन है। यदि पता लग भी गया तो ये घूस देकर अपने को बचा सकते है।

२ अयोग्य व्यक्ति जो इतने आलसी है कि कुछ काम नही कर सकते; इतने घमण्डी है कि भीख नही माँग सकते; इतनी कम उम्र के है कि किसी भिक्षुगृह मे नही रखे जाते सकते।

३. एकदम दरिद्र–जो इसलिए चोरी करते है कि जेल मे भिक्षु-गृह से अधिक आराम है।[२]

अस्तु, संयुक्त राज्य अमेरिका में, केन्द्रीय पुलिस जाँच विभाग से सचालक एडगर हूवर की रिपोर्ट के अनुसार, अपराध की रोकथाम तथा दंड पर १० अरब रुपया साल—प्रति परिवार पीछे २५०० रुपया वार्षिक—व्यय होता है।

१. Barnes and Teeters—Page 18-19.

२. Richard Dugdale—The Jukes—G. P. Putnam and Sons, New York, 1910, Page 199.

चोरी, डकैती, जुआ

इतना व्यय होगा ही। सन् १९५६ मे ५,६८,५६१ अपराधो की रिपोर्ट हुई। १,५१,५६१ व्यक्ति पकडे गये। १,०६,७०९ पर मुकद्दमा चला। इनमे केवल ६५,४११ अदालतो द्वारा अपराधी पाये गये। ९,३०८ ने मामूली अपराधो को "स्वीकार" कर लिया, यानी केवल ६९ १ प्रतिशत मुकद्दमे सफल हुए। पर सब आँकडा मिलाने पर पुलिस को जितने अपराधो का पता चला था उनमें से केवल १३ २ प्रतिशत साबित किये जा सके तथा गिरफ्तार लोगों मे से ५० प्रतिशत पर ही दोष सिद्ध हो सका।[1] सयुक्तराज्य के २,२०० नगरो मे सन् १९४७ से १९५१ के बीच मे १०,००,००० बड़ी चोरियाँ हुई, १,८४,३५८ डाके पडे। दस लाख चोरियों मे आठ लाख का पता नही लगा। डकैतियो मे १,०८,१३४ का कोई पता नही चला। पुलिस के पास सब कुछ वैज्ञानिक साधन होते हुए भी वह दक्ष तथा पटु अपराधियो से हार खाती जाती है। उस देश में जुआ खेलने पर लाखो रुपया खर्च होता है। दर्जनो प्रकार के जुए है। २ करोड ६० लाख व्यक्ति "बिगो" खेलते है, लाटरी खरीदते है, इत्यादि। २ करोड़ २० लाख व्यक्ति पाँसा या ताश का जुआ खेलते है। १ करोड ९० लाख व्यक्ति दगलो मे पहलवानो पर या फिर राजनीतिक घटनाओ पर सट्टेबाजी करते है। १ करोड ५० लाख "पचवोर्ड" है। १ करोड ४० लाख स्लाट मशीनो पर, ८० लाख घुडदौड़ मे तथा ८० लाख लाटरी आदि के जूए खेलते है।[2] इन जूओ में जो लागत (धन) खर्च होता है यानी जितनी रकम का वारा-न्यारा होता है वह लगभग २६ करोड़ डालर है यानी १३० अरब रुपये का वारा-न्यारा हो गया। जूआ रोकने मे असमर्थ हो जाने के बाद अब उसे रोकने की एक ही तरकीब समझी जा रही है कि उसे कानूनी रूप देकर "सम्मानित" व्यवसाय क्यो न मान लिया जाय। क्या गरीब देश में ऐसा हो सकता है?

१. Uniform Crime Reports, Vol. 28, No. I, (September, 1957) Table 20, Page 61.

२. Barnes and Teeters, Page 30-31. **वही, पृष्ठ ३३**

अध्याय २९

विकृतमना

जिसका मन विकृत हो, उसे विकृतमना[1] कहते है। रोजमर्रा की जिन्दगी मे हम स्वयं अपने सम्बंध मे देखते है कि मन विकृत होता रहता है। किन्तु बहुत से लोग ऐसे होते है जिनका मन स्थायी रूप से विकृत हो जाता है। ऐसे लोग प्राय छेड़ करके झगडा मोल लेते है। बिना इसके उनको चैन नही मिलती।[2] ऐसे लोगो की समाज मे ऐसी परिस्थिति हो जाती है कि कोई उन्हे पसन्द नही करता, कोई उनका साथ नही चाहता। ऐसी प्रवृत्ति के लोग अनायास या स्वभाववश ही अपराधी बन जाते है। अपराधी भी ऐसा जिससे दूसरो की हानि हो, दूसरों की वस्तु का अपहरण हो। समाज उनके प्रति उदासीन है तो वे समाज के प्रति उद्दंड हो जाते है।

सन् १९५५ में ब्रिटेन में एक ऐसा ही विषय विचाराधीन था। साढ़े १८ वर्ष का एक लड़का बहुत ही झगडालू प्रवृत्ति का था। उसे पाँच बार सजा मिल चुकी थी—जेल हो आया था। छठी बार वह हिसात्मक डकैती तथा जेल अधिकारी को छुरा मारने के अपराध मे जेल आया था। इसके बाद उसे सन् १९४९ मे १८ महीने की सजा, १९५१ में ६ महीने, फिर २१ महीने, १९५२ में ६ महीने, १९५३ मे ६ महीने—ये सभी सजाएँ चोरी या मकान मे सेंध लगाने के सिलसिले मे मिली थी— तथा १९५४ में वह प्रोबेशन अफसर की निगरानी में इसलिए रखा गया था कि उसने एक व्यक्ति को, उसकी जान लेने की धमकी का पत्र लिखा था।[3] अब यह सोचने की बात है कि यह युवक स्वतः अपराधी था या यह इसके मन का दोष था।

१. **अंग्रेजी मे इसे** Psychopath—**विकृतमना कहते है।**

२. The British Journal of Delinquency, Vol. VI, Number II—September, 1958, Page 134.

३ **वही पृष्ठ १३५** Follow-up Study of Criminal Psychopaths—Gibbons, Pond and Stafford Clark.

यदि विकृतमन का कोई इलाज हो सके तो ऐसे युवक की दुनिया ही दूसरी हो सकती है।

कई श्रेणियाँ

विकृतमना मे भी कई प्रकार के व्यक्ति होते है। एक श्रेणी "अपरिपक्व मोहक विकृतमना"[1] की होती है। प्रयत्न करने पर भी इनमे सुधार नही हो सकता पर ये लोग बडे विनम्र, शिष्ट तथा व्यवहार में मन मोह लेनेवाले होते है। ये उद्दड प्रकार का अपराध नही करते, इसीलिए अपरिपक्व कहे जाते है। प्राय विकृतमना लोगों मे अपस्मार यानी मृगी की बीमारी का कोई न कोई रूप मिलता है। इनमे वह भी नही होता पर झूठा बहाना करके ठग लेना, जालसाजी या सभ्य ठगी मे ये लोग बड़े चतुर होते है। ऐसे लोग समाज में काफी खतरनाक होते है। सन् १९४८ मे ६९ विकृतमना बन्दियों की लन्दन में समीक्षा हुई तो पता चला कि इनमे अधिकांश काफी मँजे हुए तथा अनुभवी अपराधी थे। उनको और कुछ नही आता था—केवल अपराध की विद्या मे वे पण्डित थे। पर उनके अपराध की एक खासियत भी है। वे ज्यादातर, बहुत गम्भीर अपराध नही करते, चोरी, लूट-खसोट, मारपीट इत्यादि के दायरे मे ही वे रह जाते है।[2] उद्दंड विकृतमना अपराधियों की छानबीन करके पता चला कि उन्होंने पाॅच वर्ष मे ७४ अपराध किये जिनमे १४ उद्दड अपराध थे। शेष साधारण केवल तीन अपराध गम्भीर थे। अतएव यह मानते हुए भी कि विकृतमना अपराधियों में गम्भीर तथा महान अपराधी भी निकलते है—आमतौर पर उनको गम्भीर अपराधी कहना भूल है।[3]

विकृतमन की चिकित्सा बहुत कठिन है। सज़ा से या उपदेश से, दोनों से ही उनका सुधार बड़ी कठिनाई से होता है। उनकी साधारण प्रवृत्ति बचपन में ही उनके चरित्र को स्पष्ट कर देती है। पिता से लड़ जाना, पिता से बगावत कर बैठना, माता से विरोध, किसी काम पर न टिकना, परिवार तथा कुटुम्बीजनों से

१. Charming inadequate psychopaths वही, पृष्ठ १३५

२. वही, पृष्ठ १३६.

३. इस सम्बंध में और अधिक अध्ययन के लिए देखिए—L. Landucci & D. A. Pond. Mineroa med (Yorino) 1954—1 x 18. 7.

झगड़ा, स्कूल से भाग जाना[१]—और फिर बार-बार जेल जाना, ऐसे लोगो को अपराध की गुरुता के अनुसार नही, व्यवहार के अनुसार दंड मिलता है। लम्बी सजाएं होती हैं। ऐसी लम्बी सजा इसलिए दी जाती है कि उनका सुधार हो जाय पर ऐसी आसानी से सुधार नही होता।[२] बार-बार जेल हो आना इनके लिए मामूली बात होती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि लगभग ८० प्रतिशत प्रथम अपराधी फिर जेल वापस नही आते। वे सुधर जाते है। पर शेष २० प्रतिशत मे ७० प्रतिशत ऐसे होते है जो तीन-चार बार जेल का चक्कर लगा ही लेते है। यही विकृतमना अपराधी है। जो नही सुधरते, उनकी बडी दुर्गति होती है। एक व्यक्ति अगस्त १९५३ मे हत्या के अपराध मे ७ वर्ष की सजा भोगकर बाहर आया। अक्टूबर, १९५३ मे उसने आत्महत्या की चेष्टा की। उसके बाद से वह सुधर गया। इसके विपरीत एक शिष्ट तथा 'मोहक' विकृतमना अपराधी ३७ वर्ष की उम्र तक १४ बार जेल-यात्रा कर आया था और हर बार छोटी चोरी या जालसाजी में जेल गया। सन् १९५० मे उसे हिंसात्मक डकैती के लिए दो वर्ष का कठोर कारावास मिला।

विकृतमना व्यक्ति के बारे में एक बात मार्के की यह है कि ज्यादातर ऐसे अपराधियो के सर में कभी न कभी चोट जरूर लगी होती है, चाहे बचपन की ही चोट क्यों न हो।[३] दूसरे, इनमें बहुत कम ऐसे "रोगी" मिलेंगे जो आत्महत्या करने की चेष्टा करे। ऐसे अपराधियो को लम्बी सजा देने या कोडे मारने से भी क्या कभी कुछ लाभ होगा? अपनी पुस्तक में बार्नेस और टीटर्स लिखते है कि लम्बी सजा या शारीरिक दंड से अपराधी भावना कम नही होती।[४] या अपराध करनेवाला सजा को सोचकर सहम नही जाता।

मनस्ताप

विकृतमन हो या किसी प्रकार की मानसिक उलझन हो इसका सम्बंध मनोविज्ञान से ही है और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की सहायता से अपराधी की प्रवृत्ति

१. वही, पृष्ठ १२६
२. वही, पृष्ठ १२७
३. वही, पृष्ठ १३२–१३३
४. Barness & Teeters—New Horizons in Criminology—Page 6.

समझने का प्रयास किया जाता है। पर मनोविज्ञान स्वयं अभी तक किसी निश्चित बात पर नही पहुँच पाया है। विकृतमन के अतिरिक्त मन का एक दूसरा रोग होता है—मनस्ताप।[1] कुछ लोग इसे उन्माद भी कहते है पर उन्माद तथा मनस्ताप मे बडा अन्तर है। जो लोग पुराने ढंग पर मनस्ताप की समीक्षा करना चाहते है, वे भारी भूल कर रहे है। मनस्ताप मे कई बाते ऐसी उलझन की है कि उनको समझने के लिए दूर तक जाना पड़ता है। मानव-स्वभाव आज का नही बना है। आदि-काल का मानव जितना स्वतंत्र था, उच्छृंखल था, अपने मन की करता था, वैसा आज समाज तथा दड के भय से नही कर सकता। आदि-काल का मानव जो चाहता था, खाता था, जैसा चाहता था, रहता था, जिससे तथा जब चाहता था सभोग करता था। जिससे अप्रसन्न होता था, जिसे अपराधी समझता था, उसे अपने मन का दंड देता था। आज यदि किसी मनुष्य में से समाज तथा शासन का डर उठ जाय तो उसे वैसा ही मानव बनने मे कितनी देर लगती है। हम ऐसे मनुष्य को उन्मादी या मनस्तापी कहते है पर इसे प्राकृतिक, आदि-ऐतिहासिक क्यो न कहा जाय ? आज यदि नये विज्ञान के यन्त्रो से ऐसे मनस्तापी अपराधी की समीक्षा की जाने लगे तो एक से एक बढ़कर ऐसी बाते सामने आवेगी जिनको समझना कठिन होगा। शरीर की रचना समझ मे आ सकती है। अंग-अंग की बनावट की जानकारी हो सकती है पर सब कुछ समझ लेने के बाद विज्ञान-पंडित को मानव मस्तिष्क का वह कमरा दिखाई पड़ेगा जहाँ सभ्यता की सब कुछ प्रगति होने पर भी आदिकाल की जड़ता, स्वच्छन्दता तथा केवल अपने मन की करने की प्रवृत्ति वर्तमान है। प्रत्येक मनुष्य के मनके पीछे ऐसी उन्मुक्त प्रवृत्ति अपना स्थान बनाये हुए है। प्रत्येक व्यक्ति इस अज्ञात, अस्पष्ट भाव से युक्त है पर समाज, सभ्यता, सस्कार, शिक्षा, इन सबके सामूहिक प्रयत्न से मन नियंत्रित रहता है। उसका विकार सम्हला रहता है, छिपा रहता है। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि उसके मन मे कभी चोरी करने की, किसी को अनायास ही पीट देने की या संभोग की कामना नही हुई, तो वह झूठ बोलता है। यह सही है कि उसकी सभी दुष्प्रवृत्तियो की रोकथाम है, नियंत्रण है और उसका मार्ग भी प्रशस्त है। पर जो व्यक्ति इस नियंत्रण या रोक-थाम से बच निकलता है, जिसका मनका संस्कार पूरी तरह से उन्नत नही हो पाता वह एक विचित्र पीडा या तपन में जलने लगता है। एक ओर उसकी सहज तथा प्राकृतिक स्वतंत्र वासनाएं

१. **मनस्ताप** Neurosis

खींचती है। दूसरी ओर समाज खींचतान करता रहता है, उसे रोकता रहता है। जब सामाजिक बंधन शिथिल या दुर्बल पड़ जाते है तब चंचल प्रकृति तथा स्वच्छन्द मन उन्माद से भर जाता है। अतएव बचपन से ही उन्माद तथा मनस्ताप की नीव पड़ती है। जिसका बचपन नियंत्रित होता है वही अधिकतर अपराधी नही होता है। मनस्ताप की नीव पड़ जाती है। जिसका बचपन अनियत्रित होता है, वही अधिकतर अपराधी होता है। मनस्ताप तथा उन्माद का रोगी भले-बुरे का विवेक नही कर पाता और जो यह विवेक नही कर सकता वही अपराधी होता है। इसीलिए ऐसे विकारी पुरुष की काफी परीक्षा की जा रही है और मनोवैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे है कि शरीर-रचना मे कुछ कमी, कुछ खराबियो तथा कुछ दोष के कारण मनस्ताप का रोग होता है या निरर्थक, सारहीन मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया से भी मनस्ताप हो जाता है और दड या जेल या मार पीट से उसका रोग अच्छा नहीं हो सकता।[१]

मनस्ताप के रोगियो की कई बीमारियाँ अब मालूम हो गयी है। शायद इन बीमारियो का शिकार होने के कारण ही मनस्ताप पैदा हुआ। जिसने मन का संस्कार धो डाला और जंगली प्रवृत्ति को जगा दिया, अपराधी बना दिया। लगातार कब्ज रहने से, कै होने से, साँस लेने मे कठिनाई होने से, बदन मे मरोड़ होने से, लकवा की बीमारी से, दिल-दिमाग पर चोट लगने से, अंधापन या कम दृष्टि होने पर, बहरेपन से, बदन मे रोमाच अधिक होने के कारण, हिस्टीरिया यानी मूर्छा की बीमारी के कारण मनस्ताप का रोग पैदा होता है जिससे अपराधी प्रवृत्ति पैदा होती है। ये बीमारिया उन अचेतन मनोवैज्ञानिक क्रियाओ की अभिव्यक्ति हैं, जो मनस्तापी सभी लक्षणो के समान, जिन प्रेरणाओ की तृप्ति की मनाही समाज ने कर रखी है, उन्हीं को पूरा करते है या फिर उनकी तृप्ति की कामना के लिए दंडस्वरूप स्वय अपने को चोट पहुँचाते है।[२] हिस्टीरिया के बहुत से रोगी का असली कारण जरा पता लगाएं तो मार्के की बाते मालूम होगी—प्रेम की करुण कहानी, भोग की निन्दनीय गाथा, प्रेमी से मिलने का नाटक, मन के विचार से दु खी होकर अपना ही सर पीट लेना, इस

१. Alexander, Staub and Zilboorg—The Criminal, the Judge and the Public—The Free Prison, Glencoe, Illenois, 1957–Page 48.

२. वही, पृष्ठ ४९

प्रकार अपराधी के रोगो की छानवीन आसानी से हो जाती है और उनका असली कारण मालूम हो जाता है। किन्तु मानम विज्ञान[1] मन की प्रतिक्रिया का शरीर पर प्रभाव जानते हुए भी स्पप्ट ढग से इम विपय को तभी समझ सका जब फ्रायड ने अपनी चमत्कारिक खोज के परिणाम समाज के सामने रखे तथा अचेतन, अन्तरतम, स्वत: मानसिक क्रियाओ की पूरी तस्वीर हमारे सामने रख दी। थोडे ही समय मे एकदम नया मनोविज्ञान पैदा हो गया और आज हर एक के मन तथा बुद्धि की माप-तौल उसके द्वारा ही हो रही हे। मनुष्य की बुद्धि की रचना का एक नया शास्त्र खडा हो गया। मध्य युग मे मनुष्य के शरीर के भीतर की रचना की जानकारी पाप समझा जाता था और चिकित्साशास्त्र को लोग हेय समझते थे। अव तो बुद्धि की, मस्तिष्क की तह तह को खोलकर सोचने तथा समझने का प्रयास किया जा रहा है। मन का तथा शरीर का वडा सम्बध है। वातावरण तथा वायुमण्डल का मन से वडा सम्बध है। इन सबके सम्मिलित परिणाम से मानव-स्वभाव विकसित होता है।[2] मनस्तापी या उन्मादी व्यक्ति आप से आप अपराधी नही हो जाता। बच्चा वचपन मे अपने पिता-माता या अभिभावक के प्रति विद्रोह की भावना ग्रहण करता है। इस विद्रोह की भावना को शिक्षा, सस्कार तथा प्रेम से यदि शान्त नही किया गया, ममता सें उसकी स्वच्छंद तथा "जैसा चाहे वैसा करें" प्रवृत्ति को नहीं जीत लिया गया तो आगे चलकर वह अपराधी निकलेगा ही। दूसरे, कामुकता यानी संभोग की सहज प्रवृत्ति को ठीक रास्ते पर लाना होगा। यदि ऐसा न किया गया तो वयस्क होने पर उसे कौन रोक सकता है?

बहुत से लोग ऐसे भी होते है जिनमे अपने को छोटा या हेय समझने, अपने को दलित, पतित, पीड़ित समझने की प्रवृत्ति होती है। उन्हें ऐसा समझने मे सुख मिलता है। उनका अहंभाव मर कर उसका उलटा रूप ग्रहण कर लेता है। इन लोगो को रोगी बनाकर या घोषित कर अस्पताल मे भर्ती कर देने से इनको सुख मिलता है लेकिन यदि इनसे कहा जाय कि "तुम अब अच्छे हो रहे हो" तो इनको दु:ख होगा। आत्म-सहार, आत्म-विनाश, अपने को मिटा देने की भावना इनके मन मे इतना घर किये रहती है कि ये ऊचे उठ नही सकते। हर एक काम केवल अपने या दूसरे के सर्वनाश

१. Psychiatry **मानसविज्ञान**

२. **वही** The Criminal, the Judge and the Public **पुस्तक**, **पृष्ठ ५१.**

की दृष्टि से करेगे। ऐसे भी लोग होते है जो चाहते है कि वे जो कुछ चाहें सब उनको मिल जाय, जिस किसी वस्तु की उनको कामना हो, वह प्राप्त हो जाय, जिस स्त्री को, जिस भोजन को, जिस वस्त्र को चाहे, वह उनका हो। जब इनकी ऐसी इच्छा को ठोकर लगती है, ठेस पहुँचती है तो उसकी भयंकर प्रतिक्रिया इनके मन पर होती है। एक तरफ उनकी वह इच्छा मर जाती है, दूसरी तरफ वे संसार के शत्रु बन जाते है और प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति के प्रति विद्रोही बन जाते है। उनके मन मे ऐसी उदासी छा जाती है कि वे दुनिया मे किसी काम के नही रह जाते। किसी का भी हॅसना उनको खलता है, बुरा लगता है। अपनी घोर उदासी मे वे लोग आत्महत्या की सोचते है—और आत्महत्या की सोचते-सोचते दूसरे की हत्या कर डालते है।[1]

दंड का बडा भय होता है। बच्चा अपने घर के बुजुर्गो से डरता है—उनसे दंड मिलने के भय से। अपनी इच्छाओ की तृप्ति के लिए वयस्क—बालिग—व्यक्ति इच्छा की तृप्ति में बाधक समाज तथा सरकार के दंड से अपने मन की बात नही पूरी कर पाता। अपने को तथा अपने मनकी बात को महत्त्वपूर्ण समझने की उसकी भावना इतनी तीव्र हो उठती है कि वह घोर अहंभाव का शिकार हो जाता है। जो कुछ है, जो कुछ हो, सब उसके लिए, उसके दृष्टिकोण के अनुकूल हो। परिणाम यह होता है कि वह घोर अहंवादी और अपराधी बन जाता है। मनस्ताप के रोगी-अपराधी के विषय मे अलेक्जेण्डर, स्टाव तथा जिलवर्ग अपनी पुस्तक मे लिखते है—

"इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि अपराधी और कानून दोनो ही सामाजिक दृष्टि से एक साथ मिल कर वही काम कर रहे है जो मनस्तापी अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं तथा लक्षणो से अकेले करता है। वह अपराध भी करता है, उसका प्रायश्चित्त भी स्वयं करता चलता है। दोनों मे एक और समानता है। मनस्तापी अपनी पीड़ाओ यानी यातना या प्रायश्चित्त को मर्यादा-विरुद्ध कार्य करने का अनुमति-पत्र समझता है। अपराधी, जिसे हम मनस्ताप-अपराधी कहते है, बार-बार दंड पाकर अपनी नैतिक भावना खोता जाता है. . ऐसे अपराधी को सही मार्ग पर लाने का एकमात्र उपाय यह होगा कि उसे अपराध के लिए दड न देकर, उसके साथ दयालुता का, प्रेम का व्यवहार किया जाय। किसी प्रकार के दंड से यह कही अधिक लाभदायक तथा उपयोगी उपचार होगा। दड में एक खास बात होती है। जिसे दड मिलता है, वह यह महसूस करता है कि उसने (अपराधी ने) अपने पाप का, अपने

१. वही, पृष्ठ ५३

दुर्गुणों का प्रायश्चित्त कर लिया है। पर दंड के बदले दयालुता तो उसे इस अनुभव से वंचित कर देगी। मनस्ताप के अपराधियों के दिव्य मानस मे, यदि अहं की भावनाओं मे जो अत्यधिक नियत्रण भी वर्त्तमान रहता है, उसमे और वृद्धि हो जावेगी।"[1]

महात्मा गांधी ने प्रेम से हिसा को जीतने की सदैव शिक्षा दी थी। महात्मा जी के सिद्धान्तो की हँसी उडानेवाले पश्चिमी विद्वान् आज स्वय उनकी ही बातों को दुहरा रहे हैं।

मन की जिम्मेदारी

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड से यह प्रश्न पूछा गया था कि "सपना देखने की जिम्मेदारी किस पर है?" फ्रायड ने तुरत उत्तर दिया कि "सपना देखनेवाले पर।" यह हो सकता है कि उस जिम्मेदारी के हिस्सेदार कई लोग हो—दिन की घटना के पात्र, पेट भारी रखने योग्य खाना खिलानेवाला व्यक्ति, इत्यादि। पर प्रकटत: तथा न्यायत. सपना जिसने देखा, वही उसके लिए जिम्मेदार है। किसी आदमी को रक्तचाप की बीमारी है। अब इस प्रश्न का उत्तर कौन दे कि उसकी बीमारी की जिम्मेदारी किस पर है? हो सकता है कि घर में किसी कलह के कारण उसका रक्तचाप बढ गया हो। पर किसी भी कारण से बढा हो, जो बीमार है, वही अपनी बीमारी का जिम्मेदार है।

मन के सभी रोगो की जिम्मेदारी मन के स्वामी व्यक्ति की होती है। यह बात दूसरी है कि जिम्मेदारी की सीमा निर्धारित करनी पड़े कि किस हद तक वह व्यक्ति जिम्मेदार है। किसी ने उन्माद में हत्या कर डाली। पर हत्या का दोषी बनाने के पूर्व अदालत यह जरूर देखेगी कि उसे यानी कथित हत्यारे को किस सीमा तक उत्तेजित किया गया, भड़काया गया, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी गयी कि वह बेबस हो गया। उसे हत्या करनी ही पड़ी। आत्मरक्षा मे हत्या को हत्या नही कहते, यद्यपि प्राण-हरण करने का दोष सदैव बराबर है।

मन की प्रेरणा से ही काम होता है, कार्य-सम्पादन होता है। अतएव मन तथा उसके स्वामी को दोषी मान लेने मे किसी को आपत्ति न होनी चाहिए, पर यह सोचने की बात है कि मन के विचार से किसका मन अच्छा और पक्का माना जाय। बच्चे का मन चंचल होता है, पक्का नही होता। अधकचरे अनुभव से वह जो भी कुछ

१. वही, पृष्ठ ५७

अपनी जिम्मेदारी को महसूस करता रहेगा। जिम्मेदारी की इसी भावना से व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है। केवल ऐसे समाज मे जहाँ निरंकुश शासन है तथा एक व्यक्ति का ही राज्य है व्यक्तिगत जिम्मेदारी की भावना समाप्त हो जाती है। उस समाज के सदस्यो को विचार-विमर्श की भी स्वाधीनता नही रहती...... अपने तथा समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना केवल स्वतत्र समाजो में ही पैदा होती है।"[1]

विकृत अपराधी

चाहे मनस्तापी हो या विकृतमना, दोनो प्रकार के अपराधी "शोख" या विकृत अपराधी को जन्म देते है। यानी इनमें से ही शोख तथा विकृत अपराधी निकलते है। माता से वासना का सम्बंध करनेवाला पुत्र, बेटी से सम्बध करनेवाला पिता, बहिन से प्रसग करने वाला भाई—ऐसे विकृत तथा पतित अपराधी का सबसे बडा अपराध क्या है। सभोग की इच्छा सर्वदा स्वाभाविक इच्छा है। मन मे ऐसी भावना पैदा होना कदापि बुरा नही समझा जा सकता। यदि बुरी बात है तो केवल इतनी कि इसके लिए समाज ने जो मर्यादा बना रखी है, उसे तोड़ दिया गया। यदि बात बुरी बात हो सकती है तो केवल इतनी ही कि सभ्यता तथा धर्म ने, संस्कार तथा सस्कृति ने पारिवारिक जीवन मे जिस सम्बंध को स्थापित किया था, वह तोड़ दिया गया। पर, मूल अपराध यानी संभोग की वासना कोई बुरी बात नही है—बुरी बात है परिवार मे वैसा करना। अतएव विकृत अपराधी को जो रोग लगा है, उसका कोई खास कारण होगा। आमतौर पर यह साबित हो गया है कि ऊपर लिखे प्रकार का विकृत संभोग करनेवाले लोग उतने बडे अपराधी नही है जितना हम समझते है। यदि इनकी वासना की पूर्त्ति का, चाहे माता हो या पुत्र, बहिन हो या भाई, कोई भी अन्य साधन मिल जाता तो वे ऐसा भ्रष्ट सम्बध न करते। चूकि समाज ने उनको एक स्वाभाविक प्यास बुझाने का अवसर नही दिया, वे लोग भ्रष्ट हो गये। यदि विधवा माता को या नपुसक की पत्नी को अपनी वासना की शान्ति मे बाधा न मिलती तो काहे को अपने ही पुत्र से ससर्ग करती? कहने तथा सोचने मे रोमांच हो जाता है पर बात जो है, वह तो है ही और उसका अपना महत्त्व है। अपराधशास्त्र का विद्यार्थी उससे नेत्र नही मूँद सकता। पुरुष-पुरुष का या स्त्री-स्त्री का संभोग, अप्राकृतिक प्रसग, ये

१. The Criminal, the Judge and the Public, पृष्ठ १३१

सभी किसी कारण पैदा होते है। अतएव जब भी हम ऐसे विकृत अपराधी की बात सोचें, देखें, तो हमको उसके मन तथा चित्त पर पड़े संस्कार तथा समाज के प्रहार का भी ध्यान रखना होगा। यदि समाज ने उसे ऐसा भ्रष्ट बनने दिया तो समाज उसे सही मार्ग पर ला भी सकता है, एक दो प्रतिशत का सुधार नही हो सकता। पर जब यह साबित हो गया कि विकृत अपराध पैतृक नही, खानदानी देन नही, समाज की देन है, तब फिर ऐसे अपराधी का सुधार हो सकता है। हमने इधर के पृष्ठों में जिस पुस्तक का उद्धरण दिया है, उसके अनुसार ऐसे विकृत अपराध का कारण ढूढ़ने के लिए पता-लगाना होगा कि बचपन में उस व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार हुआ ? क्या उसके साथ बहुत ज्यादा सख्ती बरती गयी थी ? क्या उसकी वासना की इच्छा को बहुत कुचल कर, दबा कर रखा गया था, क्या उसके लालन पालन में सामाजिक पाखड तथा असत्यता का सहारा लिया गया था। यह सही है कि ऐसी परिस्थिति मे पाले गये सभी बच्चे खराब नही निकलते। पर इसमें उन बच्चो का श्रेय कम है, उनके वातावरण तथा उनके रहन-सहन का श्रेय अधिक है। अतएव विकृत अपराधी दंड का पात्र नही है। दोष उसका नही है—दोष है उसके लालन-पालन के तरीके का।[1] इसलिए दड किसे दीजिएगा ? इस सम्बंध मे ध्यान रखना चाहिए कि—[2]

"वासना सम्बंधी विकृत अपराधी को सहन करना पड़ेगा। जो बहुत ही गिरे अपराधी हो गये है, उनको अलग कर दीजिए, अलग रख दीजिए। पर असली काम है बचपन से ही उचित मनोवैज्ञानिक शिक्षा देना तथा उनकी साधारण कामुक भावना को एकदम दबा न देना।"

हमारे जीवन की कौन सी साधारण घटना कितना बडा तूफान खड़ा कर सकती है, इसे आसानी से समझना कठिन है। पर मनोवैज्ञानिक लोग जिसे "विकृतमना" या "मनस्ताप" का रोगी कह देते हैं, उसकी तह में बहुत साधारण कारण छिपा है। अलेक्जेंडर तथा स्टॉब ने २१ वर्ष के एक युवक का उदाहरण दिया है। वह असाधारण प्रतिभा का युवक था। उसका अपराध भी विचित्र था। वह कोई टैक्सी गाड़ी लेकर उस पर खूब घूमता-घूमता चक्कर लगाया करता और जब टैक्सी ड्राइवर तथा शराब का पैसा देने को नही रह जाता, वह गिरफ्तार हो जाता। इस विचित्र अपराध का कारण किसी ने न समझा। जब उसके पारिवारिक जीवन की खोज की गयी तो मालूम

१. वही पुस्तक, पृष्ठ ११३
२. वही पुस्तक, पृष्ठ ११८

हुआ कि कुछ वर्ष पहले, सन् १९२९ में, उसने किस्त पर एक साइकिल खरीदी। एक किस्त चुका भी दी। उसकी माता की दूसरी शादी थी—यानी उसका पिता सौतेला था। पिता ने अपने असली लडके को साइकिल खरीदने की इजाजत दे दी पर इस सौतेले लडके की किस्त पर खरीदी गयी साइकिल जबर्दस्ती छीन कर वापस कर दी। इस घटना का इस लडके पर इतना बुरा असर हुआ कि वह मन ही मन अपने पिता को पीटने की सोचने लगा। पर उसे साहस नही हुआ। वह अपनी जीविका स्वय कमा लेता था। साइकिल उसने अपने जेब से खरीदी थी। होटल के वेटर का काम वह करता था। "तव उसकी साइकिल क्यों छिन गयी?" वह एकदम उत्तेजित होकर घर से निकल गया और होटल चला आया। वहाँ पर, शाम को उसकी माता मिलने आयी। माता को देखते ही वह युवक आवेश मे कॉपने लगा। बाहर निकलकर एक टैक्सी पर बैठकर अनिश्चित स्थान के लिए चल पडा। जब पैसा खत्म हो गया, पकड़ा गया। इसके बाद जब उसे आवेश आता, इसी प्रकार टैक्सी पर निकल जाता, पकडा जाता, जेल जाता। अब इस विकृतमना अपराधी का जीवन कितनी साधारण सी घटना से नष्ट हो गया? साइकिल की बात ने कितना तूल पकड लिया। जीवन मे साधारण घटनाएँ मनुष्य को इसी प्रकार अपराधी बना देती हैं।

त्याग और अपराध

आदि काल से मनुष्य ने एक बडा पाठ सीखा है कि बिना त्याग के सुख नही मिलता। पिता-माता यदि अपने परिवार को सुखी रखना चाहते है तो उनको कुछ न कुछ त्याग करना ही होगा। माता अपना पेट काटकर बच्चो को भरपेट खिलाकर मातृ-सुख का अनुभव करती है। मनुष्य समाज में अपनी स्वच्छन्दता तथा स्वतन्त्रता का कुछ भाग सरकार को, राज्य को देकर निश्चिन्त जीवन का सुख उठाता है। ऐसा कौन मनुष्य है जिसे पीडा का भय न हो, कष्ट का भय न हो? सुख की आशा की दो भावनाओं के बीच से ही वास्तविकता का, वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान होता है। आम के वृक्ष का फल खाने मे सुख की आशा करनेवाले को इस बात का भय भी है कि कही उसके वृक्ष के फल लोग तोड न ले जायँ। इसलिए वह इस परिणाम पर पहुँचा कि आम के बाग का एक रखवाला होना चाहिए जिसके हाथ में डंडा भी हो ताकि फल तोड़ने (चुराने) वाले को डर बना रहे कि चोरी करेंगे तो मार खा जायँगे। चोरी करने पर पिटने के भय से राहचलतू लोग आम खाने का सुख उसी समय न उठा कर, उस सुख को तब तक के लिए स्थगित कर देते है जब तक वही आम बाजार

में सबके सामने बिकने न आ जाय। अतएव पीड़ा के भय तथा सुख की आशा दोनो ने मिलकर ऐसी वास्तविक परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिसमें आम खाने के इच्छुक लोगों ने आम तोड लेने की अपनी सहज इच्छा को दबा कर उस फल के खाने के सुख को तब तक के लिए स्थगित कर दिया जब तक वह फल बाजार मे पैसा देकर खरीदे जाने की स्थिति मे न पहुँच जाय। इस प्रकार परिस्थिति की वास्तविकता, आवश्यकता, और कुछ नही केवल सुख के सिद्धान्त का समुचित समन्वय है। मनुष्य सुख चाहता है, आनन्द चाहता है। इसमे उसे बाधाओ का सामना करना पड़ता है। इन बाधाओ का वैध रूप से निवारण करनेवाला ही अच्छा नागरिक कहा जाता है और अवैध तथा नाजायज तरीके से सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न करनेवाला अपराधी कहलाता है। सुख-प्राप्ति को स्थगित कर देना, छोटे, साधारण सुख का त्याग करना तथा समाज के सुख के आगे अपने सुख को गौण समझना, यही असली नागरिक शिक्षा, नागरिक शास्त्र है। जो इसके विपरीत करता है, अपराधी समझा जाता है।

त्याग का सौदा भी आदि काल से होता चला आया है। मनुष्य त्याग करता है और उसके बदले मे प्रेम चाहता है। माता-पिता परिवार के भरण-पोषण के लिए अपने सुखँ का त्याग करते है पर उसके बदले मे वे अपनी सन्तान से प्रेम की, स्नेह की आशा भी करते है। प्रेम का सबसे प्रथम वरदान सतान को अपनी माता से प्राप्त होता है। वह उसे दूध पिलाती है, पुचकारतीहै, प्यार करती है, रक्षा करती है और इस प्रेमका उत्तर संतान भी प्रेम से ही देती है। किन्तु माता की ममता में जहाँ लाड़-प्यार है वहाँ दंड देने की शक्ति भी है। वह स्नेह भी देती है, सुधारती भी है। बच्चे को फटकार भी देती है। पर उसकी एक पुचकार के बाद सब फटकार समाप्त हो जाती है। इसीलिए मातृसुख तथा माता का प्रेम बड़ी मधुर, बड़ी सरल वस्तु है। इसके विपरीत पिता का स्थान है। पिता का अपने सन्तान के जीवन से केवल अनुशासन का ही सम्बंध रहता है। बच्चा अपनी मां से प्रेम करता है, बाप से डरता है। उसे इस भयावह वस्तु यानी पिता के सामने जी खोलकर बाते करना भी नही आता—माता से वह सब कुछ कह-सुन सकता है। माता का भी अनुशासन होता है पर वह अनुशासन तथा प्रेम को जिस प्रकार मिलाये रहती है, पिता वैसा नही कर सकता। इस प्रकार माता सुख तथा आनन्द का स्रोत है, पिता जीवन का कटु सत्य है, वास्तविकता है। जिस बच्चे के जीवन मे ऐसे कटु सत्य तथा प्रेम का सामंजस्य बन गया, ठीक से जीवन चला, वह सुखी तथा सच्चरित्र होता है। बच्चा अपने बचपन मे हर बात के लिए माता पर निर्भर करता है, आश्रित रहता है। भोजन, निद्रा, सब कुछ मा से प्राप्त होती है। पिता कुछ नही देता—अनुशासन करता है। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता

है, अपने सुख के लिए माता पर आश्रित रहना समाप्त होता जाता है और एक दिन वह इतना बडा हो जाता है कि अपनी इच्छाओ को स्वयं तृप्त कर ले। अपनी भूख प्यास स्वय शान्त कर ले—अपना जीवन बिना किसी के सहारे चला ले। उसके इसी जीवन के लिए माता ने और पिता ने भी उसे प्यार किया है। उनके त्याग, परिश्रम तथा देखरेख से आज वह दिन आया कि बालक या बालिका बालिग होकर अपना जीवन स्वत चलावेगे। उस दिन के लिए घर मे जितनी तथा जैसी शिक्षा मिली होगी, वैसा ही चरित्र बनेगा। इसीलिए मनुष्य के जीवन मे माता का स्थान सबसे बडा है। उसके बाद पिता का। जिस पिता ने अनुशासन के साथ वात्सल्य को भी मिला दिया है, वह अपनी सन्तान का विश्वास भी प्राप्त कर सकता है। तब उसके अनुशासन का महत्त्व भी होता है। जब बच्चा बड़ा हो गया, उसी समय दंड की निषेधात्मक शक्ति, माता-पिता की शिक्षा तथा समाज के वातावरण का सामूहिक प्रभाव पडता है। अपने सुख की पूर्त्ति के लिए जब युवक का मन मचलता है, उसे दंड का भय, समाज की निषेधात्मक आज्ञाएँ, परिवार की सीख सब एक साथ नियंत्रण में रखती हैं। जब इसमें शिथिलता हुई, बालक या युवक, लड़की या नवयुवती, अपराधी बन जाते हैं।

भय का महत्त्व

मनुष्य के जीवन मे भय का बड़ा भारी महत्त्व है, भय से मनुष्य बहुत सी विपत्तियों तथा कुकृतियों से बचा रहता है। यदि चार आदमी के देख लेने का डर न हो तो लोग वेश्या के कोठे पर दिन मे या सामने के दरवाज़े से चले जायें। वे चोर की तरह छिपकर जाते है या समाज के भय से जाते ही नही। यदि परिवार की परम्परा या परिपाटी का डर न हो तो लोग विवाह के सामाजिक बंधन आसानी से तोड़ दें। माता-पिता के भय से घर का सामान चुराने में बच्चे को हिचक होती है। जेल तथा पुलिस के डर से अपराध करने की हिम्मत नही होती। जेल जेल ही है, चाहे उसमें रहने की कितनी ही सुख-सुविधा क्यों न हो। हाथ जलने के डर के कारण हम आग मे हाथ नही डालते। बीमार पड़ने के भय के कारण स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन नही करते। नित्य प्रति के जीवन मे ऐसे अनगिनत काम है जिनको हम करना चाहते है पर केवल "भय" हमारे ऊपर रोक-थाम किये हुए है।

भय क्या है? आनेवाले खतरे का सकेत ही भय है।[1] अमुक कार्य करने से

१. The Criminal, the Judge and the Public, पृ० ८

यह खतरा पैदा होगा—इसी भावना का नाम भय है। यदि मनष्य में ऐसी भावना न रहे तो उसकी कोई रोक-थाम नही हो सकती।

यह इसलिए कि शुरू से ही वह अपने को स्वतंत्र तथा स्वच्छन्द बनाने का प्रयत्न करता रहा है, अपने अधिकार के लिए लड़ता रहा है। आदिकाल से मनुष्य का समाज के साथ अपने अधिकार के लिए, अपनी आजादी के लिए संघर्ष रहा है और उसी संघर्ष की भावना आज भी उसके मन मे वर्त्तमान है। जरा-सी बात ऐसी हुई जिसमें उसके अधिकार पर आघात पहुँचा कि उसके मन में बेचैनी पैदा हो जाती है। वह कदापि यह नही चाहता कि वह जिस चीज को चाहता है, उसे प्राप्त करने मे समाज उसे रोके। किन्तु जब अपनी इच्छा पूरी करने के लिए वह आगे बढता है, उसका मन डर जाता है। वह सोचता है कि समाज ने अमुक सीमा तक ही उसे इच्छा की पूर्त्ति का अधिकार दिया है—उसके आगे बढने पर दंड मिलेगा। जिसमें दंड को समझने की बुद्धि होती है, वह डर कर मनमानी नही करता। जिसको दंड से डर लगता है, वह हाथ-पैर सम्हाल कर चलता है। जिसकी बुद्धि जड़ है, जो कुछ समझता ही नही, वह बेधडक होकर समाज की मर्यादा तोडकर अपनी इच्छा पूरी करता है। जो समझता भी है पर निर्भय है, वह भी सामाजिक नियमों की अवज्ञा करता है। इस प्रकार समाज के नियमो को तोड़नेवाले यानी अपराधी तीन प्रकार के हुए—

१ समाज के नियमो से अनभिज्ञ, अज्ञानी या मूढ।

२. समाज के नियमों से परिचित पर निर्भय।

३. स्वच्छन्द वृत्ति के मनुष्य जो बिना नियमो को तोड़े नहीं रह सकते।

पागल कोई नियम नहीं जानता। वह हत्या भी कर सकता है। पर अपराधी नही कहा जा सकता। कानून का अज्ञान स्वत अपराध है पर अबोध बालक यदि दीपक उलट कर मकान मे आग लगा देता है तो वह अपराध नहीं है। असली अपराधी तो वही है जो समाज या शासन के नियमों को जानता है और फिर भी निडर होकर उन्हे तोड़ता रहता है—अपराध करता रहता है। ऐसे अपराधी की समस्या ही सबसे महत्त्वपूर्ण है और अपराध-शास्त्र ऐसे ही अपराधी से उलझना चाहता है। उसे सुधार कर सही मार्ग पर लाना चाहता है।

पर, आज अपराधी को समझने में बड़ी भूल की जा रही है। असली भूल तो न्यायाधीश करता है। दंड के आज अनेक प्रकार है पर उसकी, यानी दंड की भावना, उसकी आधार-शिला ही गलत है। देखिए—

"साधारण आदमी के सामने उसकी जिम्मेदारियाँ है। उसे तो न्याय करना है पर यह न्याय अपराधी की मनोवैज्ञानिक रीति से समीक्षा के द्वारा ही हो सकता है।

उसे इस जिम्मेदारी का बडा भारी बोझ सम्हालने के समय यह ध्यान रखना होगा कि अपनी निजी प्रेरणा तथा मनोवृत्ति से किये गये फ़ैसले का परिणाम भी भोगना होगा। उसे अपने काम मे सहायता मिलेगी, यदि वह ध्यान रखे कि (१) उसका फैसला एक व्यक्ति से नही, समूह मात्र से, समूह मात्र के हित से सम्बध रखता है। अधिकाश दड-विधान के नियम न्यायाधीश पर बहुत वडी जिम्मेदारी छोड देते है . . . "[१] और यह जिम्मेदारी इतनी वड़ी है कि जरासी भूल से समाज की अपार हानि हो सकती है।

विक्षिप्त और प्रमादी

ऊपर हमने जिम्मेदारी की भावना का जिक्र किया है। साधारण मनुष्य की अपने जीवन के प्रति जिम्मेदारियां होती है। समाज तथा शासन के प्रति ज़िम्मेदारी होती है। अपने काम की, कर्त्तव्य की ज़िम्मेदारी को समझते हुए भी, उसके परिणाम को जानते हुए जो काम किया जाता है, उसका पाप-पुण्य उस व्यक्ति के जिम्मे होता है। किसी व्यक्ति को उसी समय अपराधी समझा जाता है जब वह अपना अपराध का कार्य करने के समय यह जानने या समझने के योग्य होता है कि वह काम बुरा है या कर्त्तव्य के विपरीत है—ऐसा कार्य है जो समाज के नियमों या उसकी व्यवस्था के प्रतिकूल है।[२] उस व्यक्ति का यह जानना जरूरी नही है कि वह कार्य समाज के तत्कालीन नियम या व्यवस्था के प्रतिकूल है। कानून की जानकारी न होना कोई दलील नही है। अपराध के निरूपण के लिए कानून की जानकारी का होना या न होना कोई तर्क नही माना जाता। हर समाज या देश मे यह बात मान ली जाती है कि नियमो की जानकारी हर एक को है। नैतिकता तथा उचित व्यवहार के आम सिद्धान्तो के विरुद्ध कार्य अपराध है, कानून तो ऐसे अपराधो की व्याख्या मात्र करता है।[३]

पर ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिनको किसी अपराधी कार्य करने के समय उचित-अनुचित समझने की शक्ति ही नही रही हो। मन ही तो ठहरा। हो सकता है कि

१. वही, पृष्ठ १८.

२. "क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः क्षिप्ताद् विशिष्टं विक्षिप्तमिति मणिप्रभा"—पातञ्जल भाष्य, ५५३.

३. P. K. Sen—Penology, Old and New–1943–Page 201.

नैतिकता की कल्पना करने की शक्ति ही उनमें समाप्त हो गयी हो या लुप्त हो गयी हो? भले-बुरे की, अच्छे काम या बुरे काम मे भेद करने की शक्ति न रह गयी हो? सन् १८३५ में प्रिचार्ड ने ऐसे लोगों के लिए "नैतिक विक्षिप्त" शब्द गढ़ा था, पर नैतिक विक्षिप्तता तथा "नैतिक दुर्बलता" में अन्तर ही क्या है। जो नैतिकता को न समझ पावे, वही नैतिक दुर्बलता का रोगी होगा। ऐसे लोगो मे नैतिक भावना का अभाव माना जायेगा। पर "नैतिक भावना" नामक कोई चीज है भी? डा० हैमब्लिन स्मिथ का कथन है कि "नैतिक बुद्धि" नामक कोई वस्तु है ही नहीं। नैतिक विवेक या नैतिक बुद्धि को हमने गढ़ लिया है। उचित और अनुचित के बारे मे हमारे विचार सामाजिक निर्णयो पर तथा सामाजिक सम्बंध के क्रमागत विकास पर निर्भर करते है। यदि किसी का यह विश्वास हो कि हमारे हृदय में आत्मा, चेतना, संकल्प नामक कोई वस्तु है जो हमारी इच्छाओ तथा कामनाओं के औचित्य तथा अनौचित्य का स्वत: निर्णय करती चलती है तो उसे "नैतिक विवेक" तथा "नैतिक दुर्बलता" में विश्वास करना चाहिए। किन्तु जिसे मानसिक निश्चय के सिद्धान्त पर विश्वास हो, वह इन चीजो को नही मानेगा।[१] किन्तु हम भारतीय आत्मा को, चेतना को, मन तथा बुद्धि और संकल्प सबको मानते है। हमारी इच्छाओं पर हमारी आत्मा तथा विवेक का अकुश सदैव रहता है। इस विवेक का विकास समाज के नियमों से ही होता है। पर एक ऐसी स्थिति आती है जब मन या शरीर के रोग से विवेक सो जाता है। ऐसी अवस्था को मूढावस्था या पागलपन की अवस्था कह सकते है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो बचपन से ही, जन्म से ही, विवेक-शून्य होते है। इन्हे मूढ[२] कहिए या बुद्धिहीन कहिए। बहरहाल, चाहे आन्तरिक प्रेरणा से हो या सामाजिक संस्कार से, मनुष्य में विवेक का होना आवश्यक है। विवेक के रहते जो अपराध करता है, वही अपराधी है। ऐसे अपराधी को दंड मिलता है अपने "विवेक से काम न लेने के लिए।" पर जिसके पास विवेक ही नही है, उसे किस लिए दंड दिया जायेगा?

मूर[३] ने जिसे "अभागा मस्तिष्क" कहा है, जिसका मस्तिष्क काम नही करेगा, उसे पागल या प्रमादी कहेंगे। विक्षिप्त वह है जो तर्क-शून्य है, जिसकी

१. Dr. M. Hamblin Smith—"Psychology of the Criminal"–Methuen & Co., London, 1922–Page 153-154.

२. Idiots.

३. John H. Moore–Clergy.

बुद्धि मे तर्क करके, विचार करके उचित या अनुचित का निर्णय करने की शक्ति नहीं रहती। यह सही है, जैसा कि जॉन हॉलम ने कहा है, कि पागल व्यक्ति दूसरे की मूर्खता को बडी अच्छी तरह से पहचान लेता है, पर अपनी मूर्खता उसकी समझ में नही आती। पागल की व्याख्या करते हुए ड्राइडन लिखते है—"वह बड़बड़ाया करता है। बालू के ढेर के समान उसके शब्द भी ढीले होते है। वे (शब्द) बुद्धि से बहुत दूर, अस्त-व्यस्त बिखरे रहते है। वह अपने हवाई घोडे या गद्दी पर इतना ऊचे उडता रहता है कि उसके दिमाग पर पाला पड़ जाता है।"[१] दार्शनिक लॉक[२] के अनुसार पागल तथा मूर्ख मे यह बडा अन्तर है कि मूर्ख सही सिद्धान्तो से गलत नतीजे निकालता है और पागल गलत सिद्धान्तो से सही नतीजे निकालता है। मूर्ख की मिसाल लीजिए। एक आदमी सो रहा है। मूर्ख ने उसका सिर काट लिया, सिर काट कर छिपा दिया। अब वही बैठकर वह यह तमाशा देखना चाहता है कि जब वह आदमी सोकर उठेगा और देखेगा कि उसका सिर ही नही है तो उसे कितना अधिक तथा कैसा विस्मय होगा। मूर्ख ने यह तो ठीक सोचा कि सिर के सहित सोने वाला जब जागेगा और अपने सिर को नही पायेगा तो उसे बड़ा अचम्भा जरूर होगा। उसने भूल यही की कि वह सोच रहा है कि बिना सिर का आदमी जाग भी सकता है? पागल आदमी विचार-शून्य नही होता। वह खूब बहस भी कर सकता है। उसकी भूल इतनी ही है कि वह जिस आधार पर, जिस भूमि पर अपने तर्क की दीवाल खड़ी कर रहा है, उसका वजूद (विद्यमानता, अस्तित्व) ही नही होता। वह स्वयं अपना आधार बनाता है और फिर उसे बिगाडता रहता है।

इसलिए क्या विवेक-शून्य व्यक्ति का, क्या विक्षिप्त या मूढ या प्रमादी द्वारा किया गया कार्य दंडनीय है? हमारे शास्त्रो ने भी स्पष्ट आदेश दिया है कि अपराध, देश, काल, अवस्था, कर्म, धन—इन सबको जानकर, इनके अनुसार ही दंड देने योग्यों को दंड दे। "दंड देने योग्यों को ही दंड दे"—

ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापि वा।
वयः कर्म च वित्तं च दंडं दंड्येषु पातयेत्॥

—याज्ञवल्क्य, ३६८.

१. The New Dictionary of Thoughts—Universal Text Books–London. Page 363.

२. John Locke, Philosopher.

म-नाटेन का मामला

"योग्य को ही दंड देने का सिद्धान्त" हमारे देश मे हज़ारो वर्ष पहले से था पर इंग्लैंड तथा अमेरिका ऐसे सभ्य देशों में इसकी कल्पना बहुत बाद मे आयी। संयुक्त-राज्य अमेरिका मे सन् १६७० तक कानून की जानकारी बहुत कम थी। "लोगों में कानूनी शिक्षा बहुत कम थी।"[१] पर, मानसिक रोगी को दड दिया जाय या न दिया जाय, यह सवाल सबसे पहले इंग्लैंड में १८४३ मे उठा। डेनियल म-नाटेन[२] नामक व्यक्ति ने ब्रिटेन के विदेश मंत्री सर रार्बटपाल के निजी सहायक एडवर्ड ड्रमंड को २० जनवरी, १८४३ को ४ बजे तीसरे प्रहर गोली मार दी। गोली मारने का कारण यह था कि उस व्यक्ति को यह प्रेरणा हुई कि अमुक मत्री राज्य के लिए अहितकर है। मारना था मत्री को। मारे गये निजी सहायक। मुकद्दमा चला। म-नाटेन की ओर से सफाई दी गयी कि जिस समय उसने गोली चलायी, उसकी बुद्धि ठिकाने नही थी। स्वस्थ मस्तिष्क वाले के मन मे भी अस्वस्थ विकल्प उत्पन्न हो सकते है। उसकी "सही और गलत" समझने की ताकत नष्ट हो सकती है। उसके मनमे एक ऐसा भय समा गया जिसने आत्म-नियंत्रण की शक्ति को भी समाप्त कर दिया था। इस प्रकार के रोग ने उसका सब कुछ विवेक भी समाप्त कर दिया था। अभि-योग पक्ष के सरकारी वकील सर विलियम फोलेट ने इस तर्क का घोर विरोध किया।

न्यायाधीश टिडल ने जूरी लोगों को मामला समझाते हुए कहा था—

"हमें यह तय करना है कि जिस समय विचाराधीन कार्य (गोली मारना) हो रहा था, अभियुक्त अपनी समझदारी से काम ले रहा था या नही ताकि हम यह जान सकें कि वह एक गलत और दुष्ट कार्य कर रहा था। यदि जूरी (पंच) लोग इस विचार के है कि जिस समय बंदी अपराध कर रहा था, मनुष्य तथा ईश्वर के नियमो के विरुद्ध कार्य कर रहा था, वह अपने होश मे नही था, उसका दिमाग़ सही नही था, तो निर्णय उसके पक्ष मे होगा। यदि इसके विपरीत यह प्रकट हो कि अभियोग के समय उसकी बुद्धि बिलकुल ठीक थी तो उसे दड मिलना चाहिए।"

१. The American Review, New Delhi, July, 1959, Page 43.

२. यह प्रसिद्ध मामला ब्रिटेन के सर्वोच्च न्यायालय हाउस आव लार्ड्स तक पहुँचा। ६ और १२ मार्च १८४३ को उस सरदार सभा मे इस पर बहस हुई, देखिए Hansard's Debates, Vol. LXVII–Page 288, 714.

न्यायाधीश टिडल ने बौद्धिक विवेक पर जोर दिया था। पंचों की—जूरी की राय मे म-नाटेन "निर्दोष" था। नैतिक उन्माद मे आदमी की जिम्मेदारी बनी रहती है। किसी दूसरे धर्म वाले की हत्या करना भी नैतिक उन्माद है। इस प्रकार धार्मिक दंगों मे सभी हत्याए अदण्डनीय हो जावेगी। पर, वही उन्माद अदडनीय होता है जिसमें यह सिद्ध हो जाय कि बुद्धि के ऊपर ऐसा पर्दा पड़ जाय कि यह विवेक ही न रह जाय कि क्या भला है, क्या बुरा है। कानून की दृष्टि मे वही कार्य "जान बूझकर किया गया" नही समझा जाता जिसे करने के समय मनुष्य में सही या गलत समझने की शक्ति नही रह जाती।[१]

किन्तु, म-नाटेन मामले मे विचारपति के आदेश से अनेक तर्क उत्पन्न होते है। उस प्रसिद्ध निर्णय में यह भी था कि—

"मानसिक रूप से रोगी होते हुए भी कोई व्यक्ति अपने अपराधी कार्य के लिए जिम्मेदार होगा यदि उसे अपने कार्य की "प्रकृति और गुण" मालूम है तथा उसे इतनी समझ है कि वह उसे गलत समझता है।"

पागल, प्रमादी या विक्षिप्त में "उचित तथा अनुचित" की पहचान रहती है या नही, यह बडा कठिन सवाल है और आज सैकड़ों वर्ष से इस पर बड़े-बड़े विचारवान् तर्क करते चले आ रहे है। उस मुकद्दमे के सिलसिले मे जो सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ उसमे यह कहा गया है कि—

"पागलपन के नाम पर अभियुक्त की पैरवी करते समय यह स्पष्टत. साबित करना चाहिए कि उक्त "अपराध" करने के समय अभियुक्त का मन इतना रोगी था कि उसका विवेक लुप्त हो गया था और वह जो कार्य कर रहा था उसकी सीमा, उसका रूप, उसका प्रकार—यह कुछ नही समझ रहा था। यदि यह उसे पता भी रहा हो तो वह यह नही समझ रहा था कि वह सब अनुचित है।"

किन्तु, "अनुचित" का क्या अर्थ है? इस शब्द की व्याख्या कैसी होगी? कोई चीज कही पर उचित है, कही पर अनुचित है। कोई मूर्त्ति की पूजा करता है, कोई उसे तोड़ता है। अतएव, यह कौन निर्णय करेगा कि क्या उचित है, क्या अनुचित है? बहुत से लोगों मे एक ही प्रकार के अवगुण हो सकते है। एक ही प्रकार की समस्याएं हो सकती है। पर वे अपनी समस्याओ को अलग-अलग सुलझाते है। यदि भिन्न

१. Penology–Old & New, पृष्ठ २०२

श्रेणी के, पर एक ही प्रकार की समस्यावाले लोग आपस मे मिलें[१] तो एक सामूहिक बात भी निकल सकती है। पर उचित-अनुचित का निर्णय मर्यादा के अनुसार, सामाजिक पद के अनुसार भी होता है। अक्सर काफी बड़े तथा धनी लोगो मे आदत होती है कि दूकान पर सामान खरीदने गये, और दो-एक चीजें उठा कर जेब में डाल ली। जानबूझ कर नही, आदतन वे ऐसा करते थे। ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री बाल्डविन ने कभी किसी की दियासलाई लेकर वापस नही की। सिगरेट जलायी और सलाई जेब मे रख ली। यदि छोटा आदमी किसी दूकान से एक चम्मच भी अपनी जेब में डाल ले तो उसे "चोर" कहा जायेगा। उसे चोर की सजा मिलेगी। मनोविज्ञान अपराधी की यह कहकर समीक्षा करता है कि समाज मे वह अपने को ठीक तरह से मिला न सका, सामाजिक नियमों मे अपने को अभ्यस्त न कर सका। किन्तु इतना ही कह देने से काम नही चलेगा। हर एक के जीवन की सास्कृतिक समस्याएँ होती है।[२] हर एक जीवन की निजी आवश्यकताएँ तथा पहेलियाँ होती है। इन बातों को भी न देखने से मनुष्य की वास्तविकता का पता नही चल सकता। एक ही सिद्धान्त हर एक के लिए लागू नही हो सकता। स्त्री या पुरुष के लिए भी भिन्न सिद्धान्त बन जाते है। उदाहरण के लिए ज़्यादातर स्त्री अपराधिनें "कामवासना" तथा तत्सम्बंधी अपराधो की शिकार होती है। ज्यादातर पुरुष अपराधी चोरी, सम्पत्ति सम्बंधी तथा हत्या, डकैती आदि के दोषी हो सकते है।[३] स्पष्ट है कि दोनों के अपराधो तथा कार्यो के औचित्य मे अन्तर है, भेद है। तो फिर सामाजिक रोग की दवा क्या है ? कोहन अपनी पुस्तक में, बाल अपराध के सम्बंध में लिखते है—[४]

"अपराध की मलेरिया ज्वर से तुलना कीजिए। हम मलेरिया का कारण जानते है कि किस कीटाणु से यह उत्पन्न होता है। जिस मच्छड़ से यह रोग फैलता

१. Albert K. Cohen—"Delinquent Boys" (The Culture of the Gang) Routledge & Kegan Paul Ltd., London 1956, Page 71.

२. वही, पृष्ठ १५६

३. वही, पृष्ठ ४५–४६

४. वही, पृष्ठ १७५

है, हम उससे तथा उसकी आदतों से परिचित है। हम जानते है कि किस दशा मे मच्छड़ पैदा होते है। इस जानकारी के सहारे हम मलेरिया से बचने का उपाय ढूढ निकालते है. . .हम उन परिस्थितियो को बदल सकते है जिनमे मच्छड पैदा होते है, हम मच्छडो का संहार भी कर सकते है। हम मच्छड तथा उसके शिकार के बीच मे दीवार खड़ी कर सकते है, मच्छड से बचने की औपधिया बना सकते है। पर इन सब सम्भावनाओ के साथ नये-नये सवाल भी उठते जाते है। क्या यह सब सम्भव है? किस प्रकार? कैसे? हर उपाय मे काफी समय तथा द्रव्य की आवश्यकता है तथा जिसे नष्ट करने का उपाय किया जायगा वह अपने बचाव का भी उपाय करेगा। यह आवश्यक हो सकता है कि समूचे समुदाय तथा समाज के साधन और प्रयत्न, त्याग तथा सहयोग की आवश्यकता हो। "श्रेष्ठ उपाय" आवादी के भिन्न वर्गो के दृष्टिकोण से अपनी श्रेष्ठता मे भी भिन्न हो सकता है।"

इसी प्रकार उचित या अनुचित की सर्वमान्य व्याख्या भी भिन्न भिन्न वर्गो के दृष्टिकोण पर निर्भर करेगी। म-नाटेन मामले में हाउस आव लार्ड्स मे जब बहस होने लगी तो लार्ड ब्राउघम ने कहा था—"उचित तथा अनुचित की केवल एक ही व्याख्या है। उचित वह है जब तुम कानून के अनुसार काम करते हो।" सन् १८४७ में, जून के महीने मे पार्लामेन्ट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए लार्ड ब्रामवेल ने कहा था—"आज का कानून जिस प्रकार पागलपन की व्याख्या करता है, उसके अनुसार शायद ही कोई पागल मिले।" सही भी है—जब क़ानून के विरुद्ध हर एक कार्य अनुचित है तो पागल को उसके काम का दंड तो मिलना ही चाहिए। पागल वह है जो अनुचित को समझ न सके। लेकिन जब अनुचित को समझना जरूरी नही है तो हर एक व्यक्ति दंडनीय है। पर लार्ड ब्रामवेल की बात अधिक व्यापक रूप मे विचारपति स्टेफन ने सन् १८८८ में, डैविट डेवीज के मुकद्दमे में, जूरी लोगों को समझाते हुए कही थी—

"कहा जाता है कि कानून के अनुसार अपने कार्यो के लिए वही व्यक्ति जिम्मेदार है जो यह जानता हो कि वह काम गलत है, अनुचित है। यह बात सही है। पर डाक्टरो की राय है कि बहुत से लोग, जो वास्तव मे पूरे पागल है, यह जानते है कि अमुक काम अनुचित है। इसलिए यदि आप अपने विचार से काम लेगे तो आपको स्यात् यह प्रतीत होगा कि काम का औचित्य या अनैचित्य जानना इससे अधिक और कोई मानी नही रखता कि सही वुद्धिवाले मनुष्य की तरह उसके वारे में सोचने

की शक्ति है, हत्या करने के भयंकर काम को पूरी तरह से सोचकर करने की शक्ति है; यह समझने की शक्ति है कि तुम जो काम करने जा रहे हो, उससे किसी का जीवन नष्ट होगा, तुम्हारी आत्मा नष्ट होगी, उससे लोगों को पीड़ा होगी, आतंक पैदा होगा और उसके अनेक अनर्थकारी परिणाम हो सकते है। यही सब सोचने की शक्ति एक साधारण विवेकशील पुरुष में भी होती है। जितना मै समझ सका हूँ, कानून यही कहता है। उसके अनुसार दोषारोपण तब होगा जब जिम्मेदारी की पहचान हो जाय यानी गलत और सही मे भेद करने की क्षमता का पता चल जाय। ......आपने इस बेचारे की परिस्थिति के बारे मे सुन लिया। उसे कैसे मालूम होता कि वह जो कर रहा है, अनुचित है ? अपस्मार (मृगी) के दौरे मे वह यह सब नही सोच सकता था। उसे जानकारी नही थी कि वह क्या कर रहा है। वह तो यह कार्य वैसे ही साधारण ढग पर कर रहा था जैसे शरीर मे कही दर्द होने पर आदमी करता है।"

इसी विचारपति ने इस निर्णय के पूर्व, ९ नवम्बर १८८५ को विलियम बर्ट के मुकद्दमे में कहा था—

"रोगी होने के कारण यदि उत्तेजना उत्पन्न हो और उसी उत्तेजना मे अत्यधिक क्रोध आ जाय तो आदमी में भले बुरे की सोचने की शक्ति नही रह जाती और वह अपने हिंसात्मक कार्य के लिए उत्तरदायी नही होता।"[१]

स्टेफन का कथन था कि यह देखना जरूरी नही है कि वह अपराधी रोगी है या नही। इतना ही देखना पर्य्याप्त है कि उसमे विवेक था या नही। क्या काम करने जा रहे है और उसका क्या परिणाम होगा, यह लोगों को मालूम हो सकता है, फिर भी वे दोषी नही हो सकते। उदासी की बीमारी वाली महिला को मालूम हो सकता है कि अपना बच्चा मार कर वह बुरा काम कर रही है पर उसे मारने के समय यदि उसके मन मे यह भाव है कि उसका प्राण लेकर वह उसे एक भयानक विपत्ति या भविष्य से बचाने जा रही है तो उसके मन मे ऐसी हत्या का सर्वथा उचित आधार है। आत्महत्या करनेवाला व्यक्ति यह भली प्रकार समझता है कि अपनी जान लेना बडी भारी भूल है, अपराध है। फिर भी वह इस भ्रम में है

१. Edited by L. Radzinowiez and J. W. C. Turner—"Mental Abnormality and Crime"–Macmillan & Co., London—1949–Page 54-55.

कि अपना प्राण देकर वह अपना छुटकारा कर रहा है, अपना उद्धार कर रहा है—अपनी रक्षा कर रहा है। कौन कहेगा कि उसके मन मे पूर्ण औचित्य का भाव नही है। पर वह उदास स्त्री, वह भ्रमित आत्मघाती, दोनो ही उन्मादी है, विक्षिप्त है, मानसिक रोगी हैं। हम उनको वास्तव मे अपराधी नही कह सकते।"

सन् १९२४ मे ब्रिटेन मे "पागलपन और अपराध" पर एक जाँच कमेटी बैठी। उसमे ब्रिटिश चिकित्सकीय—मनोवैज्ञानिक सघ ने[१] एक स्मृतिपत्र दिया था। उसके अनुसार—

(१) "म-नाटेन नियमो मे अपराध की जो कानूनी जिम्मेदारी निर्धारित की गयी है, उसे समाप्त कर देना चाहिए और बन्दी की जिम्मेदारी का निर्णय जूरी (पंच) लोगो को उस मामले की घटनाओ की छानबीन करके करना चाहिए।

(२) जिस किसी मामले में अपराधी के मन की स्थिति का निर्णय करना हो विचारपति को जूरी से निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने का आदेश देना चाहिए–

(क) क्या बन्दी ने अभियोग वाला कार्य किया है ?

(ख) यदि हाँ, तो क्या उस समय वह पागल था ?

(ग) यदि हाँ तो क्या यह साबित हो गया है कि उसका अपराध उसके मानसिक व्यतिक्रम से सम्बंधित नही है ?

तात्पर्य यह कि सबसे बड़ा निर्णय यह करना है कि क्या उसका अपराध उसके मानसिक रोग का परिणाम है ? किन्तु, कुछ लोगों का यह कहना भी गलत नही है कि ऐसा कौन सा असामाजिक कार्य है जो मानसिक रोग का परिणाम नही है। स्काटलैंड के विचारपति क्लार्कने १८६३ मे कहा था कि "शुद्ध कानूनी दृष्टि से कोई पागल अपराधी नही हो सकता। पागलपन के दायरे में हर एक हत्या का अपराध आ सकता है।" इसीलिए पागलपन या विक्षिप्तता की ठीक से व्याख्या नही हो सकती। प्रत्येक चिकित्सक की इसकी भिन्न व्याख्या होती है।[२] हम इसका निर्णय भी नही कर सकते। हम तो इतना ही मान कर चलते है कि पागल का अर्थ है पागल।

१. Royal Medico-Psychological Association of Great Britain.

२. Mental Abnormality & Crime—Page 60.

इससे ज्यादा और क्या व्याख्या करें? प्राय: हम ऐसे लोगों को देखते हैं जो अनियंत्रित भावावेश मे ऐसा कार्य कर बैठते है जिससे उन्हे रोकने के लिए शारीरिक शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। अगर कोई यकायक अपना मुँह पीटना शुरू करे तो सिवा उसका हाथ बाँध देने के दूसरा क्या उपाय है? किसी के मन पर यकायक भूत चढ़ बैठे तो उसकी रोकथाम करना बड़ा कठिन होता है। ऐसा भूत चढ़ने पर आदमी को अपनी स्थिति, अपनी शक्ति, अपने चारों ओर के वातावरण, किसी का ध्यान नही रहता। ऐसे व्यक्ति को, उसका मन शान्त होने पर दंड देने से कोई लाभ नही। जिस प्रवृत्ति में अपराध हुआ था, जब वही नही रही तो दंड से क्या लाभ? मन की ऐसी बहुत सी बीमारियाँ है जिनका आजतक उपाय नही हो सका है। इसीलिए अपराध की जिम्मेदारी लादने के लिए कानून ने जो सिद्धान्त बना रखे है, वे दोष-पूर्ण है। फिर भी, विचारपति लोग उसी क़ानून का ऐसी मानवता के साथ उपयोग करते है कि किसी के साथ उनकी जानकारी में अन्याय न हो।[१]

हमने अपनी पुस्तक मे चार्ल्स गोरिग का उल्लेख किया है। लोम्ब्रोजो नामक इटालियन अपराधशास्त्री का साधिकार खंडन गोरिग ने सन् १९१३ में लंदन मे प्रकाशित किया था। लोम्ब्रोजो ने प्रतिपादित किया था कि अपराधी प्रवृत्तिवाले का विशेष प्रकार का नाक-नक्शा होता है। गोरिंग लोम्ब्रोज़ो को "विज्ञान का राजद्रोही"[२] मानते थे। पर, एक प्रकार से गोरिंग भी लोम्ब्रोजो के सिद्धान्त के शिकार बन गये। वे अपराधी को सर्वसाधारण की "मनोवृत्ति" से भिन्न मानते थे। उसके मन की स्थिति को साधारण से भिन्न स्वीकार करते थे। यदि ऐसी बात मान ली जाय तो हर एक अपराधी "असाधारण मानसिक स्थिति" का माना जायेगा। अतएव मानसिक दुर्बलता के नाम पर किसी के साथ रियायत नहीं की जा सकती। किन्तु मानसिक दुर्बलता को बिना माने मनुष्य की ठीक से पहचान भी नहीं हो सकती।

दुर्बल मस्तिष्क

बीसवीं शताब्दी के शुरू में इंग्लैंड में दुर्बल मस्तिष्कवालों पर विचार करने के लिए एक शाही कमीशन बैठा था। सन् १९१३ में वहाँ दुर्बल मस्तिष्कवालों के लिए

१. वही, पृष्ठ ७०
२. "Traitor to Science".—वही, पृष्ठ १४७

एक कानून[१] बना जिसके अनुसार ऐसे "अपराधियो को अलग रखने तथा उनकी पृथक् देखरेख का आदेश दिया गया था। इसके अनुसार चार प्रकार के व्यक्ति दुर्बल मस्तिष्क के माने गये थे—(१) वुद्धू या मूढ़—जन्म से ही इतने वेवकूफ कि वे मामूली खतरे से भी अपनी रक्षा नही कर सकते थे, (२) निरर्थक—ऐसे व्यक्ति या बच्चे जो एकदम बुद्धू नही है, फिर भी जिनका दिमाग इतना खराव है कि वे अपने को जरा भी सम्भाल नही पाते, (३) दुर्बल मस्तिष्क—जिनकी वुद्धि इतनी दोषपूर्ण है कि सदैव इनकी रक्षा की, हिफाजत की जरूरत पडती है, (४) नैतिक दुर्बल—जो वचपन से ही इतने विकृत स्वभाव के है तथा दुष्ट और अपराधी स्वभाव के है कि दड तथा अनुशासन का उन पर कोई प्रभाव नही पड़ता। इस कानून के दायरे मे परिवार, अनाथालय या आश्रम, जेल, स्कूल—कही से भी प्राप्त दुर्बल मस्तिष्क-वालो की रक्षा, सेवा तथा चिकित्सा का प्रबंध था। और सन् १९१३ के बाद १९१९ मे, फिर १९२५ मे, फिर १९२७, १९३८, ४८ मे —इस प्रकार कई बार इस कानून में सशोधन होते रहे। फलत. दुर्बल मस्तिष्कवालों की चिकित्सा, उनके उपचार तथा उनकी रक्षा का समुचित प्रबंध है। भारतवर्ष मे हमारी गुलामी के दिनो मे इस ओर कुछ भी ध्यान नही दिया गया। सन् १९१९-२० मे जेल जाँच कमेटी ने दुर्बल मस्तिष्कवालो के लिए जेल से पृथक् स्थान रखने की सिफ़ारिश की थी।[२] फलत. कुछ अलग पागलखाने बने। पर दुर्बल मस्तिष्क वालों के लिए हमारे देश मे अभी एक प्रकार से कुछ नही हुआ है और लाखो पागल या उन्मादी बच्चे-बड़े बूढ़े अरक्षित तथा चिकित्सा के अभाव से अपना अमूल्य जीवन नष्ट रहे है।

जिस म-नाटेन नियम का युगों तक इतना प्राधान्य था, उसे अब वह मर्यादा तथा स्थान नहीं प्राप्त है। नवीन मनोवैज्ञानिक खोजो ने उसे बहुत पीछे छोड़ दिया है। आधुनिक मानसिक विकृतियो के विशेषज्ञो तथा वैज्ञानिको ने "उचित तथा अनुचित" की उसकी नाप तौल को "अमानवी" घोषित कर दिया है। आजकल संयुक्त राज्य अमेरिका की एक अदालत का निर्णय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सन् १९५४ में डरहम बनाम संयुक्तराज्य अमेरिका के मुकद्दमे में, कोलम्बिया प्रदेश मे जो फ़ैसला हुआ है उसने बड़ी सरल भाषा में पागलपन की दशा मे किये गये अपराध

१. Mental Deficiency Act, 1913 (3 & 4, Geo, V. C. 23)
२. Penology—Old & New—पृष्ठ २०८

की ज़िम्मेदारी स्पष्ट कर दी है। उसके अनुसार—"यदि अभियुक्त ने मानसिक रोग या दोष के कारण ग़ैर कानूनी कार्य किया है तो वह उस अपराधी कार्य के लिए जिम्मेदार नही है।" इस निर्णय पर ससार के सभी अपराध-शास्त्रियों ने काफ़ी लम्बी बहसें की हैं। इस पर लेख पर लेख लिखे गये है और रेडियो व्याख्यान भी प्रसारित हुआ है।[१]

म-नाटेन तथा इस फ़ैसले को, इनके अन्तर को, समझने के लिए हमे मन का रोग तथा अपराध की जिम्मेदारी के सवाल पर एक बार फिर सरसरी तौर पर विचार करना पड़ेगा।

१. Sheldon Glueck, Ph. D., LL. D., Roscoe Pound Professor of Law, Harvard Law School—"Mental Illness and Criminial Responsibility"—The Journal of Social Therapy—3rd Quarter—1956. Vol. 2. No. 3.

अध्याय ३०

क्या मानसिक रोगी अपराधी है ?

सन् १८३५ मे लार्ड हेल ने अपने एक प्रसिद्ध लेख मे[१] लिखा था—"ऐसे व्यक्ति में, जिसके मन मे उदासीनता या अन्य प्रकार की बीमारी हो, अपने कायो को समझने की उतनी शक्ति होती है जितना १४ वर्ष के एक बच्चे मे।" पर लार्ड हेल के इस तर्क को काटते हुए सन् १८३८ मे अमेरिका के न्याय पंडित डा० इजाक रे ने एक लेख लिखा। वे लिखते है—"पागलो के बारे मे जो कानून बने है उनके काफ़ी बाद मे चिकित्सको को मन की बीमारी का सही पता लग पाया है। इसलिए कानून के पवित्र नाम पर काफी भूले की जा चुकी है।"[२] सन् १८४३ में प्रसिद्ध म-नाटेन मामला आ गया। म-नाटेन के वकील काकबर्न ने लार्ड हेल तथा लार्ड कोक की प्राचीन दलीलो की धज्जिया उडा दी। उन्होंने कहा कि डा० इजाक रे ने उन लोगो को काफी अच्छा जवाब दे दिया है। उनका (लार्ड हेल का) तर्क तो पागलखाने के कुछ अभागो को देखकर उसी अनुभव के आधार पर बना था। सवाल तो यह है कि वास्तव मे पागलपन क्या है? और, काकबर्न ने कहा—

"यह नही भूलना चाहिए कि इसके बारे में, इस रोग के बारे मे, हमारी जानकारी बहुत नयी है। सरकारी वकील ने कहा है कि यदि अभियुक्त एकदम पागल है तो उसे छोड़ा जा सकता है पर इस सम्बंध मे मै उनका ध्यान हैडफील्ड नामक एक पागल के मामले की ओर दिलाना चाहता हूँ जिसने सम्राट् जार्ज तृतीय को गोली मारने का प्रयास किया था। उसकी सफाई मे बोलते हुए लार्ड अर्स्काइन ने कहा था—यदि यह कहा जाय कि किसी व्यक्ति को पागलपन के नाम पर दड से बचाने के लिए यह साबित करना होगा कि उसकी बुद्धि तथा होशोहवास इतना लुप्त हो गया रहेगा कि

१. Lord Hale—Pleas of the Crown

२. Dr. Isaac Ray of Boston—"A Treatise on Medical Jurisprudence of Insanity."

उसे अपना नाम भी याद न रहे, अपनी दशा का ध्यान न रहे, वह अपने रिश्तेदारों को भी पहचान न सके—तो इस प्रकार का पागलपन कभी नही रहा है और न रहेगा।"

प्रधान विचारपति टिडल ने जूरी से उनकी राय पूछी। सबने एकमत होकर म-नाटेन को "पागलपन के कारण निर्दोष" घोषित किया था। महारानी विक्टोरिया के शासनकाल मे म-नाटेन का निर्दोष घोषित होना एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। कानून तथा अपराध-शास्त्र के लिए इसका अत्यधिक महत्त्व है। हाउस आव लार्ड्स (सरदार सभा) में प्रधान न्यायाधीश ने इस सम्बन्ध में क़ानून का स्पष्टीकरण किया।

"आपका पहला सवाल है कि यदि कोई व्यक्ति साधारण तौर पर पागल न हो पर उसके मन मे किसी एक या दो व्यक्ति के प्रति उन्माद तथा प्रमाद हो और वह अपराध करे तो कानून क्या कहता है। महारानी के न्यायाधीशों का उत्तर है कि वह व्यक्ति उसी समय दडनीय है जब वह अपना अपराध करते समय यह जानता हो, समझता हो कि देश के नियम के विरुद्ध कार्य कर रहा है। आपका अन्तिम प्रश्न है कि जूरी लोगों पर पागलपन की व्याख्या करने का काम किस सीमा तक छोड़ा जा सकता है? हमारा उत्तर है कि जूरी लोगो से यह बतला देना चाहिए कि वे हर एक व्यक्ति को विवेकशील समझें। उसमें इतनी समझ मान ले कि वह अपने अपराध की जिम्मेदारी समझता है—जबतक कि उनके सन्तोष के अनकूल यह साबित न हो जाय कि ऐसा नही था। पागलपन की दलील देनेवालो को यह साबित करना पड़ेगा कि अभियुक्त को अपराध करने के समय इतनी बुद्धि नहीं थी कि उसे अनुमान हो सके कि वह क्या करने जा रहा है तथा उसके कार्य का क्या परिणाम होगा और इसकी जानकारी हो भी तो वह यह न समझता हो कि जो कर रहा है वह अनुचित है।"

विचारपति टिडल का बयान कमसे कम ५० वर्ष तक न्यायालयों के सामने आदर्श रूप में था। पर धीरे-धीरे यह प्रकट होने लगा कि मन की उपरिलिखित समीक्षा मे कई दोष है। मौलिक दोष तो यही है कि इस प्रकार के प्रयोग में मानसिक रोगों तथा मन की गति से आंतरिक एकता नही स्वीकार की गयी है। तीस वर्ष पूर्व ग्लूक शेल्डन[१] ने एक साधिकार पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होने टिडल के दोषपूर्ण

१. Sheldon Glueck—"Mental Disorders and Criminal Law"—Harvard, U. S. A.

"मानसिक प्रयोग" का बडे अच्छे ढंग से खंडन किया था। शेल्डन का कहना था कि इस प्रयोग के द्वारा "काम के गुण, स्वभाव तथा अनौचित्य" तीनो की सही ढंग से जॉच नही हो सकती। शेल्डन ने डा० इजाक रे के इस सिद्धान्त का समर्थन किया है कि "उचित-अनुचित" का नियम काफी दोषपूर्ण है। मनुष्य के मानसिक जीवन मे ज्ञान का, जानकारी का भी बडा भारी स्थान है। ज्ञान हमारी क्रियाओं तथा कार्यों को प्रोत्साहित करता रहता है। इसलिए बुद्धि को उचित तथा अनुचित की जानकारी होते हुए भी वह असतुलित, रोगी तथा विकृत हो सकती है। शेल्डन उन अमेरिकन कानून पडितो के घोर विरोधी है जो कहते हे कि चूँकि अपराधी को उचित-अनुचित का ज्ञान है, अतएव उसे जरूर दड मिलना चाहिए। लेकिन एक प्रत्यक्ष उदाहरण से इस भ्रम का खडन हो जायेगा। पागलखाने मे कुछ थोडे से नौकर या रखवारे होते है पर पागलो की संख्या रक्षकों से कही अधिक होती है। केवल दंड के भय से, दंड के आतंक से पागल व्यवस्था मे, अनुशासन मे रहता है। अतएव उसे उचित-अनुचित का भास रहता है किन्तु फिर भी वह पागल है। इग्लैंड मे, क्रायडन के निकट एक पागलखाना है। उसके मेडिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने हाल में अपने एक बयान मे कहा है कि "वास्तव मे सब मानसिक रोगो का एक मात्र कारण है एकाकी-पन। चूकि ये व्यक्ति अपने साथी पुरुष-स्त्रियो के साथ, समाज, मे परिवार मे सन्तोष जनक रूप से नही रह सकते अतएव वे अपने को अपने भीतर खींच लेते है जिसका परिणाम होता है उनका अत्यधिक एकाकीपन—और फिर वे पागल हो जाते है। इन सब बातो से विचारपति टिडल का मानसिक प्रयोग सदोष प्रकट हो जाता है।

पर डरहम के मामले ने, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आये है, कानूनी दृष्टि-कोण को और भी स्पष्ट कर दिया। डरहम को इस बिना पर छोड दिया गया कि वह पागल था अतएव अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायी नही हो सकता। कोलम्बिया जिले की अपील की अदालत के विचारपति बाजेलॉन ने अपना फैसला सुनाते हुए कहा—"पश्चिमी जगत की यह नैतिक तथा वैध परिपाटी रही है कि जो अपनी स्व-तत्र इच्छा से, बुरी नीयत से गैरकानूनी काम करता है वह दंडनीय होगा। हमारी परिपाटी भी यही रही है कि जो कार्य मानसिक दोष या रोग के कारण किया जाय उसकी अपराधी पर जिम्मेदारी नही हो सकती। जिन नियमो का हम ज़िक्र कर रहे है, वे इसी उद्देश्य से बनाये गये है।"

यह कहा गया था कि पागलखाने मे अभियुक्त तब तक रहेगा ही जब तक वह एकदम अच्छा न हो जाय अतएव सार्वजनिक रक्षा, जनता की हिफ़ाजत तो बराबर होती रहेगी। राज्य को अपराधी के प्रति इससे अधिक और क्या चाहिए? विचार-

पति बैजोलॉन के फैसले की शेल्डन ग्लूक ने बड़ी प्रशंसा लिखी है। उन्होंने कहा कि "मन के सम्बध में जो नवीनतम ज्ञान प्राप्त हो चुके है उनसे यह सिद्ध हो चुका है कि यदि यह साबित हो भी जाय कि मानसिक रोगी का अपराध एकमात्र मानसिक रोग के कारण नही था, फिर भी अपराधी को मानसिक रोगी जानते हुए भी दंड देना अनुचित है।"

पर, डरहम के फैसले का महत्त्व एक दूसरी अमेरिकन अदालत के फैसले ने कम कर दिया। विचारपति लेमन ने, न्यू हैम्पशायर की अदालत में, अपना फ़ैसला देते हुए कहा था कि "हमको कोलम्बिया की अदालत से अपने को नत्थी करके म-नाटेन सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह नही करना है।" पर, इस भिन्न निर्णय से कोई चिन्ता की बात नही है। कानून के मामले में इस प्रकार के मतभेद तो होते ही रहते है। सन् १८१० मे उस युग मे बन्दियो के सबसे बडे रक्षक, सर एस० रोमिली ने लन्दन से लिखा था कि "यह प्राय. होता है कि एक ही प्रकार की घटना, एक ही प्रकार के वातावरण मे घटित होकर एक विचारपति द्वारा क्षमा का कारण बन जाती है और दूसरी अदालत से उसके लिए दंड मिलता है।" सर हेनरी हाकिन्स, ब्रिटिश जज ने भी इस बात पर खेद प्रकट किया था कि "एक ही प्रकार की घटना, एक ही प्रकार का कारण, एक ही प्रकार का मामला और फिर भी भिन्न प्रकार का दंड होना बडे खेद की बात है। हमको एक ही दृष्टिकोण से एक प्रकार के मामले को देखना-समझना चाहिए। एक ही प्रकार का दंड-विधान बनाने की नीयत से प्रो० एरिक फेरी ने इटली मे एक ऐसा दंडविधान तैयार किया था कि जिसमें सभी दृष्टिकोण का ध्यान रखा गया था । फेरी ने उस समय कहा था कि अपराधी का यह अधिकार है कि एक ही प्रकार के अपराध के लिए एक ही प्रकार का दंड मिले।" संयुक्तराज्य अमेरिका मे एक ऐसा आदर्श दंड-विधान तैयार हो रहा है जिसमें अपराधी के भिन्न प्रकार के अपराध तथा व्यवहार मे समानता के उसूल पर दंड देने का नियम होगा।

शेल्डन ग्लूक ने अपनी पत्नी एलीनर ग्लूक के साथ मिलकर सन् १९३० मे, ५०० अपराधियो पर पुस्तिका प्रकाशित की थी।[1] इसमे उनके अपराधी जीवन की पूरी समीक्षा करके उनमें जो सामाजिक तथा सांस्कृतिक, वैयक्तिक

१. Sheldon Glueck & Eleanor Glueck—"500 Criminal Careers".

एवं सामूहिक एकता, एक भावना, समानता प्राप्त हो सकी, वह प्रकट में व्यक्त कर दी गयी है, ताकि समाज यह भी समझ जाय कि उनमे तथा हमारे मे (अपराध न करनेवालो मे) कितनी समानता है। जब इतनी अधिक समानता हो तो दंड मे भी समानता होनी चाहिए। अत्यधिक कठोर तथा अत्यधिक उदार विचारपति दोनो ही किसी प्रकार की दोषपूर्ण धारणा बनाकर काम करने के दोषी है। क़ानून तब तक कठोर नही हो सकता जब तक उसकी व्याख्या करनेवाला स्वयं कठोर न हो। इन सब बातो को ग्लूक पति-पत्नी ने अच्छे ढग से प्रतिपादित किया है। यह सही है कि ५०० अपराधियो मे उन्होने मानसिक विकृति पर ही अधिक ध्यान दिया है। उनकी छानबीन के अनुसार कारागार मे भेजे जाने के समय ७५ फीसदी बंदियो मे कोई मानसिक रोग नही मिला। पर जेल के भीतर की बंदी-संख्या की परीक्षा करने पर ८७ फीसदी बदी मनस्ताप के रोगी या विकृतमना मिले। इससे तो यही सिद्ध होता है कि कारागार मे मन का रोग पैदा भी होता है, और बढता भी है।

कौन अपराधी है और कौन नही, यह कहना बड़ा कठिन है, क्रासी की राय मे हर एक बालक अपराधी होता है। क्लिनार्ड ने तो यहाँ तक कह दिया है कि "यह पूछा जा सकता है कि अमुक व्यक्ति अपराध की ओर बढ़ा तथा दूसरा क्यों नही बढा ? दोनो मे अन्तर क्यो हो गया ? जीवन के संघर्ष मे, जीवन के तनाव मे, कोई व्यक्ति घटनावश अपराध की ओर खिच आता है और कोई उससे दूर बह जाता है। पर यह नही भूलना चाहिए कि अपराध का काम मनुष्य ही करता है।" इसी लिए मानव के व्यवहार के गम्भीर परीक्षण के बाद, रोरशाश[1] प्रयोग से यह सिद्ध हो गया है कि मानसिक विकृतियो के परीक्षण से जो लोग आदतन जिद्दी मालूम पड़े उनमें ८५ प्रतिशत अपराधी निकले। जो लोग जिद्दी स्वभाव के नही थे, उनमे केवल ३९ प्रतिशत अपराधी प्रवृत्ति के निकले।

इन सब बातो से यह साबित हो जाता है कि किसी न किसी अश तक हर एक व्यक्ति में कोई असाधारण बात जरूर मौजूद है। मानसिक रोगी मे यह असाधारणता बढ़ जाती है, उसमे उत्तेजना अधिक होती है। उसका व्यक्तित्व ही उत्तेजित तथा उग्र प्रकट होता है। इसलिए ऐसी दशा मे उसके मन का विचार किये बिना उसके कार्यो के लिए उसे दोषी ठहरा देना अनुचित होगा।

१. Rorchach Test

विश्व स्वास्थ्य संघ की चेष्टा

आज सभ्यता इतनी तीव्र गति से आगे बढ़ रही है कि मनुष्य के पास अपने को समझने के लिए अवकाश नही है। जीवन मे इतना संघर्ष है तथा तनाव है कि मन तथा शरीर की इन्द्रियाँ जल्दी थक जाती है। उनका धैर्य, उनका सम्बल टूट जाता है। ऐसी दशा मे उन्माद, प्रमाद या विक्षिप्तता का होना एक प्राकृतिक क्रम प्रतीत होता है। सभ्य तथा धनी यूरोप मे लगभग २० लाख व्यक्ति अस्पतालों मे मानसिक रोग से पीड़ित पड़े हुए है। यूरोप के कल-कारख़ानों मे सबसे ज़्यादा गैर-हाजिरी ज़ुकाम की बीमारी के कारण होती है। उसके बाद दूसरा नम्बर मानसिक रोग, विशेष कर मनस्ताप का है। यूरोप के अस्पतालों में लगभग १० लाख मरीज मनस्ताप तथा उसी प्रकार की बीमारी[1] के शिकार है। ऐसे भयंकर वेग से मानसिक रोग मे वृद्धि को रोकने के लिए विश्व स्वास्थ्य संघ ने फिनलैंड की राजधानी हेलसिकी मे इसी वर्ष, १९५९ में २४ जून से ३ जुलाई तक एक सम्मेलन किया था। इसमे मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषक, चिकित्सक, महिलाएँ, सभी उपस्थित थे। सम्मेलन मे उन सभी उपायों पर विचार किया गया जिन्हे भिन्न देश मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अपनाये हुए है। किस प्रकार कही घर घर जाकर बच्चों के दिल और दिमाग़ की परीक्षा की जाती है, उन्हे औषधि दी जाती है। कही पर इनके अस्पताल खुले ढग के है, कही पर बंद है। सम्मेलन का सर्व-सम्मत निर्णय था—

१. मानसिक रोगियो के साथ जितना अच्छा व्यवहार अस्पताल मे या घर पर होगा, उतना ही शीघ्र वे स्वस्थ हो जायँगे।

२. दोषी बच्चों की शिक्षा का अधिक उत्तम प्रबध होना चाहिए, अन्यथा उनको अस्पताल आदि मे रखने का प्रबंध करना होगा।

३. चिकित्सकों का ऐसा प्रबंध रहे कि मन के रोग की प्रारम्भिक दशा मे ही उसका पता चल जाय; जितनी जल्दी इस रोग का पता चलेगा, उतनी अच्छी चिकित्सा होगी।

४. बच्चो तथा बूढ़ों के लिए जो "अस्पताल" या पागलखाने है उनमे जितना कम बंधन होगा उतना ही लाभ होगा।

५. जनता को, अधिकारियो को तथा स्वास्थ्य-अधिकारियो को मानसिक रोग की समस्या को अधिक सहानुभूति से देखना चाहिए।

१. Schizophrenia, Neurosis. Neurosis—**मनस्ताप**

इस सम्मेलन ने स्कूलों में, परिवारों में तथा कारखानों में जाकर ऐसे रोगियों का पता लगाने तथा उनकी सेवा का निश्चय किया था। इसने यह भी राय दी है कि भयंकर अपराध वाली पुस्तके, चित्र तथा नाटक आदि से भी मनुष्य के—बच्चे से लेकर बूढे तक के—स्वभाव पर काफी तनाव पैदा होता है, जिससे मानसिक रोग तथा अपराध की प्रवृत्ति पैदा होती है। सम्मेलन ने निश्चय किया है कि मन के रोगों की चिकित्सा के लिए विशेषतः शिक्षित तथा दीक्षित लोग तैयार किये जायँ।

अपराधी की बुद्धि

ऊपर लिखी बातों से पाठक यह निष्कर्ष न निकाल लें कि अपराध करनेवाला रोगी-मस्तिष्क का ही होता है या उसकी बुद्धि साधारण मनुष्य की तुलना में कमजोर होती है। अपराधी तथा अपराधी प्रवृत्तिवाले की बुद्धि की परीक्षा कुछ समय से की जाने लगी है। ज्यो-ज्यों परीक्षण का ढंग सही रास्ते पर आता जा रहा है, इस सम्बध में मत-वैभिन्य काफ़ी हो रहा है। पहले जो परीक्षाएँ होती थी उनमें मानसिक दोष और नैतिक दोष को मिला देते थे। दोनों को मिला देने से यह निचोड़ निकलता था कि ग़ैर अपराधी की तुलना में अपराधी की बुद्धि दुर्बल होती थी। किन्तु बात ऐसी नही है। इंग्लैड के वेकफील्ड नामक स्थान के प्रसिद्ध कारागार के बंदियों की परीक्षा हुई। उन पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग के परिणाम को पूरा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बंदियों के बीच ही प्रयोग हुआ और साधारण व्यक्ति की कोई परीक्षा नही हुई थी। अतएव तुलनात्मक जॉच तो हुई नही। पर, अगर यह साधारण विश्वास हो कि बन्दी या अपराधी व्यक्ति की बुद्धि साधारण नागरिक की बुद्धि से दुर्बल होती है, तो वेकफील्ड जेल की जाँच से यह पता चलता है कि अपराधियों मे जिसके कारनामे जितने काले होगे वह अन्य अपराधियों की तुलना में बुद्धि में उतना ही कमजोर होगा। यह प्रयोग १९५२ - ५३ में हुए थे। ९५५ अपराधियों को तीन श्रेणी में बॉट दिया गया था। ३४४ वासना के अपराधी थे, १४३ हिंसा के अपराधी थे और ४६८ चोरी आदि छोटे अपराधों के दोषी थे। प्रयोग से पता चला कि इन सब अपराधियों में सबसे अधिक बुद्धिमान् चोरी तथा छोटे-मोटे अपराधों के दोषी थे। बुद्धि का औसत सबसे कम—तुलनात्मक रूप में वासना के तथा कभी घोर हिंसा के अपराधियो में मिला। पर, यह तो हम सिद्ध कर चुके है कि वासना का अथवा घोर हिंसात्मक कार्यो का अपराधी उतना बुरा व्यक्ति नहीं होता तथा उसकी वैसी अपराधी वृत्ति नही होती जितनी कि चोर, बदमाश तथा लुच्चे की। तो फिर, यह क्यों न कहा जाय कि जो जितना पक्का बदमाश होगा उसकी बुद्धि उतनी ही प्रखर

होगी। अपराध की गुरुता अपराधी की नीचता नही सिद्ध कर सकती। आवेश तथा उन्माद में किसी का गला काट लेनेवाला कम बुद्धि का, नादान, व्यक्ति भी हो सकता है। पर, जो जितना ही चतुर तथा शरीफ ढंग से बदमाशी करनेवाला होगा उसका अपराध भी हल्का मालूम होगा किन्तु वह नम्बरी शातिर बुद्धिमान् भी होगा। और भी बहुत सी परीक्षाएँ की गयी। सबका निष्कर्ष यह निकला कि "बुद्धिमत्ता तथा जीवन की दुर्बलताओ" का कोई सम्बंध नही है।[१] यह कहना भी भूल है कि बार-बार अपराध करनेवाला बुद्धि मे किसी से कम है। इस निरूपण की पुष्टि में काफी प्रमाण है। उदाहरणार्थ श्री रोपर ने वेकफील्ड जेल के ८०० मुक्त बंदियों की परीक्षा की और उनका भी यही कथन था कि "बुद्धिमत्ता तथा अपराधी भावना मे कोई सम्बन्ध नही है।"[२]

इसलिए बुद्धि तथा अपराध का सम्बध जोड कर कोई गलत तर्क या सिद्धान्त बना लेना वास्तविकता का अनादर करना होगा।

१. The British Journal of Delinquency—Vol. VI—Number 2, September, 1955—Page 149-150.

२. W. F. Roper—"A Comparative Survey of the Wakefield Prison Population in 1948."—The British Journal of Delinquency, Vol. I, No. 1, July, 1950.

अध्याय ३१

दण्ड का सिद्धान्त

अपराधी या अपराध की जिम्मेदारी निर्धारित किये विना दड कैसे दिया जा सकता है। किन्तु जिम्मेदारी का प्रश्न आज का है। पुराने जमाने मे "जिम्मेदारी" की कल्पना भी नही की जाती थी। जिसने अपराध किया, व्यक्ति या समाज को हानि पहुँचायी, वह दडनीय था। बचपन, पागलपन, रोगी, उन्माद, उत्तेजना, वातावरण, परिस्थिति—इन सबमे से किसी भी बात का विचार नही किया जाता था।

पहले लोग स्वयं अपनी शक्ति के अनुसार दड दे देते थे। यदि अपराधी शक्तिशाली हुआ तो वह निर्भय भी रह सकता था। पर जब समाज मे दंड की प्रथा चली तो दड देनेवाले निर्धारित किये गये। उनका काम था दंड देना—दंड की कोई सीमा नही थी। विचारपति के मन में जो और जैसा आया, काजी जी के मन मे जैसी भी भावना उठी, वैसा दंड सुना दिया। "कम से कम" या "अधिक से अधिक" दड का कोई विधान नही था। ढाई हजार वर्ष पूर्व चीन ऐसे सभ्य देश मे या मिस्र मे भी राजा या विचारपति जैसा मन हो सजा देते थे। जेलखाने का नियम ही नही था। बन्दीगृह बनते ही नहीं थे। प्राण-दण्ड मिलता था। या फिर शारीरिक दड, जैसे हाथ, कान, नाक काट लेना या कोड़े मारना आदि।

इंग्लैंड में एलिजबेथ के जमाने से प्रथा चल निकली थी कि जो अपने प्राण बचाना चाहे, वह देश छोड़ दे—या फिर इग्लैण्ड के नये उपनिवेशों मे बस जाय। जार्ज प्रथम के शासनकाल में सन् १७१८ में एक कानून द्वारा ऐसे अपराधियों को उत्तार अमेरिका में जाकर बसने का अवसर दिया गया था, पर हम बात कर रहे है हजारों वर्ष पहले की प्रथा की। चीन मे दंड के सम्बंध में कुछ परम्पराएँ चल पडी थीं पर उनका सम्बंध धर्म से अधिक था; जैसे, चीन में कब्र में सोनेवाले मुर्दे को छेड़ना, उसकी आत्मा को अपार कष्ट पहुँचाना तथा उसकी सद्गति को समाप्त कर देना समझा जाता था। अतएव यदि किसी जज को किसी मुकदमे के सिलसिले में कब्र में से मुर्दे को निकाल कर पुन. परीक्षा करानी पड़ती

थी और यह कार्य निरर्थक साबित होता था तो जज को ही प्राणदंड हो सकता था। वहाँ पर सम्राट् द्वारा "निरीक्षक" नियुक्त थे जो हर ज़िले का दौरा करते थे और सम्राट् के "विचारपतियो" का काम देखते थे।

दंड का अर्थ

दंड के सम्बन्ध मे प्रतिशोध भावना बिल्कुल स्पष्ट है। जिसने दूसरे को हानि पहुँचायी, उसे उस हानि को चुकाना पडेगा, भुगतान करना होगा। हो सकता है कि इस भुगतान मे जिसकी हानि हुई हो, मुआवजा केवल उसी व्यक्ति के लिए नही चुकाना है, समाज के लिए भी चुकाना है। अतएव उस व्यक्ति की यातना को ही भुगतान मान लेना चाहिए। किन्तु क्षति-पूर्ति की इस भावना के पीछे उस जमाने मे जो भाव था, वही आज भी किसी न किसी रूप में वर्तमान है। वह भाव था प्रायश्चित्त का। जिससे अपराध हुआ है, उसने नियम के उल्लघन का पाप किया है। इस पाप का प्रायश्चित्त करना ही होगा। प्रायश्चित्त अर्थ-दंड के रूप में या शारीरिक दंड के रूप में—किसी भी रूप मे हो सकता है। पश्चिमी पडितों में अरस्तू शायद पहले व्यक्ति थे जिन्होने व्यक्तिगत प्रतिशोध के विरुद्ध लिखा था। अरस्तू ने कहा था कि व्यक्तिगत प्रतिशोध की बात नही सोचनी चाहिए—समाज की जो हानि हुई है, उसका निराकरण होना चाहिए। प्लेटो ने इससे भी आगे बढ़कर कहा कि "यह अनुचित बात है कि यदि किसी ने पीडा पहुँचायी है तो दूसरे को इतनी पीड़ा देने से ही प्रतिशोध होगा। वास्तव मे प्लेटो ने "पीडा का प्रतिशोध पीडा नही है" यानी "हिसा का उत्तर हिसा नहीं है" का महान् सिद्धान्त प्रतिपादित किया था।

सामाजिक संतुलन

पर, क्रमागत सभ्यता की ओर विकसित होते हुए समाज के सामने सामाजिक संतुलन की भावना अस्पष्ट रूप मे उपस्थित थी। अपराध हुआ, दंड दिया, सामाजिक सतुलन स्थापित हो गया। इस प्रकार समाज दंड देकर अपने न्याय का संतुलन करता चलता था। इसी के साथ धीरे-धीरे "सभी अपराधी समान रूप से दण्डनीय है" की बात भी पैदा हो गयी। आज हम यही बात क़ानूनी भाषा मे इन शब्दों मे कहते है—

"न्याय के सामने सब बराबर है"

यदि न्याय के सामने सब बराबर है तो बड़े-बूढे, पागल, रोगी आदि किन्ही बातों

का विचार नही किया जा सकता—सबको सामान रूप से दंड मिलना चाहिए। इस प्रकार "न्याय की दृष्टि मे सब बराबर" के सिद्धान्त का अनर्थकारी फल भी हुआ। धीरे-धीरे जो दड-विधान बना भी, उसमे भयकर त्रुटि यह थी कि केवल अपराध की परख होती थी। चाहे किसी भी दशा मे अपराध किया गया हो, उस पर निश्चित दंड देना ही होगा। "न्याय के सामने तो सब बराबर है।" "स्वाधीनता, बधुत्व तथा समानता" के महान् मत्र को ससार के सामने रखनेवाले फ्रेंच राज्य-क्रान्तिकारियो ने भी न्याय के नाम पर वही भूल की। सन् १७९१ मे फ्रास का जो दंड-विधान बना तथा १८१० मे उसका जो सशोधित रूप बना—यूरोप का यह प्रथम सुव्यवस्थित दड-विधान था—उसमे न्यायाधीश को ऐसा जकड़ दिया गया था कि वह अपनी बुद्धि का उपयोग ही नही कर सकता था। यदि किसी अपराध में कालकोठरी की सज़ा देनी है तो उसे सपरिश्रम कारागार की सजा मे नही बदला जा सकता था। अपराधी पर अपराध की पूरी-पूरी जिम्मेदारी मान ली जाती थी, शुद्ध निजी, व्यक्तिगत जिम्मेदारी का प्रश्न था। और कुछ नही हो सकता था। न तो सजा घट सकती थी, न बढ सकती थी। किन्तु यह स्थिति उससे तो अच्छी ही थी जिसमे मनमानी सजा देने की रीति थी तथा जिस रीति के विरुद्ध प्रथम विद्रोही थे सीजारे बक्कारिया (सन् १७३५ से १७९४)। इस इटालियन अपराधशास्त्री ने यूरोप मे सबसे पहले मनमानी सजा के विरुद्ध आवाज उठायी थी और सन् १७६४ मे इन्होंने बड़े जोरदार शब्दों मे मनमानी सजा देने का विरोध किया था। उन्होंने दंड देने के सम्बंध मे कम से कम ८० प्रस्ताव या तरीके बतलाये थे जिनमे से शारीरिक यातना को समाप्त करना, प्राणदंड समाप्त करना आदि भी था। आज के दंडविधान ने उनकी बतलायी प्राय ७० बातों को मान लिया है।[1] किन्तु बक्कारिया ने भी "निजी जिम्मेदारी" को मान लिया था। उनके सामने ऐसा कोई सवाल नही था कि अपराध करते हुए भी मनुष्य घटना या परिस्थिति के कारण उसके प्रति जिम्मेदार नही हो सकता। अपराधी का "व्यक्तित्व" भी विचारणीय है। केवल अपराध ही नही, अपराधी भी विचार का विषय है। ऐसी बात तो पहले पहल लोम्ब्रोजो ने उठायी, जिनका जिक्र हम पिछले अध्यायों मे कई बार कर चुके है। जिस प्रकार मनुष्य ने गलत काम करनेवाले को जिसके प्रति ग़लत काम किया गया है, उसी के प्रति जिम्मेदार न समझकर समाज

१. C. Bernaldo de Qurros—"The Modern Theories of Criminality'—Little, Brown & Co., London—1912–Page 125.

के प्रति भी जिम्मेदार समझना शुरू किया, उसी प्रकार दंड भी व्यक्ति-विशेष का प्रतिशोध या अपराधी का प्रायश्चित्त न रहकर समाज की "रक्षा" का साधन बन गया, उसकी रक्षा का "यत्र" या "अस्त्र" बन गया। आज भी जेल विभाग को "सामाजिक सुरक्षा विभाग" कहते है। अपराधी समाज के लिए एक खतरे की वस्तु है। इस खतरे से बचाने का उपाय दंड है। दंड देने की क्रिया को सम्पादित करनेवाला विभाग सामाजिक सुरक्षा विभाग हुआ।

पीड़ा का महत्त्व

किन्तु, इस सुरक्षा की भावना का प्रारम्भ प्राचीन भावना से ही हुआ। प्राचीन भावना थी कि यदि किसी की हानि की जाय तो उसका मुआवजा चुकाना और यदि किसी से लाभ हो तो उसका भी किसी न किसी रूप मे मूल्य देना होगा। यानी, यदि राजा समाज के जीवन को सुरक्षित करता है तो वह कर के रूप में, टैक्स के रूप मे हमसे भी कुछ लेने का हकदार है। यही प्रकार दंड के सम्बंध में है, जैसा कि सिजविक ने लिखा[१] है—"ऐसा प्रतीत होता है कि आज भी यही धारणा है कि न्याय का तकाजा है कि जिससे भूल हुई है, उसे पीड़ा पहुँचायी जाय, उसे पीड़ा पहुँचाने से उसको तथा किसी अन्य को कोई लाभ न भी पहुँचे तो कोई आपत्ति नहीं है.... लेकिन मेरा ऐसा खयाल है कि सभ्य समाज मे पढ़े लिखे लोग अब इस बात को नैतिकता की दृष्टि से अच्छा नही समझते।"

पीड़ा देकर मनुष्य को सुधारने के अनेक उदाहरण भरे पडे है। ब्रिटिश जेलों में अपराधी को इतनी यातना देते थे कि उसे निरर्थक काम दिया जाता था। लोहे के एक बड़े पहिये को निश्चित घंटों तक, निश्चित रफ्तार से घुमाते रहना पड़ता था। ऐसी बाते उस समय के समाज की मनोवृत्ति का भी परिचय देती है। समाज की रचना उस समय के "कार्य के लिए एक विश्वसनीय पथप्रदर्शक" होती है। जब परिवर्तन का सवाल उठता है, उस रचना मे परिवर्तन की बात उठती है तो वह रचना ही, उस समय का उसका ढॉचा ही एक ओर परिवर्तन के लिए दबाव डालता है, दूसरी ओर उससे "रक्षा" का भी उपाय करता है।[२]

१. Sidgwick—"Methods of Ethics"—Macmillan & Co., London—Fifth Edition 1893, Page 281.

२. S. F. Nadel—The Theory of Social Structure—Cambridge University, 1956—Page 147-148.

समाज की रचना मे भी क्रमश. परिवर्तन हुआ और समाज ने अपनी ही रक्षा के लिए दंड का रूप भी बदलना शुरू किया। आधुनिक अपराध-शास्त्र तथा दंड-शास्त्र के सबसे प्रथम नेता तथा समाज-विज्ञान और सामाजिक अपराध-शास्त्र के अग्रणी क्वेटलेट का जन्म हुआ। इस पडित ने[१] वह दीक्षा दी जो हम आज अपने विषय का सबसे महान् मत्र समझते है। उन्होंने कहा था—"समाज अपराध तैयार करता है। अपराधी उसे कार्यरूप मे परिणत करता है।" क्वेटलेट ने काट और हीगल ऐसे विद्वान् दार्शनिको के भ्रम का निवारण कर दिया। हीगल ने अपनी पुस्तक 'फिलासफी आफ राइट्स' मे हिंसा को हिसा से ही नष्ट करने का उसूल सावित किया था। वे तो कहते थे कि "यह उचित ही नही है, आवश्यक भी है कि शक्ति के प्रथम आक्रमण को शक्ति के द्वितीय आक्रमण से समाप्त किया जाय... समाज की व्यवस्था पर अपराधी एक आक्रमण है। इस आक्रमण का मुकाबला दंड से करना चाहिए।" काट ने भी कहा था कि "राजा को नियमो के तोडनेवाले को दंड देने का दु खद अधिकार है।" ऐसे सिद्धान्तो के विपरीत क्वेटलेट का यह कहना कि "समाज अपराध तैयार करता है"—अपराधी व्यक्ति की जिम्मेदारी को बहुत कम कर देता है।

भारतीय दंड-प्रथा

पिछले अध्यायो में हम भारत की दंडनीति की व्याख्या कर चुके है। उसे दुहराने की जरूरत नही है। पर क्वेटलेट ने १८६९ में समाज की अपराध के प्रति जिम्मेदारी की जो बात लिखी थी, उसको ५००० वर्ष पूर्व महाभारत मे अधिक अच्छे ढंग से समझाया गया है। धर्म-प्राण भारत मे "पाप" तथा "पुण्य" की भावना प्रत्येक कर्तव्य के साथ निहित है। इसी लिए "प्रायश्चित्त" का भाव भी अपराध के साथ है। किन्तु, समाज का रक्षक, माता, सेवक—सब कुछ राजा ही होता था। अतएव समाज मे व्यवस्था को कायम रखना भी उसका कर्तव्य था। इसी से राजा "दंड की मूर्ति" भी था। किन्तु दंड की कल्पना प्रतिशोध के रूप में नहीं प्रायश्चित्त तथा समाज की रक्षा के रूप में ही है। महाभारत, शांतिपर्व मे "कारागार" का वर्णन है। हजारो वर्ष पहले, जब दुनिया के लोग बन्दीगृह की कल्पना भी नही करते थे, हमारे देश मे कारागार थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे निर्देश किया है कि

१. क्वेटलेट—"Social Physics" १८६९

कारागार ऐसी जगह पर हो जहाँ आम रास्ता हो और लोग देखें कि अपराध करने वाले की क्या दशा होती है। पर दंड की भावना कैसी हो, इस पर कौटिल्य ने लिखा है —

न हि एवंविधं वशोपनयनम् अस्ति भूतानां यथा दंड इति आचार्याः। नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदंडो हि भूतानाम् उद्वेजनीयः, मृदुदंडः परिभूयते, यथार्थदंडः पूज्यः। सुविज्ञातप्रणीतो हि दंडः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति।

"आचार्य लोगों का मत है कि लोगो को अपने वश में (अधीन) रखने के लिए दंड से बढ़कर और कुछ नही है। किन्तु कौटिल्य का मत है कि इतना ही कह देने से वास्तविकता नही ज्ञात हो सकेगी। यदि दंड बहुत कठोर होगा तो लोग भयभीत (आतंकित) हो जायँगे। यदि बहुत कोमल दंड होगा तो उसका उद्देश्य पूरा नहीं होगा। यथायोग्य, समुचित दंड देना ही उचित है। काफी सोच विचार कर दिया गया दंड प्रजा मे धर्म, अर्थ, काम तीनो की रक्षा करता है।"

अशोक ऐसे अहिसा के पुजारी भी, अपने चतुर्थ शिला-लेख मे, प्राणदंड का आदेश देते है। उनकी आज्ञा के अनुसार मृत्यु के तीन दिन पूर्व अपराधी को बतला देना चाहिए ताकि वह तीन दिन तक व्रतोपवास द्वारा आत्म-शुद्धि का प्रयास कर ले। इस प्रकार दंड तथा तथा का अद्भुत सम्मिश्रण भारतीय मत में है। दंड को धर्म के साथ मिलाने का प्रयत्न ईसाई पादरियों ने ढाई सौ वर्षो तक किया था। ईसाई जगत् के प्रधान आचार्य पोप क्लिमेन्ट ग्यारहवे ने सन् १७०४ मे रोम में एक कारागार बनवाया जिसका नाम "साधु मिकायल का अस्तपाल" रखा। जेलखाने को चिकित्सालय का नाम देने का संसार मे यह पहला कार्य था।

अस्तु, भारतीय धर्मशास्त्र में दंड को जिस प्रकार सामाजिक तथा धार्मिक दोनों रूप दिये गये है उसका थोड़ा वर्णन हम पिछले अध्यायों में दे आये है। यहाँ पर उसका किंचित् रूप दे देना अप्रासगिक न होगा।

मनु का कथन

मनुस्मृति मे दड के सम्बंध में एक बड़ा मार्के का श्लोक है —

यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्डचेष्वतन्द्रितः।
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन् दुर्बलान्बलवत्तराः॥ अ० ७, श्लोक २०

यदि राजा सावधान होकर दंड देने योग्य अपराधी को दंड न देता तो बलवान् दुर्बलों को लोहे के कॉटों मे गूँथी हुई मछलियों की भॉति भून डालते।

अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम् ।
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम् ॥ अ० ८, श्लो० १९८

पराये का धन बेचनेवाला, धन के स्वामी का सम्बधी हो तो राजा उसे ६०० पण दंड दे। यदि उस धन के स्वामी से इस व्यक्ति का कोई सम्बध न हो, न उससे किसी प्रकार का उस धन से सम्बध हो, तो पराये का धन बेचनेवाला चोर के समान अपराधी है, इसलिए उसे चोर का दंड मिलना चाहिए।

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥ अ० ८, श्लो० ३२३

कुलीन पुरुषों को, विशेष कर कुलीन स्त्रियो को (अपराध करने पर) तथा बहुमूल्य रत्न चुरानेवाले को राजा प्राण-दंड दे।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥ अ० ८, श्लो० ३३६

जिस अपराध में साधारण मनुष्य को एक कार्षापण दण्ड होता है उसी अपराध मे राजा को एक हज़ार पण दड होना चाहिए। यह शास्त्र का सिद्धान्त है।

राजा को दंड की सीमा में केवल भारतीय धर्म—धर्मशास्त्र ने बाँधा है। ब्रिटिश सिद्धान्त तो है कि "राजा कोई भूल कर ही नही सकता।" पर भारतीय ऐसा नही मानता। हमारे यहाँ सभी के लिए पाप या अपराध के लिए प्रायश्चित्त का भी निर्देश है। मनु कहते हैं—

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः ।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ अ० ११, श्लो० २२६

प्रकट पाप की शान्ति के लिए, द्विजों को पूर्वोक्त चान्द्रायण आदि व्रत करना चाहिए और गुप्त पाप की शान्ति के लिए मन्त्रों का जप और होम करें।

अपराध से बचने की बात कितने अच्छे ढंग से की गयी है—

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ अ० १२, श्लो० ३३

अधिकाधिक धन की लालसा, निद्रालुता, कातरता, क्रूरता, नास्तिक्ता, अनाचार, याचनशीलता, धर्माचरण में प्रमाद, ये सब तमोगुण के लक्षण है।

याज्ञवल्क्य का मत

मनुस्मृति ईसा से ४०० वर्ष पूर्व यानी २३५० वर्ष पूर्व की रचना है। याज्ञवल्क्य की स्मृति ईसा से १०० वर्ष पूर्व यानी २१०० वर्ष पूर्व की रचना है। याज्ञवल्क्य ने राजा को तथा प्रजा को समान रूप से कर्तव्य शास्त्र में बाँध दिया है। राजा के लिए तो वे यहाँ तक लिखते है—[1]

अन्यायेन नृपो राष्ट्रात्स्वकोशं योऽभिवर्धयेत्।
सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबांधवः॥ याज्ञ०, ३४०

अन्याय से अपने कोष को बढ़ानेवाला राजा थोड़े ही समय में लक्ष्मी-हीन होकर बांधवों सहित नष्ट हो जाता है।

अधर्मदंडनं स्वर्गं कीर्त्तिं लोकांश्च नाशयेत्।
सम्यक्तु दंडनं राज्ञः स्वर्गकीर्त्तिजयावहम्॥ –३५७.

अधर्म से दिये हुए दंड का पाप राजा के स्वर्ग, कीर्ति और इस लोक के जीवन को नष्ट कर देता है। शास्त्रोक्त रीति से भली प्रकार दिया गया दंड राजा के लिए स्वर्ग, कीर्ति और जय का देनेवाला है।

वशिष्ठ का मत है कि यदि राजा दंड नही देता तो उसे पाप लगता है और फिर पाप का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। शास्त्रीय विधान है कि दंडनीय को छोड़ देने पर राजा एक रात्रि तथा पुरोहित तीन रात्रि उपवास करे। यदि अदंडनीय को दंड दे दिया तो राजा और पुरोहित दोनो तीन रात्रि उपवास करें। याज्ञवल्क्य लिखते है कि "जो राजा दंड के योग्य लोगों को दंड देता है और मार डालने योग्य लोगों को मार डालता है वह अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों का फल प्राप्त करता है।"

यो दंड्यान् दंडयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत्।
इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः॥ याज्ञ०, ३५९
ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापि वा।
वयः कर्म च वित्तं च दंडं दंड्येषु पातयेत्॥ –३६८

देश, काल, अवस्था, कर्म, धन इन सबको जानकर अपराध के लिए, इनके अनुसार ही दंड देने योग्य को दंड देना चाहिए।

१. याज्ञवल्क्य—आचाराध्याय, राजधर्मप्रकरण

इस श्लोक मे याज्ञवल्क्य ने आज के दडशास्त्र का मंत्र कह दिया है। हम आजकल यही कहते है कि अपराधी की अवस्था, परिस्थिति आदि सब देखकर दंड देना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने उसी बात को बडे सुन्दर रूप मे स्पष्ट कर दिया हैं। अपनी स्मृति मे याज्ञवल्क्य ने दड के चार प्रकार बतलाये है। आज हमने प्रोबेशन (परिवीक्षण), अर्थ-दंड, कारागार आदि की जो प्रणाली बनाकर अपराधी को सुधार का कई प्रकार का मौका दिया है, याज्ञवल्क्य ने भी उसी का अपने समय के अनुसार बड़ा अच्छा क्रम रखा है। पहले धिक्कार का दड दे। धिक्-धिक् कहकर बुरे काम की निन्दा करे। फिर भी न माने तो कठोर वचन कहकर दड दे। यह बेकार जाय तो अर्थदड दे। फिर भी न सुधरा तो वध कर दे—शरीर ही समाप्त कर दे। वे लिखते है—

धिग्दंडस्त्वथ वाग्दंडो धनदंडो वधस्तथा।
योज्या व्यस्ता समस्ता वा ह्यपराधवशादिमे॥

अर्थ यह है कि धिक् दंड, वाक् दड, धन दंड या वध दड राजा अपराध के अनुसार दे। अस्तु, ऊपर जितने श्लोक दिये गये है वे राजधर्म प्रकरण के थे। व्यवहार-अध्याय में[1] दंडविधान का बड़ा अच्छा रूप दिया गया है। अपराध की साधारण सी बातो की भी व्याख्या कर दी गयी है। जैसे, यदि दो आदमी आपस में गाली-गलौज करे, झगड़ा करें तो दोष किसका है। नारदस्मृति मे लिखा है कि जो पहले अपराध करे वही नियमतः दोषी है। यानी पहले गाली देनेवाला अपराधी है। पर याज्ञवल्क्य के अनुसार कलह और साहस मे अभियोग के साथ प्रत्यभियोग की भी सुने और वादी तथा प्रतिवादी से कहे कि किसी को मध्यस्थ बनाकर अपने झगड़े का निर्णय करा ले। यदि कोई निर्णय न हो तो राजा को निर्णय करना होगा। यदि वादी के लगाये गये अभियोग को प्रतिवादी स्वीकार न करे और गवाही आदि देकर वादी अपना अभियोग सिद्ध कर दे, तो प्रतिवादी को झगड़े के धन की रक़म वादी को तथा उतनी ही रकम राजा को देनी पड़ेगी। ऐसे मामले ऋण आदि के सम्बध में हो सकते है। जो क़र्जदार ऋणदाता के अभियोग को अस्वीकार कर दे और यह न माने कि उसने ऋण लिया है और इस ऋण को ऋणदाता सिद्ध कर दे तथा जो अभियुक्त राजसभा मे बुलाये जाने पर कुछ न कह सके, उसे साबित की हुई रकम देनी होगी और दंड का भागी भी बनना पड़ेगा। इन बातो को नीचे के तीन श्लोको मे दिया गया है। अर्थ हम ऊपर की पंक्तियों में दे चुके है—

१. व्यवहाराध्याय—असाधारण व्यवहारमातृकाप्रकरण

> कुर्यात् प्रत्यभियोगं च कलहे साहसेषु च।
> उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये ॥१०॥
> निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे च तत्समम्।
> मिथ्याभियोगी द्विगुणमभियोगाच्छादनं वहेत् ॥११॥
> संदिग्धार्थस्वतंत्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत्।
> न चाहूतो वदेत्किंचिद्धीनो दंड्यश्च स स्मृतः ॥१६॥

वधदंड के विषय में

प्राणदंड के विषय में हमारे शास्त्रकारों ने बहुत कुछ कहा है। ब्राह्मण को वध का दंड नही है पर उसे वध के स्थान पर देश-निकाला है। आपस्तम्ब ने लिखा है कि ब्राह्मण को देश से निकालते समय उसके नेत्र बन्द कर दे। अर्थात् न तो वह लोगों को देखे और न लोग उसे देखे। ब्राह्मण को अक्षत यानी शरीर पर बिना घाव हुए देश से निकालना चाहिए। नारद ने ब्राह्मण का "वध" "उसका सब कुछ हरण कर देश से निकालना, उसके शरीर को दागकर निकालना" भी लिखा है। उसका सिर मूडकर नगर से निकाल दे, गधे पर चढाकर नगर के बाहर कर दे। यदि उसने गुरुपत्नी से या गुरु की शय्या पर प्रसग किया हो तो उसके मस्तक पर भग का चिह्न बना दे। मदिरा पीने का दोषी हो तो मदिरा की ध्वजा बना दें। चोरी मे कुत्ते के पैर का, ब्रह्महत्या में सिर से हीन पुरुष का चिह्न बना दें—दाग दे।

अन्य जातिवालो के लिए वधदंड दस प्रकार का है। लिग, उदर, जिह्वा, हाथ, नेत्र, नाक—जिससे अपराध हुआ हो उसको काटकर अलग भी कर सकते है। यह भी वधदंड हुआ।

वधदंड, प्राणदंड तथा दंड के साधारण स्वरूप के सम्बध में महाभारत के शान्तिपर्व, २६७वें अध्याय मे युधिष्ठिर के प्रश्न पर भीष्म पितामह ने सत्यवान् तथा उनके पिता द्युमत्सेन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण सवाद दिया है। पाठको को उसे ध्यान से पढनेपर अपने देश की विचारधारा का पता चलेगा। महाभारत मनु आदि की स्मृतियों से कही प्राचीन ग्रंथ है। संवाद इस प्रकार है—

युधिष्ठिर:—

> कथं राजा प्रजा रक्षेन्न च किंचित् प्रघातयेत्।
> पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

युधिष्ठिर ने पूछा—सत्पुरुषों मे श्रेष्ठ पितामह, मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ

कि राजा किस प्रकार प्रजा की रक्षा करे, जिससे उसको किसी की हिंसा न करनी पड़े। मुझे बताने की कृपा करें।

भीष्मः—

अव्याहृतं व्याजहार सत्यवानिति नः श्रुतम्।
वधायोन्नीयमानेषु पितुरेवानुशासनात् ॥३॥

हमने सुना है कि एक दिन सत्यवान् ने देखा कि पिता की आज्ञा से बहुत से अपराधी शूली पर चढा देने के लिए ले जाये जा रहे है। उस समय उन्होने पिता के पास जाकर उनसे ऐसी बात कही, जो पहले किसी ने नही कही थी।

अधर्मतां याति धर्मो यात्यधर्मश्च धर्मताम्।
वधो नाम भवेद् धर्मो नैतद् भवितुमर्हति ॥४॥

पिताजी, यह सत्य है कि कभी ऊपर से धर्म सा दिखाई देनेवाला कार्य अधर्म रूप हो जाता है और अधर्म भी धर्म के रूप में परिणत हो जाता है, तथापि किसी प्राणी का वध करना भी धर्म हो—ऐसा कदापि नही हो सकता।

द्युमत्सेनः—

अथ चेदवधो धर्मोऽधर्मः को जातुचिद् भवेत्।
दस्यवश्चेन्न हन्येरन् सत्यवन् संकरो भवेत् ॥५॥

पुत्र सत्यवान्! यदि अपराधी का वध न करना भी कभी धर्म हो तो अधर्म क्या हो सकता है। यदि चोर वा डाकू मारे न जायँ तो प्रजा में वर्णसंकरता और धर्मसंकरता फैल जाय।

सत्यवान्—

दस्यून् निहन्ति वै राजा भूयसो वाप्यनागसः।
भार्या माता पिता पुत्रो हन्यन्ते पुरुषेण ते ॥
परेणापकृते राजा तस्मात् सम्यक् प्रधारयेत् ॥१०॥

राजा डाकुओं अथवा दूसरे बहुत से निरपराध मनुष्यों को मार डालता है और इस प्रकार उसके द्वारा मारे गये पुरुष के पिता-माता-स्त्री और पुत्र आदि भी जीविका का कोई उपाय न रह जाने के कारण मानो मार दिये जाते है। अतः किसी दूसरे के अपकार करने पर राजा को भली-भाँति विचार करना चाहिए, जल्दबाजी करके किसी को प्राणदंड नहीं देना चाहिए।

आसीदादानदंडोऽपि वधदंडोऽद्य वर्तते।
वधेनापि न शक्यन्ते नियन्तुमपरे जनाः ॥२०॥

इसके बाद आवश्यकता समझकर अर्थदंड भी चालू किया गया और आजकल तो वध का दंड भी प्रचलित हो गया है। बहुत से दुष्टात्मा मनुष्यों को तो प्राणदंड के द्वारा भी काबू मे लाना या मर्यादा के भीतर रखना असम्भव सा हो रहा है।

इस सवाद मे सबसे मार्के की बात यह है कि महाभारतकाल मे, हजारों वर्ष पहले उस जमाने को लोग बहुत बुरा समझते थे और अपने से पहले के लोगों को अधिक पवित्र तथा कर्तव्यशील समझते थे। आज हम भी वही कहते है--पहले के लोगो को अच्छा और अपने को बुरा समझते है। इसलिए, क्या ऐसा नही है कि बुरा भला कोई नही, केवल समझ का फेर है।

अध्याय ३२

कारागार का विकास

अस्तु, यह मानकर हम अपने विषय पर और अधिक विचार करने के लिए आगे बढ़ें कि समाज के नियम, व्यवस्था तथा अनुशासन के विरुद्ध काम करनेवाला अपराधी कहलाता है। उस अपराधी को किस प्रकार दंड दिया जाय, कहाँ रखा जाय, यह सवाल रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में कारागार की प्रथा सबसे पहले शुरू हुई। बन्दीगृह में निश्चित या अनिश्चित काल के लिए रखना भी दंड था। यूरोप मे, विशेष कर सभ्यता की ओर कदम उठानेवाले इंग्लैण्ड ऐसे देशों में, १५वीं १६वी सदी मे जो बन्दीगृह थे, वे आज के समान या प्राचीन भारतीय कारागार के समान नहीं थे। किसी भी सुरक्षित मकान या किले मे वे लोग बंद कर दिये जाते थे। जो राजद्रोही, शरारती, बदमाश या लफंगे होते थे, सजा होने के बाद उनको जेल मे रखने का सवाल ही नही उठता था, क्योंकि प्राणदंड या पिटाई के अलावा दूसरी कोई सजा नही थी।

बन्दीगृह केवल "कैद" कर रखने का स्थान था और सरदार, रईस या निरंकुश शासकों ने इसे यातना का भीषण साधन बना रखा था। अदालती कार्यवाही के पहले क़ैद रखने के स्थान मात्र के बजाय वे पीड़ा, आतंक तथा जोर-जबर्दस्ती के नरकगृह बन गये थे।[१] इंग्लैंड तथा फ्रान्स के कारागार हमेशा भरे रहते थे पर एक बार जेल मे पहुँच जाने के बाद छूटने में काफी समय लगता था। प्रायः बेचारे २०-२५-४० वर्ष तक जेलो मे पडे रहते थे। भारत में देशी नरेशों के जमाने में, ब्रिटिश शासनकाल मे, आज के बीस वर्ष पूर्व ३०-४० वर्ष पुराने कैदी वर्तमान थे। इन जेलों मे हर एक के, चाहे किसी प्रकार का अपराध हो, हथकड़ी-बेड़ी लगी रहती थी। इनके कमरों को काल-कोठरी कहना उचित होगा, न उनमे प्रकाश था न शुद्ध वायु आने के लिए कोई प्रबंध। कमरे की सफाई, झाड़ू आदि का प्रबंध बहुत दूर की बात थी। भोजन क्या था, गन्दगी का घर था। जेलर को घूस देकर या पादरियो या धनी-मानी सज्जनों की उदारता

१. Sen's Penology—Old and New—Page 30.

से कभी कुछ मिल जाय तो बडी गनीमत थी। यूरोप के प्राय: सभी देशों में, एशिया के अधिकाश देशो में, कारागार की यही स्थिति थी।

बंदियो के उद्धार के लिए जान हावर्ड ने १८वीं सदी मे अवतार लिया था। इंग्लैंड तथा यूरोप के जेलो की यात्रा तथा निरीक्षण कर इन्होंने अपनी पुस्तक[१] संसार के सामने जब रखी, तब अभागे बन्दियों के प्रति संसार का ध्यान आकृष्ट हो गया और उनके प्रति सहानुभूति का स्रोत उमड पडा।

बन्दी वर्ग के लिए फ्रान्स की राज्यक्रान्ति ने भी बड़ा भारी काम किया। सन् १७८९ मे यह राज्यक्रान्ति हुई थी। इसके पूर्व फ्रान्स मे सम्राट् लुई १४वे का सन् १६७० का दडविधान लागू था। इस विधान के अनुसार जेलखाना कोई कानूनी सजा नही था। दंड के तीन ही प्रकार थे—प्राणदड, यातना या कुछ समय या जन्म भर के लिए जहाज पर गुलाम की तरह से सेवा करना। दंड का रूप जेल भेजना ऐसी कोई बात नही थी। सन् १७९१ में फ्रांस की पार्लमिन्ट ने जो दड-विधान पास किया, उसमें बहुत कुछ त्रुटियाँ अवश्य रही हों पर मार्के की बात भी थी। उसने यह निश्चित कर दिया कि किसी व्यक्ति को जीवन भरके लिए जेल में नहीं रखा जा सकता। जेल भेजना भी दंड का एक प्रकार होगा तथा जेल की यातना केवल निश्चित काल के लिए होगी। आज यह बात हमारे लिए विशेष महत्त्व न रखे पर फ्रान्स ही नहीं, यूरोप भर के बंदीगृहों के जीवन मे इसने एक क्रान्तिकारी सुधार का श्रीगणेश कर दिया। सन् १८१० में सन् १७९१ के कानून का संशोधन हुआ और उसके अनुसार विचारपति को, मजिस्ट्रेट को यह अधिकार दिया गया कि "कम से कम या अधिक से अधिक" के बीच मे, यथोचित दंड दे।

बन्दी सुधार की बात

किन्तु कारागार का काम दंड देना ही नहीं है, मनुष्य का जीवन सुधारना भी है, यह बात उस समय तक भी लोगों के दिमाग में नहीं आयी थी। यह तो तब ध्यान में आता जब अपराधी मे "व्यक्तित्व" की सत्ता भी स्वीकार की जाती। जिसने अपराध किया, वह केवल "अपराधी" समझा जाता था, मनुष्य भी नहीं। पर,

१. John Howard—"The State of Prisons in England and Wales, with Preliminary Observations, and an Account of some Foreign Prisons"—1777.

धीरे-धीरे जेल-सुधार के काम आप से आप समाज मे होने लगे। पहले लोग स्त्री तथा पुरुष बंदी को अलग रखने की बात भी नही सोचते थे। पर पश्चिमी देशों में स्त्रियों के लिए पहला पृथक् जेल सन् १५९३ में डच राजधानी ऐम्सटर्डम में बना। वाइन्स ने अपनी पुस्तक मे जेल सुधार के आन्दोलन पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है।[१] उन्होंने उसमे लुई चौदहवे के जमाने में अपनी अधार्मिकता के लिए प्रायश्चित्त करने वालो को प्रधान फ्रेंच पादरी द्वारा दिये गये दड का उल्लेख किया है। इसके अनुसार—

"पश्चात्ताप करनेवालों को अलग कोठरियों मे बन्द कर दिया जाय और इनको तरह-तरह का परिश्रम का कार्य दिया जाय। इनकी कोठरी के सामने छोटा-सा बाग हो जिसमे निश्चित समय पर ये हवाखोरी कर सकें तथा जमीन को गोड़ने, बोने का काम करे... बाहरी दुनिया से कोई आदमी इनसे मिलने न पाये ....."

उस समय प्राणदंड देना मामूली बात थी। धार्मिक अदालतों के जमाने मे[२] स्पेन, फ्रान्स, जर्मनी आदि में, मध्ययुग में घोर अत्याचार हो रहे थे और इन अत्याचारो के प्रणेता थे ईसाई पादरी। इनकी धर्म-बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो गयी थी कि ये अपने महान् धार्मिक मंत्रों का अनर्थकारी अर्थ लगाते थे। ईसाई धर्म में रक्तपात का निषेध है, अतः किसी को गला काटकर, या गोली से मारने मे रक्तपात का दोष होता था। इसलिए अभागे दडित व्यक्ति को ऐसी कालकोठरी मे डाल देते थे कि वह दम घुट-घुटकर मर जाय और इसे "शान्ति के साथ प्रयाण"[३] कहते थे। ऐसी ही कालकोठरियों की दशा को देखकर एडवर्ड लिविग्स्टन ने लिखा था कि हर कोठरी पर यह लिखकर टॉग देना चाहिए कि—

"इस कोठरी मे श्री क श्री ख की हत्या के दंड मे जन्म भर के लिए अपना जीवन एकान्त तथा दु:ख में बिताने के लिए बन्द है। सबसे मोटे प्रकार की रोटी इनका भोजन है, आँसुओं से मिला पानी पीने को है, दुनिया के लिए वह मर गया है। यह कोठरी उसकी कब्र है। उसे दुनिया मे इसलिए जीवित रखा गया है कि वह अपने अपराध को याद रखे और उसके लिए पछताता रहे। उसके दड को देखकर और लोग

१. Dr. Frederick Howard Wines—"Punishment and Reformation"—Thomas Y. Crowell Co., New York—Page 148-152.

२. Inquisition

३. Vade in Pace–Depart in Peace.

घृणा, लोभ, वासना तथा उत्तेजना के उन भावो से बचना सीखें जिनके वशीभूत होकर इस अभागे ने अपराध किया है।"

इस दर्दनाक वर्णन का लेखक लिविंग्स्टन प्राणदंड की प्रथा के ही विरुद्ध था। दड के साथ यातना तथा प्राणदड—दोनो के विरोधी बक्कारिया (१७३५-१७९४) भी थे। इनका जिक्र हम ऊपर कर आये है। जेल में यातना के विरोध में जेल को वन्दी के सुधार का साधन वनाने के पक्ष मे जान हावर्ड, श्रीमती एलिजवेथ फ्राई, सर टामस वक्सटन ऐसे अंग्रेज तथा जे० ए० दी ब्यूमौट और ए० दी तेक्केविले लोगों ने मार्ग-प्रदर्शन का बडा भारी कार्य किया है।

पर, आदर्श जेल की रचना तथा उसे "जेल" न कहकर "अस्पताल" कहने का कार्य सन् १७०४ में पोप क्लिमेंट ग्यारहवे ने किया था। रोम मे उनका "साधु मिकायल का अस्पताल" स्थापित हुआ था। पर आधुनिक कारागार की नवीन भावना तथा जेल-सुधार के साथ जेलखानों को बन्दी के सुधार का स्थान बनाने के हिमायतियों के नेता तथा पथप्रदर्शक, आज के दो सौ वर्ष पूर्व पोप विलेन चौदहवे थे। दंड-शास्त्र के पडित उनको आज उसी आदर से देखते है जैसे होम्योपैथी के चिकित्सक प्रो० हैन्नमान को। घेंट में उन्होने अलग-अलग कोठरीवाला जेल बनवाया। उन्होंने जेलो मे चुने हुए उद्योगधंधे जारी कराये। कैदियो को छूटने के बाद ईमानदारी से जीविकोपार्जन के लिए कुछ काम, दस्तकारी आदि की शिक्षा देनी शुरू की। जेल में बनाये हुए सामान की बिक्री की आमदनी से कुछ पैसा कैदी को अपने पास रखने को अनुमति दी। कैदियों का वर्गीकरण होने लगा। उनकी चिकित्सा का तथा धार्मिक शिक्षा का प्रबंध हुआ। सबसे बड़ी बात यह कि जेल के अधिकारियो को यह अधिकार मिला कि जिस कैदी के चालचलन में काफी सुधार इत्यादि देखें, उसको सजा की अवधि से पहले छोडे जाने की सिफ़ारिश कर सकते है। इस प्रकार विलेन ने उस समय के लिए कल्पना से भी परे तथा आज भी जो बातें सब जगह, सब जेलों में लागू नही हो सकी है—ऐसी अत्यंत महत्त्व की तथा बन्दी और साधारण समाज के लाभ की बाते कही थी। उन्होंने "चरित्र सुधारने पर कैदी को छोड़ दिये जाने की" बात कहकर, आज हम जिसे "अनिश्चित काल के लिए सजा" कहते है, उस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

वन्दी-सुधार की पुरानी ब्रिटिश योजनाएँ

१८वी सदी में बन्दी के सुधार पर भी ध्यान दिया जाने लगा, यह हम ऊपर लिख आये है। १८वीं सदी के मध्य मे इग्लैंड में बड़े पादरी यानी बिशप बटलर

ने आवाज उठायी कि कैदी को अलग-अलग कमरे में रखकर उसका सुधार किया जाय, क्योंकि "मृत्यु के लिए तैयारी करने से अधिक आवश्यक है जीवन की तैयारी करना।" जेरेमी बेथम का कहना था कि कैदियो को अलग-अलग रखकर उन पर कडी निगरानी रखी जाय। जेलसम्बंधी एक समिति के अध्यक्ष टामस ब्रे की राय थी कि—१८वी सदी के प्रारम्भ में—कैदियों को अलग अलग रखा जाय। जान हावर्ड भी इसी विचार के थे। हावर्ड ऐसे चतुर विचारक का भी खयाल था कि "यदि दिन मे एक साथ मिल भी जायँ तो रात मे उनको अलग अलग जरूर सोना चाहिए।" इन विचारको के आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश पार्लमेंट ने सन् १७७९ मे कानून बनाकर अलग-अलग कोठरीवाले जेलो की रचना का आदेश दिया। जेल से छूटने पर जीविकोपार्जन की योग्यता प्राप्त करने के लिए कैदियों को कुछ काम सिखाने का आदेश भी १७७९ के कानून ने दिया। सन् १८१६ मे इंग्लैण्ड का मिलबैंक का प्रसिद्ध कारागार बना जिसका प्रबंध एक समिति के हाथो में था। इस समिति के अध्यक्ष थे ब्रिटिश पार्लमिन्ट के अध्यक्ष। इस कारागार को भी "अलग कोठरी" के आधार पर बनाया गया था पर इसमे काम सिखाने तथा धार्मिक शिक्षा पर पार्लमिन्ट की साधारण सभा की एक विशेष समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इसने भी अलग कोठरी की प्रथा की सिफारिश की। सन् १८४२ में १००० कैदियो को रखने योग्य पेटोनबिले का "आदर्श" जेल इग्लैंड में बना। ऐसी कोठरियाँ बनी जिनमे हर एक बन्दी एकान्त में रहकर अपने पाप के लिए पश्चात्ताप करे तथा भूतकाल की घटना के लिए प्रायश्चित करे। पेंटोनबिले यूरोप तथा भारत ऐसे देशो के लिए आदर्श जेल बन गया। पर धीरे धीरे लोग किसी व्यक्ति को अकेले बन्द रखने की भूल महसूस करने लगे। एकान्त कोठरी की प्रथा मे परिवर्तन भी हुआ। पहले यह संशोधन हुआ कि १८ महीने से अधिक किसी को एकान्त कोठरी मे न रखा जाय। फिर, एकान्त कोठरी ९ महीने, ६ महीने, ३ महीने, तीन हफ्ते तक घटते-घटते अब विशेष दंड के रूप में सप्ताह दो सप्ताह से अधिक नही प्राप्त होती। इस प्रकार की कोठरी का नाम एकान्त कोठरी से बदलकर काल कोठरी हो गया। पेटोनबिले का "आदर्श जेल" भी ब्रिटेन के सन् १९३८ के नवीन दडविधान के पास होने के बाद गिरा दिया गया और उसके स्थान पर एक नये प्रकार का जेल बना।

बन्दीगृह का विरोध

बन्दीगृह मे सुधार की चर्चा एक ओर समाज पर असर करती जा रही थी, दूसरी ओर बन्दीगृह का तथा बन्दी रखने का ही विरोध हो रहा था। जेल में जाने

पर मनुष्य सुधरने के बजाय बुरा भी बन जाता है। सन् १८८८ मे इमिले जाटियर नामक एक फ्रेन्च ने बडे गहरे अध्ययन के बाद बन्दी के मस्तिष्क पर जेलजीवन के प्रभाव की छानबीन की थी और उनके अनुसार मनुष्य जेल मे जाकर बहुत बदल जाता है। आर्थर होम्स ने सन् १९१२ मे अपनी पुस्तक में[१] लिखा था—"जेल मे ज्यादा दिन तक रहने पर मनुष्य की आकृति क्यो बदल जाती है? उसकी आवाज कठोर तथा अप्राकृतिक क्यो हो जाती है? उसके नेत्र चचल, मक्कार और जगली क्यो बन जाते है? यह सब इसलिए नही होता कि उसे कठोर परिश्रम करना पडता है...यह सब उस प्रणाली का दोष है जिसके कारण आत्मा तथा बुद्धि दोनो का हनन हो जाता है।" डेवन अपने कथन में होम्स से भी आगे बढ गये। वे लिखते है कि "मेरी राय मे, इसमे कोई सदेह नही है कि हमारी वर्तमान प्रणाली अपराधी बनाती है। अधिकाश मामलो मे कैद से कोई लाभ ही नही होता—निश्चित रूप से गम्भीर हानि होती है।"[२] गेब्रील तार्दे ने क्रोध से कहा है—"कुछ तो अपने अपराध के कारण तथा कुछ अपराधी न्याय के कारण अपराधी व्यक्ति का निर्माण होता है।"[३] प्रसिद्ध अपराधशास्त्री लोम्ब्रोजो ने (मृत्यु सन् १९०९) यहाँ तक कह डाला था कि "अपराध के सबसे प्रमुख कारणो मे कारागार भी है।" "जेल अपराध की पाठशाला है...बहुत से लोग जेलो मे ही जाकर जेबकटी, गिरहकटी सीख कर लौटते है।"[४]

यह विवाद आज तक जारी है। जेल मे रखा जाय या न रखा जाय? जेलजीवन हितकर है या अहितकर? यदि जेल मे रखना ही है तो किस प्रकार के जेल हो? ऐसे विषयो पर विचार करने के समय भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण होते है समाजशास्त्र का मनोवैज्ञानिक पंडित मानसिक विकृतियो के विशेषज्ञ की तुलना मे

१. Arthur Homes—"Conservation of the Child"—Philadelphia—Lippincolt—1912—Page 342.

२. J. Devon—"The Criminal and the Community"–Lane, London, 1912–Page 348.

३. Gabriel Tarde—"Penal Philosophy"–Little, Brown & Co., Boston–1912–Page 581.

४. Cesare Lombrose—"Crime, Its Causes and Remedies"—(Translation) Little, Brown & Co.,

अधिक व्यापक तथा साहसपूर्ण दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार करता है। समाजशास्त्र के पंडित को अपराधी की विकृतियों का व्यक्तिगत निजी ज्ञान नही होता। "मानसिक विकृतियो का जानकार कहता है कि मानसिक या शारीरिक व्यतिक्रम से अपराधी प्रवृत्ति पैदा होती है, अतएव दंड के स्थान पर इन रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए। पर समाजशास्त्री अपने सिद्धान्तो तथा आदर्शों के बल पर बातें करता है। इसी लिए समाज के रोगों का समाजशास्त्री द्वारा वर्णित निदान साधारण बुद्धिवालों के समान ही होता है। समाजशास्त्री के सामने चिकित्साविज्ञान की बाधा नही है कि वह मानसिक रोग की नाप जोख करे। वह प्रत्येक बात को समाज की आवश्यकता को सामने रखकर देखता है और इसी लिए मानसिक विकृतियों के विशेषज्ञ तथा समाजशास्त्री के अपराध सम्बंधी दृष्टिकोण में बडा अन्तर होता है। समूह या वर्ग के हितों का चिन्तन करनेवाला चाहे व्यक्ति के निजी कल्याण की बात कितनी भी सोचे, उसकी समूची विचारधारा व्यक्ति के स्थान पर समूह के लाभ को सोचने मे लगी है। इसीलिए अपराधी के व्यक्तित्व की बात को वह "सद्भावना–सहित" भूल सकता है। इसी लिए "आदतन अपराधी" भी बार-बार अपराध करके जेल जानेवाले यानी विराराधी[१] की समस्या समाजशास्त्री के लिए उतनी चिता का कारण नही है, जितनी मानसिक विकृति के विशेषज्ञ के लिए, क्योकि उसे तो शारीरिक तथा मानसिक कारण ढूढ निकालने है। इसलिए हो सकता है कि बहुत छानबीन करने के कारण बन्दीगृह-सुधार के मामले मे भी मानसिक-विकृति-विशेषज्ञ साहस के साथ कदम न बढाये। समाजशास्त्री से इस दिशा मे अधिक साहसिक उपयोगों तथा कार्यो की आशा है।[२]"

पुलिस और जेल

जेल के जीवन के सम्बंध मे आज के युग में भी व्यापक भ्रान्तियाँ है। आज भी ऐसे लोग अधिकार के स्थान पर है जो पुलिस तथा जेल के मुहकमे को एक-दूसरे

१. राध् = "अप-राध्" शब्द से, बार-बार अपराध करनेवाले यानी Habitual Offender या Recidivist के लिए संस्कृत व्याकरण से शुद्ध शब्द होगा "विराराधी", हम इसी शब्द का उपयोग करेंगे।

२. The British Journal of Delinquency—Sept., 1955—Page 118-119.

से एकदम पृथक् तथा विरोधी सा भी मानते है। ऐसे लोग कम नही है जो समझते हैं कि पुलिस का जेल से क्या सम्बध है ? यदि पुलिस का काम समाज की रक्षा है तो जेल का काम समाज की हानि करनेवालो को समाज की रक्षा करनेवाला बनाकर वापस भेजना है। यदि दोनों विभागो मे सहानुभूति न होगी तो समाज का बडा अकल्याण होगा। इस पर विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक रिचार्ड हैरिसन लिखते हैं—[१]

"ज्यों ही कैद की सजा सुना दी जाती है, कैदी को अपना दंड भुगतने के लिए जेल भेज देते है। वहां पर उसके साथ क्या होता है, उससे इस पुस्तक से कोई मतलब नही है। पुलिस का जेल से कोई सम्बध नही है......जेल तथा उसके उद्देश्य के बारे में १५० वर्षो मे विचार बिलकुल बदल गये है.. .बहुत शुरू जमाने मे कैद-खाने दंड के स्थान नही थे। अपराधियो को सज़ा सुनाये जाने तक कहीं भाग जाने से रोक रखने के लिए उन्हे बनाया गया था। उस समय आम तौर पर (मैं मिस्र, बैबीलोन, रोम तथा यूनान के दिनो की बात कह रहा हूँ) दंड का अर्थ होता था प्राणदंड, देश-निकाला, यातना या अर्थ-दड। आजकल की तरह से उस समय यह नियम नही था कि जनता के पैसे से अपराधी को पाला जाय। धीरे-धीरे अपराधी की स्वाधीनता का अपहरण कर उसे बन्द कर रखना भी दंड का रूप बन गया। दो सौ वर्ष से कम हुए कि इंग्लैड मे अपराधियों के साथ बडा जंगली व्यवहार होता था। दो चार रुपये मूल्य का सामान चुराने के अभियोग मे छोटे-छोटे बच्चे फाँसी पर लटका दिये जाते थे। जब एक भेड चुराने पर किसी आदमी को फाँसी हो सकती थी तो अपने को गिरफ्तार करने आनेवाले की जान लेने की चेष्टा वह क्यों न करे? आखिर फाँसी तो एक ही बार होगी· · ·

"क्या आपने कभी यह सोचने का प्रयास किया है कि लोग जेल क्यों भेजे जाते हैं ? जेल भेजे जाने के बहुत से कारणों में सबसे छोटा कारण है बदला लेना। समाज की हानि हुई है। वह बदला ले रहा है। पिछली सदी के प्रारम्भ तक जेलो के विषय मे यही धारणा थी। आज जेल भेजने के कारण या किसी प्रकार के क़ानूनी दंड में केवल प्रतिशोध की भावना नही रहती, जनता को उस अपराधी के अन्य कुकार्यों से बचाने का भी विचार रहता है, अन्य भावी अपराधियों के सामने उदाहरण उपस्थित करना रहता है तथा स्वय अपराधी के मन में यह भाव उत्पन्न करना होता है कि अप-

१. Richard Harrison—The World's Police–Phoenix House, London, 1954—Page 111.

राध करने से कोई लाभ नही—संक्षेप में, अपराधी का सुधार करना ही मूल उद्देश्य है। आजकल कम उम्र के लोगो को तभी जेल भेजते है जब सब उपाय विफल हो जाते हैं। . . . . .लेकिन क्या जेल में नर्मी का व्यवहार करने से महाशय "क" में सुधार हो गया, क्या उनकी आदत छूट गयी? कम-से-कम उसे जेल में रखने से यह तो निश्चित है कि जितने दिनों तक भीतर बंद रहेगा, कोई चोरी नही कर सकेगा। इसी लिए पुलिस उसे वहाँ पहुँचाकर उसके "शरीर की सुपुर्दगी" की रसीद प्राप्त कर लेती है . . जेल की सजा में इस बात की चिता नही की जाती कि कैदी के बीबी बच्चों का क्या होगा।"

अमेरिका तथा ब्रिटिश जेलों का जीवन

ब्रिटिश जेल-जीवन का वर्णन करते हुए श्री हैरिसन लिखते है—[1]

"जो आदमी पहली बार जेल जाता है उसे "स्टार" बन्दी कहते है। उसे यही श्रेणी प्राप्त रहेगी जबतक उसके आचरण मे कोई खराबी नही आ जाती। पहले महीने के बाद वह कुछ आना कमाकर उसे अपनी सिगरेट-तम्बाकू आदि पर खर्च कर सकता है. . बन्दीगृह का दिन आम तौर से ६-३० बजे सबेरे प्रारम्भ होता है। "स्टार" बन्दी अपने कमरे मे ९-३० बजे रात तक पुस्तकें पढ़ सकता है। साढ़े छः बजे उठकर हर एक कैदी को अपनी कोठरी साफ करनी पड़ती है। इसके बाद उसके पास जलपान आ जाता है। बन्द कमरे में ही वह जलपान कर लेता है। ८ बजे सुबह खुले स्थान में क़ैदी व्यायाम कर सकते है तथा एक दूसरे से बातें कर सकते हैं, इसके बाद दोपहर तक कारखाने में काम करना पड़ता है। वे अपने कमरे में ही भोजन के लिए भेज दिये जाते है। उस समय फिर उनके कमरे का ताला बन्द हो जाता है। डेढ बजे दोपहर को उन्हे आध घंटा फिर व्यायाम का अवसर मिलता है। फिर साढे पॉच बजे तक काम होता है। उसके बाद वे अपने कमरे में १३ घंटे के लिए बन्द कर दिये जाते है। क़ैदियो के लिए इतने लम्बे समय के लिए एकान्त सेवन तथा सोचने के लिए छोड़ देना सबसे कठोर दड हो जाता है . बावजूद इसके कि आजकल जेलखानो के बारे मे बड़े प्रगतिशील विचार है। अधिकाश कारागारो की इमारते उदास, नीरस, ठडी तथा मानव के प्रति कम उदार भावना के जमानो की बनी हुई है। सबसे बदनाम जेल डार्टमूर का है। सन् १८०६

१. वही पुस्तक—११३

में इसका बनना शुरू हुआ था और १८०९ में समाप्त हुआ। पहले इसमे फ्रांस के साथ युद्ध मे पकड़े गये बंदी रखे जाते थे। सन् १८१२-१८१५ तक अमेरिका के साथ युद्ध में पकड़े गये १००० अमेरिकन बन्दी रखे गये थे। यहाँ आपस में कैदियों मे प्राय: लड़ाई-झगड़ा हुआ करता था। एक झगडे में अमेरिकनो ने फ्रेंच कैदियों को खूब पीटा। इसमें ५० कैदी मारे गये। अमेरिकन तथा फ्रेंच युद्ध की समाप्ति पर इस जेलखाने का उपयोग समाप्त हो गया। १८५० तक यह बेमरम्मत पडा रहा पर, उस साल इसमे मरम्मत करायी गयी और यह फिर चालू हुआ—इसलिए नही कि अपराध वढ गया था, पर इसलिए कि ब्रिटिश उपनिवेशों ने आजन्म कैदियो को अपने यहाँ लेना अस्वीकार कर दिया ...अधिकाश अंग्रेजी जेल १०० वर्ष या इससे अधिक पुराने है, ये कैदियों को बन्द रखने के लिए बने हैं—उनके ठीक से रहने के लिए नही····

"......मैने न्यूयार्क प्रदेश का प्रसिद्ध सिगसिग जेल देखा है। मेरे विचार से अमेरिकन कैदियो का जीवन ब्रिटिश कैदियो से अधिक अच्छा है। सिंगसिग हडसन नदी के किनारे पर बना है। इसके "निवासी" (उनको वन्दी नही कहते) कभी-कभी नदीतट का सुन्दर दृश्य देखने का अवसर पा जाते हैं—कोई भाग नही सकता। काफी पहरा है और थोड़ी-थोडी दूरी पर पहरेदारो के लिए मीनारे बनी हुई है... यहाँ के गवर्नर[1] से मेरी बातें हुईं। उन्होने कहा कि उनके क़ैदियों को शिक्षा दी जाती है कि "उनका काम समय काटना नहीं है बल्कि समय से अपनी सेवा कराना है।" इस बन्दीगृह में बड़े अच्छे-अच्छे कारखाने है तथा सुन्दर पुस्तकालय है। आमोद-प्रमोद का कमरा है। जेल की अपनी दूकान भी है। कोठरियाँ अंग्रेजी जेलों के बराबर है पर उनकी तरह तंग नही है। यहाँ के कैदियो को अपने कमरो को चित्रो से सजाने की अनुमति है। वे मछली या चिडियाँ भी पाल सकते है। लेकिन सब कुछ होते हुए भी सिगसिग कारागार ही है। गवर्नर ने मुझसे कहा—"अगर वे (कैदी) कठोर अनुशासन के योग्य होगे तो हम उसमें भी चूकनेवाले नहीं है। विना अपनी सजा पूरी किये आप जेल के फाटक के बाहर नहीं निकल सकते।

".... .आप प्राणदंड के बारे में भी मुझसे जानना चाहेंगे। इंग्लैंड मे जब जूरी लोग अपराधी घोपित कर देते है तो जज को प्राणदड सुनाना पड़ता ही है. . गृहसचिव सम्राज्ञी से "दयालुता" की सिफ़ारिश कर सकता है। ऐसी दशा मे फाँसी के बजाय आजन्म कारावास यानी १५ वर्ष की सजा होती है। ऐसा भी होता है कि

१. जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट

जूरी लोग अपराधी घोषित करते हुए भी दया की सिफ़ारिश कर सकते हैं। पर इस सिफ़ारिश का कोई कानूनी मूल्य नही है, क्योंकि ब्रिटिश कानून में हत्या के लिए जो दंड निर्धारित है, उसमें परिवर्त्तन नही हो सकता..... पर, क्या प्राणदंड से, उसके भय से और लोगों द्वारा हत्याओं मे रोकथाम होती है ? किसी दिन आपको यह सवाल सोचना होगा......अन्ततोगत्वा फाँसी एक भयंकर दर्दनाक काम है। फाँसी देने का मतलब ही यह है कि समाज ने, हमने, आपने यह स्वीकार कर लिया कि हम उस मनुष्य के ज़ीवन का उपयोग करने में असफल रहे......

".....मुझे एक चीज साफ़ मालूम पड़ी। जेल से छूटने के बाद इग्लैंड के मुकाबले में संयुक्त राज्य अमेरिका मे मुक्त बन्दी के कही अधिक सहायक मिलेंगे। हमारे यहाँ तो उस बेचारे के साथ जेल-जीवन का कलंक सदैव बना रहेगा। अमेरिका मे यदि वह अपने जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ करना चाहे तो आसानी से कर सकता है। इससे अपराध में कमी होती है, क्योंकि प्रायः मुक्त बंदी अपने जीवन का और कोई उपयोग न पाकर निराशावश अपराधी जीवन दुहरा देता है।"

पुलिस विभाग के एक प्रसिद्ध व्यक्ति का कैदी तथा जेल के प्रति दृष्टिकोण हमने कुछ विस्तार से दिया है ताकि पाठकों को यह भी मालूम हो जाय कि बंदी के प्रति जिनके मन मे प्राय. सहानुभूति नही होती—यानी पुलिसमैन—वह भी आज बन्दी के सुधार तथा उसके प्रति मानवोचित व्यवहार की हिमायत कर रहा है।

क़ैदी भी मनुष्य है

अमेरिकन क़ैदी तथा कारागार के विषय मे "खुले ढंग के जेल" के विश्व-विख्यात अमेरिकन हिमायती केनियन जे० स्कडर ने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। वे स्वय बन्दी-गृह शासन विभाग से कर्मचारी के रूप मे, घनिष्ठ रूप से सम्बंधित है और इस विभाग की हर ऊँची-नीची बात से परिचित है। वे लिखते है—

"मनुष्य का उद्धार स्वाधीन वातावरण में ही हो सकता है। मनुष्य का पुनर्वास उसके हृदय के भीतर से प्रारम्भ होना चाहिए, जोर जबर्दस्ती से नही।"[१]

"हमको धीरे धीरे प्रयोग, परीक्षण तथा भूलचूक की परवाह न कर आगे बढना होगा, बन्दी-सुधार के कार्य मे हमको स्मरण रखना होगा कि कैदी भी आदमी है

१. Kenyon J. Scudder—"Prisoners are People"—Doubleday & Co., Inc. Garden City, N. Y. 1952—Page 50.

और इसके साथ ठिकाने का, शिष्टता का व्यवहार किया जायेगा तो वह उसका लाभ उठायेगा।"[१]

"साधारणत. जेलों मे बन्दी के साथ ऐसा व्यवहार होता है कि उसका व्यक्तित्व ही उससे छिन जाता है। उसके मन मे ऐसी प्रणाली के प्रति इतनी भर्त्सना उत्पन्न हो जाती है कि उसका दिल ही टूट जाता है।"[२]

"अमेरिका अपनी अपराध की समस्या को कुछ लोगों को जेल भेजकर हल नही कर सकता। सन् १९३९ की पुलिस रिपोर्ट से पता चलता है कि १,३०,००,००० की आबादी के ७८ नगरों मे प्रति १०० बडे अपराधों में, जिनका कि पुलिस को पता चला था, केवल २७ मामलों मे गिरफ्तारियाँ की जा सकी। इनमें से केवल १९ पर मुकदमा चलाया जा सका और केवल १४ को सजा मिली। लास ऐंजीलीज़ नगर मे पुलिस को यदि १०० अपराधो का पता चलता था तो उनमे से केवल १२ मे गिरफ्तारियाँ की जा सकती थी—यह सन् १९४६ का औसत है। सानफ्रांसिस्को में जहाँ सयुक्त राष्ट्र सघ का सम्मेलन-भवन है, प्रति १०० अपराध पीछे सन् १९४६ की रिपोर्ट के अनुसार, ११ में ही गिरफ्तारी हो सकती थी।"[३]

श्री स्कडर फिर लिखते हैं—

"हम छोटे और साधारण लोगों को पकड लेते है पर हजारों अपराधी पुलिस की गिरफ्त में नही आते। वे हमारे अमेरिकन समाज मे बड़े भोग-विलास के साथ सुरक्षित जीवन बिताते है। हम, आप और पुलिस जानती भी नहीं कि ये कौन है, इनके विषय मे किसी को कोई जानकारी नही होती। इतना होते हुए भी हमारे अमेरिकन जेल तथा सुधारगृह भरे पडे है। हम जितना अधिक जेल बनाते जा रहे हैं, उतना ही उनको भरते भी चले जा रहे है।"[४]

अपराध और अपराधी प्रवृत्ति के विषय मे स्कडर लिखते है कि—"अपराध या अपराधी मनोवृत्ति तब तक कम न होगी जब तक समाज स्वयं इस विषय मे ध्यान न देगा। केवल लोगों को जेलों मे बन्द कर देने से काम नही चलेगा। हमको ठोस अपराधी के पास जल्दी पहुँचना चाहिए, विपत्ति मे पड़ जाने के पहले उसका

१. वही, पृष्ठ ५२
२. वही, पृष्ठ ५७
३. वही, पृष्ठ २७२
४. वही, पृष्ठ २७४

उद्धार कर लेना चाहिए। उसमे नैतिक भावना, नैतिक विचार को उत्पन्न करना चाहिए।"[१]

स्कडर की इन पक्तियों से यह स्पष्ट है कि दण्ड का पात्र केवल बन्दी ही नही है, हम भी है। समाज भी अपराधी के प्रति, उसके अपराध के लिए जिम्मेदार है। यदि अपराधी मनोवृत्ति का उदय होते ही समाज चौकन्ना होता और उसे बचा लेने का प्रयत्न करता तो उसका पतन, उसका अपराधी जीवन बच जाता, रुक जाता।

वह युग चला गया जब हमारा ऐसा विश्वास था कि तीन प्रकार के मनुष्य होते है, (१) प्रतिभाशाली, (२) साधारण, (३) साधारण से नीचे की श्रेणी की बुद्धि-वाले। इस तीसरी श्रेणी के लोगो मे अपराधी रखे जाते थे। अब तो यह विदित हो गया है कि चाहे प्रतिभाशाली व्यक्ति हो, चाहे अपराधी ही प्रतिभाशाली हो, उसके व्यवहार मे कोई असाधारणता जो दिखाई पडती है वह साधारण जीवन के व्यवहार से भिन्न नही है, उसका स्वरूप भले ही भिन्न प्रतीत हो। मनुष्य का हर एक कार्य निश्चयत उसके शरीर, मन तथा समाज की रचना पर निर्भर करता है। अपराधी किसी विशेष वर्ग या समुदाय की उपज नही है। उसके व्यवहार मे औरों से विभिन्नता कतिपय कारणो से आ गयी है। उसके चरित्र तथा व्यवहार में जो भीतर छिपा हुआ अन्तर है, उसे भी ढूँढकर निकाला जा सकता हैं। अच्छे से अच्छा चरित्रवान् व्यक्ति भी व्यवहार मे उसी चरित्र के विरुद्ध काम करने के लिए विवश हो सकता है। अतएव दोष व्यक्ति का नही उसकी विवशता का है। श्री हॉलकाम्ब लिखते है[२]—

"यह भली प्रकार से विदित है कि बालिग हो जाने के बाद हमारे जीवन के बहुत से अनुभव उन्ही अनुभवो के आधार पर होते है जिन्हे हमने अपने बचपन मे प्राप्त किया है। वैज्ञानिक अनुसंधान ने यह साबित कर दिया है कि बड़ी उम्र मे हमारे अधिकाश आचरण की जड़ में बचपन मे हमारे जीवन की वे छोटी छोटी घटनाएँ है जिनको हम कोई महत्त्व नही देते। इस बात को ध्यान में रखने के बाद हमारी यह बात सही मालूम होगी कि पुलिस के लिए बच्चों से सम्पर्क रखना कितना जरूरी है। बच्चों को उचित बाते समझा देना बड़ा आसान है। कम उम्र मे उनके चरित्र

१. वही, पृष्ठ २८१

२. Richard L. Holcomb—The Police and the Public—Charles C. Thomas Springfield, Illinois–1954—Page 13.

को आसानी से सही ढंग से ढाला जा सकता है। यदि पुलिस अफसर बच्चों के सुधार मे रुचि ले तो बच्चो का बड़ा कल्याण हो।"

सामाजिक परिस्थितियाँ

उत्तर प्रदेश के मुख्य मत्री डा० सम्पूर्णानन्द ने लखनऊ मे हुए प्रथम अपराधी तथा मुक्तबन्दी सम्मेलन मे (१२-१४ नवं०,१९५७) अपने उद्घाटन भाषण मे कहा था[१]—

"अपराधशास्त्र उन विषयो मे से है जो सभ्य समाज के लिए बडा महत्त्व रखते है। उसके द्वारा मनुष्य का उन परिस्थितियो मे अध्ययन किया जाता है जिनमें वह साधारण व्यक्ति के समान नहीं किन्तु असाधारण व्यक्तित्व से काम करता है। ऐसे अध्ययन के परिणामो का समाज तथा साधारण व्यक्ति के जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। सब आदमी पैदायशी एक दूसरे के समान नही है। उनके शारीरिक तथा बौद्धिक अन्तरतम में विभिन्नता है। यो देखने में एक दूसरे के समान प्रतीत होता हुआ मनुष्य समान सासारिक तथा आध्यात्मिक परिस्थितियों में भिन्न रूप से आचरण करता है। यदि समाज का संगठन ऐसा हो कि उसमें मानव-स्वभाव को भली प्रकार से समझ लिया गया है और उसकी विभिन्नताओं के प्रति पूरी सहानुभूति बरती गयी है, तो "एक ही प्रकार का" सामाजिक ढाँचा बनाने के मसले पर जोर देने की जरूरत ही नही रह जायगी। दुर्भाग्यवश समाज की रचना दार्शनिक दृष्टिकोण से नही हुई है। .....यदि कोई व्यक्ति उसके आदेशो तथा निषेधों को हर तरह से नही अपना सकता तो उसका जीवन एक प्रकार से उच्छृङ्खल हो जाता है और यदि उसे कुछ करना है तो उसका कार्य अ-सामाजिक बन जाता है, समाज-विरोधी बन जाता है। इसके अलावा, प्रकृति ने तो हमारे स्वभाव में असमानता बरती ही है। फिर आदमी ने स्वयं सामाजिक तथा आर्थिक बंधन बना रखे है। बच्चे ऐसे समाज तथा परिस्थितियो में पैदा हुए तथा पलते है जिनमें बचपन से ही यह शिक्षा मिलती है कि यदि उनको अपनी अत्यन्त आवश्यक तथा प्रारम्भिक आवश्यकताओ की भी पूर्ति करनी है तो उनको समाज के विरुद्ध अनवरत संघर्ष करते रहना चाहिए......

१. Dr. Sampurnanand—Inaugural Address at First Convicts and Ex-Convicts Conference, Lucknow Nov., 12-14—1957—Information Deptt., U. P. Govt., Pages 1-5-6.

इस प्रकार हमने प्राय. ऐसे व्यक्ति को, जो अच्छा नागरिक बन सकता था, समाज का विद्रोही बना दिया है। तब हम उसे जेल में रख देते है और हम उसके साथ ऐसा व्यवहार करते है मानो हम केवल उसके कुकार्यो के प्रति प्रतिशोध नही चाहते बल्कि उन हजारो के कुकार्यों का भी बदला ले रहे है जो हमारी पकड़ में नही आ सकते है।"

अधिकतर अपराधी पकड़ में नही आते, यह भी सत्य है। हॉलकोम्ब अपनी पुस्तक मे लिखते हैं[१]—

"पक्षपात से बचना बडा कठिन है। हम सभी मनुष्य है और मनुष्य होने के नाते हमारे मन में, जन्म से ही, वर्षों से घोषित निश्चित धारणाएँ बन जाती है। पर पुलिस अफसर होने के नाते आपको इन पूर्व धारणाओं से ऊपर उठना होगा . . . धनी लोगो को गिरफ्त में लाना पुलिस के लिए कठिन होता है। वे लोग प्रभावशाली होते है। उनमे से कुछ लोग अपने प्रभाव के द्वारा पुलिस की कार्यवाही से बचने का उपाय करते हैं। वे औरों की तुलना में अधिक रियायत की आशा करते है। पर यह न भूलना चाहिए कि कानून की दृष्टि मे धनी तथा निर्धन दोनों ही बराबर है। उनके साथ बराबर का व्यवहार होना चाहिए। आप यह भी जानते है कि पैसेवाला आदमी बढिया से बढ़िया वकील नियुक्त कर सकता है।"

अपराध मे वृद्धि तथा अपराधी-संख्या में वृद्धि के बहुत से कारण हो सकते है। एक कारण यह भी है कि नियम तथा व्यवस्था में रहनेवाले लोग अपराध की रोकथाम में सहयोग नहीं देते। पुलिस के लिए यह कहा जाता है कि "सद्भावना कही से इनाम में नही मिलती। इसे प्राप्त किया जाता है, कमाया जाता है। पुलिस को यह सद्भावना जनता से प्राप्त करनी चाहिए......सार्वजनिक सहयोग सार्वजनिक भावना पर निर्भर करता है। जब लोग पुलिसमैन को पसंद नही करते तो उसके साथ सहयोग क्या करेंगे। बहुत से नगरों में पुलिस ने जनता का सहयोग तथा उसकी सद्भावना कमा ली है, प्राप्त कर ली है। ...... यों साधारणत. पुलिस से कोई प्रेम नही करता......पर वास्तविक बात यह है कि पुलिस अपराध के हर एक मामले का पता लगा सकती है, यदि कानून के दायरे में रहनेवाले लोग ही उससे वाकयात छिपाये नही, उससे सब कुछ बतला दिया करे।"[२]

१. R. L. Holcomb—The Police and the Public—Page 18.

२. वही, पृष्ठ ५ तथा ७

अपराध तथा अपराधी दोनों के प्रति जनता की उदासीनता प्रकट है। पर, उसके साथ ही अपराध मे वृद्धि के बहुत से कारण है। स्विट्जरलैण्ड की राजधानी वर्न मे १० से १५ अक्टूबर १९४९ को अतर्राष्ट्रीय अपराधी पुलिस कमीशन का १८वाँ महाधिवेशन हुआ था। इस अवसर पर स्विस पुलिस विभाग के प्रधान स्टीगर ने अपने भाषण मे कहा था—[१]

"क्या गत महायुद्ध के कारण अपराधों मे चारों ओर वृद्धि हुई है? क्या इस वृद्धि मे अधिकता होती ही जायगी? क्या युद्ध के पूर्व जैसी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति हो जाने पर अपराध मे कमी होगी? ये ऐसे प्रश्न है जिन पर प्रत्येक सरकार बराबर विचार कर रही है। अपराधी वर्ग आज की वैज्ञानिक प्रगति मे लाभ उठाना अच्छी तरह जानता है।"

पुलिस सम्बधी वैज्ञानिक तथा यत्रीय उपायो से, जिन्हें हम पुलिस-कला कहते है तथा अपराधी के मनोविज्ञान मे परिचित होने के कारण हमे वे सब उपाय मालूम है, जिनसे उलझी से उलझी अपराध की समस्या हमारे द्वारा हल हो सकती है।[२]"

पुलिस के पास नये से नये औजार कितनी भी मात्रा में आ जायँ, उसके पास सब कुछ साधन तथा जनसहयोग का भी प्रबंध हो जाय, पर अपराध की प्रगति जिन सामाजिक कारणो से हो रही है, वह रुकती नजर नहीं आती। इसमें अपराधी का दोष भी है और समाज का भी। सार्वजनिक मत अथवा विचार के अनुसार ही अपराध पैदा होते है। सामाजिक विचारधारा में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। उसी प्रकार अपराध भी बढते-घटते रहते है। आज से ढाई सौ वर्ष पूर्व इंग्लैंड मे सनातनी ईसाइयों के विरुद्ध बड़े कठोर नियम थे। इन रोमन कैथोलिक ईसाइयों के विरुद्ध कानून की कठोरता बहुत धीरे धीरे कम हुई। सन् १७७८ तथा १७९१ में उन कानूनों में थोड़ा परिवर्त्तन हुआ। पर सन् १८२९ तक[३] सभी धर्मवालों को राजनीतिक तथा नागरिक समानता नहीं मिली थी। ब्रिटिश जनता ने सिद्धान्तत यह बहुत पहले स्वीकार कर लिया था कि धार्मिक विश्वास के कारण राजनीतिक

१. International Criminal Police Commissioner's Official Organ "I. C. P. Review"--Number 33, Dec., 1949—Page 6.

२. वही, पृष्ठ १५

३. Catholic Relief Act of 1829--(इसके पहले 18 Geo III. C 60—1778 and 31, Geo III C--32—1791)

तथा सामाजिक अधिकारों में कोई अन्तर नही होना चाहिए। पर १६६८ के कानून के बाद से[१] सन् १८८८ तक पार्लमिन्ट कानून बनाती रही, तब जाकर धार्मिक विचार-स्वातंत्र्य इंग्लैड को प्राप्त हुआ। "आज का मजदूर कानून १९वी सदी के ४० कानूनों का परिणाम है।" इंग्लैड मे पुराने जमाने से अपराधियों के लिए एक भयंकर दंड-प्रथा थी—एक बड़े चौखटे में अपराधी का गला जकड देते थे और दोनों हाथों की कलाइयाँ कसकर बाँध देते थे।[२] फिर उसे सार्वजनिक स्थान पर खड़ा कर देते थे ताकि राहचलतू लोग उसे गाली दें, उस पर थूँकें, उसका घोर से घोर अपमान करे। इतना निन्दनीय तथा बर्बर दड भी अपराधियों के प्रति अन्य क्रूर दंडो के समान युगो तक जारी था। जनता का मत इनके विपरीत बहुत धीरे-धीरे हुआ। सन् १८१६ में कुछ अपराधों के लिए यह दंड कायम रह गया।[३] सन् १८३७ मे यह कानून एकदम समाप्त हुआ। "यदि १६० अपराधो के स्थान पर केवल दो अपराधो में प्राणदंड की सजा बची रह गयी है, तो कानून मे ऐसी मानवोचित उदारता की ओर आने में १९ वीं सदी के प्रारम्भ से ही कानून पर कानून बनते चले गये और अधिकाश संशोधन सन् १८२७ तथा १८६१ के बीच मे हुए।[४]

क़ानून की पहुँच

स्पष्ट है कि "अपराध" बने रहे, उनकी व्याख्या बदल गयी। सनातनी ईसाई बने रहे, उनका सनातनी होना अपराध नहीं रहा। बाल अपराधी बाज़ार मे चोरी करते रहे पर ऐसी चोरी प्राणदंड के योग्य अपराध न रही। ऐसे समाज की रचना की कल्पना जिसे "समाजवादी" कह सकें, अपराधी भावना का प्रतीक थी किन्तु जैसा कि जनवरी १८४८ मे तोकेविले ने कहा था—[५] "एक ऐसा दिन भी आयेगा कि आज जिस समाजवाद का लोग मजाक उड़ा रहे हैं वही एक वास्तविकता होकर रहेगा।" बात असल में जनता की विचारधारा की है। जनता ही कानून बनाती है,

१. Toleration Act, 1688.

२. Pillory.

३. 56 Geo III C 138.

४. A. V. Dicey—"Law and Public Opinion in England"—Macmillan & Co., London, 1952—Page 29-30

५. वही, पृष्ठ २५५

उसकी पीठ पर रहती है और जब वह अपना विचार बदल देती है, उसका क़ानून भी बदल जाता है। ह्यूम ने लिखा था—[१]

"शक्ति सदैव शासित के हाथों में है अतएव शासक को अपने समर्थन मे सार्वजनिक मत-समर्थन प्राप्त करना होता है। इसलिए हर एक सरकार जनता के मत पर निर्भर रहती है। यह बात एकदम निरंकुश तथा सैनिक शासन के लिए भी लागू होती है।"

यह सत्य है कि यदि जनता पक्ष मे न हो तो क़ानून का पालन कराना सम्भव नही है। निरंकुश तथा एकतन्त्र शासन मे भी कानून की अवज्ञा कम नही है। पर जब हम यह कहते हैं कि कानून बनानेवाले यानी व्यवस्थापक सभी वास्तव में जनता के मत के द्योतक हैं, प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, यह बात कुछ स्पष्ट, कुछ एकदम ठीक नही है। जनमत का विकास भी सभ्यता के विकास के समान शनै. शनैः तथा मन्द गति से होता है; बहुत से ऐसे देश हैं जहाँ जनमत जाग्रत भी नहीं हो पाया है या उसे सुलाये रखने का हर प्रकार का प्रयत्न होता रहता है। ऐसे पिछड़े समाज में जो काम होते हैं वे विचार-जन्य नहीं होते, सोच-समझकर नहीं होते बल्कि आदतन होते हैं। उनका जीवन परम्परा तथा प्राचीन विधियों के द्वारा सचालित होता है। प्राचीन परिपाटी में ऐसी आदत बन जाती है कि किसी प्रकार का परिवर्तन बुरा लगता है। जब सभ्यता का विकास होने लगता है, प्रजातंत्र की भावना मन में बैठ जाती है, जनमत सचेत होने लगता है, तभी वह व्यवस्थापकों, विधायकों को प्रभावित करने लगता है। इग्लैंड में १९वीं सदी से वास्तविक जनमत ने विधायकों को प्रभावित करना प्रारम्भ किया था। फ्रान्स में १७८९ की राज्यक्रान्ति के बाद जनमत की मर्यादा बढी। आज के प्रजातंत्रीय युग में जनमत ही असली शासक है। १९वीं सदी से ही जनमत ने कानून पर अपना प्रतिबंध लगाना शुरू कर दिया था। जब कलेण्डर में सुधार का सवाल उठा, अज्ञानी जनता में यह विचार भर दिया गया कि उनके साल के ग्यारह दिन छिने जा रहे हैं। बड़ी कठिनाई से लोगों को समझाया गया। सन् १७७८ में जब रोमन कैथोलिक लोगों पर से प्रतिबंध उठाने की चर्चा चली, १७८० में इंग्लैड में घोर साम्प्रदायिक दंगा हो गया था। अमेरिकन राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने दासता की प्रथा दूर करने का संकल्प लिया था। उत्तरी भाग दास-प्रथा

१. Hume, Essays, Vol. I, Essay IV—Green & Gross—Page, 110.

के विरुद्ध था, दक्षिणी भाग दास-प्रथा रखना चाहता था। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसी प्रश्न पर गृह-युद्ध छिड़ गया था।

"दास-प्रथा में विश्वास महज़ भ्रम था। पर चाहे निजी स्वार्थ के परिणाम-स्वरूप ही भ्रम क्यों न हो, बौद्धिक भूल तो है ही और ऐसी भूल कठोर स्वार्थी भावना से भिन्न वस्तु है। हर दशा में ऐसी भावना भी "विचार" तथा "मत" ही कही जायगी। इसीलिए दक्षिणी अमेरिकनों के लिए भी, जो दास-प्रथा को निर्मूल करने के विरुद्ध लड़ रहे थे (उसी प्रकार अन्य मामलों मे भी) यही बात है कि हर एक कानून की तह मे जनता का मत ही प्रधान है।"[१]

फ़ासिस्त विचार

इसी लिए आज का अपराध-शास्त्री जनता के सामने अपराध तथा अपराधी की समस्या का वास्तविक रूप उपस्थित करना चाहता है, ताकि उसका समर्थन प्राप्त होने से अपराधी कहे जानेवाले मानव को मानव बनाने में बड़ी आसानी हो। चाहे निरंकुश शासन ही क्यों न हो, अपराधी के प्रति जनमत को सचेत करने का सभी प्रयत्न करते है। हमारे एक मित्र ने फ़ासिस्त शासन काल मे, जब इटली मे मुसोलिनी का शासन था, अपराध करनेवालो के प्रति उस देश की भावना की जानकारी के लिए अंग्रेज़ी में अनुवाद करके एक कटिंग भेजी है। लेख का शीर्षक है—"फ़ासिस्त शासन मे दंडसुधार।" उसमे लिखा है—[२]

"मैं अब समाज की रक्षा के उस पहलू पर विचार करना चाहता हूँ जिसमें कतिपय निश्चित अपराधी वर्ग से समाज को बचाना है। वे है—बाल अपराधी, ऐसे लोग जिनको गहरा तथा ख़तरनाक मानसिक रोग है, तथा जो किसी प्रकार का काम नही करना चाहते, चिरापराधी (आदतन अपराधी)। इनमे से बाल अपराधियों के सम्बंध मे मेरी राय है कि उनको बड़ी उम्र के अपराधियो से अलग रखा जाय। इनमें यह भी देखना होगा कि कौन बालक प्रथम अपराधी है और कौन एक बार से अधिक अपराध करने का दोषी है। यह कहना बड़ा कठिन है कि कौन पहला अपराधी है।

१. Dicey—Law and Public Opinion in England--Page 20

२. La Reforms Penale Fasciste-Extrait de la "Revue Penitentiare de Pologn—Vol. IV—NR 3/1 July, October, 1929—Page 12-15.

"जो लोग भयानक मानसिक रोग से पीड़ित है, जो पागल है तथा जिन्हें उनके पागलपन के कारण सजा नही मिली है, उनको पागलखाने में, ऐसे विशेष स्थान में जहाँ मानसिक रोगी रखे जाते हों, रखना चाहिए।

"एक ऐसा भी वर्ग है जो न तो एकदम पागल है और न एकदम होश में है। कुछ लोगों का कहना है कि ऐसी बीच की कोई अवस्था नहीं हो सकती—ऐसी बात नही है। विज्ञान भी ऐसी बीच की अवस्था मानता है। ऐसा आदमी भी अपने कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता। हिस्टीरिया, मृगी, अपस्मार आदि के मरीज़ इसी श्रेणी मे आते है। मेरे विचार से ऐसे रोगी अपराधियो को विशेष संस्थाओं में, अस्पताल या चिकित्सा-गृहो में रख देना चाहिए . . . . .

"जो लोग आदतन शराबी हैं तथा नशे की दशा में अपराध करते हैं उनके विषय मे मेरी एक धारणा है। 'नशे की हालत' सज़ा से छुटकारा पाने के लिए बहाना मानने के मैं विरुद्ध हूँ . . . जो लोग स्वभावत कोई काम नही कर सकते, जो बचपन से ही इतने मूढ़ हैं कि उनसे कुछ नही हो सकता, ऐसे लोगों के लिए भी एक विशेष संस्था या आश्रम खोलना चाहिए. . . . .पर इन सब सुधारकार्यों में एक बडी कठिनाई है—इनमें खर्च अधिक पड़ता है—नयी-नयी संस्था या आश्रम बनाने में बहुत अधिक धन की आवश्यकता होती है. . . .सान स्टेफानो में हम ऐसी संस्था की स्थापना कर रहे हैं जिसमें ऐसे विराराधी रखे जायेंगे जो मन की प्रेरणा से बार-बार अपराध करते रहते हैं। ऐसे खतरनाक कैदी भी हैं जिनकी विशेष देखरेख करनी पड़ती है। ऐसे भी अपराधी हैं जो किसी भी दशा में सुधर नहीं सकते. . . समाज में जो खतरनाक अपराधी है, जिनका कभी सुधार नहीं हो सकता, उनको समाज से सदा के लिए अलग कर देना चाहिए, वे फिर कभी भी समाज के बीच मे न आने पायें और अगर आयें भी तो काफी लम्बी अवधि के बाद। विराराधी (आदतन अपराधी) के साथ क्या किया जाय, यह एक गम्भीर समस्या ज़रूर है।"

फ़ासिस्त विचारधारा भी अपराध-निरोधक तथा अपराधी-सुधार के कार्य में काफी प्रगतिशील थी, यह तो ऊपर के वाक्यों से स्पष्ट है। उनका तथा हमारा मत-भेद केवल विराराधी के सम्बध मे है। उनके विचार से उसे सदा के लिए समाज से पृथक् कर देना चाहिए।

अध्याय ३३

प्राणदण्ड

दुष्ट अपराधी को, विराराधी को तथा दूसरे का प्राण लेनेवाले को समाज से सदा के लिए पृथक् करने का एक उपाय प्राणदंड है। इस सम्बंध में इस पुस्तक में पूरी तरह से प्रकाश डालने का स्थान नही है। प्राणदंड पर, उसके इतिहास तथा वर्तमान रूप पर मैं एक स्वतंत्र पुस्तक लिख चुका हूँ।[1] इस पुस्तक में भी स्थान-स्थान पर प्राणदंड का जिक्र किया गया है। यह प्रश्न सदा से हर एक राज्य के सामने है कि दूसरे का प्राण लेनेवाला, बलात्कार करनेवाला, राजद्रोह करनेवाला क्या इस संसार में जीवित रहने का अधिकारी है?

यूनाइटेड किंगडम

इंग्लैंड, वेल्स तथा स्काटलैंड में—जिसे यूनाइटेड किंगडम कहते है, सन् १९०० से लेकर १९४९ तक १२१० व्यक्तियों को फासी लगायी गयी। इनमें से ८३६ व्यक्ति वासना-जन्य हत्या के अपराधी थे। सन् १९४० से १९४९ के बीच में १६६० हत्याएँ हुई जिनके लिए केवल १२७ व्यक्तियों को प्राणदंड मिला। यूनाइटेड किगडम मे प्रति वर्ष औसतन १७० हत्याएँ होती हैं। प्रति वर्ष लगभग २३ व्यक्तियों को फाँसी होती है। घटते-घटते आजकल १३ प्रतिवर्ष का ही औसत रह गया है। हर फाँसी में कुल मिलाकर सरकार का लगभग १५० रुपया खर्च होता है। प्राणदंड समाप्त करने के हिमायती लोगों की एक जबर्दस्त दलील यह भी है कि यदि इन १३ व्यक्तियों की जान न ली गयी तो हरसाल क्या विपत्ति आ जायगी? जेल में कैदी काम करता है तब सरकार खिलाती है। अतएव यदि उसे आजन्म कारावास यानी वास्तव मे १४ वर्ष की सजा दे दी गयी तो समाज की रक्षा भी होगी, एक मूल्यवान जीवन भी

१. परिपूर्णानन्द वर्म्मा, "प्राणदण्ड"—मयूर प्रकाशन, मानिक चौक, झांसी, सन् १९५३

बच जायगा। फाँसी का तख्ता मनुष्यता का सबसे नग्न तथा निन्दनीय अभिशाप है। ब्रिटिश जनमत कुछ इसी प्रकार के विचार का होता जा रहा है। पाँच वर्ष के लिए प्राणदंड की प्रथा को स्थगित करने का निर्णय सन् १९५६ मे हो चुका था, पर हाउस आव लार्डस् तथा मैकमिलन प्रधान मत्री की सरकार ने उसे उलट-पुलट कर दिया था। किन्तु ब्रिटिश जनता इस सम्बंध में प्राणदंड की प्रथा के पक्ष या विपक्ष में है, इसका एकदम सही उत्तर देना कठिन है। सन् १९३८ में जनमत-संग्रह किया गया तो ५० प्रतिशत जनता ने प्रथा समाप्त करने के पक्ष में मत दिया था। शेष में सें बहुतों ने "मै नही कह सकता" उत्तर दिया था। सन् १९४८ में पुन. मत संग्रह किया गया (गैलप-मत-सग्रह प्रणाली द्वारा), तो ६८ प्रतिशत ने प्राणदंड के पक्ष में मत दिया। पर १९५५ मे, जुलाई के महीने मे पुन: मतगणना करने पर ६८ प्रतिशत प्राणदंड के विरुद्ध निकले। यह गणना लंदन के "डेली मिरर" नामक प्रसिद्ध दैनिक पत्र ने करायी थी।

प्राणदड के स्थान पर आजन्म कारावास की बात प्रायः कही जाने लगी है। इस संबंध में दो तीन बाते ध्यान मे रखने की है। आजन्म क़ैद का अर्थ होता है बीस वर्ष। इसमें रविवार की छुट्टी आदि सब काट लेने पर, यदि क़ैदी का व्यवहार दुरुस्त रहा, तो १४ वर्ष में ही छोड दिया जाता है। इंग्लैंड में सन् १९२८ से १९४८ के बीच मे १७४ व्यक्तियों को आजन्म कारावास मिला था। उनमे से ११२ छूटकर बाहर आ गये। उनमें से सिर्फ़ एक ही व्यक्ति बाल्टर ग्राहम रोलैंड को दुबारा हत्या के अपराध मे पकड़ा गया। इस अभागे का मामला संसार मे प्राणदंड की प्रथा के विरुद्ध सबसे बड़ा तथा सबसे ताजा प्रमाण है। जब रोलैंड को फाँसी हो गयी तथा बेचारा सदा के लिए विदा हो गया, यह साबित हो गया कि वह निर्दोष था। प्राणदंड मे सबसे बडा अवगुण यही है। कथित अपराधी निर्दोष होने पर भी इस संसार से विदा हो जाता है। उस भूल का कोई प्रायश्चित्त नही है। रोलैंड के मर जाने के बाद जिस व्यक्ति ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था, उसे पागलखाने भेज दिया गया है। वहाँ आजन्म कारावास से छूटे एक भी "अपराधी" ने समाज का कोई अकल्याण नही किया है।

सन् १९३४-४८ के बीच मे, इग्लैंड तथा वेल्स में, हत्या के अपराध में आजन्म कारागार भोगनेवाले १२९ बन्दी सजा पूरी करके जेल से छूटे। इनमें से ११२ छूटने के बाद ही स्वस्थ सामाजिक जीवन बिताने लगे। २७ औरतें छूटी थी। उनमे से १९ स्वस्थ सामाजिक जीवन बिताने लगी। चार स्त्रियाँ काफी सुखी जीवन व्यतीत करने लगी। केवल चार का पता नही है।

सर जॉन मैकडोनेल, सुप्रीम कोर्ट के "मास्टर" ने १८८६ से १९०५ के हत्या सम्बधी ऑकड़े एकत्रित किये थे। उनकी जॉच के अनुसार ९० प्रतिशत हत्याएँ पुरुषों ने की थी। लगभग दो-तिहाई हत्याएँ अपनी पत्नियों, प्रेयसियों या रखेलियों की की गयी थी। ३० प्रतिशत हत्याएँ नशे की दशा मे, विवाद मे या अत्यधिक क्रोध मे की गयी थी। ४० प्रतिशत हत्याएँ द्वेष, ईर्ष्या या कामवासना-वश की गयी थी। केवल दस प्रतिशत हत्याएँ आर्थिक कारणो से हुई थी। आज भी उस देश में हत्या के लिए सबसे "व्यस्त" दिन शनिवार है और शनिवार को भी सबसे ज्यादा हत्याएँ रात को ८ बजे से २ बजे तक के बीच मे होती है। कामवासना का यही समय होता है। अतएव ज्यादातर हत्याएँ वासना-वश ही होती है।

वासना के अपराधो की अधिकता से ही प्रकट है कि प्राणदंड के भय से अपराध कम नही हो सकते। वासना अंधी होती है। भय से मनुष्य ने अपनी वासना को दबाना नही सीखा है। ब्रिस्टल के जेल के पादरी ने सन् १८६६ में शाही कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि वहॉ के जेलों मे प्राणदंड की सजा पाये हुए १६७ अपराधियो मे १६४ ऐसे थे जो दूसरों को फॉसी पर लटकते हुए देख चुके थे। ब्रिटिश जेलों में पहले खुले आम फॉसी दी जाती थी ताकि दूसरे नसीहत ले सकें। प्राणदंडवाले अपराधो से जनता मे क्षोभ के स्थान पर उत्तेजना तथा वासना की भावना पैदा होती है। वह बडे चाव से ऐसी हत्याओ के समाचार पढती हैं। सन् १९२८ मे अंग्रेजी साहित्य के धुरंधर लेखक टॉमस हार्डी की मृत्यु हुई थी। उन्ही दिनों अमेरिका मे श्रीमती स्नाइडर पर अपने पति की हत्या का मुक़दमा चल रहा था। वे सिगसिग (न्यूयार्क के निकट) जेल मे क़ैद थी। टॉमस हार्डी की मृत्यु का समाचार एक प्रसिद्ध अमेरिकन दैनिक में ५ कालम इच में छपा—उनकी जीवनी सहित। पर उसी अखबार ने श्रीमती स्नाइडर तथा श्री ग्रे के प्रेमकाड पर ११६ कालम इंच मे संवाद प्रकाशित किया। एक दूसरे दैनिक ने हार्डी पर २ कालम इच तथा श्रीमती स्नाइडर पर २८९ कालम इंच छापे।[१]

प्राणदंड से हत्या के अपराध कम होते है, यह भूल है। सन् १८२८ से १८८९ तक सिगसिंग जेल में हत्या के अपराध में २००० व्यक्ति आये थे जिनको अन्य जेलों मे ले जाकर फॉसी दी गयी।[२] पर, हत्यारो की संख्या बढती ही गयी। गले में रस्सा

१. Warden Lewis E. Lawes—"Meet the Murderer"—Harper & Brother, New York—1940—Page 45.

२. वही

लगाकर भारत या इग्लैंड में जिस प्रकार फाँसी दी जाती है, उसमें यदि जल्लाद भूल न करे तो सबसे जल्दी मौत होती है। अमेरिका मे प्राणदंड के साथ ही "दया" की भावना से प्रेरित होकर "बिजली की कुर्सी" ईजाद हुई। सन् १८८९ में यह कुर्सी पहली बार सिगसिग जेल मे आयी। सन् १८९० में आवर्न जेल में पहली बार इस कुर्सी से प्राण लिया गया। पहले प्रयोग मे प्राण लेने में ३० मिनट लगे। सन् १९२० तक कुर्सी मे सुधार होते-होते ८ से १२ मिनट लगते थे। आज भी कमसे कम ३ मिनट लगते है। क्या इस प्रकार प्राण लेना मनुष्यता है ?

फिर, प्राणदड में निर्दोष व्यक्ति के भी प्राण चले जाते है, जैसा कि हम ३९२ पृष्ठ पर कह चुके है। उसे फिर वापस नही बुलाया जा सकता। लिविस ने अपनी पुस्तक मे ऐसे अनेक निर्दोष व्यक्तियो का उदाहरण दिया है जो जान से हाथ धोने के बाद बेकसूर पाये गये। वे लिखते है—

प्राणदंड से हानि

"यदि आदमी जीवित है, वह क़ैद में चाहे एक, पाँच, दस, बीस, पचास वष तक ही क्यों न पड़ा रहे, उसका दृष्टिकोण एकदम निराशापूर्ण नही रहता। यदि कभी आगे चलकर उसका निर्दोष होना सिद्ध हो गया तो चाहे क्षतिपूर्ति कितनी भी कम हो, कुछ तो हो ही सकती है। वह, कम से कम, बंधन-मुक्त हो सकता है, उसे कुछ ठोस प्राप्ति भी हानि के एवज में हो सकती है, और कम से कम वह एक वरदान के लिए सदा कृतज्ञ रहेगा—विचारा जीवित तो है।"[1]

दंड के सम्बध में लिविस की सबसे मार्के की बात हमे कभी न भूलनी चाहिए; जैसे उनको भी कभी नहीं भूलती है। वे लिखते है—

"मुझे अपने जेल के पादरी की एक बात कभी नही भूलेगी—अपने हाथ के बेंत को अपने अधिकार की निशानी समझो, दंड का प्रतीक नहीं।"[2]

राज्य को दंड देने का अधिकार है। समाज को दड देने का अधिकार है, पर उनका दंड केवल अधिकार की निशानी रहे—प्रतीक न बन जाय। "खून के लिए खून तथा जान के लिए जान"—यह हजारों वर्ष पुराना इजरायली क़ानून आज लागू

१. वही, पृष्ठ ३३९
२. वही, पृष्ठ ५

होने योग्य नही है। रोमन सम्राट् ईसाई आगस्टीन ने अपने मित्र मार्सेलेनस से कहा था कि जो लोग ईसाइयों की हत्या करने के अपराध में प्राणदंड पा चुके हैं उनको इसलिए फाँसी पर न लटकाया जाय कि "हम ईश्वर के सेवकों को हत्या करने का प्रतिशोध वैसी ही पीड़ा पहुँचाकर नही लेना चाहिए।" सन् १८०० में ब्रिटिश सम्राट् जार्ज तृतीय का प्राण लेने की चेष्टा जेम्स हैटफ़ील्ड ने की। उसे यह सनक सवार हो गयी थी कि "यदि जार्ज तृतीय मार डाले जायँ तो मानव जाति का उद्धार हो जायगा।' उसे "भ्रमित" व्यक्ति कहकर छोड़ दिया गया। आज के अधिकांश हत्यारे इसी प्रकार किसी न किसी भ्रम के, वासना के शिकार है।

सन् १९०० तक इंग्लैंड में २२० से ३०० तक ऐसे अपराध थे जिन पर प्राणदंड होता था। सन् १८०७ में सैमुयेल रोमिली ने इस पशुता के विरुद्ध आवाज उठायी। उस समय उसे लोग खब्ती समझते थे। ब्रिटेन के प्रधान न्यायाधीश लार्ड एलेनबोरो उसके कट्टर विरोधी थे। अपने कार्य में असफल रोमिली ने सन् १८३२ मे आत्म-हत्या कर ली। उसकी मृत्यु के एक महीने बाद लार्ड एलेनबोरो भी मर गये। पर, १८३४ मे मरकर भी रोमिली विजयी हुए। जिनकी रक्षा के लिए प्राणदंड का नियम था, उन्हीं ने सरकार से अनुरोध किया कि "दंड की कठोरता से कोई लाभ नही हो रहा है।" उन दिनों बैंक को धोखा देने पर प्राणदंड होता था। डा० डॉड पर ऐसा ही धोखा देने का मुकदमा चला। एक जूरी (पंचों में एक) बड़े उग्र शब्दों में डॉड की भर्त्सना कर रहा था। पर वही स्वयं धोखा देने के अपराध में पकड़ा गया और उसे फाँसी हुई।

फाँसी का पर्व

इंग्लैड मे किसी का फाँसी पर लटकना एक पूरा त्यौहार बन जाता था। मेला लग जाता था। लोग खूब नाचते, गाते, लड़ते, झगड़ते थे। जिस जेल मे फाँसी होती थी वहाॅ के सुपरिन्टेन्डेन्ट को अपने खर्च से उन पचासो प्रमुख व्यक्तियों को दावत देनी पड़ती थी जो फाँसी का तमाशा देखने आते थे। सन् १८०७ में इंग्लैड में एक फांसी के अवसर पर आनन्दोन्मत्त भीड़ मे गहरा दंगा हो गया और फांसी के बाद लगभग १०० लाशे सड़क पर मिली। लन्दन के "टाइम्स" पत्र ने १८६४ में श्रूसबेरी के एक जेल में फाँसी होने का संवाद छापा था—"लोग इस अवसर पर बढ़िया से बढिया कपड़ा पहनकर आये थे। दूर-दूर के लोग तमाशा देखने आये थे। हर फाँसी के बाद सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल को दावत देने में बड़ा पैसा खर्च करना पड़ता था। इसी लिए न्यूगेट के गवर्नर अपने जेब के दु ख से फाॅसी से भी घृणा करते थे।" फाँसी

देने से क्या लाभ है जब कि फाँसी देनेवाला जल्लाद भी, जान प्राइस एक अपराध में अभियुक्त को फाँसी देने के बाद स्वयं उसी अपराध में पकड़ा गया और अपने "प्रिय" तख्ते पर झूल गया।

इसी लिए लोग इस दंड के विरुद्ध होते जा रहे है। चार्ल्स डिकेस नामक प्रसिद्ध उपन्यासकार ने लिखा था—"काम की ओर मत देखो। नीयत की ओर देखो।" प्रसिद्ध कवि यीट्स ने भी इसी कथन को दुहराया है। पैली ने भी यही कहा है कि अपराध की गुरुता महत्त्व नही रखती। इसलिए राज्य द्वारा हत्या करने से क्या लाभ होता है। जिन देशों ने प्राणदंड समाप्त कर दिया है, उनका अनुभव है कि इससे हत्या आदि के अपराध कदापि नहीं बढ़े है। निश्चयतः घटे हैं। जब राज्य स्वयं हत्या करना बन्द कर देगा, उसका नैतिक प्रभाव तो पड़ेगा ही। जिन देशों ने प्राणदंड समाप्त कर दिया है, उनकी सूची तथा दड समाप्त करने का वर्ष नीचे दिया जा रहा है—

देश	प्राणदंड-समाप्ति का वर्ष	विशेष बात
यूरोप		
१. आस्ट्रिया	१९१९—फिर १९५० में	हिटलर ने अपने शासन में पुनः चालू कर दिया था।
२. डेनमार्क	१८९२-१९३३ से एकदम समाप्त	
३. वेल्जियम	१८६३	
४. फ़िनलैंड	१९२६	
५. आइसलैंड	१९४४	
६. इटली	१८९०-१९४४	मुसोलिनी ने पुन चालू किया था।
७. नीदरलैंड्स	१८७०	
८. नार्वे	१९०५	
९. पुर्तगाल	१८६७	
१०. स्वीडन	१९२१	
११. स्विट्ज़रलैंड	१८७४—फिर १९४२	
१२. तुर्किस्तान	१९५०	
१३. पश्चिमी जर्मनी	१९४९	

देश	प्राणदंड-समाप्ति का वर्ष	विशेष बात
दक्षिणी अमेरिका		
१४ अर्जेंटाइना	१९२२	
१५. कोलम्बिया	१९१०	
१६. कोस्टारिका	१८८०	
१७. डोमिनिका	१९२४	
१८. इक्वाडार	१८९५	
१९. मेक्सिको	१९२९	
२०. निकारागुए	१८९३	
२१. पनामा	१९०३	
२२. पेरू	१८९८	
२३. न्यूगिनी	१८०७	
२४. वेनेजुएला	१८७३	
उत्तरी अमेरिका (संयुक्त राज्य)		
२५. मिचिगन प्रदेश	१८४७	
२६. रोड द्वीपसमूह	१८५२	
२७. विसकौंसिन	१९५३	
२८. मिनिसोता	१९११	
२९. नार्थ डैजोता	१९१५	
३०. क्वीसलैंड, आस्ट्रेलिया	१९१३	

इनके अतिरिक्त नेपाल में भी सन् १९३१ से प्राणदंड समाप्त कर दिया गया है।

भारतवर्ष में प्राणदंड

यह सूची पूरी नहीं है। किन्तु इससे कुछ जानकारी तो हो ही जाती है। सन् १९५६ में, जून के अन्तिम सप्ताह में ब्रिटिश पार्लमिंट की लोकसभा में मजदूर दल के सदस्य सिडनी सिलवरमान का प्राणदंड समाप्त करनेवाला बिल १९ के बहुमत से पास हुआ था। १५८ सदस्य पक्ष में तथा १३३ विपक्ष में थे। उस समय भी

प्रथा के पक्ष में वही दलीलें दी गयी थी, जिनका हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं। हमारे देश में भी इसे समाप्त करने का सवाल उठा हुआ है। पर हमारी विचारधारा भी इस प्रथा के हिमायतियों से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। ब्रिटिश पार्लमिन्ट के निर्णय पर टीका करते हुए इलाहाबाद के दैनिक "लीडर" ने ३ जुलाई १९५६ के अपने अंक मे लिखा था —

"डा० सप्रू (सर तेज बहादुर सप्रू) प्राणदंड समाप्त करने के विरुद्ध थे। इस प्रथा के पक्ष या विपक्ष मे कुछ कहते समय देश मे अपराध की स्थिति का भी ध्यान रखना होगा। हमारे देश मे काफी हिंसात्मक कार्य हो रहे है जिनका परिणाम हत्याएँ भी है, पर पहले से सोच विचार कर की गयी हत्याओ की संख्या अनुपातत: काफी कम है. . . .हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति में इस प्रथा को समाप्त करना उचित होगा तथा नियम एवं व्यवस्था मे रहनेवाले वर्ग के हित में होगा, यह बात सोचने की है।"

हमारी राज्यसभा मे प्राणदंड समाप्त करने के पक्ष मे ग़ैर-सरकारी विधेयक पेश हुआ था। वह अस्वीकार हो गया। वर्तमान प्रथा के पक्ष में भाषण करते हुए केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्री पं० गोविन्द वल्लभ जी पंत ने २५ अप्रैल, १९५८ को राज्य सभा में कहा था —

"मेरे विचार से हम सभी चाहते है कि देश में ऐसी परिस्थिति हो कि न तो कोई मारा जाय, न किसी की हत्या हो और न कोई फाँसी पर लटकाया जाय. . . . किन्तु, हमको इस प्रश्न पर व्यावहारिक रूप से विचार करना चाहिए. . . हत्याएँ होती हैं, कुछ तो बहुत पाशविक ढंग से होती हैं। यदि हम प्राणदंड बन्द कर दें तो क्या हत्याएँ बढ़ जायँगी या उनकी संख्या कम हो जायगी. . . .मैं समझता हूँ कि प्राणदंड समाप्त कर देने से आपका उद्देश्य पूरा न होगा।"

पं० पन्तजी ने कुछ रोचक आँकड़े पेश किये थे। उन्होंने बतलाया था कि जहाँ कही भी यह प्रथा समाप्त की गयी है, उन देशों में दस लाख आबादी पीछे केवल चार हत्या का प्रति वर्ष औसत था, जब कि भारतवर्ष में इससे ७०० प्रतिशत अधिक यानी प्रति दस लाख व्यक्ति पीछे २६ हत्याएँ होती हैं। उन्होंने कहा कि सोवियत रूस ऐसे देशों में भी हत्या के अलावा ऐसे बहुत से अपराध हैं जिनके लिए प्राणदंड होता है। पर भारत में ऐसा नहीं है। यह बात सही है कि अन्य देशों की तुलना में, जहाँ प्राणदंड है, भारत में बहुत कम—केवल हत्या—के अपराध के लिए प्राणदंड होता है। अमेरिकन क़ानून या ब्रिटिश कानून के अनुसार जिन अनेक अपराधों के लिए प्राण-दंड है, उनमें बलात्कार भी है। हमारे देश में सन १९५३ से १९५७ तक

हत्या के अपराध में दंडित तथा फाँसी पर लटकाये गये लोगों की संख्या निम्न-लिखित थी[१]—

प्रदेश	प्राणदड प्राप्त	फाँसी दी गयी
आंध्र	३८७	२३
आसाम	५	२
बंगाल	४५	६
बम्बई	२४१	४९
केरल	११५	२५
मद्रास	७६९	१८७
मसूर	१६३	२२
मध्यप्रदेश	२१५	३७
उडीसा	१३	९
पंजाब	२२८	१२८
राजस्थान	६०	१२
	२,१३१	५००

सन् १९५७ के लिए दो प्रदेशो के आॅकड़े प्राप्त नही किये जा सके। पर यह स्पष्ट है कि सन् १९५३ से १९५७ के बीच मे २,१३१ व्यक्ति प्राणदंड के योग्य समझे गये—पर ५०० को फॉसी हुई, यानी औसतन २३ प्रतिशत व्यक्ति जान से हाथ धो बैठे। पिछले वर्ष की फॉसी चालू साल में होती है—पर औसत निकालने के लिए २३ प्रतिशत कहना गलत न होगा। शेष व्यक्ति या तो आजन्म कारावास भोग रहे है, या अन्य कारणों से मुक्ति पा गये है। सरदार पटेल ने सन् १९४९ में लोकसभा मे, गृहमत्री की हैसियत से कहा था कि ४० प्रतिशत दंडित व्यक्ति फॉसी पाते है। सन् १९४९ मे ४१९ व्यक्तियों को फॉसी लगी थी।

१. अखिल भारतीय अपराध निरोधक समिति के सौजन्य से प्राप्त आँकड़े।

प्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि सबसे अधिक फाँसी पंजाब में हुई—प्राणदंड की सजा सुनाये गये लोगो मे से ५६ प्रतिशत को फाँसी के तख्ते पर झूलना पड़ा।

मद्रास का दूसरा नम्बर था यानी २४ प्रतिशत। केरल तीसरा था—२१ प्रतिशत। बम्बई का २० प्रतिशत, मध्यप्रदेश का १७ प्रतिशत, बिहार का ११ प्रतिशत और आंध्र का ७ प्रतिशत। फाँसी की सजा पानेवालों की सख्या सबसे अधिक उत्तर प्रदेश की थी—यह प्रदेश सबसे बडा है भी। किन्तु भारत के अन्य बड़े प्रदेशो की तुलना मे उत्तर प्रदेश में वास्तविक फाँसी कम हुई। इस सम्बध मे नीचे दी गयी तालिका से वास्तविक परिस्थिति की अच्छी जानकारी हो सकती है—

	वर्ष मे जितने बंदियों को फासी की सजा सुनायी गयी					वर्ष में जितने वन्दियों को फाँसी हुई				
	१९५३	५४	५५	५६	५७	१९५३	५४	५५	५६	५७
आसाम	२	—	—	२	१	—	—	—	१	१
उडीसा	४	६	—	३	०	४	१	३	१	०
उत्तर प्रदेश	३१६	३९८	३६९	३५५	४५९	४८	३२	४५	३३	३७
मैसूर	२१	२०	६६	४२	१४	७	१	१२	१	१
बम्बई	४३	२९	६५	७५	२९	१९	२	१७	८	३
बंगाल	३	७	२	१८	१५	—	१	२	१	०
बिहार	३३	२५	४५	२४	१७	५	४	५	२	०
मध्यप्रदेश	३३	५१	४१	३३	५७	४	४	९	२	२
पंजाब	७६	३९	३४	५८	२१	४७	३३	१९	२५	४
राजस्थान	१८	१३	६	१२	११	२	४	४	—	२
मद्रास	१९७	१२४	१३५	१९२	१२१	४६	४४	३७	३२	२८
आन्ध्र	५८	६५	१३०	९९	३५	४	१	५	८	५
केरल	३२	२३	२२	२०	१८	४	९	९	३	०

जहाँ पर शून्य बना है, उसका अर्थ केवल इतना ही है कि कोई सूचना प्राप्त नहीं है। जहाँ केवल — ऐसा चिन्ह है, उसका अर्थ है कि एक भी सजा या फाँसी नहीं हुई।

अस्तु, भारतवर्ष में प्राणदंड की प्रथा रहे अथवा नहीं, इस सम्बंध में हम यहाँ पर विचार नहीं करना चाहते। ऊपर मैंने अपनी पुस्तक "प्राणदंड" का जिक्र किया है, जिसमें इस सम्बंध में काफ़ी विचार किया गया है। मैं इस प्रथा का, इस दंड-प्रणाली का विरोधी हूँ, यह बात मैंने छिपायी भी नहीं। मेरा विश्वास है कि अधिकांश विचार-

शील व्यक्ति मुझसे सहमत है। मनुष्य का प्राण ले लेना आसान है पर जिस वस्तु को हम वापस दे नही सकते, उसे छीनने का हमे अधिकार भी नही है। और सबसे बडी बात है "दया"। जिस समाज मे दया नही है, वह समाज पशुवत् है।

क्लैरेंस डैरो का मत

शिकागो मे क्लैरेंस डैरो नामक एक प्रसिद्ध वकील थे। १३ मार्च १९३८ को ८१ वर्ष की उम्र में इनकी मृत्यु हुई थी। अपराध के सम्बंध में उनका कहना था[१] —

"अपराध का कारण होता है। आज वैज्ञानिक इसी कारण का अध्ययन कर रहे है। अपराध-शास्त्री इस विषय मे अनुसधान कर रहे है। पर हम वकील लोग, हम कानूनदाॅ लोग इनको दंड देते हुए, इनको फाॅसी देते हुए चले जा रहे है। हम सोचते है कि लोगों मे आतक पैदा करके हम अपराध को समाप्त कर सकते है। यदि मानव-हृदय की कठोरता को कोमल बनाने का कोई उपाय है, यदि बुराई और घृणा तथा उनसे सम्बधित खराबियों के हनन का कोई उपाय है, तो वह घृणा या निर्दयता द्वारा नही बल्कि दानशीलता, प्रेम और समझदारी से काम लेना है। ऐसा कोई दार्शनिक नही पैदा हुआ, ऐसा कोई धार्मिक नेता नही हुआ और ऐसा कोई धर्म नही है जो इस बात को न सिखलाता हो. . . मै उस भविष्य के नाम पर आपसे अनुरोध करूँगा, जिस युग मे मनुष्य तर्क, न्याय, समझदारी और विश्वास से काम लेगा और यह मानेगा कि हर एक का जीवन बचाने के योग्य है और मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है 'दया'।"

क्लैरेंस डैरो ने ये शब्द हत्या के एक अपराधी की ओर से बहस करते हुए शिकागो की अदालत में कहे थे। जब उन्होंने अपनी दलील समाप्त की, विचारपति कैवरली के नेत्रों से आॅसू बह रहे थे। समूची अदालत स्तब्ध थी। डैरो ने केवल अपने उपरिलिखित तर्कों से रिचार्ड लोब तथा नथान लियोपोल्ड के प्राण बचा लिये थे। वे सफल हुए क्योंकि विचारपति ने कानून की सही व्याख्या समझ ली। कानून की पंक्तियों से ही सब कुछ अर्थ नही निकलता। उसकी भावना को भी समझना होगा। मानव के इतिहास के अन्य क्षेत्रो के समान कानून में भी अतीत की बातें ऐसा अर्थ ग्रहण कर लेती है जिनका वर्तमान तथा भविष्य के साथ सामंजस्य नही हो सकता। "बीती बातों का बखान करना आसान है पर भविष्य के बारे मे कुछ कहना बड़ा

१. Readers' Digest—July, 1959. पृष्ठ ४३

कठिन है . . . यह तो पता नही है कि नवीन तर्कों से ताजे मामलो मे जज के मन तथा बुद्धि पर क्या प्रभाव पडेगा। अदालत मे न्यायाधीश के व्यक्तित्व की हम पर जो छाप पडी है, उससे हमे यह जानकारी कदापि नही हो सकती कि अमुक मामले मे उनका फैसला क्या होगा। संयुक्त राज्य अमेरिका की केन्द्रीय अदालतों मे जो जज नियुक्त होते है वे जीवन भर के लिए होते है। उन्होने तटस्थ रहने का संकल्प लिया है। वे तर्क-बुद्धि से ही किसी निर्णय पर पहुंचते है। इन बातों को ध्यान मे रखते हुए अधिक ठोस तथा उचित कानून की रचना ही उचित प्रतीत होती है।"[१]

जुआ की मिसाल

इसलिए, आज की नयी दुनिया में, सभ्यता तथा समाज की नवीन गति में, हमको अपने कानूनों को भी दुहराना, सुधारना पड़ेगा। अपराध मे अधिक महत्त्वपूर्ण अपराध की व्याख्या है। इस सम्बध मे हम जुआ की मिसाल पेश करना चाहते है। आदि-काल से जुआ की, जुआ खेलने की, निन्दा होती चली आ रही है। हार-जीत की बाजी लगाना बुरा समझा जाता है। किन्तु "जिन्दगी एक जुआ है"—यह कहना हम बुरा नहीं समझते। जिस काम के परिणाम का निश्चय न हो, उसे जुआ समझना चाहिए। आज जुआ की व्याख्या करना इसलिए कठिन हो रहा है कि नये-नये खेल ऐसे बन गये है जिनको जुआ कहना चाहिए, पर वे ऐसा कहे नही जाते। बहुत सी सरकारें ऐसी है जो जुआ खेलने को सरकारी प्रोत्साहन देती है, जिनकी बहुत बड़ी आमदनी जुए के द्वारा है। भारतीय सभ्यता मे जुआ सब विपत्तियों तथा पापों की जड समझा गया है पर पश्चिमी सभ्यता में ऐसा नही है। वर्षों तक इंग्लैड में इस बात पर खूब बहस चलती रही कि जुआ अपराध है भी या नहीं। सन् १९५६ में इस विवाद ने काफ़ी जोर पकड लिया था। जो लोग जुआ को जायज व्यसन मानने के पक्ष मे थे उन्होंने तर्क पेश किया कि उसी साल, वित्तमंत्री हैरल्ड मैकमिलन (वर्तमान प्रधान मंत्री) ने स्वयं एक सरकारी जुआ शुरू किया। राष्ट्रीय बचत योजना के नाम पर एक पौड (चौदह रुपये) के टिकट चालू किये गये। लाटरी डालकर जिसका नाम निकलता उसे १००० पौड (चौदह हजार रुपये) तक इनाम मिलता है। सरकार की ओर से कहा गया कि चूंकि एक पौड के टिकट वाले को भी अपने रुपये का भुगतान तो मिलता

१. Challenge, New York, Vol. II. No. 6, August, 1959—Page 28.

ही है अतएव यह लाटरी जुआ नही कही जा सकती। जुआ केवल उसे कहते है जिसमे कुछ खोने की संम्भावना हो।

इंग्लैंड मे, फुटबाल के खेल में, हार-जीत पर पहले से ही सट्टा होता है। ऐसे सट्टे के टिकट बिकते है। सही भविष्यवाणी करनेवाले को ७५,००० पौड तक प्राप्ति हो सकती है। सरकार को भी ऐसे सट्टे से लाभ होता है। उसे कर के रूप में काफी रकम प्राप्त हो जाती है। किन्तु जुआ के विरुद्ध जो सबसे बड़ी दलील है उसका उत्तर देना कठिन है। २६ अप्रैल १९५६ को ब्रिटिश पार्लमेंट की सरदार सभा मे ब्रिटेन के सबसे बड़े पादरी डा० जियाफ्रे फिशर ने बड़ा जोरदार भाषण किया था। उन्होंने कहा था कि जुआ सबसे बड़ा अवगुण है—मनुष्य को हैसियत से कही ज्यादा खर्चीला बना देना। आकाश से फट पड़नेवाली आमदनी की आशा में वह खर्च करता चलता है। कर्जदार हो जाता है। फिर वह चोरी, डाका, सभी कुछ कर सकता है।

आज की सभ्यता में आवश्यकताओं के बेतहाशा बढ़ जाने से हर एक व्यक्ति "ऊपर की आमदनी", बिना कमायी आमदनी की तलाश में है। इसी लिए जनमत जुआ के पक्ष में अधिक होता जा रहा है। एक ब्रिटिश पत्र ने लिखा है[१]—

"इसमे कोई सन्देह नही कि जुए के प्रति जनसमूह का दृष्टिकोण इधर काफी बदल गया है. . . .एक समय था जब अधिकाश जनता जुए को सबसे भयंकर पाप समझती थी। अब वैसी बात नही है। अब उस भावना मे परिवर्तन हो गया है।"

जब समाज का विचार इसी प्रकार बदल सकता है कि कल का "सबसे बड़ा पाप" जुआ आज यदि "उतना पाप" नही रह गया तो आज के "सबसे बड़े अपराध"—हत्या के विषय मे भी भावना बदल सकती है। अपराध के विषय में समाज की मौलिक तथा प्रारम्भिक भावना बदल गयी है। शेल्डन ग्लूक ऐसे प्रसिद्ध अपराधशास्त्री का कथन है[२]—

"सन् १८९७ में, जबसे लोम्ब्रोजो ने 'जन्म-जात अपराधी' के सिद्धान्त को प्रकाशित किया था, अपराध के लिए किसी एक कारण की तलाश हो रही है। . . . .

१. Guy Eden's Letter from London—May, 1956—Page Six.

२. Sheldon Glueck in the British Journal of Delinquency, Vol. VII, No. 2, Oct., 1956—Article—"Theory and Fact in Criminology"—Page 92-94.

आज क्या कोई इस बात मे विश्वास करता है कि अपराधी प्रवृत्ति पैतृक सम्पत्ति है? क्या लोम्ब्रोजो भी इसमे विश्वास करते थे.... अब तो कोई भी अपराध-शास्त्री यह नही कहता कि अपराध पारिवारिक देन, विशिष्टता है। अब वे सिर्फ़ यही कहते है कि सामाजिक रूप से इस बात पर विशेष ध्यान नही दिया जा रहा है कि जन्तु-शास्त्र की दृष्टि मे संसार मे प्रकृति ने हर एक मनुष्य को समान नही पैदा किया है और कुछ लोगों मे अपराधी प्रवृत्ति के ऐसे लक्षण मौजूद होते है जो किसी में अन्य लोगों की तुलना मे अधिक बलवती अपराधी प्रेरणा पैदा करते रहते है....कुछ लोग कहते है कि अपराध करने की शिक्षा प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति अपने मन से अपराधी काम नही करने लगता। आश्चर्य है कि कोई आजकल ऐसी दलील कैसे पेश कर सकता है। ऐसे लोगो का मतलब तो यह हुआ कि हर एक अपराधी कार्य या तो अन्य अपराधियो द्वारा सिखाया जाता है या उनकी छूत है। पर ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि मनुष्य में आज भी वे आदिकालीन उत्तेजनाएँ तथा प्रेरणाएँ वर्तमान हैं जिन्हें हम किसी दूसरे पर प्रहार करना, प्रेम करना, प्राप्त करना, ग्रहण करना, कामवासना आदि कहते हैं और इन बातों को दूसरों से सीखने के पहले ही बच्चे आपसे आप ग्रहण कर लेते हैं और इनके कारण वे समाज-विरोधी कार्य करने लगते है। अशिष्ट, अनियंत्रित तथा समुचित शिक्षा के अभाव में बच्चा झूठ बोलना, बहाने बनाना, क्रोध करना, घृणा करना, मक्कारी, चोरी, लड़ाई-झगड़ा, सभी कुछ करने लगता है। सीधा-सादा झूठ बोलने के लिए, दूसरे का सामान चुरा लेने के लिए या परस्पर कुकर्म करने के लिए कुछ सिखाने की ज़रूरत नही पड़ती। बच्चे को शुरू से ही बालिग़ों के वातावरण मे अपने निजत्व को प्राप्त करने के लिए, अपने लिए प्रेम प्राप्त करने के लिए, अपनी सुरक्षा के लिए, अहंभाव या अपराध के द्वारा नहीं, बल्कि अपराध-विहीन तथा कल्याणकारी कार्यों को लेकर संघर्ष करना पडता है.....पर क़ानून के दायरे मे रहनेवाला चरित्र बड़ी कठिनाई से क्रमशः प्राप्त होता है।"

समाज की ऐसी परिस्थिति में अपराधी की सहज-सिद्ध मानव-भावनाओं का अनादर करके कौन समाज़शास्त्री केवल कठोर दंड तथा प्राण ले लेने के दंड से ही समाज के सुधार की कल्पना करेगा? हमने दंड का सीधा-सादा रास्ता कैदख़ाना बना रखा है—पर उसमे मनुष्य रहते हैं, यह नही भूलना चाहिए।

अध्याय ३४

बन्दी की समस्या

बंदी के सम्बध में ट्रेवर फिलपॉट ने एक समाचारपत्र में बडा महत्त्वपूर्ण लेख लिखा था। उस लेख की भूमिका मे समाचारपत्र के सम्पादक ने लिखा था—

"ज्यों-ज्यो अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है, जनता को यह जानने की चिन्ता हो गयी है कि हमारे जेलों मे क्या हो रहा है। क्या जेलों में रहने से आदमी का सुधार होता है, वह भ्रष्ट हो जाता है, या बर्बर हो जाता है?"

फिलपॉट लिखते है—[१]

"बन्दीगृह मे रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति भिन्न तथा पृथक् समस्या है। हर एक बन्दीगृह का लक्ष्य होता है आदमी को समाज मे पहले से अच्छा बनाकर वापस भेजना, ताकि जिस दिन वह बन्द हुआ था, उस समय के समान अपराध करने की सम्भावना छूटने के समय काफी कम हो जाय.. सुधारक तो यह रोते है कि हमारे जेलों में से कैदी पहले की तुलना मे अधिक बर्बर तथा अपराध से अधिक परिचित बनाकर भेजे जाते है। और दूसरी ओर, छूटे हुए कैदी द्वारा कोई बडा अपराध होने पर जनता चिल्लाती है कि जेलों को "अवकाश-गृह" बना दिया गया है। वहाँ कैदियों को बड़ा आराम दिया जा रहा है। जब तक अधिक सख्ती से काम न लिया जायगा, अपराधी सुधर नही सकता।"

इतना लिखने के बाद श्री फ़िलपॉट ने ब्रिटेन के जेलो की—जिनमे से बहुत से कारागार संसार में आदर्श बन्दीगृह समझे जाते है—बन्ड़ी निन्दा की है। उन्होंने छोटी छोटी बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जैसे ३४ स्नानागार १३०० आदमियों के लिए हैं, रहने का स्थान बहुत कम है, कमरे ठीक नही है, इत्यादि। श्री फिलपॉट का मत है कि क़ैदख़ानों मे और अधिक सुधार किया जाय। मनुष्य को मनुष्य समझकर

१. Trevor Philpott—"Men in Prison"—Sunday Times, London, Sept. 30, 1958.

रखा जाय। जेल मे बन्द आदमी का मनुष्य समझा जाना जितना आवश्यक है, उतना ही जरूरी है बाल अपराधियो को वास्तव में बाल समझना। बाल अपराधियों की देखरेख करनेवालो को ऐमी शिक्षा मिलनी चाहिए कि अपराधी बालकों के लिए वे माता-पिता या अभिभावक का स्थान ले सकें।[१] तभी वे वास्तव में बाल अपराधी का सुधार कर सकेंगे। इसी प्रकार जेल के कर्मचारियों को अपराधियों का मित्र, सहायक, शिक्षक बनकर रहना सीखना चाहिए, तभी वे उनकी समस्याओं को भली प्रकार समझेंगे। तभी वे बन्दियो के साथी बनकर उनको सन्मार्ग पर ले जा सकेंगे। कैदखाने में बन्द रखने का उद्देश्य केवल सन्मार्ग पर ले जाने योग्य बना देना है। यूगोस्लाविया ऐसे कम्यूनिस्ट विचारधारा के देश भी यही कहते है कि "दंड का उद्देश्य अपराध से समाज की रक्षा करना है।" यूगोस्लाविया के जेल सम्बधी नियमों में स्पष्ट लिखा हुआ है कि "जेल मे कुछ समय के लिए दंडस्वरूप भेजने का मुख्य उद्देश्य समाज की अपराध से रक्षा करना है, बालिग अपराधी से रक्षा करना भी है तथा बच्चो को पुनः शिक्षित कर जीवन में पुनः स्थापित कर देना है।

"किन्तु हमारी सम्मति में आदमी को दीवार के भीतर दंडस्वरूप बंद कर देने का मतलब यह नहीं है कि बच्चे और बड़े अपराधियों मे बड़ा भेदभाव किया जाय। बड़े के लिए तो यह सोचा जाय कि उसके अपराध का बदला लेना है तथा छोटे को पुनः शिक्षित कर जीवन में पुनः स्थापित करना है। प्रत्येक दंड का एक ही उद्देश्य होना चाहिए और वह यह कि हर मामले में, दंड मूलतः जीवन की पुनः शिक्षा देने के लिए है। इस विषय मे उम्र का कोई भेदभाव नही करना चाहिए। यह जरूर है कि बडो के जेल में तथा बाल-सुधार गृह के भीतरी प्रबंध में विभिन्नता होगी, क्योकि जीवन में पुनः शिक्षित करने का काम दोनों के लिए भिन्न रूप से होगा।[२]"

१. Substitute for Parents **वाक्य का प्रयोग** First Congress of the United Nations on the Prevention of Crime and the Treatment of Offenders, Geneva, 1955 **के अवसर पर** The Training of Specialized Education for Maladjusted Children—International Catholic Child Bureau **के लेख में किया गया था।**

२. Regional Consultative Groups in the Field of the Prevention of Crime and Treatment of Offenders—Standard Minimum Rules for the Treatment of Prisoners—Approved by the International

ज्यादा समाज के हित मे है कि जिस समाज मे उस बंदी को छूटकर पुनः वापस जाना है, उसमे उसे उचित, न्यायसगत तथा सभ्य जीवन बिताने योग्य बना दिया जाय.. अपराधी को दड देने के लिए जो कानून बने हैं उनका वास्तविक उद्देश्य है आदमी की नयी जिन्दगी, नयी सुधरी जिन्दगी शुरू करा देना.. .अदालत के रूप मे, सरकारी अधिकार से मुक्त जो लोग न्याय करने बैठते है उनकी बुद्धि में स्वयं उलझन है। इसलिए वे अपराधी को ठीक से समझ नहीं सकते ...सजा काटकर छूटे हुए अपराधी के प्रति समाज भी अपना कर्तव्य नहीं पहचानता। यह समाज का कर्तव्य है कि उसे जीवन के सही मार्ग पर लगा दे।"[१]

केवल पुलिस के द्वारा अपराध नही रुक सकता। पुलिस अपराधी का सुधार नही कर सकती। लेफ्टिनेन्ट कर्नल तिजेरो का मत है कि—

पुलिस की आलोचना

"यह कहना भूल है कि असंतुलित व्यवहार करनेवाले, दुष्ट प्रकृति के या जिन्हें हम पतित कहते है, ऐसे लोग समाज मे अधिक संख्या में हैं और अधिक शक्तिशाली है, जनसमूह को दुष्ट और दुश्चरित्र बनाते रहते है....यह दुर्भाग्य की पात है कि ज्यादातर लोग पुलिस के काम में जिस त्याग तथा योग्यता की आवश्यकता होती है, उससे अनभिज्ञ है ..पुलिस की अनुचित आलोचना करने की एक आम आदत सी पड़ती जा रही है। बड़ी आसानी से यह कह दिया जाता है कि पुलिस क्या कर रही है.. पेरू मे हमने जनता के सामने इतने आंकड़े और इतनी सूचनाएँ प्रस्तुत की है जिससे उसे मालूम हो जाय कि पुलिस उसकी कितनी सेवा कर रही है।"[२]

१. Comments on the Minimum Rules for the Treatment of Offenders-- adopted by the Latin American Seminar, Rio De Janeiro, Brazil, April 6 to 19, 1953—By Dr. Alfredo M. Bunye, Director of Prisons, Republic of the Philippines, Oct., 1954-- Pages 1-6.

२. Revue Moderne De La Police—अँग्रेजी संस्करण Published by the International Federation of Senior Police Officers—Paris—September, October, 1959—Pages 12-13.

समाज को पुलिस को दोष न देकर स्वयं अपने से सवाल करना चाहिए कि दुश्च-रित्रों के सुधार के लिए वह क्या कर रहा है। पुलिस को केवल दो बातों का ध्यान रखकर अपराधी के सम्बध मे अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। ३ से ५ जून, १९५४ में, पेरिस मे राष्ट्रसंघ द्वारा "मानव अधिकार सम्मेलन" हुआ था। यह १२वाँ अधिवेशन था। इसमे जो निर्णय हुए थे उनमे धारा १७ बडे महत्त्व की है। इसके अनुसार[1]—

१. किसी के निजी जीवन मे, पारिवारिक जीवन में, पत्र-व्यवहार में, उसके सम्मान या प्रतिष्ठा मे मनमाना या गैर-क़ानूनी हस्तक्षेप कदापि न होगा।

२. प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार गैर-कानूनी हस्तक्षेप से अपनी रक्षा का अधिकार है।

जेल में अनुचित दण्ड

अतएव पुलिस किसी भी व्यक्ति की स्वाधीनता का अपहरण करने के पहले भली प्रकार से सोच विचार ले कि क्या वह उचित काम कर रही है। यदि उसे अपने कार्य के औचित्य पर विश्वास जम जाय, तभी किसी को गिरफ्तार किया जाय। यदि इस भाव से काम किया गया तो पुलिस की अनावश्यक आलोचना भी समाप्त हो जायगी। जेल की आलोचना भी तभी समाप्त होगी जब जेलख़ाने मनुष्य को मनुष्य समझकर, बन्दी को समाज की अमानत समझकर उसके साथ व्यवहार करेंगे। सन् १९५० से ही संयुक्त राष्ट्रसंघ इस बात की ओर सभी देशों का ध्यान दिला रहा है कि ऐसा "कम से कम सर्वमान्य नियम" बना दिया जाय जो हर एक देश के जेलो मे मान्य हो तथा जिसके द्वारा हर एक देश के जेलों का शासन हो। बहुत सोच-समझकर ऐसे नियम बनेंगे तो मनुष्य के मौलिक अधिकारो की रक्षा होगी। उसके जीवन में असली सुधार की गुजायश होगी। इसी कार्य के लिए यूरोपीय देशो का एक सम्मेलन सयुक्त राष्ट्रसघ के तत्त्वावधान में ८-१६ दिसम्बर, १९५२ में जेनेवा में हुआ था। सन् १९५५ मे प्रथम अपराध-निरोधक काग्रेस, जेनेवा, मे भी यही कार्य हुआ था। उसके बाद तीन भिन्न-भिन्न सम्मेलन राष्ट्रसघ द्वारा और हो चुके है। सन् १९५२ के सम्मेलन मे जेल मे जो साधारणतः सजाएँ दी जाती है, उनकी निन्दा की गयी थी तथा उनके सम्बन्ध मे नियम बनाये गये थे। उदाहरण के लिए नियम

१. वही, पृष्ठ १५, Commission on Human Rights.

२६ (४३) है[१]। कैदियों को जरा से कसूर पर कालकोठरी में बन्द कर दिया जाता है या उनकी खूराक में कमी कर दी जाती है। नियम २६ (८३) द्वारा आदेश दिया गया है कि जब तक जेल का डाक्टर लिखित प्रमाणपत्र न दे दे कि ऐसी सजा से कैदी के मन तथा शरीर के स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, यह सजा न दी जाय। नियम ३० (८७) द्वारा कैदियों को यह अधिकार दिया गया है कि जब जेल-निरीक्षक लोग मुआयना करने आयें, उनके सामने वे निर्भय होकर अपनी शिकायतें कह सकते हैं। उन्हें कोई दंड नहीं दिया जा सकता कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। नियम ३२ (८९) ने जेल-अधिकारियों को हिदायत दी है कि कैदी को बाहरी दुनिया से सम्पर्क बनाये रखने मे सहायता दें। वे पत्र-व्यवहार कर सकें। उनसे लोग मिलने आ सके। नियम ३९ (५६) मे हिदायत की गयी है कि कैदियों को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने में खराब, गन्दी सवारियाँ न दी जायँ और उन्हे अनावश्यक कष्ट न दिया जाय।

इस सम्मेलन ने सभी देशों के मानने योग्य नियम बनाने की चिंता मे कई उपयोगी सुझाव अस्वीकार भी कर दिये—जैसे नियम ५८ (७५) कि जिन देशों में ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को भाड़े पर कैदी से मजदूरी लेने का नियम है, वह समाप्त किया जाय या नियम ६० (७७) कि कैदियो मे ८ घंटे से ज्यादा काम न लिया जाय। पर, शुरू से लेकर अन्त तक हर नियम मे इस बात पर जोर दिया गया है कि बन्दी के साथ अनावश्यक सख्ती न बरती जाय तथा उसके साथ उदारतापूर्वक व्यवहार हो। जेल के काम से अनभिज्ञ लोगो को जेल का अधिकारी न बनाने के विषय मे प्रायः सभी एकमत थे और यह कि जेल-अधिकारियों को विशेष शिक्षा[२] देना जरूरी है। क़ैदियों के लिए "खुले जेल" स्थापित करने का प्रस्ताव अगस्त १९५० में पास हो चुका था।[३] सन् १९५२ में इस सम्बंध मे एक प्रश्नावली बनाकर हर एक देश को भेजी गयी थी। १६ से १८ अक्टूबर, १९५२ को लदन में उन उत्तरो पर विचार किया गया और उनसे पता चला कि हर एक देश में "खुला जेल" किसी न किसी रूप में है, पर

१. Conference of the European Regional Consultative Group—U. N. Report; Geneva, 8-16 Dec., 1952—Page 18.

२. वही—The Recruitment, Training and Status of the Staff of Penal and Correctional Institutions—पृष्ठ २२, एजेन्डा का ६वां विषय

३. वही, एजेन्डा का ७वां विषय—पृष्ठ २९

"खुले" की हर एक की अपनी परिभाषा है, अपनी व्याख्या है, अपना तरीका है तथा भिन्न प्रकार के बंदी इनमे रखे जाते है। इस विषय पर हम आगे विचार करेगें।

जेलों के प्रबंधक

जेलों के लिए अधिकारी नियुक्त करने के पहले उन्हें समुचित शिक्षा देने का प्रबंध बहुत कम देशो में है। हमारे उत्तर प्रदेश में, लखनऊ मे जेल ट्रेनिग स्कूल जैसी संस्था है, वैसी भारतवर्ष में केवल एक-दो और हैं। हमने ऊपर फिलप्पीन देश में जेल-सुधार के बारे में कई बार उल्लेख किया है, पर वहाँ भी जेल के अधिकारियों की "ट्रेनिग" के लिए कोई प्रबंध नही है।[1] वर्तमान जेल-अधिकारियों में से "बहुत कम ऐसे है जिनको इस कार्य के लिए समुचित शिक्षा मिली है।[2] संयुक्त राज्य अमेरिका मे इसका कुछ प्रबंध है पर इंग्लैड मे काफी दोषपूर्ण प्रबंध है। भारत के पड़ोसी बर्मा में १ अगस्त १९५४ को ८७०२ कैदी जेलों में थे जिनमें ५,९६७ सजा-याफ्ता, २,३८२ विचाराधीन, ३४८ नजरकैद तथा ३ ऋण न चुकाने के लिए कैदी थे। बड़ी उम्रवालों के लिए ३३ जेल थे, एक बाल अपराधियों के लिए तथा केवल एक बोर्स्टल संस्था थी। वहाँ हाई स्कूल पास व्यक्ति भी जेलर हो सकता है। उसके लिए छः महीने की ट्रेनिंग होती है। बड़े अफसरों के लिए, जो जेल की नीति के प्रति जिम्मेदार है, कोई ट्रेनिग आवश्यक नही है।[3] जेलों के प्रबंध में बहुत कुछ खराबी केवल इसलिए है कि उनके कर्मचारी यह जानते ही नही कि उनकी नियुक्ति का क्या उद्देश्य है, उन्हें वास्तव में क्या करना है।

क़ैदियों से काम लेना चाहिए या नही

जेल के भीतर बहुत सी ऐसी बाते है जिनके बारे मे सभ्य जगत् को अपनी नीति निर्धारित करनी है। उदाहरण के लिए, कैदियो से काम लेने का सवाल है। बहुत से देशों में क़ैदियों से जानवरो की तरह काम लिया जाता है। कुछ देशों में गैर-सरकारी लोग, जैसे ठेकेदार आदि अपने काम के लिए, चाहे सड़क पीटना ही क्यों न

१-२. Selection and Training of Personnel—Alfred M. Bunye, U. N. O. Publication—1955—Pages 3 and 5.

३. वही—बर्मा के लिए लेखक Ba Thein—U. N. O. 1955—Pages 1 and 9.

हो, जेल के कैदी ले लेते हैं। इन कैदियों का उपयोग कराकर सरकार स्वयं अपनी आमदनी कर लेती है। जेल मे कैदी से "उपयोगी काम" लेना आर्थिक कारणो से शुरू हुआ। सरकार का खर्च होता था उन्हें खिलाने तथा पालने मे। उसे उनसे उपयोगी काम भी लेना था।

१९वी सदी के प्रारम्भ में कैदियों को अलग-अलग कोठरी में बन्द करने से वास्तव मे उनके काम की, परिश्रम की विभिन्नता शुरू हुई—जैसे दर्जी का काम इत्यादि। तबसे उपयोगी काम सिखाने का महत्त्व बढता ही गया है। खुली हवा में काम करने के प्रस्ताव ने ऐसे विकास में और भी योगदान किया, यद्यपि इसमें एक खराबी भी पैदा हुई है। खुली हवा में कैदी से काम लेने को ही अपराधी की चिकित्सा की एकमात्र औषधि समझ लिया गया है। नागरिक वातावरण में काम करनेवाले मजदूरो (क़ैदियों) को सही ढंग की शिक्षा नही प्राप्त हो पाती है। सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओ के कारण साम्पत्तिक लक्ष्य दोषपूर्ण हैं—उनसे ऐसे काम लिये जाते है जैसे अनुत्पादक क्षेत्रो मे खेती कराना। किन्तु उनकी "चिकित्सा" की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया है। सही ढंग से जेल के उद्योग-धंधे चलाने का काम नहीं हो रहा है, कुछ तो इसलिए कि कारखानों के मालिक विरोध करते हैं तथा व्यवसाय संघ भी जेल के मजदूरों की प्रतिस्पर्द्धा के भयवश विरोध करते हैं। इसके अलावा जिन अधिकारियों के हाथ में कारोबार खोलने के लिए आर्थिक मजूरी देना है, वे पैसा देने मे हिचकते है। जेल के कैदियो से काम लेने के बारे मे आज सभी की राय है कि काम ऐसा हो—

(१) जिससे बन्दी को ऐसी शिक्षा मिले कि वह बाहर निकलकर उचित जीविका चला सके, ऐसा काम हो जो उसके शरीर के अनुकूल हो और उसे मनोवैज्ञानिक सन्तोष प्रदान करे।

(२) ऐसा काम हो जिससे जेल के वातावरण में और अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण उत्पन्न हो जिससे बन्दी के मन को स्थिर करने में सहायता मिले।

....यह कहना जरा कठिन है कि जेल में मजदूरी का ऐसा क्या प्रबंध किया जाय कि ऊपर लिखी बाते पूरी हो सके...डेनमार्क के जेलों में जो आबादी है उसका उम्र तथा निवास के हिसाब से विभाजन इस प्रकार किया गया था[१]—

१. Carl and Hansen—Director of Prison Labour Administration, Denmark—Report on Prison Labour—1955.

३० वर्ष से कम उम्र के	—	४५	प्रतिशत
३० से ४० वर्ष तक	—	३०	"
४० से ५० वर्ष तक	—	१६	"
५० से ऊपर	—	९	"
नगर के रहनेवाले	—	३०	"
कसबों के रहनेवाले	—	२२	"
देहात के रहनेवाले	—	१७	"
अनिश्चित वासस्थान	—	२१	"

इस प्रकार अधिकतर निवासी कसबो के हुए। इनको काम देने के सम्बंध में सबसे जरूरी बात यह जाननी चाहिए कि कितने समय तक जेल मे रहेंगे। अभी तो स्थिति यह है कि खुले जेलों मे कम अवधि के ही कैदी ज्यादा है—

सजा की अवधि	— खुले जेल प्रतिशत	— बन्द जेल प्रतिशत	— कुल प्रतिशत
६ महीने या कम	३०	१५	२३
६ से १२ महीने तक	५२	२७	४१
१ से २ वर्ष	१७	२५	२०
२ वर्ष से अधिक	१	३३	१६
	१००	१००	१००

क़ैदी से काम लेने का अधिकार

जेल में स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण के लिए यदि काम लेना आवश्यक है तो कैदी के मन के संतोष के अनुकूल भी काम होना चाहिए। कुछ लोगों को यह भी शंका होती है कि क्या राज्य को बन्दी से काम लेने का अधिकार है? क्या उसकी स्वतंत्रता का अपहरण कर लेना ही पर्य्याप्त नही है? पर इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि यदि उसे यों ही जेल में निरुद्यमी रहने दिया जाय तो न तो उसका सुधार होगा और न उद्धार होगा। समाज की रक्षा के लिए दोनों ही चीजें जरूरी है। अपराध की समस्या गुरुतर होती जा रही है। अपराध की संख्या में, संयुक्त-राष्ट्रसंघ के

शब्दों में "भयास्पद" वृद्धि हुई है। और यह वृद्धि खास कर बाल अपराधियों में हुई है। संसार के अनेक भागों में यह वृद्धि बहुत स्पष्ट है और इसलिए संयुक्त-राष्ट्रसंघ को चुनौती है कि वह इस दिशा में अपने प्रयत्न को अधिक दृढ़ तथा ठोस करे[१]।

२२ अगस्त से ३ सितम्बर तक, सयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से जेनेवा में प्रथम अपराध निरोधक सम्मेलन हुआ था। १२ से १८ सितम्बर तक लन्दन में तृतीय अंतर्राष्ट्रीय अपराध-शास्त्री-सम्मेलन हुआ था। इन दोनों सम्मेलनों में जेल के भीतर बन्दियों के सुधार की समस्या पर विचार हुआ था[२]। सयुक्त-राष्ट्रसंघ कांग्रेस ने निम्नलिखित विषयों पर विचार किया था—

(१) कैदियों की चिकित्सा के लिए कम से कम निश्चित नियम।
(२) खुले या बंद कारागारों के अधिकारियों का चुनाव, उनकी शिक्षा।
(३) खुले जेल तथा सुधारगृह।
(४) जेल में बंदी से परिश्रम।
(५) बाल-अपराध निरोध।

कारागार में बंदियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार हो तथा उनसे कैसा काम लिया जाय, इस विषय में आलोचना करते हुए शेल्डन ग्लूक लिखते हैं—

"अमानुषिक, अपमानजनक दंड तथा अनुचित प्रतिबंध, इन सब की मनाही कर दी गयी है। बन्दियों को यह अधिकार दिया गया है कि वे जेल-अधिकारियों के पास, न्याय-अधिकारियों के पास अपनी शिकायतें भेजें तथा जेल-अधिकारी इन शिकायतों को बाहर जाने से रोकें नहीं। परिवार से, परिवार के या अपने मित्र से, धार्मिक अधिकारियों से या कानूनी सलाहकार से सम्पर्क की अनुमति है. . . कांग्रेस ने स्पष्ट आदेश दिया है कि जहाँ तक हो सके जेल के प्रबंधकों में मनोविश्लेषक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, अध्यापक तथा व्यवसाय सिखानेवाला अध्यापक अवश्य हो......

"यदि दंड का उद्देश्य समाज की अपराध से रक्षा करना है तो इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी हो सकती है जब यह सम्भव हो कि जेल से लौटने पर समाज में अपराधी नियम

१. Report of the Ad Hoc Advisory Committee of Experts on Prevention of Crime & Treatment of Offenders—2-5 May, 1959—Page 18.

२. लेखक इन दोनों सम्मेलनों में उपस्थित था।

तथा व्यवस्था के अंतर्गत स्वस्थ जीवन बिताने की केवल इच्छा ही न करे वह इसके योग्य भी हो। वह इस योग्य हो कि अपना भरण-पोषण कर सके। इसके लिए यह जरूरी है कि जेल में हर प्रकार की नैतिक, आध्यात्मिक, शिक्षणीय तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हो जिनका बन्दी की निजी आवश्यकतानुसार उपयोग हो सके. . .जहाँ तक हो सके जेल के जीवन मे और स्वतंत्र समाज के जीवन मे कम से कम अंतर होना चाहिए.. सजा पूरी होने के पहले कैदी स्वस्थ सामाजिक जीवन के योग्य बना दिया जाय . खुले जेलो का सबसे बडा लाभ यही है कि वे दड को व्यक्तिगत चीज बना देते है और व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार चिकित्सा कर समाज के योग्य बनाते है।"[१]

इस भावना से यदि जेल मे बन्दी से काम लिया जा रहा है कि उसको समाज का स्वस्थ नागरिक बनाना है, तो उसे भी आपत्ति नही होनी चाहिए। फिर भी, अभी सब देशो मे इस सम्बध में एक समान नियम नही है। कुछ देश ऐसे है जहाँ कैदी से काम लेना दड के कानून में शामिल है, जैसे—अर्जेन्टाइना, आस्ट्रिया, बेल्जियम, कनाडा (कुछ विशेष वर्ग के क़ैदियो के लिए), चाइल, कोस्टारिका, क्यूबा, फिनलैण्ड, यूनान, हैती, इटली, आयरलैड, भारतवर्ष, जापान, लिबेनान, लक्जेमबर्ग, न्यूजीलैण्ड, क्वीसलैड (आस्ट्रेलिया), सीरिया, तुर्किस्तान, दक्षिण अफ्रीका, उरुगुए तथा यूगोस्लाविया।

कुछ देशों में क़ैदी से काम लेने का नियम बनाने का अधिकार जेल विभाग पर छोड दिया गया है, जैसे आस्ट्रेलिया महाद्वीप के टसमानिया प्रदेश में, इंग्लैंड—वेल्स—स्काँटलैड यानी यूनाइटेड किगडम मे तथा केन्द्रीय कानून के अन्तर्गत बंदियों के लिए सयुक्तराज्य अमेरिका मे, वहाँ १३ प्रदेश या राज्य ऐसे है जहाँ पर न्याय विभाग या जेल विभाग जैसा उचित समझें, नियम बना लें। इनमें से ९ तो कनाडा के सूबे हैं, आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया नामक प्रदेश हैं तथा इजरायल का राज्य है। कुछ राज्य ऐसे है जो कतिपय श्रेणी के कैदियो से परिश्रम नही लेते। आस्ट्रिया, नार्वे, लक्जेमबर्ग, मध्य तथा पूर्वी यूरोप, एशिया में लेबनान, सीरिया, भारत तथा बर्मा ऐसे देश छोटी मियाद की सजा वालो से काम नही लेते।

१. Sheldon Glueck—Two International Criminologie Congress. A Panorame—The National Association of Mental Health, 10 Columbus Circle, New York–1956–Pages 388-390.

वेल्जियम, फ्रांस और क्यूबा मे राजनीतिक बंदियो से काम नही लिया जाता। अर्जेन्टाइना मे सादी कैद वालो से भी काम लेते है पर उन्हे सार्वजनिक निर्माण के कार्यों मे बाध्य नही किया जा सकता। सार्वजनिक कार्यों मे गम्भीर अपराध के दोषी लोगों से सार्वजनिक निर्माण का काम लेने का नियम वास्तव मे नैपोलियन विधान १८१० से चालू हुआ है। उस समय उन कैदियो को जेल की दीवार से बाहर काम करना पडता था। इसे खुले-जेलों की शुरुआत भी कह सकते है पर उस समय तो यह नियम इसीलिए बनाया गया था कि कैदियों को कठोर से कठोर परिश्रम का काम करना पडे और वह काम उपयोगी भी हो।

कुछ देश ऐसे है जहाँ पर बन्दी से जेल मे काम लेना सरकार का "अधिकार" नही समझा जाता—वे हैं हिन्द एशिया तथा मेक्सिको। पर वे जेलों में कार्य करने को उचित तथा "कर्तव्य" अवश्य समझते है। मेक्सिको के शासनविधान में है कि बन्दी को अधिकार है कि वह जेल में काम करे या न करे। ससार के अन्य किसी देश के विधान में ऐसी बात नही है। जेलो मे काम लेने के सम्बध मे १८वी तथा १९वी सदी में बहुत से नियम बने। इसके पहले इंग्लैड के ब्रिडवेल ऐसे जेलों में तथा अन्य जेलों में एक प्रकार से बन्दी को सुधार के लिए भेजा जाता था। पर १८वी तथा १९वी सदी के जेलों के नियम विशेष कर इसलिए कठोर बनाये गये कि बन्दी को यातना मिले, दंड मिले, पीड़ा मिले, कैदी को इसलिए नही काम करना पड़ता था कि उसको सयम की शिक्षा मिले, मेहनत करना सीखे तथा परिश्रम के प्रति उसकी आस्था हो, बल्कि इसलिए भी काम दिया जाता था कि वह उससे कष्ट भी भोगे, दंड भी हो। आजकल एक प्रकार से दंड की भावना छोड़ दी गयी है।[1]

वन्दियों द्वारा परिश्रम

आजकल क़ैदियों के द्वारा बड़े-बड़े उपयोगी कार्य हो रहे हैं। इटली में सन् १९५३ मे ३०,००० बन्दी जेलों में थे। उनमें से ३,००० भूमि की उत्पादन शक्ति बढाने में, खेती के योग्य नयी भूमि तैयार करने में बड़ा काम कर रहे थे। स्वीडन में सरकारी सड़कें बनाने, जंगलात मे काम करने में बन्दी बडा उपयोगी होता है।[2] इग्लैड (यूनाइटेड किगडम) मे सरकार जेलो से कैदियों को म्युनिसिपल बोर्ड

१. Prison Labour, United Nations, 1955-Pages 1 and 2.

२. वही, पृष्ठ ३१

आदि को—स्वशासन विभाग को—दे देती है जिनसे नगरों के विकास के कार्य में बड़ी सहायता मिलती है। तुर्किस्तान में जेल के बाहर सार्वजनिक निर्माण विभाग की ओर से कैदियों से काम लिया जाता है। चिराग जलते ही वे जेलों को वापस कर दिये जाते हैं और उसी काम पर साधारण मजदूर को जितनी मजदूरी मिलती है उसका दो-तिहाई उनको मिलता है। जापान में, सन् १९५३ के आँकड़े के अनुसार जेल में काम करने योग्य लोगों की समूची आबादी का ९ प्रतिशत यानी ३६०० बन्दी १४९ कैम्पों में खेती, मछली मारना, सडक बनाना, लकडी का कोयला बनाना आदि काम करते थे। सन् १९४० से वहाँ पर हौक्केपेडो नगर में इतना बडा कारखाना खोला गया कि उसमें ३००० बन्दी मजदूर काम करते थे।[1] भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश में लगभग ८००० बन्दी—प्रदेश के जेलों की जनसख्या का लगभग १५ प्रतिशत, सावजनिक निर्माण या विकास का कार्य कर रहे हैं, जिनमें से लगभग ६०० तो प्रसिद्ध चुर्क सीमेन्ट फैक्टरी मे काम करते है। इनको वही मजदूरी मिलती है जो साधारण मजदूरों को प्राप्त होती है। इसके अलावा जितने दिन वे फैक्टरी में काम करते है, उनको अपनी सजा में उतने दिन की छूट मिलती है। सन् १९५३ में पहली बार 'सम्पूर्णानन्द शिविर' के नाम से चन्द्रप्रभा नदी पर बाँध बनाने का काम शुरू हुआ। ऐसे दो बाँध केवल बन्दी गण बना चुके है। बर्मा मे औसतन ५,०९१ बन्दी रोज जेल विभाग का ही कुछ न कुछ काम करते है। कुछ देशो मे बन्दियों के उपयोग के आँकडे इस प्रकार हैं[2]—

राज्य	काम में लगे कुल बन्दी	रचनात्मक तथा निर्माण के काम में	प्रतिशत
डेनमार्क	२९०४	२८०	९·६
फिनलैंड	५६४८	१०६९	१८·९
फ्रांस	११,१४५	४१०	८·९
यूनान	२४७५	१२३	५·०
आयरलैंड	४११	३०	७·३

१. वही, पृष्ठ ३४
२. वही, पृष्ठ ३५–३६

राज्य	काम में लगे कुल बन्दी	रचनात्मक तथा निर्माण के काम में	प्रतिशत
इटली	१४,०२१	६४६	४·६
लक्ज़ेमवर्ग	१४०	७	५·०
नीदरलैंड्स	२८९०	०	०·०
नार्वे	१००८	७५	७·४
स्वीडन	२४०९	४६४	१९·३
यूनाइटेड किंगडम	२१,७५३	२,५९०	११·९
कनाडा	४४१२	७४४	१६·९
संयुक्त राज्य अमेरिका	१३,६५९	११७०	८·६
दक्षिण अफ्रीका	२४,२१८	२३९५	९·९
बर्मा	४९८५	०	०·०
हिन्देशिया	१७,३४३	०	०·०
जापान	५९,९०७	३५९९	६·०
न्यूजीलैंड	९९७	१४८	१४·८
आस्ट्रेलिया	३९१३	२५८	६·४

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि संसार में १६ ऐसे प्रमुख देश हैं जो सार्वजनिक निर्माण के कार्य मे बंदियों का उपयोग करते हैं, पर उनमें से १० ही ऐसे हैं जिनके यहाँ वास्तविक रचनात्मक उपयोग होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि संसार के अधिकांश देश बन्दी का ऐसा उपयोग पसन्द नही करते, उनसे कारागार से सम्बंधित या कारागार का ही काम लेना उचित समझते हैं।

वन्दी का प्रतिद्वन्द्वी

मज़दूर बन्दी का सबसे बडा विरोधी स्वतंत्र मजदूर होता है। उसे यह शिकायत हो सकती है कि जेल में मजदूरी सस्ती है। उत्पादन का साधन सरकारी है अतएव

जेल का माल सस्ता पड़ता है। यूरोप के देशों में ऐसा विरोध सबसे पहले सन् १५९९ में[१] हुआ था। ऐम्सटर्डम के कारागारों को निकट के जंगलों की लकड़ी छीलने का ठेका मिल गया है। दूसरा विरोध सन् १८९५ में दो तीन यूरोपीय देशों में हुआ।[२] १९वी सदी के मध्य में न्यूयार्क तथा पेनसिलवानिया प्रदेशों के मिकानिक मज़दूर-संघ ने जेलों में कपड़ा, टोपी तथा जूता बनाकर बाजार में बेचने का घोर विरोध किया था। इस प्रकार का विरोध बराबर बढ़ता ही गया। विरोधियों का कहना था कि जेलों में उत्पादन का सामान सस्ते दामों पर मिलता है। भूमि, किराया, मकान आदि की कोई लागत नहीं होती और मजदूरी बहुत कम होती है। इसलिए जेल का माल सस्ता पड़ता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस विरोध ने काफ़ी उग्र रूप धारण कर लिया था। फलतः प्रायः सभी देशों में जेल से बननेवाले सामान की बिक्री या उत्पादन पर रोक-थाम की गयी। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के ३८ प्रदेशों में जेल का बना सामान बाहर, बाजार में नहीं बिक सकता। पन्द्रह प्रदेशों में जेल की बनी रस्सी या खेती के सामान बाजार में बिक सकते हैं। २३ प्रदेशो मे, सन् १९५० में यह आदेश था कि जेल का बना सामान सरकारी कामों में जरूर लगाया जाय।

यूरोप मे आस्ट्रिया में यह विरोध अब भी जारी है। स्वतंत्र मज़दूर जेल के उत्पादन के बड़ा विरुद्ध है। अब वहाँ नियम बन गया है कि जेल का उत्पादन ज्यादातर जेल के या न्याय-विभाग के काम में लाया जाय। जेल के कर्मचारी भी यथाशक्य जेल का बना सामान खरीदें। बेल्जियम तथा डेनमार्क के छोटे कल-कारखानों के मालिक भी जेल के उत्पादन के विरुद्ध हैं। यूनान, आयरलैंड आदि देशों में जेल का उत्पादन जेल के काम में ही खर्च होता है। नीदरलैंड्स मे नियम है कि जेल का बना माल बाज़ार में बाज़ार-भाव पर ही बिके। यूगोस्लाविया में जेल के मजदूरों को बाहर के मज़दूरों के बराबर पारिश्रमिक मिलता है।[३]

१. वही, पृष्ठ ३८

२. Nurullah Kunter—Le Travail Penal, Paris—1940—Page 137.

३. Prison Labour—Pages 32-39-40-41.

अध्याय ३५

खुली संस्थाएँ

जेल मे बन्दी से काम लेना और उसे मजदूरी देना दंड की भावना से बनाया गया नियम नही है। इस प्रणाली का आधार है मानवता। जब यह मान लिया गया कि अधिकाश अपराध क्षणिक आवेग या आवेश का परिणाम है तो अपराधी को जीवन मे पुन: स्थापित करने का प्रयत्न करना राज्य का कर्तव्य है। "गत कई पीढ़ियों से अपराधी के उद्धार में रुचि उत्पन्न हो जाने के कारण उसके सुधार, उसकी पुर्नाशक्षा प्रोबेशन पर या पेरोल पर उसे छोड़कर जल्दी स्थिर जीवन बिताने में सहायता तथा अन्य औपचारिक उपायों की ओर भी जनता की रुचि उत्पन्न हो गयी है।"[1] बन्दी-जीवन में सुधार के लिए सबसे बड़ी चीज—आज का सबसे सफल प्रयोग खुला जेल है।

खुला जेल काफी समय से प्रयोग में आ रहा है। यूरोप, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा अफ्रीका और एशिया के कतिपय देशों में इसका सफलतापूर्वक उपयोग हो रहा है। पिछले महायुद्ध के बाद से इस प्रकार की जेल-प्रणाली में अंतर्राष्ट्रीय रुचि उत्पन्न हो गयी है। किन्तु हर एक देश में "खुले" जेल की अपनी अलग-अलग व्याख्या है। कुछ देश क़ैदियों से दिन मे खेतों पर काम लेना और रात को उन्हें सीखचों के पीछे बन्द कर देना भी "खुला जेल" समझते हैं। इसी लिए सन् १९५० में हेग सम्मेलन में खुले जेल की व्याख्या भी कर दी गयी थी।[2] आजकल सही माने में खुला जेल (अब हम इसे खुली संस्था कहेंगे) उसे कहते हैं जिसमें कैदियो को आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा के अनुसार चिकित्सा के सभी साधन तथा सहूलियतें उपलब्ध हो। इस प्रकार की संस्था के दो उद्देश्य होते हैं—हर एक अप-

१. Walter Reckless—The Crime Problem—Page 3.

२. Twelfth International Penal & Penitentiary Congress, The Hague.

राधी की अलग अलग चिकित्सा करना तथा उसे समाज में पुन. स्थापित कर देना। इस प्रकार की चिकित्सा का प्रबंध जेलविभाग को ही करना होगा। क़ानून मे केवल सजा का आदेश है। अमुक अपराध पर अमुक अवधि के लिए दंड देना होगा। अदालत अपराधी को जेल भेज देती है। उसका वर्गीकरण या उसे किस प्रकार के बन्दी जीवन की आवश्यकता है, इससे अदालत का कोई सम्बंध नही है। इसलिए जिन देशों में ऐसी संस्थाएँ है, वे स्वयं अपना-अपना मापदंड बन कर बन्दी चुन लेते है तथा उन्हे खुली संस्थाओं में रखते है।

उत्तर प्रदेश में

भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश राज्य में सबसे पहले असली खुली संस्था की नींव पड़ी। १ अक्टूबर १९५२ से ३ अक्टूबर १९५३ तक चन्द्रप्रभा नदी पर बाँध बनाने के लिए सम्पूर्णानन्द शिविर नाम से पहली खुली सस्था की स्थापना तत्कालीन मुख्यमंत्री—पं० गोविदवल्लभ पन्त के द्वारा हुई। डा० सम्पूर्णानन्द उस समय गृहमंत्री थे। इसमे एक-एक खीमे मे २० "मजदूर" रहते थे—उन्हे "बन्दी"* कहने पर एक आना जुर्माना देना पड़ता था—कुल संख्या ४२२८ थी। इन बन्दियो पर मजदूरी में सरकार का ३,३२,१३५ रुपया खर्च हुआ था। पर इन्होंने बॉध के लिए मिट्टी खोदने का जो कार्य किया था वह ६७,४४,३८२ क्यूबिक फुट था। बन्दी-मजदूरो को डेढ़ रुपया रोज से दो रुपये रोज तक की मज़दूरी मिलती थी। उनका भोजन आदि का व्यय सरकार मजदूरी में से काट लेती थी, जो सर्वथा उचित है। जब मजदूर कमाने लगे तो उसे अपना पेट भरना चाहिए तथा करदाता पर भार नही बनना चाहिए। इसलिए चन्द्रप्रभा बाँध पर ३,३२ लाख रुपये की मजदूरी में से १,८८ लाख रुपया सरकार ने अपना खर्चे का ले लिया और १,४३,४३३ रुयया मजदूरों को मिला। इस प्रकार कैदियों को खुली हवा में, खुले वातावरण मे, अपनी जीविका कमाकर इतना पैसा बचाने का अवसर मिला जिससे अपने छूटने के समय वे समाज में निराधार तथा निरवलम्ब न रह जायँ। ४ अक्टूबर १९५३ को विंध्य पर्वतमाला के रमणीक अञ्चल में, कर्मनाशा नदी के तट पर दूसरा बॉध बनाने के लिए नौगढ़ शिविर खुला। इसमें २९०५ "मजदूर" थे जिन्होने ५,७३,७२६ रुपये मजदूरी में कमाये जिनमे से सरकारी खर्च काटकर १,७०,८५२ रुपया उनके पास बच गया।

हमने ऊपर खुली संस्था के लिए बन्दी के चुनाव का जिक्र किया है तथा बतलाया है कि हर देश में इसका अलग-अलग मापदंड है। उत्तर प्रदेश में किस प्रकार के वर्ग

तथा अपराध के बन्दी खुली संस्था में पाये जाते हैं, इसका पता नीचे दी गयी तालिका से लगेगा—

		नौगढ़ शिविर में
१. एक वर्ष की क़ैद की मीयाद से नीचे	—	१६६
२. १ से ३ वर्ष "	—	२२७८
३. ३ से ५ वर्ष "	—	६६९
४. ५ से १० वर्ष "	—	३३१
५. ११ वर्ष से अधिक, आजन्म कारावास आदि	—	४६१
		३९०५

अपराध की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण होगा—

१. दूसरों को चोट पहुँचाना	—	१०८९
२. सम्पत्ति को हानि पहुँचाना	—	६८५
३. राज्य तथा सार्वजनिक शान्ति में बाधा	—	९९१
४. हत्या सहित डकैती	—	११५
५. अफीम या अन्य आबकारी क़ानून में	—	३८
६. बलात्कार तथा जहर देना छोड़कर मानव शरीर के साथ अन्य अपराध	—	१२
७. राज्य की सुरक्षा के लिए बन्दी	—	९७५
		३९०५

१९ जनवरी १९५५ को, पीलीभीत जिले में शाहगढ़ से ५ मील दूर तीसरा सम्पूर्णानन्द शिविर खुला। १५ नवम्बर १९५६ तक यह शिविर चला। २,३०३ मजदूर थे जिन्हें कुल ६,७६,७२८ रुपया मजदूरी मिली, जिसमें से ३,२५,०३० सरकारी व्यय कटा और ३,५१,६९७ रुपया मजदूरों को बच गया।

सन् १९५६ में वाराणसी के निकट सारनाथ में महाबोधि सोसायटी द्वारा भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २५०० वर्ष पूरे होने का समारोह मनाया गया था। इस अवसर पर सारनाथ का मार्ग सुगम बनाने के लिए वरुणा नदी पर एक पुल

बनाया गया जो चार महीने में यानी फरवरी से जून १९५६ तक पूरा हो गया। इस पुल के निर्माण में सरैया मुहल्ले में, वरुणा के तट पर बन्दियों का चौथा "खुला शिविर" बना जिसमे ४०० "मजदूर" स्वतंत्र मजदूरों के साथ, जिनमें लगभग ३०० स्त्रियाँ भी थी, काम करते थे। सरैया शिविर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से इसलिए बडा महत्त्वपूर्ण है कि संसार में यह पहला प्रयोग था जिसमें बन्दी और स्वतंत्र मजदूर, स्त्री तथा पुरुष एक साथ मिलकर, शहर की बस्ती मे रहकर काम करे और एक भी दुर्घटना न हो, एक भी बन्दी भागे नही, वासना का एक भी अपराध न हो।

मिर्जापुर जिले मे चुर्क में उ० प्र० सरकार की प्रसिद्ध सीमेन्ट फैक्टरी है। १५ मार्च १९५६ से ८०० मजदूर (बन्दी) इसमें काम कर रहे है। इनका काम है मुख्यतः खदानों से बारूद द्वारा निकाले गये चूना, पत्थर उसका चूरा आदि को ट्रालियों पर लादकर यथास्थान पर पहुँचाना। औसतन ८ घंटा प्रति दिन काम करना पड़ता है। बोझ ढोने का काम वास्तव मे ट्राली करती है। १५ मार्च १९५६ से ३० नवम्बर १९५८ तक इन मजदूरो ने ११,२६,४४४ रुपया मजदूरी कमायी जिसमें से व्यय काटकर ५,२२,९१८ रुपया इनकी जेब मे गया। उधर शाहगढ शिविर के समाप्त होते ही नैनीताल जिले में पाँचवाँ सम्पूर्णानन्द शिविर खुला। १६ नवम्बर १९५६ से २३ अक्टूबर १९५८ तक यहाँ पर ४६०१ बन्दी थे, जिन्होने ७,७६,३६६ रुपया मजदूरी रूप में कमाया, जिसमें से ३,९६,६१० रुपया बन्दी मजदूरों के पास रह गया। इस शिविर की विशेषता यह है कि इसकी दुग्धशाला है तथा मुर्गी पालने का भी केन्द्र है। इन शिविरों के अलावा मझौला आदि के उपशिविर भी है। उत्तर प्रदेश की समूची जेल–जनसंख्या का पन्द्रह प्रतिशत खुली संस्थाओं में रहता है। ऐसे बंधन-मुक्त जीवन में भागनेवालों का औसत हजार पीछे एक कैदी से भी कम है। इन शिविरों में शिक्षा पाये तथा धन से सम्पन्न मुक्त बन्दी फिर कारागार में नहीं आते। वे अपना स्थिर तथा सुव्यवस्थित जीवन बिताने लगते हैं। प्रदेश के इन शिविरों मे समूचा प्रबंध बन्दी स्वयं करते हैं। उनकी शिक्षा, दीक्षा, मनोरञ्जन, खेल-कूद, नाटक, संगीत, पर्वोत्सव आदि का बड़ा व्यवस्थित प्रबंध है। इन सस्थाओं मे रहने-वाले मनुष्य को अपनी मनुष्यता पुनः प्राप्त हो जाती है।

भारतवर्ष मे खुली संस्था के मामले मे उत्तर प्रदेश सबसे आगे है। इस दिशा मे उसकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति है। और प्रदेशों में भी खुली संस्थाओं का प्रबंध हुआ है या हो रहा है पर उत्तर प्रदेश ऐसा वैज्ञानिक प्रबंध नही हो पाया है। बिहार में सन् १९५४ में कैदियों को सड़क बनाने का काम दिया गया। ३९४ क़ैदियों ने सन् १९५४ में ३ मील लम्बी सड़क बनायी और सन् १९५५ में २ मील लम्बी सड़क।

ये बन्दी आठ घंटे रोज काम करते हैं। इनको १३,२७६ रुपया मज़दूरी मिली[1] जो काफी कम है। इसके अलावा और किसी खुली संस्था या खुले कार्य की हमें सूचना नहीं है। यह जरूर है कि सोनपुर के मेले में हर साल जेल की दूकान पर काम करने के लिए बन्दी भेजे जाते हैं। सन् १९५२ से १९५६ तक ५८६ बन्दी भेजे जा चुके थे और उन्होंने हर साल लगभग २०,००० रुपये का जेल का बना माल बेचा।

बन्द और खुले जेल में भेद

बन्द और खुले जेल मे बड़ा अंतर है। सबसे बड़ा अंतर यह है कि खुली संस्था मे बन्द जेलो के समान "अधिक से अधिक" हिफ़ाज़त मे लेकर "कम से कम देखरेख" तक की तीन श्रेणियाँ नहीं होती। खुले ढंग का कारागार कैसे शुरू हुआ, इसका इतिहास देना आवश्यक नही है। पहले कैदियों को जेल के काम से ही बाहर भेजते रहे होंगे। जेल के खेतों पर उनको काम करने को भेजा जाता रहा होगा। काम समाप्त करके वे फिर बन्द दीवालो को वापस आ जाते रहे होंगे। इस प्रथा का विरोध भी हुआ होगा। यह आवाज उठायी गयी होगी कि मनुष्य के आत्म-सम्मान के विरुद्ध है कि उसे हथकड़ी बेड़ी में जकड़कर बाहर भेजा जाय और उसी तरह से वापस बुलाया जाय। बिना मज़दूरी दिये इतना परिश्रम लेना क्रूरता सिद्ध की गयी होगी। जो हो, आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता तथा कारागार से छूटने के जीवन के लिए तैयारी की प्रारम्भिक भावनाओ के विकास का इतिहास बड़ा रोचक होगा। यूनाइटेड किंगडम में यह नियम था कि १०-२० बन्दियो की टुकड़ियाँ सार्वजनिक विभागों में या ग़ैर-सरकारी लोगों की नौकरी में भेजी जाती थीं। इनकी निगरानी के लिए एक जेल-कर्मचारी दे दिया जाता और काफी दूर देहातों मे या जंगलों में काम करने के लिए भेजे जाते थे। कुछ दिनों बाद सड़क या जंगलों के काम के लिए क़ैदियों के छोटे-छोटे शिविर खुलने लगे पर इनसे इतना काम लिया जाता था मानो आदमी काम के लिए बना है, न कि काम आदमी के लिए।[2] इस प्रकार धीरे-धीरे खुले जेल का विकास हुआ। खुली संस्था सिर्फ़ उसी को नहीं कहते जो दीवालों के बंधन से रहित हो। किन्तु इसका प्रबंध ऐसा होना चाहिए कि इसमें रहनेवाला आत्म-संयम सीखे और जिस समुदाय में

१. Probation—India—July, 1957—Page 37.

२. Sri Lionel Fox—"Open Institutions"—U. N. O.—Page 11

रहता है उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी को महसूस करे तथा उसे जिस स्वच्छंद जीवन की सुविधा मिली है, उसका दुरुपयोग न करे।[1]

भिन्न देशों की खुली संस्थाएँ

यहाँ पर इतना स्थान नहीं है कि हर देश की खुली संस्था के रूप-रंग के विषय मे पूरी जानकारी करायी जा सके। हर जगह अलग ढंग की संस्थाएँ है।

बाल अपराधियों के लिए

आस्ट्रेलिया मे विक्टोरिया के निकट ४३००० एकड़ भूमि में एक खुली संस्था है जिसमें २१ वर्ष की उम्र से कम के २०० निवासी हैं। न्यूजीलैंड में वेलिंगटन से कुछ मील दूर पर ७५ लड़कियों के लिए आरोहाता नामक खुली संस्था है। बेल्जियम में ९ महीने से २० वर्ष तक की सजा वाले १२० व्यक्तियों के लिए खुली संस्था है जिसमें २५ वर्ष से कम उम्र के लोग लिये जाते है पर ४० वर्ष तक के प्रथम अपराधी भी लिये जा सकते है। नीदरलैंड्स मे २४ वर्ष की उम्र तक के अपराधियो को ही खुली संस्था मे रखते है (उत्तर प्रदेश की खुली सस्थाओ में बाल अपराधियों को नही लेते, वैसे उम्र की कोई कैद नहीं), सो भी एक से तीन वर्ष तक की सजा वालों को। इंग्लैंड मे १४ बोर्स्टल सस्था बाल-अपराधियो के सुधार के लिए है जिनमे से १० खुली संस्थाएँ है। लडके तथा लड़कियो की खुली संस्था में कतिपय व्यक्ति किसानों के यहाँ खेतों पर काम करने के लिए भी जाते हैं। दूर पर काम करने के लिए जाने-वाले लड़के साइकिलों से, बिना किसी गार्ड के, जाते है।[2] सभी संस्थाओं में धार्मिक तथा अन्य शिक्षा का पूरा प्रबंध है।

वयस्कों के लिए

यूनाइटेड किगडम मे वयस्को के लिए ५ खुली संस्थाएँ है। दो मे अल्पकालीन बन्दी भेजे जाते है। इनकी सजा की मीयाद १८ महीने से ३ वर्ष तक की होती है। लम्बी मीयादवालों के लिए एक खुली संस्था है। महिलाओं के लिए दो हैं।[3]

१. वही, पृष्ठ १३
२. वही, पृष्ठ ३४ से ४६ तक
३. Askam Grange and Hill Hall.

किन्तु इनमें एक भी संस्था में इतनी स्वच्छन्दता तथा कार्यपटुता नही है जितनी उत्तर प्रदेश के खुले शिविरों मे।

संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रथम तथा सबसे अधिक संगठित खुली संस्था चिनो, कैलिफोर्निया में है। इसके संगठनकर्त्ता तथा खुली संस्था के विशेषज्ञ श्री स्कडर का हम जिक्र कर आये हैं। चिनो यदि उत्तर प्रदेश की खुली संस्थाओं की तुलना में किसी दृष्टि से कमजोर है तो दो बातों में—उसकी जनसंख्या १५०० है। हमारे किसी भी शिविर में २५०० से कम नही है। चिनो में ७८ प्रतिशत "प्रथम अपराधी" हैं। हमारे शिविरों मे स्यात् इतने ही प्रतिशत दुबारा अपराधी चिरापराधी (अभ्यस्त अपराधी) होंगे। कैलिफोर्निया प्रदेश, जिसमें चिनो है, "अनिश्चित काल के लिए दंड देता है। जब भी अपराधी में सुधार हो जाय, वह छोड़ा जा सकता है। इसलिए चिनो में अच्छी से अच्छी शिक्षा, कार्य, सहकारिता आदि से काफी लाभ उठाया जा सकता है। संयुक्त राज्य में इतना सुप्रबंधित तथा नैतिकता की दृष्टि से ऊँचा सुधार-गृह और कोई नहीं है। सन् १९४५ से १९४८ के बीच में इसके १५१४ निवासियों में से केवल ४ भाग गये।[१]

महिलाओं के लिए लगभग आधी दर्जन संस्थाएँ हैं जिनमें १६-३० वर्ष की उम्र के बीच में तीन वर्ष तक की सजा की महिलाएँ रखी जाती हैं। केन्द्रीय सरकार के ऐल्डरसन नामक सुधारगृह में ४४० स्त्रियाँ हैं जिनके रहने के लिए छोटे-छोटे मकान अलग-अलग बने हुए हैं।

न्यूज़ीलैण्ड में १०० तथा ८४ व्यक्तियों के लिए दो शिविर हैं। स्वीडन में खुली संस्था पर बड़ा ज़ोर है। उसके १९४५ के कानून के अनुसार खुली संस्थाओं को ही प्राधान्य दिया गया है। उस देश में ५२ कारागार हैं जिनमें सन् १९५४ में ३२०० बंदी थे। इनमें से २७ खुली संस्थाएं हैं जिनमें ९२० पुरुष, स्त्री तथा नवयुवक अपराधी थे। जिन कैदियों को कठोर कारावास का दंड मिलता है वे तीन माह तक सजा भोगने के बाद खुले जेलों में भेजे जा सकते हैं। १०-५० बंदियों की टुकड़ियों में २१ से २५ वर्ष की उम्र के बीच के लोगों के लिए ११,००० एकड़ भूमि में १०० बन्दियों के लिए मैकलिपाड ट्रेनिंग सेन्टर नाम से बड़ी अच्छी संस्था है। ८०० व्यक्तियों का एक दूसरा अच्छा शिविर चल रहा था। ३०–९–१९५४ को उसकी जनसंख्या ८०० थी जिसमें से १५ भाग गये थे।

१. Federal Prisons Report, 1948.

फिनलैण्ड में बन्दियों के लिए राज्य की ओर से "मजदूर बस्तियाँ" बसा या बना दी गयी हैं। इनकी संख्या १९५४ मे १७ थी। इनमें खेती आदि का काम होता है। किन्तु दो वर्ष तक की सज़ा के अपराधी ही रखे जाते हैं।[१] फ़िलप्पीन में जेल के बाहर कैदियों से काम लेने का कार्य सन् १९०४ में शुरू हुआ।[२] यह कार्य इवाहिग मे अपराधी उपनिवेश में प्रारम्भ किया गया। आज इवाहिग एक आदर्श खुली संस्था बन गया है। दवाओं की खुली संस्था में २,९०० बन्दी हैं। इन दोनों संस्थाओं में शिक्षा, घरेलू व्यवसाय तथा खेती की ट्रेनिंग बहुत अच्छे ढंग से दी जाती है। किसी जेल में अपनी निर्धारित सज़ा का पाँचवाँ अंश भोगने के बाद ही खुली संस्था में भेजा जा सकता है। सजा की मीयाद पूरी होने पर भी लोग उपनिवेश में बस सकते है। हर बन्दी को दो वर्ष तक अपने लिए निर्धारित भूमि पर ठिकाने से खेती करने पर उस भूमि का स्वामित्व प्राप्त हो सकता है और वह उसी भूमि पर बस भी सकता है। अच्छा काम करनेवाले को सज़ा मे महीने में दस दिन की छूट मिल जाती है।

जापान में खुली संस्थाओं का अच्छा संगठन है। कुछ संस्थाएँ बाल-अपराधियों के लिए, कुछ महिलाओं के लिए भी है। किन्तु खुली संस्थाओं में केवल प्रथम अपराधी ही रखे जाते है। जुलाई १९५४ में आमागी फार्म ऐसी ७० संस्थाएँ थीं जिनमें ५११३ व्यक्ति रहते थे। प्रति सात व्यक्ति पर एक जेल-कर्मचारी नियुक्त है, यानी प्रति संस्था में ७८० कर्मचारी हैं।[३] इस प्रकार खुली संस्था का समूचा उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।

खुली संस्था का भ्रम

बहुत सी ऐसी संस्थाएँ हैं जो अपने को अनायास "खुली संस्था" कहती हैं। इनमें एक प्रसिद्ध संस्था विट्ज़विल है। इसे देखने के लिए हम १९५५ में, अगस्त के अंतिम सप्ताह में बड़े आदर सहित वहाँ ले जाये गये थे। इसे स्विट्जरलैण्ड का "आदर्श खुला जेल" कहते है। किन्तु वास्तव में इसे खुला जेल नहीं कह सकते। इसमें कैदियों को सीखचों के भीतर बन्द होना पड़ता है। उनसे ११ घण्टे रोज काम

१. Open Institutions in Finland—United Nations, Page 2.

२. Open Institutions in Philippines—United Nations—Page—1 to 9.

३. Open Institutions in Japan, U. N. O. Page 1-3.

लिया जाता है। इतने काम की मजदूरी २५ सेंट यानी चार आना (पच्चीस नया पैसा) रोज है। इतने पैसे मे कुछ खरीदा नही जा सकता। १० दिन के लिए ४० सिगरेट (तम्बाकू और कागज) मिलता है। फिल्म दिखाने का प्रबंध है पर चार-पाँच महीने तक भी कोई खेल नही होता। यों कारोबार सिखाने का बडा अच्छा प्रबंध है, पर यह खुली संस्था कदापि नही है।

अध्याय ३६

स्त्री तथा परिवार से वियोग

जेल के जीवन में सबसे बड़ी पीड़ा होती है पत्नी तथा परिवार से वियोग की। ऐसे वियोग से बन्दी के मन पर इतना बोझ रहता है कि उसकी बुद्धि ठिकाने नही रहती। इसी लिए वह सज़ा से छूटने के बाद अपने पुनर्वास की तैयारी भी नही कर सकता। मनुष्य के जीवन में विवाह एक बड़ी भारी कमी को पूरा करता है। जेल के जीवन में विवाहित तथा अविवाहित दोनों का मन समान रूप से सहानुभूति का स्रोत पानेके लिए तरसा करता है। संयुक्त राष्ट्र-संघ इस बात पर काफ़ी जोर दे रहा है कि बंदियों को बाहरी दुनिया से—जेल के बाहर की दुनिया से सम्पर्क स्थापित करने तथा बनाये रखने का पूरा अवसर देना चाहिए। उनको अपने घरवालों से मिलने की पूरी सुविधा देनी चाहिए।

यूरोप में बंदियों से मिलने के नियम

यूरोप के १९ देशो में बंदियों से मिलने के लिए नीचे लिखा नियम है—[१]

	एक महीने मे कितनी बार मिल सकते हैं						
घण्टो में कितनी देर तक भेंट कर सकते है	एक बार से कम	एक बार	दो	तीन	चार	चार से अधिक	कुल
आध घंटे से कम		४	२				६
आध घंटे से एक घंटे तक		४	५		१	१	११
एक से दो घन्टे तक					१		१
कोई उत्तर नही मिला	१						१
			कुल				१९

१. Ruth Shonle Cavan and Eugene S. Zamans Marital Relationships of Prisoners in Twentyeight Countries. Reprinted from Journal of Criminal Law, July—Aug., 1958-Pages 133-134.

ये सभी देश पत्नी या प्रेयसी को क़ैद में अपने पति या प्रेमी से मिलने की अनुमति देते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में महीने में दो बार एक घंटे तक भेंट हो सकती है। तुर्किस्तान में महीने में दो बार केवल १० मिनट के लिए भेंट हो सकती है, चाहे परिवार का कोई भी सदस्य हो। न्यूज़ीलैंड में प्रति सप्ताह में एक घंटे तक तथा फ्रान्स में सप्ताह मे एक या दो बार भी डेढ़ घटे तक भेंट हो सकती है। स्वीडन में खुले जेलों में प्रति रविवार को जितनी देर चाहे मिल सकते हैं। बन्द जेलों में आध घंटे प्रति रविवार को। डेनमार्क मे आधे घंटे दो बार प्रति मास। यूगोस्लाविया में महीने में दो या तीन बार, पर कठोर दंडवालों को महीने में केवल एक ही बार।

संयुक्त राज्य अमेरिका में

संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग आधे पुरुष तथा स्त्री बन्दी विवाहित हैं। केन्द्रीय सरकार के जेलों में पुरुष बंदियो की उम्र औसतन २८·७ वर्ष है। प्रादेशिक जेलों में २७·० वर्ष। महिला बंदियों के लिए क्रमशः २८·२ तथा २८·५ वर्ष उम्र है। इन क़ैदियों के अध्ययन से पता चलता है कि विवाह के तीसरे से छठे वर्ष के भीतर ज्यादातर तलाक़ होते हैं। सवाल यह उठता है कि क्या पति के जेल में बन्द रहने पर भी पत्नी उसका साथ पकड़े रहेगी? भारत ऐसे देशों में तो पति के मर जाने पर भी साथ पकड़े रहती है, अतएव यहाँ वह सवाल प्रायः नहीं उठता। पर संयुक्त राज्य में यह प्रश्न अवश्य है। अमूमन केन्द्रीय कारागारों में ११ महीने तक भीतर रहने का औसत होता है। प्रादेशिक कारागारों में २१ महीने तक। अतएव तलाक़ का उतना डर नहीं रहता जितना इस बात का कि पति चूंकि अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण नहीं कर रहा है अतएव परिवार में उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। इसलिए यह ज़रूरी है कि बन्दी बराबर अपने परिवार के लोगों से मिलकर अपने सम्बन्ध को बिखरने न दे, जब कि समूची सामाजिक परिस्थिति उसके विपरीत है। संयुक्त राज्य में २३ प्रदेश ऐसे हैं जो पति-पत्नी को मिलने देते हैं और महीने में चार मर्त्तबा आध घंटे से लेकर दिन भर मिलने का अवसर देते हैं।

बहुत से यूरोपीय जेलों में क़ैदियों से मिलनेवालों को अपने सामने स्टूल पर बैठकर बातें करने का अवसर मिलता है। कहीं-कहीं पर बीच में शीशे की दीवाल होती है और टेलीफोन रखा रहता है जिससे एक दूसरे से बातें करते हैं। कई देशों में ज़मीन पर पल्ले बिछा दिये जाते हैं। एक पंक्ति में बन्दी बैठता है। सामने की पंक्ति में उससे मिलनेवाला, सौ-पचास बन्दी एक साथ बिठाये जाते हैं। परिणाम

यह होता है कि आमने सामने एक दूसरे का मुख देखते हुए गला फाड़कर चिल्लाना पड़ता है। मिस्र, ईराक आदि में बहुत कुछ यही नियम है। भारतवर्ष में अभी तक ऐसा ही था। अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। संयुक्तराज्य अमेरिका में भिन्न-भिन्न नियम है। एक बन्दीगृह मे २०० बंदियों को जेल के खेतों में, बाग़ में, आराम से पेडों के नीचे बैठकर बातचीत करने की सुविधा है। कैलिफोर्निया के एक जेल में मिलने आनेवाला खाने-पीने का सामान ला सकता है और आराम से पिकनिक पार्टी हो सकती है। वैसे आमने-सामने बीच में एक मेज रखकर मिलने का आम तरीका है।

क़ैदियों को घर जाने की छुट्टी

अमेरिका के जेलो मे कैदियों को घर जाने देने की अनुमति नहीं दी जाती—यानी इसके लिए छुट्टी नहीं मिलती। छः राज्यों को छोड़कर शेष राज्यो में यह नियम है कि कैदी के घर में किसी अति आत्मीय की मृत्यु हो जाने पर या स्वयं उसकी गहरी बीमारी पर छुट्टी दी जाय। इंग्लैंड और वेल्स मे सन् १९५१ में कुछ वर्ग के क़ैदियों को परिवार से सम्बन्ध स्थापित करने तथा मुक्ति के बाद अपने जीवन को पुनः स्थापित करने की तैयारी के लिए पाँच दिन की छुट्टी मिल जाती है। उत्तरी आयरलैंड में दो वर्ष की सजावालों को बारह महीने की सज़ा पूरी करने पर बड़े दिन तथा गर्मी में छुट्टी मिल सकती है। स्विट्जरलैंड मे घर जाने के लिए ८ से २४ घंटे की छुट्टी मिलती है। डेनमार्क मे बाल या वयस्क अपराधियों को जेल की गारद के साथ कुछ घंटे के लिए घर जाने की छुट्टी मिलती है। स्वीडन इस विषय में सबसे उदार देश है। वहाँ पर जरूरत हो चाहे न हो, क़ैदियों को छुट्टी मिलती ही है। यात्रा में जितना समय लगे उसे छोड़कर कैदी ४८-७२ घंटे तक की समय-समय पर छुट्टी ले सकता है। एक साल में कई बार छुट्टी मिल जाती है। ऐसे छुट्टी पर गये लोगों मे पंद्रह प्रतिशत ऐसे है जो या तो देर मे वापस आये या नशे की हालत में लौटे, इत्यादि। सन् १९५२ मे स्वीडेन में, २,५२७ को छुट्टी मिली। सन् १९५४ में ३,०८५ को। स्त्रियों को छुट्टी प्रायः किसी देश में नही मिलती। बहुत से देशों में, जैसे अर्जेंटीन आदि में यदि कैदी का चरित्र या जीवन ठीक रहा तो उसे महीने में एक बार १२ से २४ घटे तक घर जाने की आज्ञा दी जा सकती है। भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश में लम्बी मीयाद के क़ैदी को तीन बरस की सजा भोगने के बाद एक महीने तक घर पर रहने की आज्ञा मिल जाती है। महिला बन्दियों को अपने बच्चों से मिलने की पूरी सुविधा दी जाती है। कैदी को फसल काटने के लिए घर जाने की

छुट्टी दी जा सकती है। जेल में कोई अपराध करने पर उसकी "मुलाकात" नहीं काटी जा सकती।

कामवासना और भेंट

काफ़ी समय से इस समस्या पर विचार हो रहा है कि जेलों में हस्तक्रिया या सहसंभोग, अप्राकृतिक संभोग आदि वासना के अपराध कैसे बंद किये जायें। इस सम्बन्ध में लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। संसार में केवल मेक्सिको ही ऐसा देश है जिसने इस बारे में एकदम क्रान्तिकारी कदम उठाया है। बहुत से अपराधशास्त्रियों का मत है कि जेलों में वासना के अपराध कम करने का सबसे उचित उपाय है कि निश्चित समय पर विवाहित बन्दी को अपनी पत्नी से एकान्त में मिलने का अवसर दिया जाय। मेक्सिको के ओक्साका नगर के सान्ता कातारिना जेल में २३० बन्दियों के ७० प्रतिशत को कागज की दीवाल की छोटी कोठरियों में हर गुरुवार तथा शनिवार को कुछ घंटों के लिए बंदी पति तथा उसकी पत्नी को एक साथ कर देते हैं। पर बंदी स्त्रियों को यह इजाजत नहीं है। मेक्सिको नगर के पुरुषों के एक जेल में, जिसमें २,२४६ बन्दी हैं, ५५ बन्दियों को प्रति सप्ताह यही सुविधा देते हैं।

किन्तु अधिक अपराधशास्त्रियों का मत ऐसी सुविधा के विपरीत है। सन् १९५६ में एक महिला ने कोलम्बिया जिले की अदालत में यह दावा किया कि सरकार ने उसके पति को जेल में भेज दिया पर वह उसे वैवाहिक जीवन से वंचित नहीं कर सकती। अतएव उसे अपने पति के साथ जेल में रहने दिया जाय। उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी। अस्तु, इस विषय में एक अनुभवी का मत है—

"कुछ लोगों का ऐसा खयाल है कि यदि जेलों में ऐसा परस्पर सम्बन्ध होने दिया जाय तो अप्राकृतिक संभोग आदि के अपराध बहुत कम हो जायें। हमारा यह अनुभव है कि जिस व्यक्ति का पारिवारिक जीवन अच्छा रहा है, जिसकी घर-गृहस्थी ठिकाने की है तथा पत्नी स्थिर बुद्धि की है, उसके लिए वासना की ऐसी कोई समस्या नहीं होती। असली समस्या तो अतृप्त कामवासना, अस्थिर, असयत, बार-बार विवाह करनेवाले व्यक्ति की है . . .ऐसे व्यक्ति को ऐसे परस्पर सम्बन्ध का अवसर देकर उसे सुधार लेने की बात सोचना मूर्खता है।"

१. वही, पृष्ठ १३७

२. Zamans and Cavan—Marital Relationship of Pri-

ऐसी मूर्खता तो नही है जितनी ऊपर कही गयी है, पर हमारा इस सम्बन्ध में अभी तक निश्चित मत नही है, अत. हम कोई राय नही जाहिर करना चाहते। ऊपर जितने भी विवेचन हैं सबका एक ही निचोड़ है। मनुष्य के साथ, चाहे वह अपराधी हो या साधारण मनुष्य, मनुष्यता का व्यवहार होना चाहिए। उसकी मानवोचित माँगे, महत्त्वाकांक्षाएँ तथा स्वस्थ कामनाएँ पूरी होनी चाहिए। उसे समाज में स्वस्थ नागरिक बनाकर भेजना है। समाज ने उसकी स्वाधीनता को हर लिया, इसके लिए उसके साथ समुचित व्यवहार करना ही समाज का उचित प्रायश्चित्त होगा। अब यह भी कोई नही अस्वीकार करता कि अपराध करने पर कारागार की सजा बहुत सोच विचार कर देनी चाहिए। अपराधी को यथाशक्य कारागार से बाहर रखने की बुद्धिमत्तापूर्ण नीति[१] का पालन दृढ़ता के साथ होना चाहिए। और जब किसी को जेल भेज ही दिया तो उसकी पूरी जिम्मेदारी को निभाना चाहिए।

soners, Reprinted from the Journal of Criminology—May-June, 1958 U. S. A. Page 54.

१. Mental Abnormality and Crime, Cambridge University—Page XXI.

अध्याय ३७

पुनर्वास की समस्या

कारागार में रखने से अधिक कठिन है कारागार से छूटने के बाद बन्दी की उत्तर-रक्षा का भार सँभालना। जिस समय बंदी छूटकर कारागार के बाहर पैर रखता है, उसके जीवन का बड़ा कठिन अवसर होता है। उसका बंधन समाप्त हुआ। उसकी स्वाधीनता शुरू हुई। वह जीवन समाप्त हुआ जिसमें उसकी इच्छा का कोई महत्त्व नही था। उसके ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं थी। अब वह ऐसे कठिन संसार को लौट रहा है जिसमें हर एक वस्तु के लिए संघर्ष तथा प्रयत्न करना पड़ता है। मुक्त बन्दी का जीवन स्वतः उसके चरित्र तथा कारागार के प्रबंध की कटु परीक्षा है। उत्तर-रक्षा के प्रबंध में कमी अथवा समाज द्वारा अपने बिछुड़े भाई को अपनाने में ही कमी; ऐसा कोई न कोई कारण होगा यदि मुक्त बंदी पुनः अपराध कर बैठे। कारागार की सजा से व्यक्ति समाज के सामने नंगा आ जाता है। इसकी उसके मन पर गहरी चोट लगती है। इसी लिए ८० प्रतिशत प्रथम अपराधी फिर अपराध नही करते।[1] पर बहुत से ऐसे भी है जो अपराध करने के लिए विवश हो जाते हैं। यदि उन्हें समुचित साधन प्राप्त होता तो ऐसा न होता। साथ ही, यदि कारागार के प्रबंधकों ने अपना कर्त्तव्य ठीक से निभाया होता तो बन्दी का चरित्र-निर्माण होता। कुछ बहुत ही असाध्य रोगी हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम है। मुक्त बन्दी की रक्षा तथा सहायता के लिए यह आवश्यक है कि जेल-जीवन में उसे मौलिक शिक्षा, कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त हुआ हो। तभी उसके लिए कुछ हो सकता है। कारागार में ही बन्दी के जीवन का सबसे नाजुक जमाना बीतता है।

प्रयास सफल होकर रहेगा

एक प्रश्न यह होता है कि क्या बन्दी का पुनर्वास, उसे स्वस्थ जीवन में लगा

१. Hugh Clare in Observer, London, May, 1959.

देने का प्रयत्न सफल हुआ है। एक क्षण के लिए मान भी लिया जाय कि नही हुआ है, तो उसे सफल बनाना पडेगा। बिना इसके और कोई चारा भी नही है। सरकार तथा जनता कैदियो का बढ़ता हुआ बोझ कहाँ तक उठायेगी। कानपुर नगर मे, उसकी ९ लाख की आबादी मे, ५ अगस्त १९५९ को ९९५ व्यक्ति जिला जेल मे बन्द थे। इनमें से ६११ विचाराधीन बंदी थे जिनमें १२६ बच्चे थे। इनमे १२ से १४ वर्ष के बच्चों की संख्या १८ थी। क्या होगा इतने बच्चों का—इतने होनहार नौजवानों का?

संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोर्निया प्रदेश के दक्षिण भाग के विचारपति हैरी सी० वेस्टोवर ने अपने एक लेख में कहा है कि वह जमाना चला गया जब बन्दी जेलो में वक्त बरबाद किया करता था। आज हर एक स्वस्थ व्यक्ति काम मे लगा हुआ है, लगाया गया है। सन् १९३४ मे संयुक्त राज्य के कारागारो में उद्योग-धधा चालू करने के लिए ७,५०,००० डालर (एक डालर का मूल्य पौने पाच रुपया हुआ) मजूर हुआ था। इस समय इन उद्योग-धंधों की पूँजी १,८०,००,००० डालर है तथा इनके उत्पादन से केन्द्रीय सरकार को ३,२५,००,००० डालर की प्राप्ति हो चुकी है।[१] जेल में काम करनेवाले बन्दी को दुहरा लाभ है। वह अपनी सजा की मीयाद में छूट भी प्राप्त कर सकता है और २५० रुपया माहवार तक कमा सकता है। जेलो के भीतर एकदम आदर्श वातावरण स्थापित करने में समय लगेगा, पर उतना ही समय एक मरीज़ को अस्पताल मे छुट्टी पाने पर भी स्वास्थ्य सुधार में लगेगा। पर जब चिकित्सा ठीक से हुई है तो रोगी का रोग रह नही सकता। यदि जेलो मे वर्तमान ढंग की शिक्षा जारी रही तो अपराधी का पुनर्वास निश्चित है।

१: Harry C. Westover, Judge-Guide Post, Manila, 15th July, 1958.

अध्याय ३८

मनुष्य और धर्म

न तो मनुष्य बुरा है और न कोई युग या समय बुरा हुआ करता है। मानव-स्वभाव जैसा कल था, वैसा आज है। जहाँ भी कहीं मानव-प्रकृति का अध्ययन किया जायगा उसमें गुण भी मिलेगा और अवगुण भी।[1] समाज में मौलिक विचार के लोग बहुत ही कम मिलेंगे।[2] रचनात्मक विचारों के जो थोड़े से लोग हैं वे ही समय को चुनौती देते हैं। अन्यथा मानव-जाति की दयनीय कहानी को सुनिए...जब तक इसे समझ तथा बुद्धि का कुछ अंश भगवान् ने नहीं दे दिया।[3]

नैतिक ह्रास की शिकायत

कीफर की पुस्तक में सेनेका (छोटे) के वाक्य उद्धृत हैं। वे लिखते हैं—

"हमारे बुजुर्गों को यही शिकायत थी, हमें यही शिकायत है और भविष्य की संतान को भी यही शिकायत रहेगी कि लोगों में नैतिकता के बंधन शिथिल हो रहे हैं। दुष्टता का बोलबाला है, मानव-जाति का बराबर ह्रास हो रहा है और हर एक पवित्र वस्तु से श्रद्धा हटती जा रही है।"[4]

आगे चलकर वे ही कहते हैं—[5]

"लूसिलियस, यदि तुम्हारा यह विचार है कि हमारे समय में दुराचार, विलासिता तथा नैतिक मापदंड बहुत दुर्बल हो गया है, तो तुम भूल कर रहे हो। हर एक

१. Charles Frankel—The Case for Modern Man, 1957–Page 161.

२. वही, पृष्ठ १५३

३. वही, पृष्ठ १

४. Kiefer, Page 46

५. Seneca Junior in Epistulae Morales. वही, पृष्ठ ४७.

व्यक्ति अपने समय पर यही दोष लगाता है। ये सब मानव-जाति के दोष है। किसी युग के दोष नही। इतिहास में पाप-रहित युग कोई रहा ही नही है।"

महाभारत मे कलियुग का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

पुत्रः पितृवधं कृत्वा पिता पुत्रवधं तथा।[१]

किन्तु इतिहास मे ऐसा कौन सा समाज था जिसमे पिता-पुत्र एक दूसरे की हत्या करते न पाये गये हो। असल मे हर युग की अपनी-अपनी माँग होती है जिससे उस युग की समस्याएँ बनती और ढलती रहती है। आज भी सबसे कठिन समस्या कल की समस्या से भिन्न है।

आज की दो माँगे

प्रसिद्ध लेखक आरनल्ड टॉयनबी ने हाल मे लिखा है कि आज दो सर्व-व्यापक तथा दृढ़ माँगे है। समाज की पुकार है कि हर एक नागरिक को समान अधिकार तथा पद-महत्त्व प्राप्त हो। दूसरी माँग है हर एक का जीवन-निर्वाह का स्तर और अधिक ऊँचा हो।[२] अब, इस समय इन्ही दोनो माँगो की पूर्ति के लिए समाज का हर एक सदस्य संघर्ष कर रहा है। कोई सीधे तथा न्यायसंगत मार्ग से प्रयास करता है और कोई समाज के नियमो के विपरीत चलकर अपना पद-महत्त्व तथा अपने जीवनस्तर को ऊँचा करना चाहता है।

धर्मभावना की आवश्यकता

अपराध तथा धर्म के सम्बन्ध को, यानी अपराध-निरोध के लिए धर्म-भावना की आवश्यकता को सिद्ध करते हुए पादरी टॉमस मिचेल ने लिखा है कि समाज-कल्याण के लिए हानिकर वस्तु का नाम अपराध है। शारीरिक व्याधि से शारीरिक अव्यवस्था पैदा होती है। पर अपराध आत्मा का रोग है। इसके कारण सामाजिक अव्यवस्था पैदा होती है और इंसान तथा उसके परमात्मा के बीच में भी गाँठ पड़ने लगती है। डकैती क्या है—लोभ का तर्कबुद्धि को दबा देना। अपराध मानवी प्रकृति की अवज्ञा

१. महाभारत, अरण्य पर्व, मार्कण्डेयसमस्या पर्व, श्लो० २८. अ० १६२

२. Arnold Toynbee–Religion and the Modern Man, Observer, London, July, 1959.

है। स्वभाव के भीतर जो वासना है उसको नियंत्रण के बाहर कर देना ही अपराध है। यदि मनुष्य श्रद्धा तथा आस्था से काम करे, यदि वह अपने, सबके ऊपर ईश्वर की सत्ता मान ले तो जीवन का हर एक काम नयी भावना से युक्त तथा नये मंत्र से प्रेरित प्रनीत होगा। धर्म की बागडोर पकडकर मनुष्य प्रेम तथा ममता के सहारे संसार के बड़े-बड़े कार्य कर लेता है। आत्मा की सत्ता न मानने से ही मनुष्य अपने को आध्यात्मिक प्राणी के रूप में नहीं देख सकता। सबमें एक आत्मा है। समाज हमारी आपकी आत्मा का प्रतिबिम्ब है। अपराधी हमसे परे या पृथक् कोई प्राणी नहीं है। कर्त्तव्यशास्त्र, न्यायशास्त्र तथा धर्मशास्त्र को एक दूसरे से पृथक् कर देने से ही समाज की स्वाभाविकता नष्ट कर दी गयी है।[1] समाज को ही दैवी वस्तु समझ लेने का परिणाम "ईश्वर" की धारणा है। यदि हमारी दृष्टि में समाज, उसके अनुशासन, उसके आदेशों के प्रति पवित्रता या आस्था की कोई बात न हो, यदि हमारा चित्त समाज की महत्ता को न स्वीकार करता हो तो हम ईश्वर की सत्ता को भी सही माने में नहीं मान सकते। समाज ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। प्रतीक है।

धर्म क्या है—इसका निर्णय केवल निजी विश्वासों के आधार पर नहीं होता। मानव का विश्वास तथा उसकी श्रद्धा शून्य पर आधारित नहीं है। उसका उपयोग मानव के कल्याण के कार्यों के उपयोग में ही हो सकता है। विश्वास तथा श्रद्धा को न्याय का रूप देना चाहिए। उन्हें कार्य रूप में परिणत करना चाहिए।

मानव के प्रति विश्वास, मानव के प्रति श्रद्धा, मानव के प्रति प्रेम; समाज का यही लक्ष्य, यही मंत्र, यही उद्देश्य होना चाहिए। तभी मनुष्य मनुष्य को, हम स्वय अपने को, एक प्राणी दूसरे प्राणी को पहचान सकेगा। इस प्रकार की पहचान के लिए ही धर्म तथा कर्त्तव्य का सहारा लेना आवश्यक है।

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उप सम्पदा।
सचित्त परियो दमनं एवं बुद्धानुसासनं॥

धम्मपद पचीसी, श्लोक २१

(सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना, यह है बुद्धों की शिक्षा।)

१. Raymond Firth–"Human Types"–1957–Page 48.
२. वही, पृष्ठ १७१

सहायक पुस्तकों की सूची

BIBLIOGRAPHY

1. Arthur E. Morgan—The Community of the Future–1958.
2. Albert K. Cohen—Delinquent Boys–1956.
3. Alexander, Statute and Zilboorg—"The Criminal, the Judge and the Public"–1957.
4. Arthur Homes—Conservation of the Child–1912.
5. A. V. Dicey—Law and Public Opinion in England–1952.
6. Benthem—Principles of Morals and Legislations.
7. Brantome—Gallant Ladies.
8. Bronislaw Malinowski—The Sexual Life of Savages.
9. B. S. Haikerwal—A Comparative Study of Penology.
10. C. Darwin—The Descent of Man.
11. Charles Frankel—The Case of Modern Man–1957.
12. Charles Goring—The English Convict and Statistical Study.
13. Charles Merz—Bigger & Better Murders–1928.
14. Charles Loring Brace—Gesta Christi–1882.
15. Cyril Burt—The Young Delinquent–1938.
16. C. Bernaldo de Qurros—The Modern Theories of Criminality–1912.
17. Dayers—A Short History of Women.
18. Dennis Wheatley—The Launching of Roger Brook (Novel)
19. Edward Westermarck—Origin and Development of Moral Ideas–1912.
20. Fung-Yu-Lan—The Spirit of Chinese Philosophy.
21. Flexner—Prostitution in Europe.

22. F. A. E. Craw—Animal Genetics-1925.
23. F.J. Shirley Murphy—The Incidence of Sudden Delinquency.
24. Francis Fenton—The Influence of Newspaper-Presentation upon the Growth of Crime-1911.
25. Flexner and Baldwin—Juvenile Courts and Probation-1916.
26. Frederick Howard Wines—Punishment and Reformation.
27. Gibbon—Decline and Fall of Roman Empire.
28. G. M. Calhoun and G. Delamere—"A Working Bibliography of Greek Land."
29. Getting Married—1956-British Medical Association.
30. Gustaw Jaggar—Discovery of the Soul-1884.
31. Gabrial Tarde—Penal Philosophy 1912.
32. Harold Lasky—Introduction to Politics.
33. H. Cutner—A Short History of Sex Worship 1940.
34. Hans Licht—Sexual Life in Ancient Greece-1952.
35. H. R. L. Sheppard—Some of My Religion.
36. Harry Elmer Barnes and Negely K. Teeters—"New Horizons in Criminology"-1959.
37. Ivon Block—Sexual Life in England-1938.
38. Inman—Ancient Faith embodied in Ancient Names.
39. Isaac Roy—"A Treatise on Medical Jurisprudence of Insanity".
40. Jitendra Nath Bannerjee—The Development of Hindu-Iconography-1941.
41. James Legge-Texts of Confucianism.
42. Johann J. Meyer—Sexual Life in Ancient India-1952.
43. J. T. Cunningham—Sexual Dimorphism in the Animal Kingdom-1900.
44. J. Edwards—Mens Rea in Statutory Offences-1955.
45. Jane Addams—The Spirit of Youth and the City Streets-1909
46. James—The Varieties of Religious Experience-1912.

47. John Howard—The State of Prisons.
48. J. C. F. Hall—Boy Crime in Burma–1939.
49. Karl Marx—Critique of Hegel's Philosophy of Law.
50. Keyserling—The Book of Marriage.
51. Lacky—The History of European Morals.
52. L. R. Farnell—Cults of the Greek States.
53. L. E. Widen—Young Criminals in Nebraska State Penitentiary-1957.
54. Lion Fox—Open Institutions–1950.
55. Maine—Ancient Law.
56. Meennan—Primitive Marriage.
57. M. Veerting—The Character of Women in a Masculine State and the Character of Women in a Feminine State–1921.
58. Macneile Dixon—The Human Situation.
59. M. E. Harding—Women's Mysteries–1935.
60. Modern Methods of Penal Treatment—Pub. International–Penal and Penitentiary Foundation–1956.
61. Maria Montessorie—The Discovery of the Child–1948.
62. Morris Ploscove—Sex and the Law Prentice Hall, New York–1951.
63. H. Hamblin Smith—Psychology of the Criminal—1922.
64. Methods of Social Welfare Administration, U. N. O.–1950.
65. Otto Keifer—Sexual Life in Ancient Rome–1951.
66. P. K. Sen—Penology Old & New–1943.
67. Paul Reiwald—Society and Its Criminals (William Heinemaun)–1949.
68. Plato—Republique.
69. Planch—Where is Science going ?
70. Prescot—History of the Conquest of Mexilos.
71. Pinel—Medical & Philosophical Treatise on Mental–Alienation–1801.

72. P. Nacke—Homo-Secuology and Psychosis-1911.
73. Paul Tappen—Juvenile Delinquency in North America.
74. Quetlet—Social Physics-1869.
75. R. E. M. Wheeler—Five Thousand Years of Pakistan-1950.
76. Richard F. Burton - Arabian Nights.
77. Raymond Dodge and Eugene Kahn—The Craving for-Superiority-1937.
78. R. N. Saksena—Social Economy of a Polyandrous People-1955.
79. Refaele Garofalo—Criminology-1884.
80. Raymond Furth—Human Types-1957.
81. Robinson—Penology in the United States—1923.
82. Richard Harrison—The World's Police-1954.
83. Richard L. Halcomb—The Police and the Public-1954.
84. Stekel—Sadism and Masochism.
85. Schardn—Pre-historic Antiquities of the Aryan Peoples.
86. Sexual Offences—Report of the Cambridge University.
87. Sidgwick—Methods of Ethics-1893.
88. Sayre—Public Welfare Offences-1933.
89. Sutherland—Criminology-1924.
90. Sheldon Glueck—Mental Illness and Criminal Responsibility-1956.
91. S. F. Nadel—The Theory of Social Structure-1956.
92. Study of 102 Sex Offences in Sing Sing Prison (report) 1950.
93. Sheldon Glueck—Mental Disorders and Criminal Law.
94. Sheldon Glueck & Cleanor Gluck-500 Criminal Careers.
95. Tarde—Penal Philosophy.
96. William Healy—The Individual Delinquent—1927.
97. W. W. Sanger—The History of Prostitution-1910.
98. William H. Forstern—Sexual Life in England-1938.

99. William Sargeant—Battle for Mind.
100. W. Narwood East and Others—Mental Abnormalities and Crime–1949.
101. W. A. Bonger—Criminology & Economic Conditions–1916.
102. Warden Lewis F. Lawes—Meet the Murderer–1940.
103. Walter Reckliss—The Crime Problem.

REPORTS

1. Administration Report of the Govt. of India and States.
2 English Digest.
3. Federal Bureau of Investigation Report, U. S. A.
4. Film Enquiry Committee Report.
5. Guide Post—Manila, Phillippines.
6. International Child Welfare Review.
7. International Federation of Senior Police Officers' Reports.
8. International Police Review.
9. London—"Times".
10. New York Times.
11. Readers' Digest.
12. Report of the Society for Prevention of Pauperism.
13. Report of the Child Welfare Department, Australia.
14. Reports of the Christian Economic and Social-Research-Foundation.
15. U. N. O. Reports and Publications—Nearly 40.
16. Uniform Crime Reports.
17. World Federation for Mental Health.
18. World Health Organisation Reports.

हिन्दी

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र—१९२५
२. कौशीतकी उपनिषद्

३ संस्कृत साहित्येतिहास—विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज
४. श्वेताश्वतरोपनिषद्
५. मुण्डकोपनिषद्
६. विष्णु पुराण
७. मनुस्मृति—टीकाकार पं० केशवप्रसाद द्विवेदी—१९४८
८. महाभारत—सम्पादक पी० पी० शास्त्री और रामस्वामी शास्त्रुलु
९. सौन्दरानन्द काव्य—अश्वघोष कृत—१९४८
१०. कुट्टनीमतम्—दामोदर गुप्त—१९५४
११. कन्यादान—डा० सम्पूर्णानन्द—१९५४
१२. याज्ञवल्क्य स्मृति
१३. पराशर स्मृति
१४ नारद स्मृति
१५. वाल्मीकि रामायण
१६. वात्स्यायन-कामसूत्रम्
१७. अग्नि पुराण
१८. गरुड़ पुराण
१९. मार्कण्डेय पुराण
२० प्राणदण्ड—परिपूर्णानन्द

(अध्ययन के समय नोटबुक में अंग्रेजी-हिन्दी के कुछ लेखकों का पूरा नाम तथा उनकी पुस्तक के प्रकाशन का समय देना रह गया था। उपरिलिखित पुस्तकों के अलावा रिपोर्ट, समाचार-पत्र, अनेक मासिक तथा विशिष्ट प्रकाशन आदि भी हैं जिनकी सूची हम नही दे रहे हैं। ऐसे कुछ विशिष्ट प्रकाशनों के नाम ऊपर दिये गये हैं।)

आन्वीक्षिकी ४
आशिरा देवी ५४
आसुर विवाह २४
इन्द्रियजय २८
इन्द्रियार्थ ३८
ईश्वर की धारणा ४३८
उत्तंक ३६
उन्माद १६२, ३२६, ३४२, ३५५, ३५७
उर्वशी २३
ऋग्वेद २३, २६
ऋतुकाल २०, २८, ३६, ३७
एजेन्ट १२०
एरिस्तोफेनीज—लेखक १६
एस्किमो जाति १०५
कटनर—लेखक ६, ५५, ६४
कन्फ्यूसियस १५, २४, २९, ५१, १०४
कर्ण का जन्म ३९
कल्माषपाद की कथा ३७
कांट ३६२
काकवर्न १४९
कामदेवी ७, १०, ३४, ५२, ५५, ५६
कामवासना १३, १५४-५६, १६०, १८७, ३४३
कामवासना का नियंत्रण २८, ४०, ४१, १०९, १११
कामशास्त्र ४५, ४६
कामसूत्र ३४
कायता ७४
कारागार ३६२-६३, ३७१, ३७६
कार्लमार्क्स २
कीफर—लेखक ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ४३६
कुंती ३९
कुट्टनीमत २२, ३२, ३३
कुमारी कन्या ३९, ४०
केटो ६१
केमरलिंग—लेखक ७४
कैदी से काम लेना ४, ११, १३
कोड़े लगाना २७३-७४
कौटिल्य ४, ५, २२, २७, २९, ३०, ३२, ३६२
क्विटिलियन, शारीरिक दंड का विरोधी ९८
क्वेटलेट—लेखक ३६१, ३६२
क्लिमेंट ११वाँ ३६३, ३७४
क्लियो पेटरा ५५
क्लेयर हग ३५१-५४
क्लैरेंस डैरो (वकील) ४०१
क्षमा ५
खतना का रिवाज १२, ५४
खुली संस्था ४२०, ४२४, ४२७
खुले ढंग के जेल ३८१, ४१०, ४१७, ४२०-२४
खुले शिविर ४२३
गंदा साहित्य २३०
गणिका ३०, ३१, ३४
गर्भवती ४०
गांधर्व विवाह २४
गार्गी २५
गुतनर १४८
गेरोफालो—लेखक १४५, १४६

गोरिंग ३४७
गोविन्दवल्लभ पंत ३९८, ४२१
ग्लानि १५५
ग्लूक १६८, ३४९, ३५३, ४०३
घुमन्तू बच्चे २४८-४९
चरित्र की मर्यादा १११
चर्चिल १५०
चार्ल्स डीकेन्स ३९६
चलचित्र १९७, १९९, २००, २९४-९५
चीत्कार ६८
चुम्बन ४८, १६९-७१
चोरबाजारी ६
छूट (तलाक) ९९
जंतु नामक लड़का १०४
जस्टिस डार्लिंग १५१
जातकपारिजात १७२-७३
जान हावर्ड २१५, ३७२, ३७५
जायज उम्र ४८, १२३, १२४
जार्ज बर्नर्ड शा १३
जीतेंद्रनाथ बैनर्जी १८५
जुआ ३२२, ४०२-०४
जूलियस सीज़र १०
जेलजीवन का प्रभाव १५३-५४, २१३, ३७६
जैन तथा जिन १५
जैम्स विलियम्स ११
जोनसार भाबर ९८, ९९
टप्पन १३७, २०२
टिन्डल—न्यायाधीश ३४१, ३४२, ३५१, ३५२
टीटर्स ३१७, ३१८, ३१९
टेलर—लेखक १८७, १८८
डरहम—अभियुक्त ३५१, ३५२, ३५३
डारविन १७८, १७९
डार्टमूर जेल ३७९
डेली मिरर (अखबार) ३९२
डेवन ३७६
तंत्र शास्त्र ५७
तर्क का महत्त्व १, ३
तलाक ९६, ११०, १७३
तानाशाही २३९
ताहिती लोगों में नरबलि १०४
तिकोपिया जाति १०५
तिरस्कृत बच्चे २५१-५५
तोब्रियांद जाति ४०, ६२, ११०
तिलक ३
त्रयी ४
थर्नवाल्ड—लेखक ७८
थियोगानिस १०९
दंड १, ४,७, ३१, ३२, ८६, ८७, ८८, ९०, ९१, ९६, ९८, १०७, १११, ११३, ११४, ११६, १२२, १२३, १३३, १३७, १४२, १४६, १४७, १५०, १६४, १६८, १९२, २१२, २१८, २२०, २२६, ३२९, ३३५-४१, ३४५, ३५१-५३, ३५७, ३७२, ३७४, ३७७, ३७८, ३८७, ३९६, ४०१-४, ४०६-१५, ४४७
दंडनीति ४, ५
दंडविधान (भारतीय) ११२-१६
दंडविधान (ब्रिटिश) ११६-१२४

दरिद्रता २२८, २३५, ३०२, ३१६, ३१७
दांडक्य की कथा २८
दायोदोरस-लेखक १०७
दायोनिसियस—लेखक ९५
दायोनीसियस की पूजा ५८
दीर्घतमस की कथा ४१
दुहरा प्रवेश १४६
दूल्हा-दूल्हन १७५
देवदासी प्रथा १०, ११५
दोगले बच्चे १०१, १०२
द्रौपदी २३, २५
धर्म ६, ७, ८, १२
धार्मिक आदेश १, ४
धौम्य ऋषि ३६
नदिकेश्वर ४६
नन(ईसाई संन्यासिनी) ६५
नरबलि १०१, १०३, १०४
नशेबाजी २२३, ३१६
नाजायज विवाह १५२
नाट्यशास्त्र ३४
नारउड—लेखक १५९-६०, १६१-६२
नारदस्मृति ३८
निकटसंबंधी विवाह १७८-७९
निरुक्त १
निर्मम भाव १५०
नीगरे जाति में नरबलि १०४
नीग्रो १५५
नीयत १५१
नीरो की कथा ५६
नैतिक दुर्बलता ३३९
नैतिक भावना ३३९
नैतिक विक्षिप्त ३३९
न्यायसंगत ९
पंचायतें ११३
पण्यांगना ८६
पतन १, ४, १२, २९, १८४
पतित १, ३, ५, ६, ७, १२, ४०८
पतिव्रता २६
पद्मपुराण ३३
परपुरुषसेवन ११
परस्पर संभोग १०, १२९, १५८
(दे० समयोनि प्रसंग)
पराकाष्ठा ५९
पराशर १८, ४९
परिवार १८३-८४, १९९, २२५, २३६, २३९, २४८, २५२, ३१०
परिष्कार ६२
पवित्रता-अपवित्रता ९, १०, १२
पशुप्रसंग १७, ४५, ४७, ५९, ११५, १२०, १३३
पागल ११९, १४४, १५६, ३३७-३९, ३४०, ३४२, ३४४, ३५०
पान देवता ५९
पाप १, ३, ४, ८, २९, ३८, ५२, १८४, २००, ३३८, ३६२, ३६४, ३६५, ३६९, ४४२
पिनेल १४४
पीडा का महत्त्व ३६०, ३६१
पीडासुख १६४-६५
पुण्य ३३८, ३६२
पुनर्वास ४३४
पुरुष-पुरुष संभोग १०, ५६, १२२,

१२६, १३१, १३३, १४०, ३३२
पुरोडाश १८
पुलिस ४०८-९
पेटोलबिले जेल ३७५
पेशाब, दवा के रूप में ६१
पोप क्लिमेट ३७४
प्रतिशोध ३, २१३, ३५९
प्रसंगचित्र ५९
प्राणदंड १२, १८७, ३५८, ३६७-६९, ३७२-७४, ३७८, ३८०, ३९१-९३
प्रियापस ११, ५८
प्रेम १८८, ३३५
प्रेसकोट १०४
प्रोबेशन १४०, २०१
प्रोबेशन या परिवीक्षण २१२, २६५, २७४-८६, ३६६
प्लुटार्क ७२, १०७
प्लेटो–लेखक १५, ६१, १०१, १९०, ३५९
फाँसी का पर्व ३९५
फान हामेल १४६, १४७
फ़ातिसियस ५८
फ़ारेल–लेखक १६२
फेरी १४५
फेलसियानो १९७-९८
फ्रायड–लेखक १३, १६, १७, ५६, १४७, १५८, ३२८, ३३० ३३३,
फ्रेडरिक महान् १०
बकुमातुला ७४
बक्कारिया १४७, ३६०
बर्टन ३०
बर्ट्रेंड रसेल ७४
बलात्कार २४, ४८, ४९, ११४, ११५, ११७, ११८, १३१, १३४, १३८-४०, १४२, १६२, १६४, ३९१, ३९८
बहुपतित्व २५, ९९
बहुपत्नी प्रथा ७७
बाकाम्बा जाति ४०
बार्नेस और टीटर्स–लेखक ३१७, ३१८, ३१९, ३२१
बाल २०६-७
बाल-अधिनियम २५५-५६, २६१-६७, २७३
बाल अपराधी २०६-८, २१९-२०, २६०, २८८, २९५
बालकल्याण अधिनियम २०९-११
बालपीयूर देवी ५४
बुरी संगति २२६
बोधायन ३६, ३७
ब्लेक ९
भय ३३६, ३३७, ३५२
भर्तृहरि २०, २३, २७, २८
भविष्य पुराण ३३
भागवत १८
भुजिष्या ८६
भ्रष्टाचार ११, १८४
मंत्रद्रष्टा ३
मद्रा जाति ४१
मन की चिकित्सा १५८
मनस्ताप ३२६, ३२७, ३३३
मनस्तापी ३२६, ३२८, ३२९, ३५५

मनाटेन—अभियुक्त ३४१-२, ३४५-६, ३४८, ३५१
मनिकान संप्रदाय १७
मनु १९, २४, २६, २८, २९, ३६३
मनुस्मृति ५, ३६, ३६३, ३६४
मर्दानी स्त्री ५६, ३१५
महाभारत १९, २२, २८, ३६, ३७, ३८, ३६७, ३७०, ४३७
महिला पुलिस १२८, २९२
महिष्मती ४०
महेंजोदड़ो २६
मांटेजुमा ६४
माता-पित १०५, १०६, २४१-२, ३३५
माता-पिता से संभोग १३०, १३९, १४१, १६४
माधवाचार्य ४९
मानव के अधिकार १४७, १४८
मानसिक रोगी १३३, १३५
माया १४, १५, १७
माया जाति १०४
मार्कर्स अरेलियस—सम्राट् ९४
मार्को पोलो ६४
मार्गन—लेखक १८२
मिलवेंक जेल ३७५
मिलिता देवी ११
मुखप्रसंग ३७
मूढ, मूर्ख ३३८-४०, ३४८
मूर ३३९
मूसा ५१
मेकनील डिक्सन—लेखक १८५
मेन—लेखक २५
मेरी माटेस्सरी २२१
मेरी स्टोप्स १८१
मैटेलम—लेखक ९३
मैलिनोवस्की ६३, ७४, ८५, ११०
मोहक—विकृतमना-अपराधी ३२५
याज्ञवल्क्य ६, ३६४-६६
यास्क १, २, ३
युधिष्ठिर १९, ३६, ४०
यूनान की सभ्यता ५७, ५८, ६१
यूनान में दण्ड १०७
रक्तचाप ३३०
रजस्वला ३६, ६१, १७३
रजामन्दी १२३, १२५, १२६, १४०
राक्षस विवाह २४
राममोहन राय १०४
राल्फ बैकेल डा० २४०
राशोमाफिल १८९
रिचर्ड डगडेल ३२१
रिचर्ड हेरीसन ३७८
रेप (बलात्कार) २४
रेमंड फर्थ १९१, ४३८
रोकथाम और चिकित्सा ३०५-६
रोमन कैथोलिक ६३
रोमन लोग ५७, ९७, १०२
रोमिली ३९५
रोमुलस १०२
रोलैंड को फाँसी ३९२
ललितविस्तर ३४
लार्ड हिवर्ट २१३
लार्ड हेल ३५०

लिडवर्ग ३१३
लिविंग्स्टन ३७३-७४
लुई पवित्र ३५, ३७६
लेडेस्का १९७
लैकी—लेखक २२
लोम्ब्रोजो—लेखक १४३, १४४, १४७, ४०३, ४०४,
लोरिग ३१६
वयस्क अपराधी ३३१
वर्गीकरण २४६
वाग्भट ४९
वाटसन २३४, २३५, २३६
वात्स्यायन ३४, ४५, ४९
वाममार्ग ५७
वार्ता ४०
विकृतमना ३२३, ३२५, ३३३
विप्रदुष्टा ८९
विवाह १७२, १८१
विष्णुपुराण १८
वेश्या १०, १४, १९, २१, २७, ३०, ३२, ३३, ३४, ३५, ४०, ५०, ५१, ५२, ६०
वेश्यालय ३५
वेस्टर मार्क ८४, ९०, १०४, १०६, १८६
व्यभिचार ५१, १०९, ११५, १३२, १३९, १४०, १६३
व्यभिचारिणी पुत्री १५९
शास्त्रीय विवाह २४
शाश्वती पत्नी की कथा २३
शेपर्ड—लेखक ६५
शेल्डन ग्लूक—लेखक १६८, ४०३, ४१४ (दे० ग्लूक)
शोख अपराधी ३३२
संतान की हत्या १०१, १०२
सक्सेना डा० ९९, १००
सखीभाव १०
सतीप्रथा १०४
सदाचार ८, १८४-५
सप्रू ३९८
सफेदपोश अपराधी ३२१
समयोनि प्रसंग ४७, १४०, १४१, १५५, १५८, २००, ३१५
सम्पूर्णानन्द २४, १७६, १८०, ३८४, ४२१
सम्पूर्णानन्द शिविर ४१७, ४२२, ४२३
सम्मानित व्यवसाय ३२२
सहोदर भ्राता ३९
साधु मिथायल का अस्पताल ३६३, ३७४
सालस्त ९३
सिनेमा (दे० चलचित्र)
सिंगसिंग जेल ३१५, ३८०, ३९३, ३९४
सिम्पसन मार १३
सुकरात १०, १६
सुधारगृह २१४, २६०-६१, २८७, ३००
सुरैतिन ७८
सुश्रुत आचार्य ४९
सैमुयेल लार्ड २०१, २३२, २३४, २३७
सोमक राजा १०४

सोमाली जाति १६२
सौन्दरानन्द काव्य २७
स्कडर ३८१, ३८३
स्टाक वेल १३०
स्टार (बन्दी) ३७९
स्टेकेल—लेखक ९७
स्टेफन ३४४, ३४५
स्त्री का पद १८, २२, २४, २५, ३८, ३९, ४२, ६४
स्त्री की हत्या १०२, १०३
स्नाइडर ३९३
स्पर्म (वीर्य) ८०
स्पिनोजा १९०
स्वायर १८०, १८१
स्वीकार ३२२
स्वीकृति (कन्या की) १२३, १२५
स्वैरिणी ८८
हचिसन २४३
हत्या १२, ३२९, ३९३
हम्फ्रेज, न्यायाधीश ११७
हरप्पा २६
हर्माफ्रोदाइतोस ५९
हस्तक्रिया १०, ६१, १३३, १०९, १५७, १६९, ४२२
हास—लेखक ५७, ५८
हालकोम्ब—लेखक ३८३, ३८५
हाल मिल्स ३१३
हाल्डेन १५०
हियारोगेमस ५८, ५९
हिस्टीरिया ३२७
होली—लेखक ६, १२६, १५४, १५७, १६९, १७५, १९२, २१७, २२२, २२३, २२५, ३१८, ३१९
हेरिंडंग—लेखक १८९
हेलवानियस—लेखक १९०
हैकलवाल २५४
हैण्डरसन १६७
हैल्स हाफ २३२
हैने—लेखक १२
हैवलाक एलिस—लेखक १३, ७६, १५६, १६४
होम्स ३७६